ब्रह्माण्ड पुराण

(द्वितीय खण्ड)

(सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

सम्पादकः

डॉ० चमन लाल गौतम

रचयिता—प्राणायाम के असाधारण प्रयोग, ओंकार सिद्धि, मंत्र शक्ति से रोग निवारण, विपत्ति निवारण-कामना सिद्धि, श्रीमद्‌भागवत् सप्ताह कथा, योगासन से रोग निवारण, तन्त्र विज्ञान, तन्त्र रहस्य, मनुस्मृति, सूर्य पुराण, तंत्र महाविज्ञान, कालिका पुराण, मानसागरी आदि।

भूमिका

पुराणों में यही अन्तिम पुराण है। उच्च कोटि के पुराण में इसे महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त है। इसकी प्रशंसा में पुराणकार यहाँ तक चले गये कि उन्होंने इसे वेद के समान घोषित किया। इसका अभिप्राय यह हुआ कि पाठक जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वेद का अध्ययन करता है, उस तरह की विषय सामग्री उसे यहाँ भी प्राप्त हो जाती है और वह जीवन को चतुर्मुखी बना सकता है।

इस पुराण के पठन-पाठन, मनन-चिन्तन और अध्ययन की परम्परा भी प्रशंसनीय है। गुरु ने अपने शिष्यों में से इसका ज्ञान अपने योग्यतम शिष्य को उसका पात्र समझ कर दिया ताकि इसकी परम्परा अबाध गति से निरन्तर चलती रहे। भगवान प्रजापति ने वसिष्ठ मुनि को, भगवान वसिष्ठ ऋषि ने परम पुण्यमय अमृत के अदृश इस तत्व ज्ञान को शक्ति के पुत्र अपने पौत्र पाराशर को दिया। प्राचीन काल में भगवान पाराशर ने इस परम दिव्य ज्ञान को जातुकर्ण्य ऋषि को, जातुकर्ण्य ऋषिने परम संयमी द्वैपायन को पढ़ाया। द्वैपायन ऋषि ने श्रुति के समान इस अद्भुत पुराण को अपने पाँच शिष्यों जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन पेलव और लोमहर्षण को पढ़ाया। सूत परम विनम्र, धार्मिक और पवित्र थे। अतः उनको यह अद्भुत वृतान्त वाला पुराण पढ़ाया था। ऐसी मान्यता है कि सूतजी ने इस पुराण का श्रवण भगवान व्यास देव जी से किया था। इन परम ज्ञानी सूत जी ने ही नैमिषारण्य में महात्मा मुनियों को इस पुराण का प्रवचन किया था। वही ज्ञान आज हमारे सामने है।

पुराण का लक्षण है—सर्ग अर्थात् सृष्टि और प्रति सर्ग अर्थात् उस सृष्टि से होने वाली सृष्टि, वंशों का वर्णन, मन्वन्तर अर्थात् मनुओं का कथन। इसका तात्पर्य यह है कि कौन-कौन मनु किस-किस के पश्चात् हुए! वंशों में होने वालों का चरित यह ही पाँचों बातों का होना पुराण का लक्षण है। यह सभी लक्षण इस पुराण में उपस्थित हैं। इसके चार पाद हैं—

प्रक्रिया, अनुषंग, उत्पोद्घात और उपसंहार। इन्हीं के द्वारा सम्पूर्ण वर्णन हुआ है।

इस पुराण के नामकरण का रहस्य है कि इसमें समस्त ब्रह्मांड का वर्णन है। भुवन कोष का उल्लेख तो सभी पुराणों में मिलता है परन्तु प्रस्तुत पुराण में सारे विश्व का सांगोपांग वर्णन उपलब्ध होता है। इसमें विश्व के भूगोल का विस्तृत व रोचक विवेचन है। इसमें ऐसी-ऐसी जानकारी मिलती है जिसे देखकर आश्चर्य होता है कि बिना वैज्ञानिक सहयोग के इतनी गहन खोज कैसे की होगी। वैज्ञानिक युग में अभी तक उसकी पुष्टि भी नहीं हो पायी है।

पुराण में स्वायम्भुव मनु के सर्ग व भारत आदि सब वर्षों की समस्त नदियों का वर्णन है। फिर सहस्रों द्वीपों के भेदों का सात द्वीपों में ही अन्तर्भाव हैं, जम्बूद्वीप और समुद्र के मण्डल का विस्तार से वर्णन है। पर्वतों का योजना-बद्ध उल्लेख है। जम्बूद्वीप आदि सात समुद्रों के द्वारा घिरे हुए हैं। सप्तद्वीप का प्रमाण सहित वर्णन है। सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी को पूर्ण परिणाम बताया गया है। सूर्य की गति का भी उल्लेख है। ग्रहों की गति और परिमाण भी कहे गये हैं। इस तरह से विश्व के भूगोल का महत्व पूर्ण उल्लेख है।

वेद के सम्बन्ध में भी यह जानकारी उल्लेखनीय है कि विभु बुद्धिमान गीर्ण स्कन्ध ने सन्तान के हेतु से एक वेद के चार पाद किये थे और ईश्वर ने चार प्रकार से किया था। भगवान शिव के अनुग्रह से व्यास देव ने उसी भाँति भेद किया था। उस वेद की शिष्यों और प्रशिष्यों ने वेद की अयुत शाखाएं की थी।

इस पुराण के विषय में एक विशेष बात यह है कि ईसवी सन् ५ की शताब्दी में इस पुराण को ब्राह्मण लोग जावा द्वीप ले गये थे। वहाँ की प्राचीन "कवि भाषा" में अनुवाद हुआ जो आज भी मिलता है। इससे इस पुराण की प्राचीनता का भी बोध होता है।

पुराणकार ने श्राद्ध के विषय को बड़े ही साङ्गोपाङ्ग रूप में, मुख्य तथा अवान्तर प्रभेदों के साथ दिया है। परशुराम की महिमा तथा गौरव का विवेचन असाधारण ढंग से किया गया है। परशुराम कार्तवीर्य हैहय के संघर्ष का बड़े विस्तार के साथ वर्णन है। परशुराम जी पहले महेन्द्र पर्वत (वर्तमान गंजम जिले में पूर्वी घाट की आरम्भिक पहाड़ी) पर तप करते थे। जब वे सारी पृथ्वी को दान में दे चुके तो अपने निवास के लिए उन्हें भूमि की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होंने समुद्र से भूमि की याचना की जो सत्याद्रि तथा अरब सागर के बीच में सकरी भूमि है" यही चित्पावन ब्राह्मणों का मूल स्थल कोंकण है। परशुराम से प्रमुख रूप से सम्बन्धित होने के कारण इस पुराण का उदय-स्थल सत्यादि तथा गोदावरी प्रदेश में होना उपयुक्त दिखाई देता है।

राजाओं के जीवन चरित्र से पुराण का महत्व बढ़ा है। उनके गुण व अवगुण दोनों ही उजागर हुए हैं। उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुव का चरित्र घोर संघर्ष से सफलता प्राप्त करने और दृढ़ सङ्कल्प से सिद्धि प्राप्त करने का प्रतीक है। चाक्षुष मनु के सर्ग का कथन भी उपयोगी है। राजा यदु और राजर्षि देव का वर्णन भी रोचक बन पड़ा है। राजा कंस की कथा से स्पष्ट है कि जब धर्म की हानि से अत्याचार चरम सीमा तक पहुँच जाते हैं तो उनसे निवृत्ति के लिए भगवान अवतरित होते हैं। राजा शान्तनु के पराक्रम के विवरण के साथ भविष्य में होने वाले राजाओं के उपसंहार का भी कथन दिया गया है जो एक आश्चर्य है। राजा सगर और राजा भगीरथ द्वारा गङ्गा का स्वर्गलोक से पृथ्वी लोक पर अवतरण घोर श्रम द्वारा असम्भव को सम्भव बनाने की लोक प्रिय गाथा है।

तपस्वी ऋषियों की गौरव गाथाएँ भी कम अनुकरणीय नहीं हैं। कश्यप, पुलस्त्य, अत्रि, पराशर की कथाएं रोचक हैं। भार्गव चरित्र विस्तार से वर्णित है। महर्षि वसिष्ठ ज्ञान के और महर्षि विश्वामित्र सृजन के प्रतीक होते हैं।

चारों युगों के विस्तृत वर्णन से आश्चर्य तो होता ही है, साथ ही ऋषियों की प्रतिभा का भी आभास होता है। रौरव आदि नरकों के वर्णन से सभी प्राणियों के पापों के परिणामों का निर्णय किया गया है। इससे पाठक को अपने कर्मों की समीक्षा करके जीवन मार्ग को नये ढङ्ग से निर्धारित करने की प्रेरणा मिलती है।

पुराण को साहित्य की दृष्टि से भी उत्कृष्ट माना जाता है क्योंकि निबन्ध ग्रन्थों में इसके श्लोक दिखाई देते हैं। मिताक्षरा अपरार्क, स्मृति चन्द्रिका, कल्पतरु में इसके श्लोक उद्घृत किये गये हैं। इससे लगता है साहित्यकारों की दृष्टि में यह पुराण उच्च महत्व का है। कालिदास की रचनाओं का और उनकी वैदर्भी रीति का प्रभाव भी इस पुराण के विवेचन पर है। इतिहास कारों का मत है कि पुराण की रचना गुप्तोत्तर युग में अर्थात् ६०० ईस्वी में मानना उचित है।

—चमनलाल गौतम

ब्रह्माण्ड पुराण

(द्वितीय खण्ड)

।। असमंजस का त्याग ।।

सगर उवाच—

कुशलं मम सर्वत्र महर्षे नात्र संशयः ।
यस्य मे त्वमनुध्याता शर्मं भार्गवसत्तमः ।।१
यस्तथा शिक्षितः पूर्वमस्त्रे शस्त्रे च सांप्रतम् ।
सोऽहं कथमशक्तः स्यां सकलारिविनिग्रहे ।।२
त्वं मे गुरुः सुहृद्वं बंधुर्मित्रं च केवलम् ।
न ह्यन्यमभिजानामि त्वामृते पितरं च मे ।।३
त्वयोपदिष्टेनास्त्रेण सकला भूभृतो मया ।
विजिता यदनुस्मृत्या शक्तिः सा तपसस्तव ।।४
तपसा त्वं जगत्सर्वं पुनासि परिपासी च ।
स्रष्टुं संहर्त्तमपि च शक्नोष्येव न संशयः ।।५
महानानन्यसामान्यप्रभावस्तपसश्च ते ।
इह तस्यैकदेशोऽपि दृश्यते विस्मयप्रदः ।।६
पश्य सिंहासने बाल्यादुपेत्य मृगपोतकः ।
पिबत्यंभः शनैर्ब्रह्मन्निः शंकं ते तपोवने ।।७

राजा सगर ने कहा—हे महर्षे ! मेरे यहाँ सर्वत्र कुशल है—इसमें तो कुछ भी संशय नहीं है जिस मेरे विषय में भार्गव श्रेष्ठ आप शमका अनुध्यान करने वाले विद्यमान हैं । जिसको पूर्व में ही शस्त्रास्त्रों के प्रयोग करने की भली भाँति शिक्षा-दीक्षा दे दी गयी है वह मैं इस समय समस्त

शत्रुओं के विनिग्रह करने में कैसे असमर्थ हो सकता हूँ ।१-२। आप तो मेरे गुरुदेव हैं-- सुहृत्-दैव-बन्धु और मित्र हैं । केवल आप ही मेरे सब कुछ हैं । मैं तो आपके अतिरिक्त अन्य किसी को भी मेरा पिता नहीं जानता हूँ ।३। आपके द्वारा उपदेश किये गये अस्त्र से ही मैंने सब नृपों पर विजय प्राप्त की है जिनके स्मरण से ही पूर्ण विजय मेरी हुई है यह आपके ही तप की शक्ति है । यहाँ पर उसका एक देश भी विस्मय देने वाला दिखलाई देता है ।४-६। देखिये, मृग का शिशु बचपन से ही सिंहासन पर समीप में आकर हे ब्रह्मन् ! धीरे-धीरे जल पी रहा है और वह आपके इस तपोवन में बिल्कुल ही निःशङ्क अर्थात् भय से रहित है ।७।

धयत्यत्रातिविस्रंभात् कृशाऽपि हरिणीस्तनम् ।
करोति मृगशृंगाग्रे गंडकंडूयनं रुरुः ।।८
नवप्रसूतां हरिणीं हत्वा वृत्त्यै वनांतरे ।
व्याघ्री त्वत्तसावासे सैव पुष्णाति तच्छिशून् ।।९
गजं द्रुतमनुद्रुत्य सिंहो यस्मादिदं वनम् ।
प्रविष्टोऽनुसरंतौ त्वद्भयादेकत्र तिष्ठतः ।।१०
नकुलस्त्वाखुमार्जारमयूरशशपन्नगाः ।
वृकसूकरशार्दूलशरभर्क्षप्लवंगमाः ।।११
शृगाला गवया गावो हरिणा महिषास्तथा ।
वनेऽत्र सहजं वैरं हित्वा मैत्रीमुपागताः ।।१२
एवंविधा तपः शक्तिर्लोकविस्मयदायिनी ।
न क्वापि दृश्यते ब्रह्मंस्त्वामृते भुवि दुर्लभा ।।१३
अहं तु त्वत्प्रसादेन विजित्य वसुधामिमाम् ।
रिपुभिः सह विप्रर्षे स्वराज्यं समुपागतः ।।१४

वह अत्यन्त दुबली हरिणी भी अत्यधिक विश्राम के साथ अपने स्तन को पिला रही है । हरिण मृग छौना के गण्डों को शृङ्ग के अग्रभाग से खुजला रहा है ।८। नव प्रसूता अर्थात् हाल ही में प्रसव करने वाली हरिणी को मारकर वृत्ति के लिए दूसरे वन में वही व्याघ्री आप के इस तपस्या के आश्रम में उसके शिशुओं के पोषण कर रही है ।९। एक सिंह एक हाथी के

पीछे आक्रमण करके जब यहाँ पर आ गया है तो प्रवेश करते ही अनुसरण करते हुए वे दोनों सिंह और गज आपके ही भय से एक ही स्थान में स्थित हो रहे हैं ।१०। जो स्वभाव से ही आपस में शत्रु होते हैं वे सभी नकुल-मूषक-मार्जार-मयूर-शश-सर्प-वृक-सूकर-शार्दूल-शरभ-प्लवङ्गम-श्रृगाल-गवय-गौ हरिण और महिष ये सभी एक-एक के शत्रु होते हुए भी इस वन में अपने स्वाभाविक वैर को भूलकर परस्पर मैत्री के भाव को प्राप्त हो गये हैं ।११-१२। इस प्रकार की यह आपकी ही शक्ति है जो लोगों को बड़ा ही विस्मय देने वाली है। हे ब्रह्मन् ! आपके बिना लोक में इस भूमि पर ऐसी दुर्लभ शक्ति अन्यत्र कहीं पर भी दिखलाई नहीं देती है ।१३। और मैं तो आपके ही प्रसाद से इस सम्पूर्ण वसुधा को जीतकर सब रिपुओं को ध्वस्त करके अपने राज्य में प्राप्त हुआ हूँ ।१४।

वश्यामात्यस्त्रिवर्गेऽपि यथायोग्यकृतादरः ।
त्वयोपदिष्टमार्गेण सम्यग्राज्यमपालयम् ॥१५

एवं प्रवर्त्तमानस्य मम राज्येऽवतिष्ठतः ।
भवद्दिदृक्षा संजाता सापेक्षा भृगुपुंगव ॥१६

किं त्वद्य मयि पर्याप्तमनपत्यतयैव मे ।
पितृपिंडप्रदानेन सह संरक्षणं भुवः ॥१७

तदिदं दुःखमत्यर्थमनिवार्यं मनोगतम् ।
नान्योऽपहर्त्ता लोकेऽस्मिन् ममेति त्वामुपागतः ॥१८

इत्युक्तः सगरेणाथ स्थित्वा सोऽतर्मनाः क्षणम् ।
उवाच भगवानौर्वः सनिदेशमिदं वचः ॥१९

नियम्य सह भार्याभ्यां किंचित्कालमिहावस ।
अवाप्स्यसि ततोऽभीष्टं भवान्नात्र विचारणा ॥२०

स च तत्रावसत्प्रीतस्तच्छुश्रूषापरायणः ।
पत्नीभ्यां सह धर्मात्मा भक्तियुक्तश्चिरं तदा ॥२१

मेरे सभी अमात्य वश्य हैं और तीनों वर्गों में भी मैं यथायोग्य आदर प्राप्त करने वाला हूँ। आपके ही द्वारा जो उपदेश प्राप्त किया है उसी मार्ग से मैंने अच्छी तरह से राज्य का परिपालन किया है ।१५। इसी रीति से मैं

प्रवृत्त हो रहा हूँ और अपने राज्य पर स्थित हूँ किन्तु हे भृगु श्रेष्ठ ! मेरी इच्छा आपके दर्शन प्राप्त करने की हुई थी जो कि कुछ अपेक्षा से समन्वित है ।१६। आज मुझमें आपके प्रसाद से सभी कुछ पर्याप्त प्राप्त हुआ है किन्तु मेरी कोई सन्तति नहीं है । इसी कारण से मुझे इस भूमि का संरक्षण करना और पितृगण को पिण्डों का देना दुष्कर सा हो रहा है ।१७। यही मुझे बड़ा भारी घोर दुःख है जो मेरे मन में बैठा हुआ है और निवारण के योग्य नहीं है । इस लोक में मेरे इस दुःख का अपहरण करने वाला आपको छोड़कर अन्य कोई भी नहीं है । अतएव मैं आपकी सन्निधि में प्राप्त हुआ हूँ ।१८। इस प्रकार से जब सगर नृप के द्वारा उस मुनि से कहा गया था तो वह मुनि एक क्षण तक मन ही मन में सोचते हुए स्थित रहे थे और फिर और्व भगवान् ने निदेश पूर्वक यह वचन राजा से कहा था ।१९। आप नियमित रहकर अपनी दोनों पत्नियों के साथ कुछ समय तक यहीं पर निवास करें । फिर आपका जो भी अभीप्सित है उसको आप अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे— इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।२०। फिर वह राजा भी सेवा में तत्पर होकर वहीं पर निवास करने लगा था। उसको परम प्रसन्नता हुई थी । उस समय में दोनों पत्नियों के साथ धर्म में युक्त तथा भक्तिभाव से समन्वित होकर ही चिरकाल पर्यन्त वहाँ निवास किया था ।२१।

राजपत्न्यौ च ते तस्य सर्वकालमतंद्रिते ।
मुनेरतनुतां प्रीतिं विनयाचारभक्तिभिः ।।२२
भक्त्या शुश्रूषया चैव तयोस्तुष्टो महामुनिः ।
राजपत्न्यौ समाहूय इदं वचनमब्रवीत् ।।२३
भवत्यौ वरमस्मत्तो व्रियतां काममीप्सितम् ।
दास्यामि तं न संदेहो यद्यपि स्यात्सुदुर्लभम् ।।२४
ततः प्रणम्य शिरसा तेऽप्युभे तं महामुनिम् ।
ऊचतुर्भगवान्पुत्रान्कामयावेति सादरम् ।।२५
ततस्ते भगवानाह भवतीभ्यां मया पुनः ।
राज्ञश्च प्रियकामेन वरो दत्तोऽयमीप्सितः ।।२६
पुत्रवत्यौ महाभागे भवत्यौ मत्प्रसादतः ।

भवेतां ध्रुवमन्यच्च श्रूयतां वचनं मम ॥२७
पुत्रो भविष्यत्येकस्यामेकः सोऽनतिधार्मिकः ।
तथापि तस्य कल्पांतं संभूतिश्च भविष्यति ॥२८

उन दोनों राजा की पत्नियों ने सदा ही अतन्द्रित होकर उस मुनि की विनय—आचार और भक्ति से प्रीति को बढ़ा दिया था ।२२। उस भक्ति और शुश्रूषा से मुनिवर बहुत ही अधिक सन्तुष्ट हो गये थे और फिर उन्होंने दोनों राजा को पत्नियों को अपने समीप में बुलाकर उन से यह वचन कहा था—आप दोनों ही हमसे किसी भी वरदान का वरण करो जो भी तुम्हारी इच्छा हो और तुमको अभीप्सित हो । मैं उसी को तुम्हारे लिए दे दूँगा—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है यद्यपि वह वरदान बहुत दुर्लभ भी क्यों न होवे ।२३-२४। इसके अनन्तर उन दोनों ने मस्तक टेक कर प्रणाम किया था और उन महामुनि से कहा था—हे भगवान् ! हम दोनों ही आदर के साथ पुत्रों की कामना करती हैं ।२५। इसके अनन्तर और्व भगवान् ने कहा—आप दोनों के लिये राजा के प्रिय की कामना वाले मैंने यह अभीष्ट वरदान दे दिया है ।२६। हे महाभाग वालियो ! मेरे प्रसाद से तुम दोनों ही पुत्रों वाली होओगी और अन्य भी एक वचन परम ध्रुव है, उसका भी श्रवण कीजिए। ।२७। एक पत्नी में एक ही पुत्र जन्म ग्रहण करेगा किन्तु वह अति धार्मिक नहीं होगा तो भी कल्प के अन्त में उनकी संभूति होगी ।२८।

षष्टिः पुत्रसहस्राणामपरस्यां च जायते ।
अकृतार्थाश्च ते सर्वे विनंक्ष्यंत्यचिरादिव ॥२९
एवंविधगुणोपेपौ वरौ दत्तौ मया युवाम् ।
अभीप्सितं तु यद्यस्याः स्वेच्छया तत्प्रकीर्त्यताम् ॥३०
एवमुक्ते तु मुनिना वैदर्भ्यान्वियवर्द्धनम् ।
वरयामास तनयं पुत्रानन्यांस्तथा परा ॥३१
इति दत्त्वा वरं राज्ञे सगराय महामुनिः ।
सभार्यमनुमान्यैनं विससर्ज पुरीं प्रति ॥३२
मुनिना समनुज्ञातः कृतकृत्यो महीपतिः ।
रथमारुह्य वेगेन सप्रियः प्रययौ पुरीम् ॥३३

स प्रविश्य पुरीं रम्यां हृष्टपुष्टजनावृताम् ।
आनंदितः पौरजनं रेमे परमया मुदा ॥३४
एतस्मिन्नेव काले तु राजपत्न्यावुभे नृप ।
राज्ञे प्रावोचतां गर्भं मुदा परमया युते ॥३५

और दूसरी रानी के गर्भ से साठ सहस्र पुत्र समुत्पन्न होंगे। और वे भी सब अकृतार्थ अर्थात् असफल ही होकर थोड़े ही समय में विनष्ट हो जायेंगे।२९। इस प्रकार के गुणों से समन्वित दो वरदान तुम दोनों को दे दिये हैं। इन दोनों में जिसका भी आप दोनों में जो भी अभीष्ट हो उसको मुझे बतला दो।३०। महामुनीन्द्र के द्वारा जब उन दोनों से इस तरह से कहा गया था जोकि वैदर्भ्य वंश का वर्धन करने वाला था तो वैदर्भी ने तो एक पुत्र प्राप्त करने का वरदान चाहा था और दूसरी ने अन्य साठ हजार पुत्रों के नाम ग्रहण करने के वरदान की याचना की थी।३१। उस महामुनि ने इस प्रकार से राजा सगर को वरदान देकर भार्याओं के सहित उसको आज्ञा देकर अपनी नगरी की ओर विदा कर दिया था।३२। मुनि के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके राजा कृतकृत्य हो गया था और रथ पर समारूढ़ होकर अपनी प्रियाओं के साथ बड़े वेग से पुरी की ओर चला गया था।३३। उस नृप ने अपनी नगरी में प्रवेश किया था, जो नगरी परम सुरम्य थी और हृष्ट-पुष्ट जनों से घिरी हुई थी। पुरवासी जनों के साथ हर्षोल्लास से युक्त होकर आनन्दित होते हुए प्रेम से रमण करने लगा था।३४। इसी समय में हे नृप ! उन दोनों राजा की पत्नियों ने परमाधिक प्रीति संयुत होकर राजा की सेवा में अपने-अपने गर्भों के धारण करने की सूचना दी थी।३५।

ववृधे च तयोर्गर्भः शुक्लपक्षे यथोडुराट् ।
सह संतोषसंपत्त्या पित्रोः पौरजनस्य च ॥३६
संपूर्णे तु ततः काले मुहूर्त्ते केशिनी शुभे ।
असुयताग्निगर्भाभं कुमारममितद्युतिम् ॥३७
जातकर्मादिकं तस्य कृत्वा चैव यथाविधि ।
असमंजस इत्येव नाम तस्याकरोन्नृपः ॥३८
सुमतिश्चापि तत्काले गर्भालाबुमसूयत ।
सम्प्रसूतं तु तं त्यक्तुं दृष्ट्वा राजाऽकरोन्मनः ॥३९

तज्ज्ञात्वा भगवानौर्वस्तत्रागच्छद्यदृच्छया ।
सम्यक् संभावितो राजा तमुवाच त्वरान्वितः ॥४०
गर्भालाबुरयं राजन्न त्यक्तुं भवतार्हति ।
पुत्राणां षष्टिसाहस्रबीजभूतो यतस्तव ॥४१
तस्मात्तत्सकलीकृत्य घृतकुंभेषु यत्नतः ।
निःक्षिप्य सपिधानेषु रक्षणीयं पृथक्पृथक् ॥४२

उन दोनों के गर्भ शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा के ही समान बढ़ गये थे । इससे माता-पिता को और पुरवासियों को भी बहुत अधिक सन्तोष हुआ था ।३६। इसके अनन्तर जब गर्भ का पूरा समय सम्प्राप्त हो गया तो परम शुभ मुहूर्त्त में कोशिनी ने अपरिमित द्युति से सम्पन्न अग्नि के गर्भ की आभा वाले कुमार को जन्म ग्रहण कराया था ।३७। उस कुमार का जातकर्म आदि संस्कार करके उसका विधि के साथ असमञ्जस नाम नृप ने रक्खा था ।३८। उसी समय में सुमति रानी ने भी एक गर्भ से अलाबु को प्रसूत किया था । उसको प्रसूत हुआ देखकर उसका त्याग कर देने का विचार राजा के मन में हुआ था ।३९। किन्तु जब यह ज्ञात हुआ था कि राजा उस अलाबु का त्याग करना चाहता है तो भगवान् और्व मुनि यदृच्छा से ही वहाँ पर समागत हो गये थे । राजा सगर ने उनका भली भाँति स्वागत-सत्कार किया था । तब बहुत ही शीघ्रता से युक्त होकर मुनि ने राजा से कहा—।४०। हे राजन् ! आप इस गर्भ से निःसृत अलाबु का त्याग करने के योग्य नहीं हैं क्योंकि यह आपके साठ सहस्र पुत्रों का बीजभूत है ।४१। इस कारण से इन सबको एकत्रित करके घृत के कलशों में यत्न पूर्वक ऊपर ढकना लगाकर अलग-२ इनको रक्षा करनी चाहिए ।४२।

सम्यगेव कृते राजन्भवतो मत्प्रसादतः ।
यथोक्तसंख्या पुत्राणां भविष्यति न संशयः ॥४३
काले पूर्णे ततः कुम्भान्भित्त्वा निर्याति ते पृथक् ।
एवं ते षष्टिसाहस्रं पुत्राणां जायते नृप ॥४४
इत्युक्त्वा भगवानौर्वस्तत्रैवांतरधाद्विभुः ।
राजा च तत्तथा चक्रे यथौर्वेण समीरितम् ॥४५
ततः संवत्सरे पूर्णे घृतकुंभात्क्रमेण ते ।

भित्वा भित्वा पुनर्जज्ञुः सहसैवानुवासरम् ।।४६

एवं क्रमेण संजातास्तनयास्ते महीपते ।

ववृधुः संघशो राजन्षष्टिसाहस्रसंख्यया ।।४७

अपृथग्धर्मचरणा महाबलपराक्रमाः ।

बभूवुस्ते दुराधर्षाः क्रूरात्मानो विशेषतः ।।४८

स नातिप्रीतिमांस्तेषु राजा मतिमतां वरः ।

केशिनीतनयं त्वेकं बहुमान सुतं प्रियम् ।।४९

हे राजन् ! इसी विधि से कार्य किये जाने पर मेरे पूर्ण प्रसाद से आपके पुत्रों की जो भी बतायी गयी है वही संख्या उत्पन्न होगी—इसमें लेश मात्र भी सशय नहीं है ।४३। काल जब भी पूर्ण हो जायगा तभी वे सब इन कुम्भों को तोड़कर पृथक्-२ निकल आयेंगे। हे नृप ! इस तरह से आपके साठ सहस्र पुत्र जन्म ग्रहण करेंगे ।४४। इतना कह कर भगवान् और्व वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गये क्योंकि वे तो विभु थे और राजा सगर ने वैसा ही सब किया था जैसा भी और्व मुनि ने उनसे कहा था ।४५। इसके पश्चात् जब एक वर्ष पूर्ण हो गया तो वे घृत कुम्भों से क्रम से उन्हें फोड़-तोड़ करके तुरन्त ही प्रतिदिन जन्म लेने लग गये थे ।४६। हे महीपते ! इसी तरह से वे सब क्रम से पुत्र समुत्पन्न हुए थे। हे राजन् ! समुदाय में ये उत्पन्न होकर साठ सहस्र सख्या में बढ़ गये थे ।४७। उन सबके धर्माचरण समान ही थे और वे सब महान बल पराक्रम से समन्वित थे। वे सभी विशेष रूप से क्रूर आत्मा वाले थे और सब दुराधर्ष थे अर्थात् उनको दबा देना बड़ा ही कठिन था, ऐसे तेजस्वी थे ।४८। राजा सगर भी मतिमानों में परम श्रेष्ठ था और इन साठ सहस्र पुत्रों पर उसकी अधिक प्रीति नहीं थी। केशिनी का जो एक पुत्र था उसका वह राजा विशेष मान किया करता था और वह उसको प्रिय भी लगता था ।४९।

विवाहं विधिवत्तस्मै कारयामास पार्थिवः ।

स चाप्यानन्दयामास स्वगुणैः सुहृदोऽखिलान् ।।५०

एवं प्रवर्तमानस्य केशिनीतनयस्य तु ।

अजायत सुतः श्रीमानंशुमानिति विश्रुतः ।।५१

स बाल्य एव मतिमानुदारैः स्वगुणैर्भृशम् ।
प्रीणयामास सुहृदः स्वपितामहमेव च ॥५२

एतस्मिन्नंतरे राज्ञस्तस्य पुत्रोऽसमंजसः ।
आविष्टो नष्टचेष्टोऽभूत्स पिशाचेन केनचित् ॥५३

स तु कश्चिदभूद्वैश्यः पूर्वजन्मनि धर्मवित् ।
कस्यचिद्विषये राज्ञः प्रभूतधनधान्यवान् ॥५४

स कदाचिदरण्येषु विचरन्निधिमुत्तमम् ।
दृष्ट्वा ग्रहीतुमारेभे वणिग्लोभपरिप्लुतः ॥५५

ततस्तद्रक्षकोऽभ्येत्य पिशाचः प्राह तं तदा ।
क्षुधितोऽहं चिरादस्मिन्नवसन्निधिपालकः ॥५६

राजा सगर ने उस असमञ्जस पुत्र का विवाह भी विधिपूर्वक करा दिया था और उसने भी अपने सद्गुणों के द्वारा सभी सुहृदों को आनन्दित किया था ।५०। इस रीति से रहने वाले उस केशिनी के पुत्र के एक सुत ने भी जन्म ले लिया था जो अंशुमान नाम से प्रख्यात हुआ था ।५१। वह बचपन की अवस्था में ही बड़ा मतिमान् था और अपने उदार गुणों से उसमें सभी सुहृदों को तथा अपने पितामह राजा सगर को बहुत ही अधिक प्रीणित किया था ।५२। इसी बीच में ऐसा हुआ था कि उस राजा का अंशुमान पुत्र असमञ्जस किसी पिशाच के द्वारा समाविष्ट हो गया था जिस कारण से उसकी चेष्टा एकदम नष्ट हो गयी थी ।५३। वह पूर्वजन्म में कोई धर्म का ज्ञाता वैश्य हुआ था । वह किसी राजा के देश में हुआ था था और बहुत धन-धान्य की समृद्धि से युक्त था ।५४। वह किसी समय में अरण्यों में विचरण कर रहा था और वहाँ पर उसने एक स्थल में उत्तम निधि देखी थी । वह वैश्य भी लोभ से मुक्त होकर उसके लेने का उपक्रम करने लगा था ।५५। उस निधि का रक्षक एक पिशाच था । वह उसी समय में वहाँ पर आगया था और उससे बोला । मैं बहुत समय से भूखा हूँ और यहाँ पर निवास करता हुआ इस निधि की रक्षा कर रहा हूँ ।५६।

तस्मात्तत्परिहाराय मम दत्वा गवामिषम् ।
कामतः प्रतिगृह्णीष्व निधिमेनं ममाज्ञया ॥५७

स तस्मै तत्परिश्रुत्य दास्यामीति गवामिषम् ।
आदत्त च निधिं तं तु पिशाचेनानुमोदितः ॥५८
न प्रादाच्च ततो मौढ्यात्तस्मै यत्तत्प्रतिश्रुतम् ।
प्रतिश्रुताप्रदानोत्थरोषं न श्रद्दधे नृप ॥५६
तमेवं सुचिरं कालं प्रतीक्ष्याशनकांक्षया ।
अपनीतधनः सोऽपि ममार व्यथितः क्षुधा ॥६०
वैश्योऽपि बालो मरण संप्राप्य सगरस्य तु ।
बभूव काले केशिन्यां तनयोऽन्वयवर्द्धनः ॥६१
अशरीरः पिशाचेऽपि पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
वायुभूतोऽविशद्देहं राजपुत्रस्य भूपते ॥६२
तेनाविष्टस्ततः सोऽपि क्रूरचित्तोऽभवत्तदा ।
मतिविभ्रंशमासाद्य मुहुस्तेन बलात्कृतः ॥६३

इसलिए मेरी क्षुधा को दूर करने के वास्ते तुम मुझको गो मांस लाकर दो और तभी फिर मेरी आज्ञा से इस महान् निधि का ग्रहण करो ।५७। उस वैश्य ने उसके सामने प्रतिज्ञा की थी कि मैं आपको गौओं का मांस लाकर दे दूँगा। । फिर पिशाच की अनुमति से उस निधि का ग्रहण कर लिया था ।५८। और मूर्खता से उसको खाने के लिए वह वस्तु नहीं दी थी जिसके देने की उससे प्रतिज्ञा की थी । हे नृप ! प्रतिज्ञा करके भी गौ मांस न देने से उसका बड़ा क्रोध हो गया था । जिसको वह सहन नहीं कर सका था ।५६। उस पिशाच ने बहुत लम्बे समय तक खाने की इच्छा से प्रतीक्षा की थी किन्तु जब वह वैश्य न पहुँचा तो उस पिशाच ने क्षुधा से व्यथित होकर उसका समस्त धन छीन लिया और उसको मार भी डाला था ।६०। वह वैश्य भी मृत्युगत होकर फिर सगर के यहाँ बालक होकर जन्मधारी हुआ था । जब समय प्राप्त हुआ था तो वह केशिनी का पुत्र वंश को वृद्धि करने वाला हुआ था ।६१। वह पिशाच भी शरीरधारी तो था नहीं, हे भूपते ! उसने अपने पूर्व के होने वाले वैर का अनुस्मरण करके वायुभूत होकर उसी राजा सगर के पुत्र के पुत्र के देह में प्रवेश कर लिया था ।६२। उसी के द्वारा आविष्ट होकर वह भी फिर बड़ा भारी क्रूर हाचित्त बोला

गया था। मति का विभ्रंश हो गया था और वह बार-२ बल पूर्वक असदाचरण करने लग गया था।६३।

असमंजसत्वं नगरे चक्रे सोऽपि नृशंसवत्।
बालांश्च यूनः स्थविरान्योषितश्च सदा खलः ॥६४
हत्वा हत्वा प्रचिक्षेप सरय्वामतिनिर्दयः।
ततः पौरजनाः सर्वे दृष्ट्वा तस्य कदर्यताम् ॥६५
बहुशो निकृतास्तेन गत्वा राज्ञे व्यजिज्ञपन्।
राजा च तदुपश्रुत्य तमाहूय प्रयत्नतः ॥६६
वारयामास बहुधा दुःखेन महतान्वितः।
बहुशः प्रतिषिद्धोऽपि पित्रा तेन महात्मना ॥६७
जले तप्ते च संतप्ताः सं बभूवुर्यथा यवाः।
नाशकत्तं यदा पापाद्विनिवर्त्तयितुं नृपः ॥६८
लोकापवादभीरुत्वाद्विषयानत्यजत्तदा ॥६९

उसने भी फिर तो अपने नगर में एक नृशंस के ही समान असमंजसता करदी थी। वह खल ऐसा दुष्ट हो गया था कि छोटे बालकों को—युवकों को—वृद्धों को और स्त्रियों को सदा ही पकड़ लिया करता था।६४। सबको मार-मार कर वह अत्यन्त निर्दयता से सरयू नदी में फैंक दिया करता था। फिर तो सभी नगर निवासियों ने उसकी उस नीचता को देखा था। वह सभी का निरादर करके डाँट देता था। ऐसा जब बहुत बार हुआ जो उन सबने जाकर राजा से कहा था और राजा ने अब यह सुना तो उसको प्रयत्न पूर्वक अपने समीप में बुलाया था। राजा ने कितनी ही बार ब त अधिक दुःख से संयुत होकर उसको इस महान नीच कुकर्म से रोका था। बहुत बार उसको रोका भी गया था तो भी महात्मा पिता का कथन उसने नहीं माना था।६५-५७। जिस तरह से संतप्त जल में यव हो जाते हैं उसी प्रकार की दशा राजा की हो गयी थी। जब राजा में उस महान पापकर्म से हटाने की शक्ति न रही थी तो बहुत ही वह दुःखित हो गया था। लोक में बड़ा भारी अपवाद होगा कि राजा ही का पुत्र ऐसा अन्याय करता है तो अब न्याय कहाँ होगा—इससे डरकर उसने उस समय में विषयों का त्याग किया था।६८-६९।

———

अश्वमोचन वर्णन

जैमिनिरुवाच–

त्यक्त्वा पुत्रं स धर्मात्मा सगरः प्रेम तद्गतम् ।
धर्मशीले तदा बाले चकारांशुमति प्रभुः ॥१
एतस्मिन्नेव काले तु सुमत्यास्तनया नृप ।
ववृधुः संघशः सर्वे परस्परमनुव्रताः ॥२
वज्रसंहननाः क्रूरा निर्दया निरपत्रपाः ।
अधर्मशीला नितरामेकधर्माण एव च ॥३
एककार्याभिनिरताः क्रोधना मूढचेतसः ।
अधृष्याः सर्वभूतानां जनोपद्रवकारिणः ॥४
विनयाचारसन्मार्गनिरपेक्षाः समंततः ।
बबाधिरे जगत्सर्वमसुरा इव कामतः ॥५
विध्वस्तयज्ञसन्मार्गं भुवनं तैरुपद्रुतम् ।
निःस्वाध्यायवषट्कारं बभूवार्तं विशेषतः ॥६
विध्वस्यमाने सुभृशं सागरैर्वरदर्पितैः ।
प्रक्षोभं परमं जग्मुर्देवासुरमहोरगाः ॥७

जैमिनी मुनि ने कहा—उस परम धर्मात्मा नृप सगर ने अपने पुत्र असमञ्जस का त्याग कर दिया था और उसमें जो उसका प्रेम था उसको तब तब धर्मशील बालक अंशुमान में उस प्रभु ने किया था ।१। इसी काल में सुमति नाम वाली रानी के जो साठ हजार पुत्र थे हे नृप ! वे सब समुदाय में समुत्पन्न होकर परस्पर में अनुव्रत होकर बढ़कर बड़े हो गये थे ।२। ये सभी एक ही धर्म वाले थे तथा वज्र के समान सुदृढ़ शरीरों वाले बहुत ही क्रूर-अत्यन्त निर्दयी और निर्लज्ज थे और निरन्तर अधर्म शील थे और धर्म को सर्वथा जानते ही नहीं थे ।३। ये सब एक ही कार्य में निरत रहते थे—बहुत अधिक क्रोधी और मूढ़ चित्तों वाले थे । ये सब समस्त प्राणियों को अधृष्य थे और जनों के लिए अत्यधिक पद्रवों के करने वाले थे ।४। ये सभी ओर से विनय पूर्वक आचरण और सन्मार्ग की अपेक्षा नहीं रखते थे । इन्होंने असुरों के ही समान स्वेच्छा से सम्पूर्ण जगत को बाधा पहुँचाई

थी ।५। उन्होंने यज्ञ के सन्मार्ग को विध्वस्त करके भुवन को उपद्रव से युक्त कर दिया था और इस जगत् को वेदाध्ययन और वषट्कार से रहित करके विशेष रूप से आर्त्त कर दिया था ।६। उस समय में वरदान से बढ़े हुए दर्प वाले सगर के पुत्रों के द्वारा बहुत अधिक विध्वस्तमान इस जगत् के हो जाने पर समस्त देव-असुर और महोरग अत्यधिक क्षोभ को प्राप्त हो गये थे ।७।

धरा सा सागराक्रांता न चलापि तदाचला ।
तपः समाधिभंगश्च प्रबभूव तपस्विनाम् ।।८
हव्यकव्यपरिभ्रष्टास्त्रिदशाः पितृभिः सह ।
दुःखेन महताविष्टा विरिञ्चिभवनं ययुः ।।९
तत्र गत्वा यथान्यायं देवाः शर्वपुरोगमाः ।
शशंसुः सकलं तस्मै सागराणां विचेष्टिम् ।।१०
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः ।
क्षणमंतर्मना भूत्वा जगाद सुरसत्तमः ।११
देवाः शृणुत भद्रं वो वाणीमवहिता मम ।
विनंक्ष्यंत्यचिरेणैव सागरा नात्र संशयः ।।१२
कालं कंचित्प्रतीक्षध्वं तेन सर्वं नियम्यते ।
निमित्तमात्रमन्यत्तु स एव सकलेशिता ।१३
तस्माद्युष्मद्धितार्थाय यद्वक्ष्यामि सुरोत्तमाः ।
सर्वैर्भवद्भिरधुना तत्कर्त्तव्यमतंद्रितैः ।।१४

यह वसुन्धरा अचला है तथापि उस समय में सगर के पुत्रों के द्वारा आक्रान्त होकर चलायमान हो गयी थी। उस समय में धरा की चलगति को देखकर बड़े-बड़े तपस्वियों की समाधि टूट गयी थी और तपश्चर्या कर भंग हो गया था ।८। देवगण भी पितरों के साथ अपने हव्य-कव्य से जो भी उनके लिए समर्पित किए जाते थे उनसे परिभ्रष्ट हो गए थे और उनको महान दुःख हो गया था तथा वे सभी अत्यन्त उत्पीड़ित होकर ब्रह्माजी के भवन पर गए थे ।९। वहाँ पर समस्त देवगण जिनमें शिव अग्रणी थे जाकर

न्याय के अनुरूप उन्होंने ब्रह्माजी से निवेदन किया था कि सगर नृप के पुत्रों की भूमि पर कैसी कुचेष्टायें हो रही हैं ।१०। सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी उनके कहे वचनों का श्रवण करके एक क्षण के अन्दर विचार वाले हुए थे और इसके पश्चात् सुरों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने उनसे कहा—।११। हे देवगणों ! आप सबका कल्याण होवे । अब आप लोग सावधान होकर मेरी वाणी का श्रवण कीजिए जो भी कुछ मैं आपके सामने इस समय में कह रहा हूँ—ये सगर के पुत्र सबके सब विनष्ट हो जायेंगे—यह सर्वथा सत्य है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।१२। कुछ काल पर्यन्त प्रतीक्षा करो । समय के ही द्वारा सब नियमित हो जाया करता है । यह काल बड़ा बलवान है । अन्य तो केवल निमित्त ही हुआ करते हैं करने वाला तो वास्तव में काल ही होता है । यह ही सबको खाने वाला होता है । इसके सामने सब बल-वैभव और प्रताप धूल में मिल जाया करते हैं ।१३। हे सुरश्रेष्ठो ! मैं आप सभी के हित-सम्पादन होने के लिए जो भी कुछ कहूँगा वही अब आप सब को अतन्द्रित होकर कर डालना चाहिए ।१४।

विष्णोरंशेन भगवान्कपिलो जयतां वरः ।
जातो जगद्धितार्थाय योगीन्द्रप्रवरो भुवि ।।१५

अगस्त्यपीतसलिले दिव्यवर्षशतावधि ।
ध्यायन्नास्तेऽम्बुनांऽभोधावेकांते तत्र कुत्रचित् ।।१६

गत्वा यूयं ममादेशात्कपिलं मुनिपुंगवम् ।
ध्यानावसानमिच्छंतस्तिष्ठध्वं तदुपह्वरे ।।१७

समाधिविरतौ तस्य स्वाभिप्रायमशेषतः ।
नत्वा तस्मै वदिष्यध्वं स वः श्रेयो विधास्यति ।।१८

समाधिभंगश्च मुनेर्यथा स्यात्सागरैः कृतः ।
कुरुध्वं च तथा यूयं प्रवृत्तिं विबुधोत्तमाः ।।१९

जैमिनिरुवाच—

इत्युक्तास्तेन विबुधास्तं प्रणम्य पितामहम् ।
गत्वा तं त्रिबुधश्रेष्ठं ते कृतांजलयोऽब्रुवन् ।।२०

देवा ऊचुः—

प्रसीद नो मुनिश्रेष्ठ वयं त्वां शरणं गताः ।

उपद्रुतं जगत्सर्वं सागरैः संप्रणश्यति ॥२१

जवशीलों में श्रेष्ठ भगवान् कपिल मुनि भगवान विष्णु के ही अंश से इस जगत के हित के लिए समतीर्ण हुए है। यह विष्णु भगवान का ही अंशावतार है और भूमण्डल में योगीन्द्रों में परम श्रेष्ठ हैं।१५। अगस्त्य मुनि के द्वारा इस विशाल सागर का जल पी लेने पर दिव्य सौ वर्षों की अवधि हो गयी है वे इसी अम्भोधि में वहाँ पर किसी स्थल में इस समय में इस समय में ध्यान करने वाले स्थित हैं।१६। मेरा यह आदेश है कि आप लोग मुनियों में परम श्रेष्ठ कपिलजी के समीप में चले जाओ। जब उनकी ध्यानावस्था का अन्त होवे तब तक इच्छा रखने वाले आप लोग वहीं उप-गह्वर में संस्थित रहें।१७। जब उनकी समाधि समाप्त हो जावे तभी आप अपना अभिप्राय पूर्ण रूप से नमस्कार करके उनको बतला देवें। वही ऐसे शक्तिशाली हैं कि वे आप लोगों का कल्याण कर देंगे।१८। हे देवगणो! जिस भी रीति से उन मुनिवर की समाधि का भङ्ग सगर के पुत्रों द्वारा किया हुआ होवे आप लोगों को वैसी ही प्रवृत्ति करनी चाहिए। इसी से आप का कार्य सुसम्पन्न हो जायगा।१९। जैमिनि मुनि ने कहा—पितामह के द्वारा जब देवगणों से इस तरह से कहा था तो वे सब पितामह को प्रणाम करके उन देवों में श्रेष्ठ मुनिवर के समीप में चले गये थे और हाथ जोड़कर उन्होंने उनसे कहा था।२०। देवों ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाइए। हम लोग आपकी शरणागति में प्राप्त हुए हैं। राजा सगर के पुत्रों ने जगत् में बड़ा उपद्रव मचा दिया है और ऐसा हो गया है कि यह सम्पूर्ण जगत् विनष्ट ही हो जायगा।२१।

त्वं किलाखिललोकानां स्थितिसंहारकारणः ।

विष्णोरंशेन योगींद्रस्वरूपो भुवि संस्थितः ॥२२

पुंसां तापत्रयार्त्तानामार्तिनाशाय केवलम् ।

स्वेच्छया ते धृतो देहो न तु त्वं तपतां वरः ।२३

ममसैव जगत्सर्वं स्रष्टुं संहर्तुमेव च ।

विधातुं स्वेच्छया ब्रह्मन्भवाञ्छक्नोत्यसंशयम् ॥२४

त्वं नो धाता विधाता च त्वं गुरुस्त्वं परायणम् ।
परित्राता त्वमस्माकं विनिवर्त्तय चापदम् ॥२५
शरणं भव वि ेंद्र वि ़न्द्राणां विशेषतः ।
सागरैर्दह्यमानानां लोकत्रयनिवासिनाम् ॥२६
ननु वै सात्विकी चेष्टा भवतीह भवादृशाम् ।
त्रातुमर्हसि तस्मात्वं लोकानस्मांश्च सुव्रत ॥२७
न चेदकाले भगवन्विनंक्ष्यत्यखिलं जगत् ।
जैमिनिरुवाच—
इत्युक्तः सकलैर्देवैरुन्मीलय नयने शनैः ॥२८

आप तो समस्त लोकों की स्थिति और संहार के कारण हैं। आप तो भगवान् विष्णु के अंश से ही अवतीर्ण हुए हैं और इस भूमण्डल में योगीन्द्र के स्वरूप को धारण करके समवस्थित हैं।२२। आप कोई महान् श्रेष्ठ तपस्वी ही नहीं हैं। आपने तो अपने इस देह को अपनी ही इच्छा से धारण किया है और यह भी केवल तीनों तापों से अत्यधिक आर्त्त पुरुषों की आर्त्ति पुरुषों की आर्त्ति के ही विनाश के लिए धारण किया है।२३। हे ब्रह्मन्! आप तो एसे अद्भुत शक्तिशाली हैं कि अपने मन से ही इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन, संस्थिति और संहार अपनी इच्छा के अनुसार बिना किसी संशय के कर सकते है।२४। आप तो हमारे धाता और विधाता हैं तथा आप गुरु हैं और परायण हैं। आप हमारा परित्राण भी करने वाले हैं। अब आप हमारी इस वर्त्तमान आपदा को दूर भगाइए।।२५। हे विप्रेन्द्र! आप हमारे रक्षक होइए और विशेष रूप से हम विप्रों की रक्षा करने वाले होइए। हम तीनों लोकों में निवासी सगर के पुत्रों के द्वारा दह्यमान हो रहे हैं।२६। हे सुव्रत! इस लोक में आप जैसे महापुरुषों की सात्विकी चेष्टा हुआ करती है। इसलिए आप समस्त लोकों की और हमारी रक्षा करने के योग्य हैं।२७। हे भगवान्! यदि आप ही हम सबकी रक्षा नहीं करेंगे तो यह सम्पूर्ण जगत् अकाल में ही विनष्ट हो जायगा। जैमिनि मुनि ने कहा—जब इस प्रकार से सब देवगणों ने अभ्यर्थना की थी तो कपिल मुनि ने धीरे से अपने दोनों नेत्रों को खोला था।२८।

विलोक्य तानुवाचेदं कपिलः सूनृतं वचः ।

स्वकर्मणैव निर्दग्धाः प्रविनङ्क्ष्यंति सागराः ।।२९
काले प्राप्ते तु युष्माभिः स तावत्परिपाल्यताम् ।
अहं तु कारणं तेषां विनाशाय दुरात्मनाम् ।।३०
भविष्यामि सुरश्रेष्ठा भवतामर्थसिद्धये ।
मम क्रोधाग्निविप्लुष्टाः सागराः पापचेतसः ।।३१
भविष्यंतु चिरेणैव कालोपहृतबुद्धयः ।
तस्माद्गतज्वरा देवा लोकाश्चैवाकुतोभयाः ।।३२
भवंतु ते दुराचाराः क्षिप्रं यास्यंति संक्षयम् ।
तद्यूयं निर्भया भूत्वा व्रजध्वं स्वां पुरीं प्रति ।।३३
कालं कंचित्प्रतीक्षध्वं ततोऽभीष्टमवाप्स्यथ ।
कपिलेनैवमुक्तास्ते देवाः सर्वे सवासवाः ।।३४
तं प्रणम्य ततो जग्मुः प्रतीताग्निदिवं प्रति ।
एतस्मिन्नंतरे राजा सगरः पृथिवीपतिः ।।३५

फिर उस सबका अवलोकन करके कपिल भगवान ने यह परम सुनृत वचन कहा था । ये सगर के पुत्र सब अपने ही कर्म से निर्दग्ध होकर विनष्ट होकर विनष्ट हो जायेंगे ।२९। जब भी इनके विनाश का काल प्राप्त होगा तभी नाश होगा । तब तक उस काल की आप सब लोग प्रतीक्षा कीजिए । और मैं तो उन दुष्ट आत्मा वालों के विनाश करने का कारण बनूँगा ।३० हे सुरश्रेष्ठो ! आप लोगों के अर्थ की सिद्धि के लिए केवल मैं कारण स्वरूप बनूँगा । महापापी ये सगर के पुत्र मेरे क्रोध की अग्नि से विप्लुष्ट होकर भस्मीभूत हो जायेंगे ।३१। ऐसा ही काल होगा कि इन सबकी बुद्धि उपहृत हो जायगी और चिरकाल में इनका विनाश होगा । इसलिए सभी देवों का दुःख दूर हो जायगा और सभी लोक सभी ओर से भयहीन हो जाँयगे ।३२। वे सभी बुरे आचरण वाले हो जायेंगे । इसलिए अब आप लोग सब निर्भय होकर अपनी पुरी की ओर गमन कीजिए ।३३। आप लोगों को कुछ काल की प्रतीक्षा अवश्य ही करनी होगी । तभी आप अपने अभीप्सित की प्राप्ति करेंगे । जब इस प्रकार से कपिल मुनि के द्वारा देवगणों से कहा गया था तो इन्द्र के सहित सब देवों ने उनका अभिवादन किया था ।३४।

फिर उन मुनीश्वर को प्रणाम करके परम समाश्वस्त होकर उन सबने स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया था। इसी बीच में पृथिवी के स्वामी राजा सगर ने एक महान् यज्ञ करने का विचार मन में किया था।३५।

वाजिमेधं महायज्ञं कर्तुं चक्रे मनोरथम् ।
आहृत्य सर्वसंभारान्वसिष्ठानुमते तदा ॥३६
और्वाद्यैः सहितो विप्रैर्यथावद्दीक्षितोऽभवत् ।
दीक्षां प्रविष्टो नृपतिर्हयसंचारणाय वै ॥३७
पुत्रान्सर्वान्समाहूय संदिदेश महयशाः ।
संचारयित्वा तुरगं परीत्य पृथिवीतले ॥३८
क्षिप्रं ममांतिकं पुत्राः पुनराहर्तुमर्हथ ।
जैमिनिरुवाच—
ततस्ते पितुरादेशात्तमादाय तुरंगमम् ॥३९
परिचक्रमयामासुः सकले क्षितिमंडले ।
विधिचोदनयैवाश्वः स भूमौ परिवर्त्तितः ॥४०
न तु दिग्विजयार्थाय करादानार्थमेव च ।
पृथिवीभूभुजा तेन पूर्वमेव विनिर्जिता ॥४१
नृपाश्चोदारवीर्येण करदाः समरे कृताः ।
ततस्ते राजतनया निस्तोये लवणांबुधौ ॥४२
भूतले विविशुर्हृष्टाः परिवार्य तुरंगमम् ॥४३

उस समय में वसिष्ठ मुनि की अनुमति से सगर नृपति ने अश्वमेध नामक एक महान् यज्ञ के करने का मन में मनोरथ किया था और उस यज्ञ कार्य के सम्पादन करने के लिये सभी सम्भारों का समाहरण किया गया था।३६। उस समय में और्व आदि जो विप्र थे उनके द्वारा राजा विधि-विधान के साथ दीक्षित हुआ था। जब राजा ने दीक्षा लेकर यज्ञ का समाचरण करने के लिये दीक्षा में प्रविष्ट हो गया था तो उसमें जो अश्व छोड़ा जाता है उसके भली भाँति चारण करने के लिये नियुक्ति की थी।३७। महा यशस्वी सगर ने उन सब सहस्र पुत्रों को अपने समीप में बुलाकर उनको

आदेश दिया था । इस अश्व को इस पृथ्वी तल में चारों ओर चारण कराने को गमन करो ।३८। फिर हे पुत्रो ! शीघ्र ही आप लोग घुमाकर इस अश्व को फिर मेरे पास ले आओ । जैमिनि मुनि ने कहा—इसके अनन्तर उन पुत्रों ने अपने पिताश्री की आज्ञा से उस अश्व को वहाँ से अपने साथ में ले लिया था ।३९। उन्होंने उस अश्व को समस्त पृथिवी तल में चारों ओर घुमाया था । विधि की प्रेरणा से ही वह अश्व भूमि में परिवर्त्तित हो गया था ।४०। उस राजा ने अश्व को दिग्विजय करने के लिये तथा करों का आदान करने के लिये तो छोड़ा ही नहीं था क्योंकि समस्त नृपों को तो नृप सगर ने पहिले ही जीत लिया था ।४१। उदार वीर्य वाले सगर ने सभी नृपों को समर में कर देने वाले बना लिया था । इसके पश्चात् जब वह अश्व दिखाई नहीं दिया था तो फिर उन समस्त राजपुत्रों ने जल से रहित क्षार सागर के पास गमन किया था ।४२। उस अश्व को परिवारित करके उन सबने भूतल के अन्दर प्रसन्न होकर प्रवेश किया था ।४३।

सगर विनाश वर्णन

जैमिनिरुवाच–

तेषु तत्र निविष्टेषु वासवेन प्रचोदितः ।
जहार तुरगं वायुस्तत्क्षणेन रसातलम् ॥१
अदृष्टमश्वं तैः सर्वैरपहृत्य सदागतिः ।
अनयत्तत्पथा राजन्कपिलस्यांतिकं मुनेः ॥२
ततः समाकुलाः सर्वे विनष्टेऽश्वे नृपात्मजाः ।
परीत्य वसुधां सर्वां प्रमार्गंतस्तुरंगमम् ॥३
विचित्य पृथिवीं ते तु स पुराचलकाननाम् ।
अपश्यंतो यज्ञपशुं दुःखं महदवाप्नुवन् ॥४
ततोऽयोध्यां समासाद्य ऋषिभिः परिवारिताम् ।
दृष्ट्वा प्रणम्य पितरं तस्मै सर्वं न्यवेदयन् ॥५
परीत्य पृथ्वीमस्माभिर्निविष्टे वरुणालये ।
रक्ष्यमाणोऽपि पश्यद्भिः केनापि तुरगो हृतः ॥६

इत्युक्तस्तैरुषाविष्टस्तानुवाच नृपोत्तमः ।
प्रयास्यध्वमधर्मिष्ठाः सर्वेऽनावृत्तये पुनः ॥७

जैमिनि मुनि ने कहा—वे सगर के पुत्र जब वहाँ प्रविष्ट हो गये थे तो इसके अनन्तर इन्द्रदेव के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके वायु ने उसी क्षण में उस अश्व का हरण करके रसातल में पहुँचा दिया था ।१। जब उन सगर पुत्रों ने वहाँ कहीं पर भी उस अश्व को नहीं देखा था । वायु देव ने उसका अपहरण करके हे राजन् ! उसी मार्ग से कपिल मुनि के समीप में पहुँचा दिया था ।२। उस अश्व के वहाँ पर न दिखलाई देने पर सब नृप के पुत्र बहुत ही अधिक बेचैन हो गये थे और सम्पूर्ण पृथ्वी परिक्रमा लगाकर उस अश्व को खोज कर रहे थे ।३। उन्होंने पहिले सम्पूर्ण भूतल पर उस अश्व को ढूढ़ा था फिर सब नगर-पर्वत और वनों में उसकी खोज की थी । जब उन्होंने कहीं पर भी उस यज्ञ के पशु अश्व को नहीं देखा था तो उन सबके हृदयों में बड़ा भारी दुःख हुआ था ।४। फिर वे सब अनेक ऋषियों से घिरी हुई अयोध्या पुरी में समागत हो गये थे । अपने पिता सगर का दर्शन कर उन्होंने प्रणाम करके सभी घटित घटना के विषय में अपने पिता से निवेदन किया था ।५। उन्होंने कहा—हम सबने पूरी पृथ्वी की परिक्रमा करके फिर वरुणालय (सागर) में प्रवेश किया था । हम उस अश्व को बराबर देखते रहे थे किन्तु हमारे द्वारा रक्षा किया हुआ भी वह अश्व को किसी के द्वारा सहसा हरणकर लिया गया है ।६। जब इस रीति से उनके द्वारा राजा सगर से कहा गया था तो यह सुनकर उसको बड़ा भारी क्रोध हो गया था और उस उत्तम नृप ने उन सबसे यह कहा था—तुम सब बड़े पापी हो, यहाँ से इसी समय निकलकर चले जाओ और फिर लौटकर अपना मुँह मत दिखाना ।७।

कथं भवद्भिर्जीवद्भिर्विनष्टो वै दुरात्मभिः ।
तुरगेण विना सत्यं नेहागमनमस्ति वः ॥८
ततः समेत्य तस्मात्ते संप्रयाताः परस्परम् ।
ऊचुर्न दृश्यतेऽद्यापि तुरगः किं प्रकुर्महे ॥९
वसुधा विचिताऽस्माभिः सशैलवनकानना ।
न चापि दृश्यते वाजी तद्वार्त्तापि न कुत्रचित् ॥१०

तस्मादब्धेः समारभ्य पातालवधि मेदिनीम् ।
विभज्य खात्वा पातालं विविशाम तुरंगमम् ॥११
इति कृत्वा मतिं सर्वे सागराः क्रूरनिश्चयाः ।
निचख्नुर्भूमिमंबोधेस्तटादारभ्य सर्वतः ॥१२
तैः खन्यमाना वसुधा रराम भृशविह्वला ।
चुक्रुशुश्चापि भूतानि दृष्ट्वा तेषां विचेष्टतम् ॥१३
ततस्ते भारत खंडं खात्वा संक्षिप्य भूतले ।
भूमेर्योजनसाहस्रं योजयामासुरंबुधौ ॥१४

तुम सबने जीवित रहते हुए ही किस तरह से उस अश्व को खो दिया है ! तुम बड़े डरपोक हो । जब वह अश्व ही नहीं हैं तो उसके बिना आप सबका यहाँ पर आगमन सचमुच नहीं होना चाहिए ।८। इसके अनन्तर वे सब इकट्ठे होकर वहाँ से प्रयाण कर गये थे और परस्पर में कहते थे कि अभी तक भी वह अश्व कहीं पर भी दिखलाई नहीं दे रहा है । हम अब क्या करें ।९। हमने सम्पूर्ण वसुधा तो देख डाली है और पर्वत-वन और कानन भी देख लिये हैं किन्तु वह अश्व कहीं पर भी दिखाई नहीं दे रहा है । अश्व का दिखाई देना तो दूर रहा, उसकी कहीं पर चर्चा भी नहीं हो रही है कि वह कहाँ पर होकर निकला था ।१०। इसलिए समुद्र से आरम्भ करके पाताल पर्यन्त इस भूमि का विभाजन कर खोद डालें और पाताल में उस अश्व की खोज करें ।११। फिर सगर के पुत्रों ने यही अपना विचार बना लिया था और उन सबका यह बड़ा ही क्रूर निश्चय था । उन सबने समुद्र के तट से आरम्भ करके सब ओर से उस भूमि को खोदना आरम्भ कर दिया था ।२१। उनके द्वारा खोदी जाने वाली भूमि बहुत ही बेचैन होती हुई उत्पीड़ित हुई थी । उन सबके इस महान भीषण कृत्य को देखकर समस्त प्राणी रोने लग गये थे ।१३। इसके पश्चात उन्होंने भूमण्डल में भारतखण्ड को खोदकर संक्षिप्त कर दिया था और भूमि के एक सहस्र योजन भाग को सागर के स्वरूप में योजित कर दिया था जिससे यह भूभाग कम हो गया था ।१४।

आपातालतलं ते तु खनंतो मेदिनीतलम् ।
चरंतमश्वं पाताले ददृशुर्नृपनन्दनाः ॥१५

संप्रहृष्टास्ततः सर्वे समेत्य च समंततः ।
संतोषाज्जहसुः केचिन्ननृतुश्च मुदान्विताः ॥१६
ददृशुश्च महात्मानं कपिलं दीप्ततेजसम् ।
वृद्धं पद्मासनासीनं नासाग्रन्यस्तलोचनम् ॥१७
ऋज्वायतशिरोग्रीवं पुरोविष्टब्धवक्षसम् ।
स्वतेजसाऽभिसरता परिपूर्णेन सर्वतः ॥१८
प्रकाश्यमानं परितो निवातस्थप्रदीपवत् ।
स्वांतप्रकाशिताशेषविज्ञानमयविग्रहम् ॥१९
समाधिगतचित्तं तु निभृतांभोधिसन्निभम् ।
आरूढयोगं विधिवद्ध्येयसलीनसम् ॥२०
योगींद्रप्रवरं शांतं ज्वालामालमिवानलम् ।
विलोक्य तत्र तिष्ठंतं विमृशंतः परस्परम् ॥२१

उन नृप के पुत्रों ने उस समय भूमि को खोदते हुए पाताल लोक के तले तक खोद डाला था और उसके अन्दर पाताल में फिर उस अश्व को देखा था ।१५। फिर जब उनको वह यज्ञ का अश्व वहाँ दिखाई पड़ गया तो सब चारों ओर से एकत्रित होकर बहुत अधिक प्रसन्न हुए थे । उनका बहुत अधिक सन्तोष हो गया था । उनमें कुछ तो बहुत अधिक हँसने लगे थे और कुछ परमानन्दित होते हुए नाचने लग गये थे ।१६। वहाँ पर महान आत्मा वाले कपिल मुनि का दर्शन किया था जो कि परम वृद्ध थे और तेज से देदीप्यमान हो रहे थे । उन्होंने पद्मासन बाँध रक्खा था । इस तरह से बैठकर अपने नेत्रों को नासिका के अग्रभाग लगाकर ध्यान में योग क्रिया के अनुसार मग्न हो रहे थे ।१७। उनका शिर और ग्रीवा एकदम सीधे थे और आगे की ओर उनका वक्षःस्थल विष्टब्ध था । उनका परिपूर्ण तेज सभी ओर से अभिसरण कर रहा था अर्थात् उनका अपना आत्म तेज उनके चारों ओर एक मण्डलाकार में उद्दीप्त होकर दिखाई दे रहा था ।१८। जिस तरह से निर्वात स्थान में एक रस दीपक की लौ प्रकाशित हुआ करती है कि उसी भाँति से सब ओर उनका तेज प्रकाशित होता हुआ दिखाई दे रहा था । उनके अपने अन्तःकरण में प्रकाशित जो विज्ञान था उसी से परिपूर्ण उनका कलेवर था ।१९। समाधि में उनका संलग्न चित्त छिपे हुए समुद्र के ही

समान था और वे विधि के साथ योगाभ्यास में समारूढ़ होकर अपने ध्येय परब्रह्म में संलग्न मन वाले थे ।२०। उन्होंने परम शान्त योगीन्द्रों में अधिक श्रेष्ठ मुनि का अवलोकन किया तो ऐसा उस समय में आभास हो रहा था कि यह कोई जलती हुई ज्वालाओं की मालाओं से परिपूर्ण साक्षात् अग्नि का ही स्वरूप है। जब उनको समाधि स्थित सबने देखा था तो सब आपस में विचार करने लगे थे कि यह अत्यधिक तेजस्वी कौन महापुरुष है ।२१।

मुहूर्त्तमिव ते राजन्साध्वसं परमं गताः ।
ततोऽयमश्वहर्त्तेति सागरा कालचोदिताः ॥२२
परिवव्रुर्दुरात्मानः कपिलं मुनिसत्तमम् ।
ततस्तं परिवार्योचुश्चौरोऽयं नात्र संशयः ॥२३
अश्वहर्त्ता ततोह्येष वध्योऽस्माभिर्दुराशयः ।
तं प्राकृतवदासीनं ते सर्वे हतबुद्धयः ॥२४
आसन्नमरणाश्चक्रुर्धर्षितं मुनिमंजसा ।
जैमिनिरुवाच–
ततो मुनिरदीनात्मा ध्यानभंगप्रधर्षितः ॥२५
क्रोधेन महताऽऽविष्टश्चुक्षुभे कपिलस्तदा ।
प्रचचाल दुराधर्षो धर्षितस्तैर्दुरात्मभिः ॥२६
व्यजृंभत च कल्पांते मरुद्भिरिव चानलः ।
तस्य चार्णवगंभीराद्वपुषः कोपपावकः ॥२७
दिधक्षुरिव पातालाल्लोकान्सांकर्षणोऽनलः ।
शुशुभे धर्षणक्रोधपरामर्शविदीपितः ॥२८

हे राजन ! मुहूर्त मात्र समय तक तो दङ्ग से होकर रह गये थे और उनको बड़ा भारी डर लगा था। फिर भावी की प्रबलता से प्रेरित होकर उन सगर के पुत्रों ने यही निश्चय बना लिया कि हो न हो यही इस अश्व के हरण करने वाला है ।२२। उन दुष्ट आत्माओं वालों ने परम श्रेष्ठ मुनि कपिल को चारों ओर घेर लिया था और घेरा डालकर उन्होंने कहा था–यही चोर है—इसमें लेश भर भी संशय नहीं है ।२३। क्योंकि इसने अश्व का अपहरण किया है इसलिए इस बुरे विचार वाले का हमको वध कर

डालना चाहिए। उन सबकी बुद्धि तो होनहार के वश क्षीण हो गयी थी और उनकी मृत्यु निकट में प्राप्त हो रही थी। उन सबने योगासीन उस मुनि को एक साधारण मनुष्य के ही समान सहसा धर्षित किया था अर्थात् डाट-फटकार लगाना आरम्भ कर दिया था। जैमिनी मुनि ने कहा—इसके पश्चात् यह हुआ था कि जब उन सबने बहुत शोर मचाया तो मुनि का ध्यान टूट गया था और अत्युच्च आत्मा वाले मुनि कपिल प्रधर्षित हो गये थे।२४-२५। उस समय में ध्यान के भङ्ग हो जाने से कपिल मुनि को महान् क्रोध हो गया था और उस समय में विष्ठ उनके हृदय में बड़ा भारी क्षोभ हो गया था। वे तो इतने तेजस्वी थे कि उनके ऊपर किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ सकता था और उनका दबा देना महान कठिन था। जब उन दुरात्माओं ने धर्षित करने का प्रयास किया था तो वे संचलित हो गये थे। उस समय में कपिल मुनि ऐसे ही क्रोधवेश में देदीप्यमान दिखाई पड़ रहे थे जैसे कल्प के अन्त में सर्व संहारक वायु से प्रेरित अग्नि होता है। उस समय में समुद्र के समान परम गम्भीर उनके शरीर से कोपाग्नि निकल रही थी।२६-२७। वह सर्वसंहारक क्रोधाग्नि पाताल लोकों को दग्ध करने वाले के ही समान था और धर्षण अर्थात् फटकार से जो क्रोध उत्पन्न हो गया था उसके होने से अत्यधिक प्रदीप्त होकर वह शोभित हो रहा था।२८।

उन्मीलयत्तदा नेत्रे वह्निचक्रसमद्युतिः ।
तस्याऽक्षिणी क्षणं राजन्राजेतां सुभृशारुणे ॥२९

पूर्वसंध्यासमुदितौ पुष्पवंताविवांबरे ।
ततोऽभ्युद्वर्त्तमानाभ्यां नेत्राभ्यां नृपनंदनान् ॥३०

अवैक्षत च गंभीरः कृतांतः कालपर्यये ।
क्रुद्धस्य तस्य नेत्राभ्यां सहसा पावकार्चिषः ॥३१

निश्चेरुरभितो दिक्षु कालाग्नेरिव संतताः ।
सधूमकवलोदग्राः स्फुलिंगौघमुचो मुहुः ॥३२

मुनिक्रोधानलज्वालाः समंताद्व्यानशुर्दिशः ।
व्यालोदरौग्रकुहरा ज्वालास्तन्नेत्रनिर्गताः ॥३३

विरेजुर्निभृतांभोधेर्वडवाग्नेरिवार्चिषः ।

क्रोधाग्निः सुमहाराज ज्वालाव्याप्तदिगंतरः ॥३४
दग्धांश्चकार तान्सर्वानावृण्वानो नभस्तलम् ॥३५

उस समय में कपिल मुनि ने अग्नि मण्डल के समान अपने नेत्रों को खोला था। हे राजन् ! उनकी दोनों आँखें क्षण भर तो अत्यधिक अरुण दिखलाई देती हुई शोभा वाली हुई थीं।२६। और वे दोनों नेत्र पूर्व सन्ध्या में समुदित अम्बर में दो पुष्पों के ही सदृश प्रतीत हो रहे थे। इसके अनन्तर ही उन्होंने अपने खुले हुए नेत्रों को उन सब नृप सगर के पुत्रों पर डाला था।३०। संहार के समय में यमराज के ही तुल्य अत्यन्त गम्भीर मुनि ने नृप सुतों की ओर देखा था। अत्यधिक क्रोध तो समाधि के भङ्ग होने से उनको हो ही रहा था। परम क्रुद्ध उनके नेत्रों से अग्नि की ज्वालायें निकल रही थीं।३१। और वे ज्वालाएँ कालाग्नि के ही समान दिशाओं में सभी ओर फैली हुई थीं। धूम के समूहों से युक्त वे ज्वालाएँ अत्यन्त आगे की ओर बढ़ रही थीं और बारम्बार उनमें से अग्नि के कण छूटकर निकल रहे थे।३२। क्रोधाग्नि की ज्वालाओं ने सभी ओर दिशाओं को व्याप्त कर दिया था। उनके नेत्रों से निकलने वाली क्रोधाग्नि की ज्वालाएँ कालोदर के उग्र कुहरों वाली थीं तात्पर्य यह है कि ज्वालाओं के मण्डल की ऐसी व्याप्ति हो गयी थी। उस समय में कुहरे के समान कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा था।३३। हे सुमहाराज ! उनके क्रोधाग्नि की ज्वालाएँ छिपे हुए समुद्र की बड़वाग्नि की ज्वालाओं के ही समान शोभित हो रही थीं और उन कपिल मुनि की क्रोधाग्नि ने सभी दिशाओं के अन्तर को व्याप्त कर रक्खा था वह सर्वत्र फैल गया था।३४। उस क्रोधाग्नि ने पूर्ण नभस्तल को आवृत करते हुए उन समस्त सगर के साठ सहस्र पुत्रों को दग्ध करके भस्मीभूत कर दिया था।३५।

सशब्दमुद्भ्रांतमरुत्प्रकोपविवर्त्तमानानलधूमजालैः।
महीरजोभिश्च नितांतमुद्धतैः समावृतं
लोकमभूद् भृशातुरम् ॥३६
ततः स वह्निर्विलिखन्निवाभितः समीरवेगाभि रमीभिरंबरम्।
शिखाभिरुर्वीशसुतानशेषतो ददाह सद्यः सुर-
विद्विषस्तान् ॥३७
मिषतः सर्वलोकस्य क्रोधाग्निस्तमृते हयम्।

सागरांस्तानशेषेण भस्मसादकरोत्स तान् ।।३८
एवं क्रोधाग्निना तेन सागरा: पापचेतस: ।
जज्वलु. सहसा दावे तरवो नीरसा इव ।।३६
दृष्ट्वा तेषां तु निधनं सागराणां दुरात्मनाम् ।
अन्योन्यमब्रुवन्देवा विस्मिता ऋषिभि: सह ।।४०
अहोदारुणपापानां विपाको न चिरायित: ।
दुरंत: खलु लोकेऽस्मिन्नराणामसदात्मनाम् ।।४१
यदि मे पर्वताकारा नृशंसा: क्रूरबुद्धय: ।
युगपद्विलयं प्राप्ता: सहसैव तृणाग्निवत् ।।४२

सरर-सरर करती हुई महाध्वनि से परिपूर्ण बड़ी जोरदार हवा के प्रकोप से चारों ओर फैली हुई अग्नि की धुंआ के गुब्बारों से और अत्यधिक ऊपर की ओर उठकर उड़ती हुई भूमि की धूलि के सम्पूर्ण लोक ढक सा गया था और बहुत ही अधिक लोक में विकलता हो गयी थी ।३६। इसके पश्चात् वह अग्नि वायु के वेग से समाहृत शिखाओं से जो घूम-घूम करके ऊपर की ओर उठ रहीं थीं नभस्तल में मानों वे कुछ लिख रहीं होवें चारों ओर फैली हुई थी। उन्होंने उन सुरगण के शत्रु नृप के पुत्रों को पूर्णतया तुरन्त ही प्रदग्ध कर दिया था ।३७। समग्र लोक का विनाश करने वाले उन सगर के पुत्रों का पूर्णतया उस कपिल मुनि की क्रोधाग्नि ने दाह करके राख की ढेरियाँ बना दिया था और उस यज्ञ के अश्व को छोड़ दिया था ।३८। नीरस सूखे हुए वृक्ष तुरन्त ही दान की अग्नि से जल जाया करते हैं उसी भाँति पुण्य रस विहीन पापात्मा के सगर सुत तुरन्त ही जल गये थे ।३६। इस रीति से उन महान् दुष्ट सगर सुतों का निधन का अवलोकन करके सभी देवगण अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो गये थे और परस्पर में ऋषिओं के साथ एक दूसरे से कहने लगे थे ।४०। अहो ! बड़े आश्चर्य की बात है कि महान् दारुण पाप करने वालों के पापों का निपाक कितनी शीघ्रता से हो गया है । निश्चय ही इस लोक में जो असत् आत्माओं वाले नर होते हैं उनका अन्त बड़ा ही दुःख से पूर्ण हुआ करता है । तात्पर्य यह है कि नीचों का विनाश तुरन्त ही अवश्यम्भावी होता है । ।४१। यही बात है कि ये महान् क्रूर बुद्धि वाले निर्दयी जिनका कलेवराकार पर्वतों के सदृश था और कितनी अधिक संख्या में थे इस समय में तृण

में लगी हुई अग्नि के ही समान तुरन्त ही एक ही साथ विलय को प्राप्त हो गये हैं मानों हुए हो नहीं थे । आप उनका नाम मात्र ही रह गया है ।४२।

उद्वेजनीया भूतानां सद्भिरत्यंतगर्हिता: ।
आजीवांतमिमे हर्तु दिष्टचा संक्षयमागता: ।।४३
परोपतापि नितरां सर्वलोकजुगुप्सितम् ।
इह कृत्वाऽशुभं कर्म क: पुमान्विदते सुखम् ।।४४
विक्रोश्य सर्वभूतानि संप्रयाता: स्वकर्मभि: ।
ब्रह्मदंडहता: पापा निरयं शाश्वती: समा: ।।४५
तस्मात्सदैव कर्त्तव्यं कर्म पुंसां मनीषिणाम् ।
दूरतश्च परित्याज्यमितरल्लोकनिंदितम् ।।४६
कर्त्तव्य: श्रेयसे यत्नो यावज्जीवं विजानता ।
नाचरेत्कस्यचिद्द्रोहमनित्यं जीवनं यत: ।।४७
अनित्योऽयं सदा देह: संपदश्चातिचंचला: ।
संसारश्चातिनिस्सारस्तत्कथं विश्वसेद्बुध: ।।४८
एवं सुरमुनीन्द्रेषु कथयत्सु परस्परम् ।
मुनिक्रोधेंधनीभूता विनेशु: सगरात्मजा: ।।४९
निर्दग्धदेहा: सहसा भुवं विष्टभ्य भस्मना ।
अवापुर्निरयं सद्य: सागरास्ते स्वकर्मभि: ।।५०
सागरांस्तानशेषेण दग्ध्वा क्रोधजोऽनल: ।
क्षणेन लोकानखिलानुद्यतो दग्धुमंजसा ।।५१
भयभीतास्ततो देवा: समेत्य दिवि संस्थिता: ।
तुष्टुवुस्ते महात्मानं क्रोधाग्निशमनार्थिन: ।।५२

ये सभी प्राणियों के लिए उद्वेग करने वाले थे और सत्पुरुषों के द्वारा बहुत ही निन्दित समझे जाया करते थे । ये जीवन जब तक इनका रहा सबका अपहरण ही किया करते थे । अब बहुत ही अच्छा हुआ कि सबके सब विनाश को प्राप्त हो गये हैं । यह तो एक प्रसन्नता की ही बात हुई है ।

।४३। जो निरन्तर ही दूसरे प्राणियों को उपताप दिया करता है तथा सदा ही सर्वत्र जिसकी लोग निन्दा किया करते हैं ऐसा इस लोक में परमाशुभ कर्मों को करके कौन सा पुरुष है जो सुख प्राप्त करता है अर्थात् ऐसा कोई भी सुख नहीं प्राप्त करता है ।४४। सब प्राणियों को सता कर अपने ही कुकर्मों के द्वारा इस लोक से विदा होकर चल बसे हैं । ब्राह्मण के अपराध का दण्ड पाकर निहत हो गये हैं । ये महापापी सगर सुत निरन्तर सैकड़ों वर्षों तक नरक में रहेंगे ।४५। इस कारण से मनीषी पुरुषों को सर्वदा सत् कर्म ही करना चाहिए और जो दूसरे लोगों के द्वारा विनिन्दित कर्म हो उसका तो दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए ।४६। मानव का परम कर्त्तव्य है कि जब तक भी उसका जीवन रहे सदा श्रेय के ही यत्न करना चाहिए क्योंकि उसको यह ज्ञान होना चाहिए कि शुभ कर्म ही सफल होता है और सदा बुरे कर्मों का बुरा ही परिणाम हुआ करता है कभी भी किसी के साथ द्रोह का समाचरण नहीं करे क्योंकि जिस जीवन में द्रोह करता है वही जीवन अनित्य है फिर द्रोह का पाप क्यों अर्जित किया जावे ।४७। यह देह तो सदा ही अनित्य है कोई चाहे कैसा भी क्यों न हो यहाँ सदा नहीं रहता है न रहा है और न कभी रहेगा । जिस सम्पदा के लिये मानव बड़े-बड़े कुत्सित कर्म किया करता है वह सम्पदा भी अत्यन्त चञ्चल है और कभी किसी के पास स्थिर नहीं रहा करती है । यह संसार अति निस्सार है अर्थात् सभी सांसारिक कर्मों में पारमार्थिक श्रेय नहीं हैं जो सार कहा जा सके । सभी यहाँ की बातें यहीं समाप्त हो जाया करती हैं फिर भी आश्चर्य यही है कि बुध पुरुष भी कैसे इसमें विश्वास किया करते हैं ।४८। इस रीति से सुरगण और मुनिगण परस्पर में कह रहे थे और नृप सगर के पुत्र सब के सब कपिल मुनि के क्रोध में इन्धन होकर विनष्ट हो गये थे। ।४९। वे सागर के पुत्र अपने ही कर्मों से दग्ध देहों वाले होकर सहसा भस्म के रूप में भूमि में मिल गये थे और तुरन्त ही नरक में पहुँच गये थे ।५०। मुनि के क्रोध की अग्नि ने पूर्ण रूप से उन सगर पुत्रों को दग्ध करके फिर वह अग्नि तुरन्त ही समस्त लोकों को दग्ध करने के लिये उद्यत हो गयी थी ।५१। तब सब देवगण भय से भीत हो गये थे और दिवलोक में ही संस्थित रहते हुए उस क्रोधाग्नि के शमन की इच्छा वालों ने उन महात्मा मुनि का स्तवन किया था ।५२।

कपिल आश्रम में अश्वानयन

जैमिनिरुवाच–

क्रोधाग्निमेनं विप्रेन्द्र सद्यः संहर्तुं महंसि ।
नो चेदकाले लोकोऽयं सकलस्तेन दह्यते ॥१
दृष्टस्ते महिमानेन व्याप्तमासीच्चराचरम् ।
क्षमस्व संहर क्रोधं नमस्ते विप्रपुंगव ॥२
एवं संस्तूयमानस्तु भगवान्कपिलो मुनिः ।
तूर्णमेव क्षयं निन्ये क्रोधाग्निमतिभैरवम् ॥३
ततः प्रशांतमभवज्जगत्सर्वं चराचरम् ।
देवास्तपस्विनश्चैव बभूवुर्विगतज्वराः ॥४
एतस्मिन्नेव काले तु भगवान्नारदो मुनिः ।
अयोध्यामगमद्राजन्देवलोकाद्यदृच्छया ॥५
तमागतमभिप्रेक्ष्य नारदं सगरस्तदा ।
अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयामास शास्त्रतः ॥६
परिगृह्य च तत्पूजामासीनः परमासने ।
नारदो राजशार्दूलमिदं वचनमब्रवीत् ॥७

जैमिनी मुनि ने कहा—देवों ने कपिल मुनि से प्रार्थना की थी—विप्रेन्द्र ! आप इस क्रोध की महान् भीषण अग्नि का तुरन्त ही संहार करने के योग्य हैं । यदि इसका संहरण नहीं किया गया तो उससे अकाल में ही यह सम्पूर्ण लोक दाह को प्राप्त होता जा रहा है ।१। आपकी महिमा तो इसी से देखी जा चुकी है जो कि इस चराचर में व्याप्त थी । हे विप्रों में परम श्रेष्ठ ! अब क्षमा कीजिए और अपने क्रोध का संहरण कीजिए। आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम है ।२। इस रीति से जब देवों के द्वारा उनकी स्तुति की गयी थी तो भगवान कपिल मुनि ने उस अत्यधिक भैरव क्रोधाग्नि का क्षय कर दिया था ।३। फिर यह समस्त चराचर जगत् प्रशान्त हो गया था और सब देवगण तथा तपस्वी गण दुःख से रहित हो गये थे अर्थात् इन सबका सन्ताप दूर हो गया था ।४। इसी समय में देवर्षि भगवान्

नारद मुनि स्वेच्छा से ही देवलोक से विचरण करते हुए अयोध्या पुरी में समागत हो गये थे ।५। राजा सगर ने जब भगवान् नारदजी को वहाँ पर प्राप्त हुए देखा तो शास्त्रानुसार अर्घ्य-पाद्य आदि से भली भाँति उनका अर्चन किया था ।६। नारदजी ने उसकी पूजा को ग्रहण करके आसन पर संस्थिति की थी और फिर उन्होंने उस नृप शार्दूल से यह वचन कहा था ।७।

नारद उवाच—

हयसंचारणार्थाय संप्रयातास्तवात्मजाः ।
ब्रह्मदंडहताः सर्वे विनष्टा नृपसत्तम ॥८
संरक्ष्यमाणस्तैः सर्वैर्हयस्ते यज्ञियो नृप ।
केनाप्यलक्षितः क्वापि नीतो विधिवशाद्दिवि ॥९
ततो विनष्टं तुरंग विचिन्वंतो महीतले ।
प्रालभंत न ते क्वापि तत्प्रवृत्ति चिरान्नृप ॥१०
ततोऽवनेरधस्तेऽश्वं विचेतुं कृतनिश्चयाः ।
सागरास्ते समारभ्य प्रचख्नुर्वसुधातलम् ॥११
खनंतो वसुधामश्वं पाताले दहशुर्नृप ।
समीपे तस्य योगींद्रं कपिलं च महामुनिम् ॥१२
तं दृष्ट्वा पापकर्माणस्ते सर्वे कालचोदिताः ।
कपिलं कोपयामासुरश्वहर्त्ताऽयमित्यलम् ॥१३
ततस्तत्क्रोधसंभूतनेत्राग्नेर्दहतो दिशः ।
इन्धनीभूतदेहास्ते पुत्राः संक्षयमागताः ॥१४

श्री नारदजी ने कहा—हे राजन् ! यज्ञ के अश्व के सञ्चारण के लिए आपके पुत्रों ने संप्रयाण किया था । हे श्रेष्ठ नृप ! वे सब ब्रह्म-दण्ड से हत होकर विनष्ट हो गये हैं ।८। उन सबके द्वारा भली भाँति रक्षा किया भी वह यज्ञिय अश्व किसी के द्वारा अलक्षित कर दिया गया था और भाग्य वश दिव में वह ले जाया गया था ।९। फिर जब वह अश्व विनष्ट अर्थात् खोया हुआ हो गया था उन्होंने महीतल में खोज की थी किन्तु उन्होंने

उसको कहीं पर भी प्राप्त नहीं किया था और वह किस ओर गया है—यह भी बहुत समय तक उनको ज्ञात नहीं हुआ था ।१०। इसके पश्चात् उन्होंने इस वसुन्धरा के नीचे उस अश्व की खोज करने निश्चय किया था। उन आपके पुत्रों ने समारम्भ करके इस वसुधा के तल भाग को खोद डाला था ।११। जब वे लगातर पृथ्वी को खोदते ही चले गये तो हे नृप ! उन्होंने पाताल में उस अश्व को देखा था जिस अश्व के ही समीप में योगीन्द्र महा-मुनि कपिल जी समाधि में स्थित हुए उनको दिखाई दिये थे ।१२। उन महामुनि को वहाँ देखकर पापपूर्ण कर्मों वाले उन सबने काल की गति से प्रेरित होकर उन कपिल देव के ही ऊपर बड़ा कोप किया था और यह ही इस अश्व के हरण करने वाला है—यह कहा था ।१३। इसके अनन्तर उन मुनि को क्रोध उत्पन्न हो गया था और उससे संभूत नेत्रों की अग्नि से जो दशों दिशाओं को दग्ध कर रही थी आपके समस्त पुत्र इन्धन हो गये थे और जल भुनकर उसके देह भस्मीभूत हो गये थे तथा सब नष्ट हो गये थे ।१४।

क्रूराः पापसमाचाराः सर्वलोकोपरोधकाः ।
यतस्ते तेन राजेंद्र न शोकं कर्तुमर्हसि ।।१५
स त्वं धैर्यधनो भूत्वा भवितव्यतयात्मनः ।
नष्टं मृतमतीतं च नानुशोचंति पंडिताः ।।१६
तस्मात्पौत्रमिमं बालमंशुमंतं महामतिम् ।
तुरगानयनार्थाय नियुंक्ष्व नृपसत्तम ।।१७
इत्युक्त्वा राजशार्दूलं सदस्यर्त्विक्समन्वितम् ।
क्षणेन पश्यतां तेषां नारदोऽन्तर्दधे मुनिः ।।१८
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य नृपोत्तमः ।
दुःखशोकपरीतात्मा दध्यौ चिरमुदारधीः ।।१९
तं ध्यानयुक्तं सदसि समासीनमवाङ्मुखम् ।
वसिष्ठः प्राह राजानं सांत्वयन्देशकालवित् ।।२०
किमिदं धैर्यसाराणामवकाशं भवादृशाम् ।
लभते हृदि चेच्छोकः प्राप्तं धीरतया फलम् ।।२१

वे सब आपके पुत्र अत्यन्त क्रूर थे—पाप कर्मों का समाचरण करने वाले तथा समस्त लोकों के उपरोधक थे। क्योंकि ऐसे ही जघन्य थे अतः हे राजेन्द्र ! अब आप उनके लिए शोक करने के योग्य नहीं हैं।१५। आप तो धैर्य को ही धन मानने वाले हैं अतएव आपको धीरज की रक्षा करनी चाहिए। जो भी कुछ भवितव्यता होती है तथा नष्ट हो जाता है और व्यतीत हो जाता है उसको पण्डित लोग नहीं सोचा करते हैं।१६। इस कारण से अब इस अपने अंशुमान् पौत्र को जो महान् मतिमान् है हे नृप श्रेष्ठ ! उस अश्व को लाने के कार्य में नियुक्त करो।१७। समस्त सदस्य और ऋत्विजों से युक्त उस नृप शार्दूल से यही कहकर सभी के देखते हुए एक ही क्षण में नारदजी अन्तर्धान हो गये थे।१८। फिर उस राजा ने नारदजी के कहे हुए उन वचनों का श्रवण करके भी महान् दुःख और शोक मे पूर्णतया घिरा हुआ होकर उस उदार बुद्धि वाले ने बहुत काल तक चिन्तन किया था।१६। उस समय में राजा सभा में नीचे की ओर मुख वाला होकर बैठे हुए थे। उसी समय में देश और काल के ज्ञाता वसिष्ठजी ने आकर राजा को सान्त्वना देते हुए कहा था।२०। आप तो धैर्य को बहुत महत्त्व देने वाले हैं फिर आप जैसे महान् पुरुषों को यह ऐसा अवसर क्यों प्राप्त हो रहा है। यदि आपके हृदय में भी शोक ने स्थान ग्रहण कर लिया है तो धीरता से क्या फल होता है। अर्थात् फिर तो धैर्य व्यर्थ ही है।२१।

दौर्मनस्यं शिथिलयन्सर्वं दिष्टवशानुगम् ।
मन्वानोऽनंतरं कृत्यं कर्तुमर्हस्यसंशयम् ॥२२
वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु राजा कार्यार्थतत्त्ववित् ।
धृतिं सत्त्वं समालंब्य तथेति प्रत्यभाषत ॥२३
अंशुमंतं समाहूय पौत्रं विनयशालिनम् ।
ब्रह्म क्षत्त्रसभामध्ये शनैरिदमभाषत ॥२४
ब्रह्मदंडहताः सर्वे पितरस्तव पुत्रक ।
पतिताः पापकर्माणो निरये शाश्वतीः समाः ॥२५
त्वमेव संततिर्मह्यं राज्यस्यास्य च रक्षिता ।
त्वदायत्तमशेषं मे श्रेयोऽमुत्र परत्र च ॥२६
स त्वं गच्छ ममादेशात्पाताले कपिलांतिकम् ।

तुरगानयनार्थाय यत्नेन महतान्वितः ।।२७
तं प्रार्थयित्वा विधिवत्प्रसाद्य च विशेषतः ।
आदाय तुरगं वत्स शीघ्रमागंतुमर्हसि ।।२८

आप इस मन की उदासी को शिथिल करके यह सोच लीजिये कि यह सभी कुछ भाग्य के कारण से ही हुआ है और इसमें अन्य किसी का भी कुछ वश नहीं चलता है । ऐसा ही मानकर बिना किसी संशय के जो भी कुछ पीछे करने का कृत्य है उसको ही करना अब उचित है ।२२। वसिष्ठ जी के द्वारा इस रीति से कहा जाने पर कार्यों के अर्थ के तत्त्वों के ज्ञाता राजा सगर ने धैर्य का सहारा लिया था और मुनि से वही सब कुछ करने के लिये प्रार्थना की थी ।२३। फिर नृप सगर ने अपने विनय शाली पौत्र अंशुमान् को अपने पास बुलाकर विप्रों और क्षत्रियों की सभा के मध्य में धीरे से उससे कहा था ।२४। हे बेटा ! तुम्हारे सभी पितृगण ब्रह्मदण्ड से निहत हो गये हैं और वे पाप कर्मों के करने वाले सैकड़ों वर्षों के लिए नरक में पतित हो गये हैं ।२५। इस समय में तो मेरे अन्य सभी पुत्रों का विनाश हो गया है मेरी केवल एक तुम ही सन्तति शेष रहे हो जो कि इस मेरे विशाल राज्य के रक्षा करने वाले हो । अब तो इस लोक में और परलोक में मेरे पूर्ण श्रेय को करना तुम्हारे ही अधीन है ।२६। वह आप ही अब मेरी आज्ञा से पाताल लोक में कपिल मुनि के समीप में गमन करो । और महान् यत्न से उस यज्ञ के अश्व को यहाँ पर ले आओ ।२७। आप वहाँ पर पहुँच कर उन मुनिवर से विधि के साथ प्रार्थना करना और विशेष रूप से उनको प्रसन्न कर लेना । फिर उस अश्व को अपने साथ लेकर हे वत्स ! तुम बहुत ही शीघ्रता से यहाँ पर वापिस आ जाओ ।२८।

जैमिनिरुवाच—
एवमुक्तोऽशुमांस्तेन प्रणम्य पितरं पितुः ।
तथेत्युक्त्वा महाबुद्धिः प्रययौ कपिलांतिकम् ।।२९
तमुपागम्य विधिवन्नमस्कृत्य यथामति ।
प्रश्रयावनतो भूत्वा शनैरिदमुवाच ह ।।३०
प्रसीद विप्रशार्दूल त्वामहं शरणं गतः ।
कोपं च संहर क्षिप्रं लोकप्रक्षयकारकम् ।।३१

त्वयि क्रुद्धे जगत्सर्वं प्रकाशमुपयास्यति ।
प्रशांतिमुपयाह्याशु लोकाः संतु गतव्यथाः ॥३२
प्रसन्नोऽस्मान्महाभाग पश्य सौम्येन चक्षुषा ।
ये त्वत्क्रोधाग्निनिर्दग्धास्तत्संततिमवेहि माम् ॥३३
नाम्नांशुमंतं नप्तारं सगरस्य महीपतेः ।
सोऽहं तस्य नियोगेन त्वत्प्रसादाभिकांक्षया ॥३४
प्राप्तो दास्यसि चेद्ब्रह्मंस्तुरगानयनाय च ।
जैमिनिरुवाच–
इति तद्वचनं श्रुत्वा योगींद्रप्रवरो मुनिः ॥३५

जैमिनि मुनि ने कहा—जब राजा के द्वारा अपने पौत्र अंशुमान् से इस प्रकार से कहा गया था तो महान् बुद्धिमान उसने पिता के पिता को प्रणाम किया था और मैं ऐसा ही करूँगा—यह कहकर वह कपिल मुनि के समीप में चला गया था ।२९। उसके समीप में प्राप्त होकर उसने विधि के साथ उनके प्रणाम किया था और फिर बुद्धि के अनुसार विनम्रता से अवनत होकर धीरे से उनसे कहा था ।३०। हे विप्रशार्दूल ! मुझ पर कृपया प्रसन्न होइए—मैं तो आपके चरणों की शरण में समागत हुआ हूँ । आपके हृदय में जो कोप समुत्पन्न हो गया है उसका संहरण शीघ्र ही कर लीजिए क्योंकि आपका यह कोप समस्त लोकों के विनाश कर देने वाला है ।३१। आपके क्रुद्ध हो जाने पर तो यह समग्र जगत विनाश को ही प्राप्त हो जायगा । अब आप प्रशान्ति को शीघ्र प्राप्त हो जाइए । जिससे इन सब लोकों की व्यथा दूर हो जावे ।३२। हे महाभाग ! आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाइए । सौम्य नेत्रों से हमको देखिए । जो आपके क्रोध की अग्नि से संदग्ध हो गये हैं उन्हीं की सन्तति मुझे आप समझिए ।३३। मेरा नाम अंशुमान है और मैं राजा सगर का नाती हूँ । वह मैं राजा के ही नियोग से आपकी प्रसन्नता की अभिकांक्षा से ही मैं यहाँ पर समागत हुआ हूँ ।३४। मैं तो उस यज्ञ के अश्व के ले जाने के ही लिए आया हूँ यदि कृपा कर मुझे देंगे । जैमिनि मुनि ने कहा—उस अंशुमान के इस वचन को सुनकर योगीन्द्र प्रवर मुनि ने अंशुमान का अवलोकन किया और परम प्रसन्न होकर यह वचन उससे कहा था ।३५।

अंशुमंतं समालोक्य प्रसन्न इदमब्रवीत् ।
स्वागतं भवतो वत्स दिष्टया च त्वमिहागतः ॥३६
गच्छ शीघ्रं हयश्चायं नीयतां सगरांतिकम् ।
अधिक्षिप्तोऽस्य यज्ञोऽपि प्रागतः संप्रवर्त्तताम् ॥३७
व्रियतां च वरो मत्तस्त्वया यस्ते मनोगतः ।
दास्ये सुदुर्लभमपि त्वद्भक्तिपरितोषितः ॥३८
एषां तु संप्रणाशं हि गत्वा वद पितामहम् ।
पापानां मरणं त्वेषां न च शोचितुमर्हसि ॥३९
ततः प्रणम्य योगींद्रमंशुमानिदमब्रवीत् ।
वरं ददासि चेन्मह्यं वरये त्वां महामुने ॥४०
वरमर्हामि चेत्त्वत्तः प्रसन्नो दातुमर्हसि ।
त्वद्रोषपावकप्लुष्टाः पितरो ये ममाखिलाः ॥४१
संप्रयास्यंति ते ब्रह्मन्निरयं शाश्वतीः समाः ।
ब्रह्मदंडहतानां तु न हि पिंडोदकक्रियाः ॥४२

हे वत्स ! आपका स्वागत है । बड़े ही हर्ष की बात है कि आप यहाँ पर आ गये हो ।३६। अब बहुत शीघ्र जाओ यह अश्व राजा सगर के समीप में ले जाओ । पूर्व से ही संप्रवृत्त हुआ इस राजा का यज्ञ रुक गया है उसको पूर्ण करो ।३७। और आपके मन में जो भी कुछ हो वह वरदान अब मुझसे प्राप्त कर लो । मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत ही परितुष्ट हो गया हूँ यदि तुम्हारा वर परम दुर्लभ भी होगा तो भी मैं तुमको दे ही दूँगा ।३८। अब तुम इन साठ सहस्र नृप के पुत्रों का विनाश हो गया है—यह राजा से कह देना । ये महान पापी थे अतः इनके मरण के विषय में राजा से कह देना कि कोई शोक न करें ।३९। फिर उन योगीन्द्र मुनि को प्रणाम करके अंशु-मान ने उनसे यह कहा था । हे मुने ! आप यदि मुझको वरदान देने की इच्छा करते हैं तो मैं आपसे वर का वरण करूँ ।४०। यदि मैं वर पाने के योग्य हूँ तो आपसे वरदान प्राप्त करूँ किन्तु वह वरदान आप सुप्रसन्न होकर ही मुझे दीजिए । आपके रोष को अग्नि से मेरे सभी पितृगण संप्लुष्ट हो गये हैं ।४१। हे ब्रह्मन् ! क्योंकि उन्होंने आपका महान अपराध किया

था इससे वे सभी बहुत वर्षों तक नरक में जायेंगे। क्योंकि वे सब ब्रह्मदण्ड से हृत हैं अतएव उनकी पिण्डोदक क्रिया भी कुछ नहीं हो सकती है।४२।

पिंडोदकविहीनानामिह लोके महामुने।
विद्यते पितृसालोक्यं न खलु श्रुतिचोदितम् ॥४३
अक्षयः स्वर्गवासोऽस्तु तेषां तु त्वत्प्रसादतः।
वरेणानेन भगवन्कृतकृत्यो भवाम्यहम् ॥४४
तत्प्रसीद त्वमेवैषां स्वर्गतेर्वद कारणम्।
येनोद्धारणमेतेषां वह्नेः कोपस्य वै भवेत् ॥४५
ततस्तमाह योगींद्रः सुप्रसन्नेन चेतसा।
निरयोद्धाणं तेषां त्वया वत्स न शक्यते ॥४६
तैश्चापि नरके तावद्वस्तव्यं पापकर्मभिः।
कालः प्रतीक्ष्यतां तावद्यावत्त्वत्पौत्रसंभवः ॥४७
कालांते भविता वत्स पौत्रस्तव महामतिः।
राजा भगीरथो नाम सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् ॥४८
स तु यत्नेन महता पितृगौरवयंत्रितः।
आनेष्यति दिवो गंगां तपस्तप्त्वा महद्ध्रुवम् ॥४९

हे महामुने! इस लोक में जिनकी पिण्डोदक क्रिया नहीं होती है वे पितृगण के लोक में उनका सालोक्य प्राप्त नहीं कर सकते हैं—ऐसा श्रुति सम्मत प्रमाण है।४३। अब मेरा यही वर मुझे प्रदान कीजिए कि आपके प्रसाद से उनको अक्षय स्वर्ग का निवास प्राप्त होवे। हे भगवान! इस वरदान से मैं कृत-कृत्य हो जाऊँगा।४४। सो आप प्रसन्न हो जाइए और उनके स्वर्ग में गमन करने का कारण बता दीजिए। जिसके करने से उनका कोप की अग्नि से उद्धार हो जावे।४५। इसके अनन्तर योगीन्द्र प्रसन्न चित्त से उससे बोले—हे वत्स! उनका नरक से उद्धार तुम्हारे द्वारा नहीं किया जा सकता है।४६। पाप कर्मों के करने वालों को तब तक नरक में वास करना ही होगा। उस समय की प्रतीक्षा करो जब तक तुम्हारे यहाँ पौत्र जन्म ग्रहण करे।४७। कुछ काल के पश्चात् हे वत्स! तुम्हारा एक महामति पौत्र होगा। उसका शुभ नाम राजा भगीरथ होगा जो समस्त धर्मों के

अर्थों के तत्वों का ज्ञाता होगा।४८। वह अपने पितरों के गौरव से सुसमन्वित होगा और महान यत्न से परम घोर तप करके निश्चय ही स्वर्ग से यहाँ पर गङ्गा को लावेगा।४९।

तदंभसा पावितेषु तेषां गात्रास्थिभस्मसु ।
प्राप्नुवंति गतिं स्वर्गे भवतः पितरोऽखिला ॥५०
तथेति तस्या माहात्म्यं गंगाया नृपनन्दन ।
भागीरथीति लोकेऽस्मिन्सा विख्यातिमुपैष्यति ॥५१
यत्तोयप्लावितेष्वस्थिभस्मलोमनखेष्वपि ।
निरयादपि संयाति देही स्वर्लोकमक्षयम् ॥५२
तस्मात्त्वं गच्छ भद्रं ते न शोकं कर्त्तुमर्हसि ।
पितामहाय चैवैनमश्वं संप्रतिपादय ॥५३
जैमिनिरुवाच—
ततः प्रणम्य तं भक्त्या तथेत्युक्त्वा महामतिः ।
ययौ तेनाभ्यनुज्ञातः साकेतनगरं प्रति ॥५४
सगरं स समासाद्य तं प्रणम्य यथाक्रमम् ।
न्यवेदयच्च वृत्तांतं मुनेस्तेषां तथात्मनः ॥५५
प्रददौ तुरगं चापि समानीतं प्रयत्नतः ।
अतः परमनुष्ठेयमब्रवीत्किं मयेति च ॥५६

उस पतित पावनी गङ्गा के पुनीत जल से उन सबके गात्र-अस्थि और भस्म के पवित्र हो जाने पर वे समस्त आपके पितृगण स्वर्ग में गति को प्राप्त करेंगे।५०। हे नृपनन्दन उस गङ्गा का माहात्म्य ही ऐसा अद्भुत है। राजा भगीरथ के द्वारा यहाँ लाने से इस लोक में उसका नाम भागीरथी प्रसिद्ध होगा।५१। गङ्गा का बड़ा अद्भुत माहात्म्य होता है कि उसके जल में किसी भी प्राणी की अस्थि-भस्म-नख आदि कोई भी भाग जब प्लावित हो जाता है तो वह प्राणी नरक की यातनाओं से भी मुक्त होकर अक्षय स्वर्गलोक में चला जाया करता है।५२। इस कारण से अब आप यहाँ से चले जाइए—आपका कल्याण होगा—आपको कुछ भी शोक नहीं करना चाहिए। अपने पितामह को यह अश्व ले जाकर दे दो।५३। जैमिनि मुनि

ने कहा—इसके अनन्तर उस महामति ने—ऐसा ही करूँगा—यह कहकर उनको भक्ति से प्रणाम किया था और उनकी आज्ञा प्राप्त कर साकेत नगरी की ओर वहाँ से गमन किया था ।५४। राजा सगर के समीप में पहुँच कर उसने क्रमानुसार उनको प्रणाम किया था और फिर उन सबका—मुनि का और अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा से निवेदन कर दिया था ।५५। और वह अश्व भी राजा को दे दिया था। जिसको वह बड़े प्रयत्न से लाया था। फिर राजा की सेवा में प्रार्थना की थी कि अब आगे मुझे क्या सेवा करनी चाहिए—यह अपनी आज्ञा प्रदान कीजिए ।५६।

—×—

।। अंशुमान को राज्य प्राप्ति ।।

जैमिनिरुवाच—

ततः पौत्रं परिष्वज्य सगरः प्रेमविह्वलः ।
अभिनंद्याशिषात्यर्थं लालयन्प्रशशंस ह ।।१
अथ ऋत्विक्सदस्यैश्च सहितो राजसत्तमः ।
उपाक्रमत तं यज्ञं विधिवद्वेदपारगैः ।।२
ततः प्रववृते यज्ञः सर्वसंपद्गुणान्वितः ।
सम्यगौर्ववसिष्ठाद्यैर्मुनिभिः संप्रवर्त्तितः ।।३
हिरण्मयमयी वेदिः पात्राण्युच्चावचानि च ।
सुसमृद्धं यथाशास्त्रं यज्ञे सर्वं बभूव ह ।।४
एवं प्रवर्त्तितं यज्ञमृत्विजः सर्व एव ते ।
क्रमात्समापयामासुर्यजमानपुरस्सराः ।।५
समापयित्वा तं यज्ञं राजा विधिविदां वरः ।
यथावद्दक्षिणां चैव ऋत्विजां प्रददौ तदा ।।६
अथ ऋत्विक्सदस्यानां ब्राह्मणानां तथार्थिनाम् ।
तत्कांक्षितादभ्यधिकं प्रददौ वसु सर्वशः ।।७

जैमिनी मुनि ने कहा—इसके अनन्तर राजा सगर ने प्रेम से विह्वल होकर अपने पौत्र का परिष्वजन किया था और अत्यधिक आशीर्वचनों से उसका अभिनन्दन करके बहुत ही अधिक लाड़ करते हुए उसकी प्रशंसा की थी ।१। इसके उपरान्त सब ऋत्विजों और सदस्यों के सहित उस नृप श्रेष्ठ ने वेदों के पारगामी विप्रों के द्वारा उस यज्ञ का विधि सहित उपक्रम किया था ।२। इसके अनन्तर सब प्रकार की सम्पत्ति और गुणों से संयुत वह यज्ञ आरम्भ हुआ था जिसका समारम्भ और्व और वसिष्ठ आदि मुनियों के द्वारा भली भाँति सम्प्रवर्त्तित किया गया था ।३। उस यज्ञ की वेदी सुवर्ण से निर्मित की गयी थी तथा उसके उपयुक्त सभी छोटे-बड़े पात्र अत्युत्तम जुटाये गये थे। उस यज्ञ में शास्त्र के अनुसार सभी वस्तुएँ सुसमृद्ध थी ।४ इस प्रकार से आरम्भ किया हुआ वह यज्ञ था जिसको सभी ऋत्विजों ने किया था और यजमान के साथ उन्होंने उसको समाप्त किया था।५। विधि के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ राजा ने उस यज्ञ को समाप्त कराकर उसी समय में ऋत्विजों के लिए उचित दक्षिणा दी थी ।६। इसके उपरान्त ऋत्विज-सदस्य-ब्राह्मण तथा याचकों के लिए सबको जो भी उनका आकांक्षित था उस से अधिक धन दिया था ।७।

एवं संतर्प्य विप्रादीन्दक्षिणाभिर्यथाक्रमम् ।
क्षमापयामास गुरून्सदस्यान्प्रणिपत्य च ।।८
ब्राह्मणैस्ततो वर्णैर्ऋत्विग्भिश्च समन्वितः ।
वारकीयाकदंबैश्च सूतमागधवंदिभिः ।।९
अन्वीयमानः सस्त्रीकः श्वेतच्छत्रविराजितः ।
दोधूयमानचमरो बालव्यजनराजितः ।।१०
नानावादित्रनिर्घोषैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः ।
स गत्वा सरयूतीरं यथाशास्त्रं यथाविधि ।।११
चकारावभृथस्नानं मुदितः सह बन्धुभिः ।
एवं स्नात्वा सपत्नीकः सुहृद्भिर्ब्राह्मणैः सह ।।१२
वीणावेणुमृदंगादिनानावादित्रनिःस्वनैः ।
मंगल्यैर्वेदघोषैश्च सह विप्रजनैरितः ।।१३

संस्तूयमानः परितः सूतमागधबंदिभिः ।
प्रविवेश पुरीं रम्यां हृष्टपुष्टजनायुताम् ।।१४

इस प्रकार से विप्रगण आदि की दक्षिणाओं से भली-भाँति तृप्ति करके क्रम के अनुसार गुरुवर्गों को और सदस्यों को प्रणिपात करके उनसे क्षमा की याचना की थी ।८। फिर वह राजा शोभा यात्रा के स्वरूप में सरयू के तट पर गया था। उसके साथ ब्राह्मण आदि सभी वर्णों वाले लोग तथा ऋत्विज गण थे और जो मार्ग में रोकथाम करने वाले लोग थे उनके भी समूह और सूत—मागध और बन्दी जन भी थे ।९। इन सब को साथ में लेकर अपनी पत्नियों के सहित राजा वहाँ से चला था जिसके ऊपर श्वेत छत्र शोभित था। उसके दोनों ओर चमर ढुराये जा रहे थे तथा बाल व्यजन भी किये जा रहे थे ।१०। अनेक वाद्य उस समय बजाये जा रहे थे जिनकी तुमुल ध्वनि से सभी दिशाओं कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। इस रीति से वह शास्त्र के कथनानुसार विधिपूर्वक सरयू पर प्राप्त हो गया था ।११। समस्त बन्धु-बान्धवों के साथ परम प्रसन्न होकर अवभृथ अर्थात् यज्ञान्त स्नान राजा ने किया था। इस रीति के पत्नियों के सहित सुहृद्गण और विप्रों के साथ स्नान करके वहाँ से राजा वापिस चला था ।१२। उस समय में वीणा-वेणु-मृदङ्ग आदि अनेक बाजे रहे थे और माङ्गलिक वेद-मन्त्रों की भी ध्वनि हो रही थी जिन मन्त्रों को ब्राह्मण बोल रहे थे ।१३। सूत-मागध और बन्दीजन सभी ओर से संस्तवन कर रहे थे। इस रीति से हृष्ट-पुष्टजनों से समन्वित अपनी सुरम्यपुरी में राजा ने प्रवेश किया था ।१४।

श्वेतव्यजनसच्छत्रपताकाध्वजमालिनीम् ।
सिक्तसंमृष्टभूभागापणशोभासमन्विताम् ।।१५
कैलासाद्रिप्रकाशाभिरुज्ज्वलां सौधपङ्क्तिभिः ।
स तत्रागरुधूपोत्थगंधामोदितदिङ्मुखम् ।।१६
विकीर्यमाणः परितः पौरनारीजनैर्मुहुः ।
लाजवर्षेण सानंदं वीक्षमाणश्च नागरैः ।।१७
उपदाभिरनेकाभिस्तत्र तत्र वणिग्जनैः ।
संभाव्यमानः शनकैर्जगाम स्वपुरं प्रति ।।१८

स प्रविश्य गृहं रम्यं सर्वमंडलमंडितम् ।
सम्यक्संभावयामास सुहृदो ब्राह्मणानपि ॥१९

संसेव्यमानश्च तदा नानादेशेश्वरैर्नृपैः ।
सभायां राजशार्दूलो रेमे शक्र इवापरः ॥२०

एवं सुहृद्भिः सहितः पूरयित्वा मनोरथम् ।
सगरः सह भार्याभ्यां रेमे नृपवरोत्तमः ॥२१

उस पुरी की शोभा का वर्णन किया जाता है कि उसमें सर्वत्र छत्र पताका-ध्वजाओं की मालायें दिखाई दे रही थीं सर्वत्र पुरी का भूभाग संमार्जित तथा संसिक्त था और उसमें दुकान और बाजारों की भी अतीव अद्भुत शोभा हो रही थी ।१५। उस पुरी में बड़े-बड़े भवनों की की पंक्तियाँ थीं जो बहुत ही ऊँचे थे और जिनमें प्रकाश हो रहा था । वे ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानों उज्ज्वल कैलाश गिरि के शिखर हों । वहाँ पर अगुरु की धूप की गन्ध चारों ओर फैल रही थी जिससे सभी दिशाओं के मुख आमोदित हो रहे थे ।१६। नगर निवासिनी नारियों का समुदाय सभी ओर बारम्बार खीलों की वर्षा राजा के ऊपर कर रहा था और नगर निवासी पुरुष बड़े आनन्द के साथ राजा का मुखावलोकन कर रहे थे ।१७। साकेत पुरी के वणिग्जन अपनी भेंटें लेकर जो अनेक प्रकार की थी जहाँ-तहाँ पर राजा का सम्मान कर रहे थे । इस रीति से राजा धीरे-धीरे अपने पुर की ओर गये थे ।१८। उस नृप ने सभा मण्डलों से मण्डित अपने सुरम्य गृह में प्रवेश किया था और वहाँ पर अपने सुहृदों का तथा ब्राह्मणों का भली भाँति सत्कार-समादर किया था ।१९। वहाँ पर अनेक देशों के नृप उस समय में विद्यमान थे और उनके द्वारा राजा का पूर्ण सेवा-सम्मान किया गया था । वह राजाशार्दूल अपनी सभी में दूसरे इन्द्र के ही समान रमण किया करता था ।२०। इस प्रकार से सुहृदों के सहित नृप नरोत्तम सगर ने मनोरथ को पूर्ण किया था और वह अपनी दोनों भार्याओं के साथ रमण किया करता था ।२१।

अंशुमन्तं ततः पौत्रं मुदा विनयशालिनम् ।
वसिष्ठानुमते राजा यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥२२

पौरजानपदानां तु बंधूनां सुहृदामपि ।

स प्रियोऽभवदत्यर्थमुदारैश्च गुणैर्नृपः ॥२३
प्रजास्तमन्वरज्यंत बालमप्यमितौजसम् ।
नवं च शुक्लपक्षादौ शीतांशुमचिरोदितम् ॥२४
स तेन सहितः श्रीमान्सुहृद्भिश्च नृपोत्तमः ।
भार्याभ्यामनुरूपाभ्यां रममाणोऽवसच्चिरम् ॥२५
युवैव राजशार्दूलः साक्षाद्धर्म इवापरः ।
पालयामास वसुधां सशैलवनकाननाम् ॥२६
एवं महानहिमदीधितिवंशमौलिरत्नायामानवपुरुत्तर-
कोसलेशः ।
पूर्णेन्दुवत्सकललोकमनोऽभिरामः सार्द्ध
प्रजाभिरखिलाभिरलं जहर्ष ॥२७

इसके अनन्तर राजा सगर ने अपने विनयशील अंशुमान् पौत्र को वसिष्ठ मुनि की अनुमति प्राप्त करने पर यौवराज्य पद पर बड़ी प्रसन्नता से अभिषिक्त कर दिया था ।२२। वह नृप अपने अत्यन्त उदार गुण गणों से पुरवासी जनपद निवासी-बन्धुगण और सुहृदों का भी सबका परम प्रिय हो गया था ।२३। जिस तरह से शुल्क पक्ष के आदि में अचिरोदित अर्थात् तुरन्त ही उगे हुए चन्द्रमा को जो कि नवीन होता है सभी उसका दर्शन करके परम प्रसन्न हुआ करते हैं ठीक उसी भाँति से वह राजा बालक था और अपरिमित ओज से समन्वित था अतः उसको बहुत प्यार किया करती थी ।२४। वह उत्तम नृप सगर भी श्री से सुसम्पन्न उस नवीन राजा के साथ मित्रों के सहित अपनी अनुरूप दोनों भार्याओं के साथ रमण करता हुआ वहाँ पर निवास किया करता था ।२५। यद्यपि वह राजाशार्दूल युवा ही था किन्तु साक्षात् दूसरे धर्म के ही समान था । उसने पर्वतों और काननों के सहित पृथ्वी का पालन किया था ।२६। इस प्रकार से सूर्यवंश के शिरोमणि रत्न के सदृश वपु वाला महान् उत्तर कोसल का स्वामी राजा अंशुमान पूर्ण चन्द्र के समान सभी लोकों में परम सुन्दर अपनी सब प्रजाओं के साथ परमाधिक प्रसन्न हुआ था ।२७।

——

गंगा का पृथ्वी पर आगमन

जैमिनिरुवाच—
एतत्ते चरितं सर्वं सगरस्य महात्मनः ।
संक्षेपविस्तराभ्यां तु कथितं पापनाशनम् ॥१
खंडोऽयं भारतो नाम दक्षिणोत्तरमायतः ।
नवयोजनसाहस्रं विस्तारपरिमंडलम् ॥२
पुत्रैस्तस्य नरेंद्रस्य मृगयद्‌भिस्तुरंगमम् ।
योजनानां सहस्रं तु खात्वाष्टौ विनिपातिताः ॥३
सगरस्य सुतैर्यस्माद्वर्द्धितो मकरालयः ।
ततः प्रभृति लोकेषु सागराख्यामवाप्तवान् ॥४
ब्रह्म पादावधि महीं सतीर्थक्षेत्रकाननाम् ।
अब्धिः संक्रमयोमास परिक्षिप्य निजांभसा ॥५
ततस्तन्निलयाः सर्वे सदेवासुरमानवाः ।
इतस्ततश्च संजाता दुःखेन महतान्विताः ॥६
गोकर्णं नाम विख्यातं क्षेत्रं सर्वसुरार्चितम् ।
सार्द्धयोजनविस्तारं तीरे पश्चिमवारिधेः ॥७

जैमिनि मुनि ने कहा—हमने यह महात्मा सगर का सम्पूर्ण चरित संक्षेप तथा विस्तार से आपके सामने कहकर सुना दिया है जो कि पापों का विनाश कर देने वाला है ।१। यह दक्षिण से उत्तर पर्यन्त भारत खण्ड है। इसके विस्तार का परिमण्डल नौ सहस्र योजन होता है ।२। उस नरेन्द्र के पुत्रों ने उस यज्ञ के अश्व की खोज करते हुए एक सहस्र योजन खोदकर आठ ही विनिपातित किये हैं ।३। क्योंकि सगर के पुत्रों के द्वारा वह समुद्र बढ़ा दिया गया है । तभी से लेकर इसका सागर यह नाम प्राप्त हो गया है ।४। तीर्थों और काननों तथा क्षेत्रों के सहित ब्रह्म पाद की अवधि तक इस मही को समुद्र ने अपने जल से परिक्षिप्त करके संक्रामित कर दिया था ।५। फिर सब निलय-देव-असुर और मानव महान् दुःख से संयुत होते हुए इधर-उधर हो गये थे ।६। पश्चिम समुद्र के तट पर हुए योजन विस्तार वाला गोकर्ण नामक क्षेत्र विख्यात था जो सभी सुरों के द्वारा अर्चित था ।७।

तत्रासंख्यानि तीर्थानि मुनिदेवालयाश्च वै ।
वसंति सिद्धसंघाश्च क्षेत्रे तस्मिन्पुरा नृप ।।८
क्षेत्रं तल्लोकविख्यातं सर्वपापहरं शुभम् ।
तत्तीर्थमब्धेरपतद्भागे दक्षिणपश्चिमे ।।९
यत्र सर्वे तपस्तप्त्वा मुनयः शंसितव्रताः ।
निर्वाणं परमं प्राप्ताः पुनरावृत्तिवर्जितम् ।।१०
तत्क्षेत्रस्य प्रभावेण प्रीत्या भूतगणैः सह ।
देव्या च सकलैर्देवैर्नित्यं वसति शंकरः ।।११
एनांसि यत्समुद्दिश्य तीर्थयात्रां प्रकुर्वताम् ।
नृणामाशु प्रणश्यंति प्रवाते शुष्कपर्णवत् ।।१२
तत्क्षेत्रसेवनरतिर्नैव जात्वभिजायते ।
समीपे वसमानानामपि पुंसां दुरात्मनाम् ।।१३
महता सुकृतेनैव तत्क्षेत्रगमने रतिः ।
नृणां संजायते राजन्नान्यथा तु कथंचन ।।१४

हे नृप ! पहिले वहां पर उस क्षेत्र में अगणित तीर्थ मुनियों और देवों के आलय और सिद्धों के संघ निवास किया करते थे ।८। वह क्षेत्र लोक में विख्यात था और परम शुभ समस्त पापों के हरण करने वाला था । वह तीर्थ समुद्र के दक्षिण भाग में गिर गया था ।९। जहाँ पर सब मुनिगण तपश्चर्या करके संशित व्रत वाले हुए थे और वे सब निर्वाण पद को प्राप्त हो गये थे जिस पद पर पहुँच कर इस लोक में पुनः आवृत्ति नहीं होती है ।१०। उस क्षेत्र का ऐसा प्रभाव था कि उसी के कारण से भगवान् शङ्कर बड़ी ही प्रीति से अपनी प्रिया देवी-सकल देवगण और भूत गणों के साथ निवास किया करते हैं ।११। इसी का उद्देश्य करके तीर्थ यात्रा करने वाले मनुष्यों के समस्त अघ तेज वायु में शुष्क पुत्रों के ही समान शीघ्र ही विनष्ट हो जाया करते हैं ।१२। जो उसके समीप में ही निवास करने वाले दुरात्मा मनुष्य होते हैं और वहीं पर निवासी हैं उनको कभी भी उस क्षेत्र के सेवन करने की रति नहीं हुआ करती है ।१३। हे राजन् यह एक महान् सुकृत हो तभी उस क्षेत्र के गमन में रति हुआ करती है । यदि कोई महान् पुण्यों का

उदय नहीं तो फिर मानवों के हृदय में किसी भी प्रकार से उस क्षेत्र के सेवन करने की रति समुत्पन्न नहीं हुआ करती है ।१४।

निर्बंधेन तु ये तस्मिन्प्राणिनः स्थिरजंगमाः ।
म्रियंते नृप सद्यस्ते स्वर्गं प्राप्स्यंति शाश्वतम् ॥१५
स्मृत्याऽपि सकलैः पापैर्यस्य मुच्येत मानवः ।
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं सर्वतीर्थनिकेतनम् ॥१६
स्नात्वा चैतेषु तीर्थेषु यजंतश्च सदाशिवम् ।
सिद्धिकामा वसंति स्म मुनयस्तत्र केचन ॥१७
कामक्रोधविनिर्मुक्ता ये तस्मिन्वीतमत्सराः ।
निवसंत्यचिरेणैव तत्सिद्धिं प्राप्नुवंति हि ॥१८
जपहोमरताः शांता नियता ब्रह्मचारिणः ।
वसंति तस्मिन्ये ते हि सिद्धिं प्राप्यंत्यभीप्सिताम् ॥१६
दानहोमजपाद्यं वै पितृदेवद्विजार्चनम् ।
अन्यस्मात्कोटिगुणितं भवेत्तस्मिन्फलं नृप ॥२०
अंभोधिसलिले मग्ने तस्मिन् क्षेत्रेऽतिपावने ।
महता तपसा युक्ता मुनयस्तन्निवासिनः ॥२१

हे नृप ! जो स्थावर या जंगम प्राणी निर्बन्ध होने के कारण से वहाँ पर अपना प्राण परित्याग किया करते हैं वे तुरन्त ही शाश्वत स्वर्ग की प्राप्ति कर लिया करते हैं । यद्यपि स्वर्ग का निवास सावधिक होता है और पुण्य क्षीण हो जाने पर वहां से हटना होता है परन्तु इस क्षेत्र के प्रभाव से सदा ही स्वर्ग निवास होता है ।१५। इसकी ऐसी अद्भुत महिमा है कि यदि इसकी स्मृति भी कोई कर लेवे तो स्मरण मात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाया करता है । यह सभी क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र है और सब तीर्थों का निकेतन है ।१६। कुछ मुनिगण तो इन तीर्थों में स्नान करके सदा ही शिव का यजन करते हुए सिद्धि की कामना वाले यहाँ पर निवास किया करते थे ।१७। जो मनुष्य काम और क्रोध से रहित होकर मत्सरता को त्याग कर उसमें निवास किया करते हैं वे थोड़े ही समय में सिद्धि को प्राप्त

कर लिया करते हैं ।१८। मन्त्रों के जाप करने तथा हवन करने में जो निरत रहते हुए परम शान्त-नियत तथा ब्रह्मचर्य पालन करने वाले इसमें निवास करते हैं वे भी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लिया करते हैं ।१९। हे नृप ! दान-होम-जप और पितृगण तथा देवगण एवं द्विजों का अर्चन आदि सभी धार्मिक कृत्यों का फल इसमें करने से अन्य स्थल से करोड़ों गुना अधिक हुआ करता है ।२०। अति पावन उस क्षेत्र के समुद्र के जल में निमग्न हो जाने पर जो मुनिगण अपने महान तप से युक्त थे और वहाँ पर निवास किया करते थे वे पर्वत पर चले गये थे ।२१।

सह्यं शिखरिणं श्रेष्ठं निलयार्थं समारुहन् ।
वसंतस्तत्र ते सर्वे संप्रधार्य परस्परम् ॥२२
महेंद्राद्रौ तपस्यंतं रामं गन्तुं प्रचक्रमुः ।
राजोवाच–
अगस्त्यपीततोयेऽब्धौ परितो राजनंदनैः ॥२३
खात्वाधः पातिते क्षेत्रे सतीर्थाश्रमकानने ।
भूभागेषु तथान्येषु पुरग्रामाकरादिषु ॥२४
विनाशितेषु देशेषु समुद्रोपांतवर्त्तिषु ।
किमकार्षुर्मुनिश्रेष्ठ जनास्तन्निलयास्ततः ॥२५
तत्रैव चावसन्कृच्छ्रात्प्रस्थितान्यत्र वा ततः ।
कियता चैव कालेन संपूर्णोऽभूदपां निधिः ।
केन वापि प्रकारेण ब्रह्मन्नेतद्वदस्व मे ॥२६
जैमिनिरुवाच–
अनूपेषु प्रदेशेषु नाशितेषु दुरात्मभिः ॥२७
जनास्तन्निलयाः सर्वे संप्रयाता इतस्ततः ।
तत्रैव चावसन्कृच्छ्रात्केचित्क्षेत्रनिवासिनः ॥२८

उन्होंने परम श्रेष्ठ सह्य पर्वत पर निवास के लिए समारोहण किया था । वहाँ पर ही सब निवास करने लगे थे और उन्होंने परस्पर में निश्चय किया था ।२२। महेन्द्र पर्वत पर जो राम तपस्या कर रहे थे वहाँ पर गमन

करने का उन्होंने उपक्रम किया था। राजा ने कहा—जब अगस्त्य मुनि ने समुद्र के जल का पान कर लिया था और सभी ओर सगर पुत्रों ने उसका खनन किया था तथा सभी तीर्थ-क्षेत्र और कानन नीचे की ओर गिरा दिये गये थे और अन्य पुरग्राम तथा आकर आदि भू भाग एवं देश विनाशित हो गये थे जो भी समुद्र के समीप में विद्यमान थे हे मुनिश्रेष्ठ ! वहाँ पर पतरों वाले मनुष्यों ने फिर क्या किया था ? ।२३-२५। वे सब वहीं पर बस गये थे अथवा बड़ी कठिनाई से कहीं अन्य स्थलों में प्रस्थान कर गये थे ? फिर कितने समय में यह समुद्र परिपूर्ण हो गया था ? हे ब्रह्मन् ! यह किस प्रकार से सब हुआ था—यह आप अब कृपया मुझे बतलाइये ।२६। जैमिनि मुनि ने कहा--जब दुरात्माओं के द्वारा सभी अनूप प्रदेश नष्ट कर दिये गये थे तब वहाँ पर रहने वाले सभी जन इधर-उधर प्रयाण कर गये थे। कुछ क्षेत्र के निवासी बड़ी कठिनाई से वहीं पर निवास करने लगे थे ।२७-२८।

एतस्मिन्नेव काले तु राजन्नंशुमतः सुतः ।
वभूव भुवि धर्मात्मा दिलीप इति विश्रुतः ।।२६
राज्येऽभिविच्य तं सम्यग्भुक्तभोगोऽशुमान्नृपः ।
वनं जगाम मेधावी तपसे धृतमानसः ।।३०
दिलीपस्तु ततः श्रीमानशेषां पृथिवीमिमाम् ।
पालयामास धर्मेण विजित्य सकलानरीम् ।।३१
भगीरथो नाम सुतस्तस्यासील्लोकविश्रुतः ।
सर्वधर्मार्थकुशलः श्रीमानमितविक्रमः ।।३२
राज्येऽभिषिच्य तं राजा दिलीपोऽपि वनं ययौ ।
स चापि पालयन्नुर्वी सम्यग्विहतकंटकाम् ।।३३
मुमुदे विविधैर्भोगैर्दिवि देवपतिर्यथा ।
स शुश्रावात्मनः पूर्व पूर्वजानां महीपतिः ।।३४
निरये पतनं घोरं विप्रकोपसमुद्भवम् ।
ब्रह्मदंडहतान्सर्वान्पितृन्श्रुत्वाऽतिदुःखितः ।।३५

इसी समय में हे राजन् ! अंशुमान का सुत परम धर्मात्मा दिलीप —इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। अर्थात् दिलीप ने भूमि में जन्म ग्रहण

किया था ।२६। समस्त सांसारिक भोगों के उपभोग करने वाले अंशुमान नृप ने राज्यासन पर उस अपने पुत्र को अभिषिक्त करा दिया था और मेधा सम्पन्न वह तपश्चर्या करने का संकल्प मन में करके वन में चला गया था ।३०। फिर श्री सम्पन्न राजा दिलीप ने समस्त शत्रुओं को परास्त करके इस सम्पूर्ण भूमि का परिपालन धर्म पूर्वक किया था ।३१। इस दिलीप का पुत्र भगीरथ हुआ था। जो लोक में परम प्रख्यात था सभी धर्म-अर्थ में महाकुशल और श्रीमान् अपरिमित बल-विक्रम से समन्वित था ।३२। वह दिलीप भी अवसर आने पर राज्यासन पर भगीरथ का अभिषेक कराकर वन में गमन कर गया था। उस भागीरथ ने भी भूमि का परिपालन अच्छी तरह से किया था और उसने भूमि के सभी कण्टकों को हत कर दिया था ।३३। स्वर्गलोक में देवाधीश्वर की ही भाँति नाना प्रकार भोगों का उपभोग करके परम प्रसन्न हुआ था। उस राजा ने पहिले अपने पूर्वजों की जो दशा हुई थी उसका पूरा वृत्तान्त सुन लिया था ।३४। विप्र के कोप से महान घोर नरक में पूर्वजों का पतन हुआ है और उसके सभी पितृगण ब्रह्मदण्ड से मारे गये हैं—यह सब सुनकर उसको बहुत अधिक दुःख हुआ था ।३५।

राज्ये बंधुषु भोगे वा निर्वेदं परमं ययौ ।
स मंत्रि बरे राज्यं विन्यस्य तपसे बनम् ।।३६

प्रययौ स्वपितृन्नाकं निनीयुर्नृपसत्तम ।
तपसा महता पूर्वमायुषे कमलोद्भवम् ।।३७

आराध्य तस्माल्लेभे च यावदायुर्निजेप्सितम् ।
ततो गंगां महाराज समाराध्य प्रसाद्य च ।।३८

वरमागमनं वव्रे दिवस्तस्वा महीं प्रति ।
ततस्तां शिरसा धत्तुं तपसाऽऽराधयच्छिवम् ।।३९

स चापि तद्वरं तस्मै प्रददौ भक्तवत्सलः ।
मेरोर्मूर्ध्नस्ततो गंगां पतंती शिरसात्मनः ।।४०

सग्राहनक्रमकरां जग्राह जगतां पतिः ।
सा तच्छिरः समासाद्य महावेगप्रवाहिनी ।।४१

तज्जटामंडले शुभ्रे विलिल्ये साऽतिगह्वरे ।
चुलकोदकवच्छंभोर्विलीनां शिरसि प्रभोः ।।४२

फिर तो राजा भगीरथ को उस विशाल अपने राज्य में—बन्धु-बान्धवों में तथा सुखोपभोगों में परम वैराग्य उत्पन्न हो गया था अर्थात् उसे कुछ भी नहीं सुहाता था और सबको उसने निस्सार ही समझ लिया था । उसने फिर अपने एक परमश्रेष्ठ मन्त्री को राज्य शासन का भार सौंप दिया था और तप करने के लिए वन में चला गया था ।३६। उसकी उत्कट इच्छा यही थी कि वह श्रेष्ठ नृप अपने पितरों को नरक की घोर यातना से मुक्त कर स्वर्ग वासी बना देवे । सर्वप्रथम उसने महान तप के द्वारा आयु के द्वारा आयु के लिए ब्रह्माजी की समाराधना की थी ।३७। उनकी आराधना से भगीरथ ने अपनी अभीष्ट आयु प्राप्त करली थी । फिर हे महाराज ! गङ्गा की आराधना की थी और गङ्गा को अपने ऊपर प्रसन्न कर लिया था ।३८। भगीरथने स्वर्ग से गङ्गा का भूमि पर समागमन करने का वरदान प्राप्त किया था । फिर उस स्वर्ग से समापतन करने वाली गंगा की विशाल धारा को अपने शिर पर धारण करने की कृपा करें—इसलिए शिव की आराधना तप द्वारा की थी । क्योंकि अन्य किसी की भी ऐसी शक्ति नहीं थी जो गंगा के वेग को सह सके ।३९। शिव भी भक्तों पर कृपा करने वाले हैं । उन्होंने भी यह वरदान दे दिया था । मेरु पर्वत की शिखर से समापतन करती हुई गंगा देवी को अपने शिर पर जगतों के स्वामी ने ग्रहण किया था जिसमें बड़े-बड़े ग्रह-नक्र और मकर आदि सभी जल के जीव विद्यमान थे । वह गंगा उनके शिर पर सम्प्राप्त हुई थी जिसमें महान् प्रवाह का वेग विद्यमान था ।४०-४१। किन्तु वह गंगा अति गहन परम शुभ शिव के जटाजूटों का मण्डल था उसमें ही विलीन हो गयी थी । प्रभु शम्भु के शिर में वह ऐसे ही विलीन हो गयी थी जैसे एक चुल्लू जल विहीन हो जाया करता है ।४२।

विलोक्य तत्प्रमोक्षाय पुनराराधयद्धरम् ।
स तां शर्वप्रसादेन लब्ध्वा तु भुवमागताम् ।।४३
आनिन्ये सागरा दग्धा यत्र तां वै दिशं प्रति ।
साऽनुव्रजंती राजानं राजर्षेर्यजतः पथि ।।
तद्यज्ञवाटमखिलं प्लावयामास सर्वतः ।

स तु राजऋषिः संक्रुद्धो यज्ञवाटेऽखिले तथा ।।४५
मग्ने गंडूषजलवत्स पपौ तामशेषतः ।
मग्ने गंडूषजलवत्स पपौ तामशेषतः ।
अतंद्रितो वर्षशतं शुश्रूषित्वा स तं पुनः ।।४६
तस्मात्प्रसन्नान्नृपतिर्लेभे गंगां महात्मनः ।
उषित्वा सुचिरं तस्य निसृता जठरात्ततः ।।४७
प्रथितं जाह्नवीत्यस्यास्ततो नामाभवद्भुवि ।
भगीरथानुगा भूत्वा तत्पितृणामशेषतः ।।४८
निजांभसाऽस्थिभस्मानि सिषेच सुरनिम्नगा ।
ततस्तदंभसा सिक्तेष्वस्थिभस्मसु तत्क्षणात् ।।४९

राजा भगीरथ ने जब ऐसा देखा तो उस गङ्गा देवी के प्रमोक्षण के लिये पुनः भगवान् शङ्कर की आराधना की थी। फिर भगवान् शिव के प्रसाद से राजा भगीरथ ने गङ्गा को भूमि पर लाने का कार्य सम्पन्न किया था।४३। राजा भगीरथ उस गङ्गा को उसी दिशा की ओर लाये थे जहाँ पर सगर सुत दग्ध हुए थे। वह गंगा राजा भगीरथ के पीछे ही अनुगमन कर रही थी कि उसके मार्ग में एक राजर्षि यज्ञ का यजन कर रहे थे।४४। गंगा देवी ने उसके यज्ञ स्थल को सभी ओर से पूर्णतया प्लावित कर दिया वह राजर्षि बहुत ही अधिक क्रुद्ध हो गया था जबकि गंगा के द्वारा उसका सब यज्ञ वाट निमग्न हो गया था। उस राजर्षि ने एक कुल्ली के ही समान उस सम्पूर्ण गंगा का पान कर लिया था। फिर बहुत ही सावधान होकर भगीरथ ने सौ वर्षों तक उस राजर्षि की शुश्रूषा की थी।४५-४६। फिर जब वह राजर्षि प्रसन्न हुए तो भगीरथ ने उन महान् आत्मा वाले से गङ्गा की प्राप्ति की थी। बहुत समय पर्यन्त निवास करके फिर उनके जटा से गंगा निकली थी। इसीलिए सभी से जह्नु के उदर से निकलने से ही उनका भूमण्डल में जाह्नवी—यह नाम प्रख्यात हो गया था। फिर भागीरथ के पीछे अनुगमन करने वाली होकर उसके समस्त पितरों का उसने उद्धार कर दिया था।४७-४८। फिर सुर नदी ने अपने परम पुनीत जल से सगर सुतों की अस्थियों और भस्म का सेवन किया था। गंगा जल के सेचन होने पर जो उनकी अस्थियाँ और भस्म पर हुआ था उसी क्षण में उन सबका उद्धार हो गया था।४९।

निरयात्सागराः सर्वे नष्टपापा दिवं ययुः ।
एवं सा सागरान्सर्वान्दिवं नीत्वा महानदी ॥५०
तेनैव मार्गेण जवात्प्रयाता पूर्वसागरम् ।
मेरोर्मूर्ध्नश्चतुर्भेदा भूत्वा याता चतुर्दिशम् ॥५१
चतुर्भेदतया चाभूत्तस्या नाम्नां चतुष्टयम् ।
सीता चालकनंदा च सुचक्षुर्भद्रवत्यपि ॥५२
अगस्त्यपीतसलिलाच्चिरं शुष्कोदका अपि ।
गंगांभसा पुनः पूर्णाश्चत्वारोंऽबुधयोऽभवन् ॥५३
पूर्यमाणे समुद्रे तु सागरैः परिवर्द्धिते ।
अंतर्हिताऽभवन्देशा बहवस्तत्समीपगाः ॥५४
समुद्रोपांतवर्त्तीनि क्षेत्राणि च समंततः ।
इतस्ततः प्रयाताश्च जनास्तन्निलया नृप ॥५५
गोकर्णमिति च क्षेत्रं पूर्वं प्रोक्तं तु यत्तव ।
अर्णवोपान्तवर्त्तित्वात्समुद्रेंऽतर्द्धिमागमत् ॥५६
ततस्तन्निलयाः सर्वे तदुद्धाराभिकांक्षिणः ।
सह्याद्रेर्भृगुशार्दूलं द्रष्टुकामा ययुर्नृप ॥५७

नरकों में जो घोर यातना पा रहे थे वे सभी सगर के पुत्र समस्त पापों के नष्ट होने से नरक से उसी क्षण में स्वर्ग लोक में चले गये थे। इस रीति से उस महा नदी ने सब सगर सुतों को स्वर्ग में पहुँचा कर फिर बहन करने लगी थी ।५०। उसी मार्ग से बड़े वेग से उसने पूर्व सागर की ओर प्रयाण किया था। मेरु पर्वत के मस्तक से चार भेद होकर वह चारों दिशाओं में गमन कर गयी थी ।५१। उसके चार भेद होने से उसके नाम भी चार हो गये थे। वे नाम में हैं—सीता—अलक नन्दा— सुचक्षु और भद्रवती ये चार नाम हुए हैं।५२। अगस्त्य मुनि के द्वारा जल पीये जाने पर बहुत समय तक जल के शुष्क ही जाने वाले चारों समुद्र भी गंगा के जल से पुनः परिपूर्ण जल वाले हो गये थे ।५३। समुद्र के पूरित होने पर और सगर सुतों के द्वारा परिवर्द्धित हो जाने पर उसके समीप में स्थित बहुत से

देश थे वे सब लुप्त हो गये थे अर्थात् समुद्र में लीन हो गये थे ।५४। समुद्र के समीप में रहने वाले समस्त क्षेत्र सभी ओर से निमग्न हो गये थे और हे नृप ! वहाँ पर जो भी जन निवास करते थे वे सभी इधर-उधर चले गये थे ।५५। गोकर्ण नाम वाला क्षेत्र है जिसके विषय में पूर्व में ही आपसे कहा गया था । वह समुद्र के ही समीप में विद्यमान होने से समुद्र के ही अन्दर में छिप गया था ।५६। इसके अनन्तर उसके विनाश करने वाले सब उसके उद्धार की आकाङ्क्षा वाले थे और सह्य अद्रि पर भृगुशार्दूल की देखने की इच्छा वाले हे नृप ! वे सब वहाँ गये थे ।५७।

———

गान्धर्व मूर्छना लक्षण

सूत उवाच—

विसर्गं मनुपुत्राणां विस्तरेण निबोधत ।
पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां निशि तत्क्षये ।।१
शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनस्य महात्मनः ।
करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ।।२
सहस्रं क्षत्रियगणो विक्रांतः संबभूव ह ।
नाभागो दिष्टपुत्रस्तु विद्वानासीद्भलंदनः ।।३
भलंदनस्य पुत्रोऽभूत्प्रांशुर्नाममहाबलः ।
प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिसमो नृपः ।।४
संवर्तेन दिवं नीतः समुहृत्सहबांधवः ।
विवादोऽत्र महानासीत्संवर्त्तस्य वृहस्पतेः ।।५
ऋद्धिं दृष्ट्वा तु यज्ञस्य क्रुद्धस्तस्य वृहस्पतिः ।
संवर्त्तेन तते यज्ञे चुकोप स भृशं तदा ।।६
लोकानां स हि नाशाय दैवतैर्हि प्रसादितः ।
मरुत्तश्चक्रवर्त्ती स नरिष्यंतमवासवान् ।।७

श्री सूतजी ने कहा—अब आप मनु के पुत्रों का विसर्ग विस्तार के साथ समझ लीजिए । पृषध्र रात्रि में गुरुदेव की गौ की हिंसा करके उसके क्षय होने पर महात्मा च्यवन के शाप से शूद्रता को प्राप्त हो गया था । करुष

के कारुष क्षत्रिय हुए थे जो युद्ध करने में दुर्मद थे ।१-२। यह एक सहस्र क्षत्रियों का समुदाय था जो बहुत ही अधिक विक्रान्त हुआ था दिष्ट पुत्र नाभाग था और भलन्दन विद्वान था ।३। इस भलन्दन का पुत्र महान् बलवान् प्रांशु नाम वाला हुआ था । प्रांशु का एक ही पुत्र हुआ था जो नृप प्रजापति के ही समान था ।४। उसको सुहृत् और बान्धवों के साथ संवर्त्त के द्वारा स्वर्ग में ले जाया गया था । इस विषय में संवर्त्त का और बृहस्पति का बड़ा भारी विवाद हुआ था ।५। उसके यज्ञ की ऋद्धि का अवलोकन करके बृहस्पति क्रुद्ध हो गये थे । संवर्त्त के द्वारा यज्ञ के विस्तृत होने पर उस समय में वह अत्यधिक कुपित हो गया था ।६। लोकों के विनाश करने के लिए देवगणों के द्वारा वह प्रसन्न किया था । मरुत चक्रवर्त्ती उसने नरिष्यन्त को बसाया था ।७।

नरिष्यंतस्य दायादो राजा दंडधरो दमः ।
तस्य पुत्रस्तु विज्ञातो राजाऽसीद्राष्ट्रवर्द्धनः ॥८
सुधृतिस्तस्य पुत्रस्तु नरः सुधृतितः पुनः ।
केवलस्य पुत्रस्तु बंधुमान्केवलात्मजः ॥९
अथ बंधुमतः पुत्रो धर्मात्मा वेगवान्नृप ।
बुधो वेगवतः पुत्रस्तृणबिंदुर्बुधात्मजः ॥१०
त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये संबभूव ह ।
कन्या तु तस्येडविडा माता विश्रवसो हि सा ॥११
पुत्रो योऽस्य विशालोऽभूद्राजा परमधार्मिकः ।
दाश्वान्प्रख्यातवीर्य्यौजा विशाला येन निर्मिता ॥१२
विशालस्य सुतो राजा हेमचन्द्रो महाबलः ।
सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरः ॥१३
सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुतः ।
धूम्राश्वतनयो विद्वान्सृंजयः समपद्यत ॥१४

नरिष्यन्त का दायाद दण्डधर राजा दम था । उसका पुत्र परम विज्ञान राष्ट्र वर्धन राजा हुआ था ।८। उसका पुत्र सुधृति हुआ था और फिर सुधृति से नर पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था । केवल का पुत्र तो एक

केवलात्मज बन्धुमान् हुआ था ।९। हे नृप ! फिर बन्धुमान् के यहाँ धर्मात्मा बेगवान् ने पुत्र के रूप में जन्म धारण किया था । बेगवान् का पुत्र बुध हुआ था और बुध का पुत्र तृण बन्धु उत्पन्न हुआ था ।१०। तृतीय त्रेता के मुख में राजा हुआ था । उसकी कन्या इडविडा थी जो विश्रवा की माता थी ।११। इसका पुत्र विशाल राजा हुआ था जो परम धार्मिक था । यह दाश्वान् और प्रख्यात वीर्य तथा ओज वाला था जिसने विशाल का निर्माण किया था ।१२। इस विशाल का पुत्र महाबलवान् हेमचन्द्र उत्पन्न हुआ था । इस हेमचन्द्र के अनन्तर सुचन्द्र नाम वाला विख्यात हुआ था ।१३। सुचन्द्र का पुत्र राजा धूम्राश्व हुआ था जो प्रसिद्ध था और धूम्राश्व का पुत्र परम विद्वान् सृंजय हुआ था ।१४।

सृञ्जयस्य सुतः श्रीमान्सहदेवः प्रतापवान् ।
कृशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः ।।१५
कृशाश्वस्य महातेजा सोमदत्तः प्रतापवान् ।
सोमदत्तस्य राजर्षेः सुतोऽभूज्जनमेजयः ।।१६
जनमेजयात्मजश्चैव प्रमतिर्नाम विश्रुतः ।
तृणबिंदुप्रभावेण सर्वे विशालका नृपाः ।।१७
दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः ।
शर्यातिर्मिथुनं त्वासीदानर्त्तो नाम विश्रुतः ।।१८
पुत्रः सुकन्या कन्या च भार्या या च्यवनस्य च ।
आनर्त्तस्य तु दायादो रेवो नाम सुवीर्यवान् ।।१९
आनर्त्तविषयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली ।
रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ।।२०
ज्येष्ठो भ्रातृशतस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम् ।
कन्यया सह श्रुत्वा च गांधर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ।।२१

इस सृंजय का जो पुत्र समुत्पन्न हुआ था वह श्री सम्पन्न और प्रताप वाला सहदेव था । सहदेव के पुत्र का नाम कृशाश्व था । यह भी परम धार्मिक हुआ था। ।१५। कृशाश्व का तनय सोमदत्त हुआ था जो महान तेज वाला था और परम प्रतापी था । राजर्षि सोमदत्त के यहां जनमेजय ने पुत्र

के रूप में जन्म धारण किया था ।१६। इस जनमेजय का पुत्र प्रमति नाम वाला बहुत ही प्रख्यात हुआ था । तृणबिन्दु के प्रभाव से ये सब वैशालक नृप हुए थे ।१७। ये सभी सुदीर्घ आयु वाले—महान् समुच्च आत्माओं वाले—बल—वीर्य से सुसमन्वित और बहुत ही अधिक धार्मिक वृत्ति वाले हुए थे । शर्याति के एक जोड़ा हुआ था जो आनर्त्त के नाम विश्रुत था ।१८। एक पुत्र था और एक सुकन्या नाम वाली कन्या थी जो च्यवन ऋषि की भार्या थी । उस आनर्त्त के दायको ग्रहण करने वाला पुत्र रेव नामक हुआ था जो बड़ा वीर्य वाला था ।१९। आनर्त्त का देश था जिसको कुशस्थली नाम वाली पुरी थी । रेव का पुत्र रैवत ककुद्मी नाम वाला बड़ा धार्मिक हुआ था ।२०। यह सौ भाइयों में सबसे बड़ा था । इसने ही कुशस्थली के राज्य को प्राप्त किया था । ब्रह्माजी के समीप में कन्या का श्रवण करके उसके साथ गन्धर्व ज्ञान कर लिया था ।२१।

मुहूर्त्तं देवदेवस्य मार्त्यं बहुयुगं विभो ।
आजगाम युवा चैव स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ।।२२
कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम् ।
भोजवृष्ण्यधकैर्गुप्तां वसुदेवपुरोगमैः ।।२३
तां कथां रेवतः श्रुत्वा यथातत्त्वमरिंदमः ।
कन्यां तु बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् ।
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ।।२४
रेमे रामश्च धर्मात्मा रेवत्या सहितः किल ।
तां कथामृषयः श्रुत्वा पप्रच्छुस्तदनंतरम् ।।२५
ऋषय ऊचुः—
कथं बहुयुगे काले समतीते महामते ।
न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं वा ककुद्मिनम् ।
एतच्छुश्रूषमाणान्नो गान्धर्वं वद चैव हि ।।२६
सूत उवाच—
न जरा क्षुत्पिपासे वा न च मृत्युभयं ततः ।
न च रोगः प्रभवति ब्रह्मलोकं गतस्य ह ।।२७

गांधर्वं प्रति यच्चापि पृष्टस्तु मुनिसत्तमाः ।
ततोऽहं संप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः ।।२८

हे विभो ! वह समय देवों के देव का तो एक ही मुहूर्त था और मनुष्यों का वह समय बहुत से युगों के बराबर था । फिर वह युवा यादवों के समुदायों से घिरी हुई अपनी पुरी में आ गया था ।२२। वह पुरी द्वारवती नाम वाली की गयी थी जिसमें बहुत से द्वार थे और यह परम मनोहर थी । भोज-वृष्णि और अन्धक जो यादवों के विभिन्न भेद थे जिसमें वसुदेव अग्रगामी थे—इन सबने उसकी रक्षा की थी ।२३। अरियों के दमन करने वाले रैवत ने ठीक तात्विक रूप से उस कथा का श्रवण किया और फिर उसने अपनी सुन्दर व्रत वाली रेवती नाम वाली कन्या को बलदेवजी के लिए समर्पित करके वह फिर मेरु पर्वत के शिखर तप चला गया था और वहाँ पर करने में संस्थित हो गया था ।२४। फिर बलरामजी भी जो परम धर्मात्मा थे, अपनी प्रिय पत्नी रेवती के साथ रमण किया करते थे । इस कथा को ऋषियों ने श्रवण करके इसके पश्चात उन्होंने पूछा था ।२५। ऋषियों ने कहा—हे महामते ! बहुत युगों वाले काल के व्यतीत जाने पर भी रेवती को और ककुद्मी रैवत को जरावस्था किस कारण से प्राप्त नहीं हुई थी ? इस सबके श्रवण करने की इच्छा वालों को वह गान्धर्व क्या है—यह भी बतलाने की कृपा कीजिए ।२६। श्रीसूतजी ने कहा-जो प्राणी ब्रह्म लोक में गमन कर जाया करता है उसको न तो कोई रोग ही होता है और उसको न मृत्यु का भय रहता है । वहां पर जरा और भूख प्यास भी नहीं सताया करती हैं ।२७। हे श्रेष्ठ मुनिगणो ! आपने जो मुझसे गान्धर्व के विषय में पूछा है उसको भी मैं हे सुव्रतो ! ठीक-ठीक रूप से बतलाऊँगा ।२८।

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः ।
तानाश्चैकोनपंचाशदित्येतत्स्वरमंडलम् ।।२९
षड्जर्षभौ च गांधारो मध्यमः पंचमस्तथा ।
धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादकः ।।३०
सौवीरा मध्यमा ग्रामा हरिणाश्च तथैव च ।।३१
तस्याः कालायनोपेताश्चतुर्थाशुद्धमध्यमाः ।
अग्नि च पौषा वै देव दृष्ट्वा कांच यथाक्रमः ।।३२

मध्यमग्रामिकाख्याता षड्जग्रामा निबोधत ।
उत्तरं मंद्रा रजनी तथा वाचोन्नरायताः ॥३३
मध्यषड्जा तथा चैव तथान्या चाभिमुद्गणा ।
गांधारग्रामिका श्यामा कीर्तिमाना निबोधत ॥३४
अग्निष्टोमं तु माद्यं तु द्वितीयं वाजपेयिकम् ।
यवरातसूयस्तु षष्ठवत्तु सुवर्णकम् ॥३५

सात तो स्वर होते हैं-तीन ग्राम हैं और इक्कीस मूर्च्छनाएं होती हैं। और तान उनचास हैं—यह सम्पूर्ण स्वर मण्डल होता है।२९। सात स्वरों के नाम बताये जाते हैं—षड्ज-ऋषभ-गान्धार मध्यम-धैवत और निषाद ये सात स्वर हैं।३०। सौवीरा-मध्यमा और हरिणा—ये तीन ग्राम हैं।३१। उसके कालायनोपेता चतुर्थी शुद्ध मध्यमा है। हे देव! क्रमानुसार नग्नि-पौषा और कांच ये देखकर होती हैं।३२। ये मध्य ग्रामिका कही गयी है। अब षड्ज ग्रामा को समझ लीजिए। उत्तर-मन्द्रा-रजनी और वाचोन्नारायता है।३४। तथा मध्यषड्जा है और अन्य अभिमुद्रणा होती है। गान्धारग्रामिका-श्यामा अब कीर्त्तिमाना होती है उसको समझलो।३४। अग्निष्टोम-माद्य-द्वितीय वाजयिक-यवरातसूया-षष्ठवत्-सुवर्णक है।३५।

सप्त गौसवना नाम महाव्रुष्टिकताष्टमाम् ।
ब्रह्मदानं च नवमं प्राजापत्यमनंतरम् ।
नागयक्षाश्रयं विद्वान् तद्गोत्तरस्तथैव च ॥३६
पदकांतमृगक्रांतं विष्णुक्रांतमनोहरा ।
सूर्यकांतधरेण्यैव संतकोकिलविश्रुतः ॥३७
तेनवानित्यपवशपिशाचातीवनह्यपि ।
सावित्रमर्धसावित्रं सर्वतोभद्रमेव च ॥३८
मनोहरमधाव्यं च गन्धर्वानुपतश्च यः ।
अलंबुषेमथो विष्णुवैणवरावुभौ ॥३९
सागराविजयं चैव सर्वभूतमनोहरः ।
हतोत्सृष्टो विजानीत स्कंधं तु प्रियमेव च ॥४०

मनोहरमधाव्यं च गन्धर्वानुपतश्च यः ।
अलंबुसेष्टस्य तथा नारदप्रिय एव च ॥४१
कथितो भीमसेनेन नगरातानयप्रियः ।
विकलोपनीतविनताश्रीराख्यो भार्गवप्रियः ॥४२

सप्त गोसवना और महावृष्टिकता अष्टमा है और प्रह्लादान नवम है। इसके अनन्तर प्राजापत्य है। नागयक्षाश्रय विद्वान् और तद्गोत्तर तथा है ।३६। पदक्रान्त–मृगक्रान्त–विष्णुक्रान्त–मनोहरा । सूर्यकान्त धरेण्या-सन्त कोकिलविश्रुत है तेनवानित्यपवशपिशाचा–अतीवनही–साविश्र-अर्ध सावित्र और सर्वतोभद्र है ।३७-३८। मनोहर-अधाव्य और गन्धर्वानुपत है। अलम्बु-षेष्ट-विष्णु और वैणवर ये दो हैं ।३९। सागरा विजय और सर्वभूत मनोहर-हृतोत्सृष्ट-स्कन्ध और प्रिय जान लेना चाहिए ।४०। जो मनोहर अधाव्य तथा गन्धर्वानुपत है। अलम्बुषेष्ट की और नारद प्रिय है।४१। नगरातान-प्रिय भीमसेन के द्वारा कहा गया है। विकलोपनीत विनता श्री नाम वाला भार्गव को प्रिय है ।४२।

चतुर्दश तथा पंचदशेच्छंतीह नापदः ।
ससौवीरां सुसोवीरा ब्रह्मणो ह्युपगीयते ॥४३
उत्तरादिस्वरश्चैव ब्रह्मा वै देवतास्त्रयः ।
हरिदेशसमुत्पन्ना हरिणस्याव्यजायत ॥४४
मूर्छना हरिणा ते वै चन्द्रस्यास्याधिदैवतम् ।
करोपनीता विवृतावनुद्रिः स्वरमंडले ॥४५
साकलोपनता तस्मान्मनुतस्यान्नदैवतः ।
मनुदेशाः समुत्पन्ना मूर्च्छनाशुद्धमात्मना ॥४६
तस्मात्तस्मान्मृगामार्गीमृगेंद्रोस्याधिदैवता ।
सावाश्रमसमाद्युम्ना अनेकापोरुषानखान् ॥४६
मूर्च्छनायोजना ह्येषा स्याद्रजसारजनी ततः ।
तानि उत्तरतद्रांसपद्गदैवतकं विदुः ॥४८
तस्मादुत्तरता यावत्प्रथमं स्वायमं विदुः ।
तमोदुत्तरमंद्रोयदेवतास्याध्रुवेन च ॥४९

यहाँ पर चतुर्दश और पञ्चदश की नारद इच्छा किया करते हैं? ससोवीरा और सुसोवीरा ब्रह्माजी की उपगीत की जाती हैं।४३। और उत्तरादि स्वर है। ब्रह्मा तीन देवता हैं। हरि देश में समुत्पन्ना हरिण की हुई थी।४४। जो मूर्च्छना हरिणा है वे इस चन्द्रकी अधिदैवत हैं। निवृत्ति में करोपनीत स्वरमण्डल में अनुद्रि है।४५। साकलोपनता है इसलिये मन उसका अन्नदैवत है। मनुदेशा समुत्पन्ना मूर्च्छना आत्मा से शुद्ध है।४६। इससे मृगामार्गी मृगेन्द्र इसका अधिदेवता है। वह अनेक पौरुषा नखों को समुद्गुम्ना है।४७। यह मूर्च्छना योजना रजसारजनीत से होती है। उनको उत्तरमद्रांस सपद्ग दैवत जाननी चाहिए।४८। इस कारण से जब तक उत्तरता हो तब तक इस स्वायम जानना चाहिए। इस देवता तमोदुत्तर मन्द्रोम निश्चित रूप से समझना चाहिए।४९।

अपामदुत्तरत्वावधैवतस्योत्तरायणः।
स्यादिजमूर्छनाह्येच पितरः श्राद्धदेवताः ॥५०

शुद्धषड्जस्वरं कृत्वा यस्मादग्निमहर्षयः।
उपैति तस्मान्नजानीयाच्छुद्धयच्छिकरासभाः ॥५१

इत्येता मूर्छनाः कृत्वा यस्यामीदृशभावनः।
पक्षिणां मूर्छनाः श्रुत्वा पक्षोका मूर्छनाः स्मृताः ॥५२

नागादृष्टिविषागीता नोपसर्पतिमूर्छनाः।
नानासाधारणाश्चैव वडवात्रिविदस्तथा ॥५३

अपामदुत्तरत्व होने से अवधैवत का उत्तरायण हैं। यह इजमूर्च्छना है और पितर श्राद्ध देवता होते हैं।५०। शुद्ध षड्ज स्वर करके जिससे अग्नि महर्षि हैं। इससे प्राप्त होता है अतः शुद्धयच्छिकरा सभा नहीं जाननी चाहिए।५१। ये इतनी मूर्च्छना करके जिसमें जैसा भी भाव हो। पक्षियों की मूर्च्छना का श्रवण करके पक्षी का मूर्च्छना कही गयी है। नानादृष्टि विषा गीता वडवा त्रिविद होती हैं।५२-५३।

गान्धर्व लक्षण वर्णन

पूर्वाचार्यमतं बुद्ध्वा प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।
विख्यातान्वै अलंकारांस्तन्मे निगदतः शृणु ॥१

अलंकारास्तु वक्तव्याः स्वैः स्वैर्वर्णैः प्रहेतवः ।
संस्थानयोगैश्च तथा सदा नाटयाद्यवेक्षया ॥२
वाक्यार्थपदयोगार्थैरलंकारैश्च पूरणम् ।
पदानि गीतकस्याहुः पुरस्तात्पृष्ठतोऽथ वा ॥३
स्थातोनित्रीनरो नीड्डीमनः कंठशिरस्थया ।
एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिरुत्तमः ॥४
चत्वारः प्रकृतौ वर्णाः प्रविचारश्चतुर्विधा ।
विकल्पमष्टधा चैव देवाः षोडशधा विदुः ॥५
सृष्टो वर्णः प्रसंचारी तृतीयमवरोहणम् ।
आरोहणं चतुर्थं तु वर्णं वर्णविदो विदुः ॥६
तत्रैकः संचरस्थायी संचरस्तु चरोऽभवत् ।
अवरोहणवर्णानामवरोहं विनिर्दिशेत् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—मैं अपने पूर्व में होने वाले आचार्यों के मत को समझ कर क्रम से आरम्भ से अन्त तक बताऊँगा जो भी अलंकार परम प्रसिद्ध हैं उनको मुझ से आप लोग अब श्रवण कीजिए ।१। जो अपने-अपने वर्णों से प्रकृष्ट हेतुओं वाले हैं वे ही अलंकार बताने चाहिए । और जो नाट्य आदि के अवेक्षण से संस्थान योगों से सदा समन्वित हुआ करते हैं ।२। जहाँ पर वाक्य–अर्थ–पद–योग–अर्थ और अलंकारों से पूर्ति होती है वे गीत के पद आगे अथवा पीछे कहे गये हैं ।३। स्थातोनित्रीनर-नीड्डीमनः कण्ठ और शिर में स्थित–इन तीन स्थानों में जो विधि है वही उत्तम होती है ।४। प्रकृति में चार वर्ण हैं और प्रविचार के चार-प्रकार के हैं । आठ प्रकार से विकल्प है । इसको देव १६ प्रकार का जानते हैं ।५। वर्ण प्रसंचारी सृजन किया गया है । तीसरा अवरोहण हाता है । चौथा आरोहण है—इस तरह से वर्णों के ज्ञाता वर्ण को जानते हैं ।६। वहाँ पर संचर स्थायी है और संचर तो चर होगया है । जो अवरोहण वर्ण हैं उनका अवरोह विनिर्दिष्ट करना चाहिए ।७।

आरोहणेन वारोहान्वर्णान्वर्णविदो विदुः ।
एतेषामेव वर्णानामलंकारान्निबोधत ॥८

अलंकारास्तु चत्वारस्थापनी क्रमरंजनः ।
प्रमादस्याप्रमादश्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥९
विस्वरोऽष्टकलाश्चैव स्थानं द्वयेकतरागतः ।
आवर्त्तस्याक्रमोत्वाक्षी वेकार्यां परिमाणतः ॥१०
कुमारं संपरं विद्धि द्विस्तरं वामनं गतः ।
एष वं एष चैवस्यकुतरेकः कुलाधिकः ॥११
स्वेन स्वे कातरे जातकलामग्नितरैषितः ।
तस्मिश्चैव स्वरे वृद्धिर्निष्टप्ते तद्विचक्षणः ॥१२
स्येनस्तु अपरो हस्त उत्तरः कमला कलः ।
प्रमाणघसबिंदुर्ना जायते विदुरे पुनः ॥१३
कला कार्या तु वर्णानां तदा नुः स्थापितो भवेन् ।
विपर्ययस्य रोपिस्याद्यस्य प्रादुर्घटी मम ॥१४

वर्णों के ज्ञाता विद्वद्‌गण आरोहण वर्णों को आरोहण से ज्ञात किया ज्ञात किया करते हैं। इन्हीं वर्णों के अलंकारों को समझ लीजिए ।८। अलंकार चार हैं—थापनो-क्रम-रोजन और प्रमाद का अप्रमाद—इनका लक्षण बताऊँगा ।९। विस्वर और अष्ट कला स्थान दो—एकतर में आगत-आवर्त्त का अक्रम आक्षी और परिमाण से वेकार्य हैं ।१०। कुमार को संमर समझिए और द्विस्तर वामन को गत है । यह ही एक का है फिर एक कुलाधिक कैसे होता है ।११। अपने से अपने कातर में जात कलाको अग्नितरैषित कहा है । उसका विद्वान् उसमें ही निष्टप्त स्वर मे वृद्धि समझ लेवे ।१२। स्येन तो दूसरा हाथ है और उत्तर कमलाकल होता है । फिर विदुर में प्रमाण घस बिन्दु नहीं होता है ।१३। तभी वर्णों की कला करनी चाहिए जन नुः स्थापित होवे । विपर्यय का रोगी होती है जिसको मेरी घटी कहा करते हैं ।१४।

एकोत्तरः स्वरस्तु स्यात्षड्जतः परमः स्वरः ।
अक्षेपस्कंदनाकार्यं काकस्योपचपुष्कलम ॥१५
संतारौ तौनुसर्वाभ्यौ कार्यं वा कारणं तथा ।
आक्षिप्तमवरोह्यासीत्प्रोक्षमद्यन्तथैव च ॥१६

द्वादशे च कलास्थानामेकांतरगतस्तथा ।
ऐखोल्लिखितमलकारमेव स्वरसमन्विता ॥१७
स्वरस्वरबहुग्रामकाप्रयोष्टनुपत्कला ।
प्रक्षिप्तमेव कलयाचोपादानारयो भवेत् ॥१८
द्विकथंवावथाभूत यत्रभाषितमुच्यते ।
उच्चराद्विश्वरारूढा तथायाष्टस्वरातथा ॥१९
वाप: स्यादवरोहेण नारतो भवति ध्रुवम् ।
एकांतरं च ह्येतेवैतमेवस्वरसत्तमः ॥२०
मक्षिप्रच्छेदनामाचचतुष्कलगण: स्मृत: ।
अलंकारा भवंत्येते त्रिंशद्दैवै: प्रकीर्त्तिता: ॥२१

एकोत्तर स्वर तो षड्ज से परम स्वर होता है । अक्षेप स्कन्दना कार्य काक का उपच पुष्कल है ।१५। वे दोनों अनुसर्वीय्य संतार हैं अथवा कार्य तथा कारण है । आक्षिप्त अवरोही था तथा प्रोक्षमद्य होता है ।१६। और द्वादश में कलास्थों का उसी भाँति एकान्तर गत होता है । प्रेखोल्लिखित अलंकार एक स्वर से समन्वित है ।१७। स्वर-स्वर बहु ग्राम का प्रयोष्टनुपत्कला और कला के द्वारा प्रक्षिप्त ही उपादानारय होता है ।१८। द्विकथ अथवा अवथाभूत भाषित जहाँ पर कहा जाया करता है । उच्चर से विश्वरारूढा तथा आयाष्ट स्वरा हो ।१९। अवरोहण से वाप होता है और निश्चय ही नार से होता है और एकान्तर एतैवैत ही स्वर संतय होता है । अर्थात् श्रेष्ठ स्वर होता है ।२०। और यह मक्षिप्रच्छेद नाम वाला चतुष्कल गण कहा गया है । ये अलंकार होते हैं जो देवों के द्वारा तीस कहे गये हैं ।२१।

वर्णस्थानप्रयोगेण कलामात्राप्रमाणत: ।
संस्थानं च प्रमाणं च विकारो लक्षणस्तथा ॥२२
चतुर्विधमिदं ज्ञेयमलंकारप्रयोजनम् ।
यथात्मनो ह्यलंकारो विपर्यस्तो विगर्हित: ॥२३
वर्णमेवाप्यलंकर्त्तुं विषमा ह्यात्मसंभवा: ।
नानाभरणसंयोगा यथा नार्या विभूषणम् ॥२४

वर्णस्य चैवालंकारो विभूषा ह्यात्मसंभवः ।
न पादे कुंडलं दृष्टं न कंठे रसना तथा ॥२५
एवमेवाह्यलंकारे विपर्यस्तो विगर्हितः ।
क्रियमाणोऽप्यलंकार्यो नार्गं यश्चैव दर्शयत् ॥२६
यथादृष्टस्य मार्गस्यकर्त्तव्यस्य विधीयते ।
लक्षणं पर्यवस्यापिवर्त्तिकामपिवर्त्तते ॥२७
याथातथ्येन वक्ष्यामि मासोद्भवमुखोद्भव ।
त्रयोविंशतिशीतिस्तु विज्ञातपवदैवतम् ॥२८

वर्ण स्थान प्रयोग से—कला मात्रा के प्रमाण से सस्थान–प्रमाण-और लक्षण हैं ।२२। इस तरह से चार प्रकार का यह अलंकारों का प्रयोजन समझना चाहिए । जिस प्रकार से शरीर पर विपर्यस्त अर्थात् उचित स्थान के विपरीत अलंकार विगर्हित हुआ करता है ।२३। यह वर्ण को अलंकृत करने के वास्ते हैं और आत्मा में होने वाले विषम हैं । ये नाना आभरणों के संयोग हैं जिस तरह से नारी के भूषण हुआ करते हैं ।२४। वर्ण का ही यह अलंकार आत्मा की विभूषा होते हैं । अलंकार का एक उचित स्थान होता है तभी वह अलंकारण किया करता है जैसे चरण में कभी कुण्डल नहीं देखा गया है और कण्ठ में रसना नहीं दिखाई दिया करती हैं ।२५। इसी प्रकार से अलंकार में भी विपरीतता बुरी होती है और उसमें शोभाधायकता नहीं हुआ करती है । किया हुआ भी अलंकार कोई भी शोभा नहीं दिखाता है ।२६। जिस रीति से अदृष्ट कर्तव्य मार्ग का लक्षण किया जाता है और जो पर्यवस्थ है उसका भी वर्त्तिका होती है ।२७। अब मैं यथार्थ रूप से मासोद्भव को बतलाऊँगा । त्रयोविंशति शीति अपदैवत विज्ञात है ।२८।

नगोनातुपुरस्तानुमध्यमांशस्तु पर्यवः ।
तयोर्विभागो देवानां लावण्ये मार्गसंस्थितः ॥२९
अनुषंगमयो दृष्टं स्वसारं वस्वरातर ।
विपर्ययः संवर्त्तं च सप्तस्वरपदक्रमम् ॥३०
गांधारसेतुगीयन्ते वरोमद्भगवानि च ।
पंचमं मध्यमं चैव धैवतं तु निषादतः ॥३१

षड्जर्षभश्चा जानीमो मद्रकेष्वेवनांतरे ।
द्वि द्व्यपरतु किं विद्यादद्द्यमुष्णंतिकस्य तु ॥३२
प्राकृते वैकृते चैव गांधारः संप्रयुज्यते ।
पदस्यात्ययरूपं तु सप्तरूपं तु कौशिकीम् ॥३३
गांधारस्येन कार्त्स्न्येन चायं यस्य विधिः स्मृतः ।
एष चैव क्रमोद्दिष्टो मध्यमांशस्य मध्यमः ॥३४
यानि प्रोक्तानि गीतानिवतुरूपं विशेषतः ।
ततः सप्तस्वरंकार्यंसप्तरूपं च कौशिकी ॥३५

नगोनातु पुरस्तानु मध्यमांश पर्यय होता है । उन दोनों का विभाग देवों के लावण्य में मार्ग संस्थित है ।२६। अनुषङ्गमय वस्वरातर स्वसार देखा गया है और संवर्त्त में सप्तस्वर पदक्रम विपर्यय है ।३०। गान्धार सेतु और वरो मद्भगवानि गाये जाया करते हैं और पंचम-मध्यम-धैवत निषाद से गाये जाते हैं ।३१। षड्ज और ऋषभ को हम मद्रकों में ही वनान्तर में जानते हैं । द्वि द्व्य पद तो उष्णान्तिक के द्वय को क्या जाने ।३२। प्राकृत और वैवृत में वह गान्धार ही प्रयुक्त किया जाया करता है । पद का अत्यय रूप और सप्तरूप कौशिकी का प्रयोग करते हैं ।३३। गान्धार की इन कार्त्स्न्य से यही विधि कही गयी है । यही मध्यमांश का मध्यम क्रमोद्दिष्ट है ।३४। जो भी गीत कहे गये हैं विशेष रूप से वतु रूप हैं । फिर सप्त स्वर सप्तरूप और कौशिकी करने चाहिए ।३५।

अगदर्शनमित्याहुर्मानुद्वैममके तथा ।
द्वितीयामासमात्राणाक्तिः सर्वाः प्रतिष्ठिताः ॥३६
उत्तरेवप्रकृत्येवंमाताब्राह्मतलायत ।
तथाहृतारोपिङ्केयत्रमायां निवर्त्तते ॥३७
पादेनैकेनमात्रायाः पादोनामतिवारिणः ।
संख्यापनोपहृतां वै तव पानमिति स्मृतम् ॥३८
द्वितीयपादभंगं च ग्रहे नाम प्रतिष्ठितम् ।
पूर्वमष्टतीटती न द्वितीयं चापरान्तिकैः ॥३९

पादभागसपादं तु चक्रत्यामपि सस्थितम् ।
चतुर्थमुत्तरं चैवमद्रवत्पावमद्रको ।।४०
मद्रकोदक्षिणस्यापि यथोक्ता वर्त्तते कला ।
सर्वमेवानुयोगं तु द्वितीयं बुद्धिमिष्यते ।।४१
पादौ वा हरणं चास्मात्पारं नात्र विधीयते ।
एकत्वं मनुयोगस्य द्वयोर्यद्यद्विद्वजोत्तम ।।४२
अनेकसमवायस्तु पातका हरिणा स्मृताः ।
तिसृणां चैव वृत्तीनां वृत्तौ वृत्ते च दक्षिणः ।।४३
अष्टौ तु समवायस्तु वीरा संमूर्छना तथा ।
कस्यनासुतरा चैव स्वरशाखा प्रकीर्त्तिता ।।४४

तथा भानुसौममक में अगदर्शन है—यह कहते हैं। द्वितीय मास मात्राओं से सब प्रतिष्ठित हैं।३६। इस प्रकार से प्रकृति से उत्तरा की भाँति माता ब्रह्म तलायत है। तथा हृतारोपीडक में जहाँ पर माया निवृत्त हो जाया करती है।३७। एक पाद से माया का पादोना में अति चारी होते हैं। मख्यापनोय हृत वितत्र पान—यह कहा गया है।३८। और द्वितीय पाद भङ्ग ग्रह में नाम प्रतिष्ठित है। पूर्व अष्ट तीर तोन द्वितीय अपरान्तिकों से होता है।३८-३६। पदभाग सपाद तो प्रकृति में संस्थित प्राप्त होता है। चतुर्थ उत्तर इस प्रकार से पान और मद्रक को द्रवित करता था।४०। दक्षिण की भी मद्रका यथोक्त कला होती है। सम्पूर्ण अनुयोग द्वितीय हैं जो बुद्धि को अभीष्ट किया करती है।४१। और पादों का ही आहरण होता है और यहाँ पर पार नहीं होता है। हे द्विजोत्तम! दोनों का जो-जो भी है वह अनुयोग का एकत्व है।४२। अनेकों का जो समवाय है वह पातक हरण कहे गये हैं तीनों वृत्तियों का वृत्ति में और वृत्त में दक्षिण है।४३। आठ समवाय तो तथा वीरा संमूर्च्छना होती है। कस्यना सुतरा स्वर शाखा कीर्त्तित की गयी है।४४।

आभूत संप्लव वर्णन

श्रुत्वा पादं तृतीयं तु क्रांतं सूतेन धीमता ।
ततश्चतुर्थं पप्रच्छुः पादं वै ऋषिसत्तमः ॥१
ऋषय ऊचुः—
पादः क्रांतस्तृतीयोऽयमनुषंगेण नस्त्वया ।
चतुर्थं विस्तरात्पादं संहारं परिकीर्तय ॥२
मन्वंतराणि सर्वाणि पूर्वाण्येवापरैः सह ।
सप्तर्षीणामथैतेषां सांप्रतस्यांतरे मनोः ॥३
विस्तरावयवं चैव निसर्गस्य महात्मनः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च सर्वमेव ब्रवीहि नः ॥४
सूत उवाच—
भवतां कथयिष्यामि सर्वमेतद्यथातथम् ।
पादं त्विमं ससंहारं चतुर्थं मुनिसत्तमाः ॥५
मनोर्वैवस्वतस्येमं सांप्रतस्य महात्मनः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च निसर्गं शृणुत द्विजाः ॥६
मन्वंतराणां संक्षेपं भविष्यैः सह सप्तभिः ।
प्रलयं चैव लोकानां ब्रुवतो मे निबोधत ॥७

परम धीमान् श्री सूतजी के द्वारा वर्णित तृतीय पाद का श्रवण करके परम श्रेष्ठ ऋषियों ने फिर उनसे चतुर्थ पाद के विषय में पूछा था ।१। ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! आपने हमारे समक्ष में अनुषंग से यह तीसरा पाद तो भली भाँति वर्णन करके सुना दिया है । अब आप कृपा करके चतुर्थ पाद का जो संहार हो उसका परिकीर्त्तन कीजिए ।२। पूर्व में जो सब मन्वन्तर हुए हैं तथा दूसरे जो भी मन्वन्तर हैं उन्हीं के साथ इन सप्तर्षियों का वर्णन कीजिए और वर्त्तमान समय में जो भी मन्वन्तर है उसको बतलाइए ।३। इस महान् आत्मा वाले विसर्ग का अवयवों के सहित विस्तार बतलाइए । और सभी कुछ विस्तार के साथ तथा आनुपूर्वी से अर्थात् क्रमशः आरम्भ से अन्त तक हमको बतलाइए ।४। श्री सूतजी ने कहा—मैं

आपके सामने अब सभी कुछ यथार्थता से वर्णन करूँगा। हे श्रेष्ठ मुनि-गणो ! अब मैं इस चतुर्थ पाद का संहार के सहित वर्णन करता हूँ ।५। वर्त्तमान में महात्मा वैवस्वत मनु का भी जो निसर्ग है उसका भी वर्णन विस्तार के साथ आरम्भ से अन्त तक क्रम से करूँगा। आप लोग इस सबका श्रवण करिए ।६। हे द्विजो ! सभी मन्वन्तरों का संक्षेप जो भी भविष्य में होने वाले सात मन्वन्तर हैं उनके ही साथ में वर्णन करूँगा और लोकों का जो प्रत्यय होगा उसको भी बतलाऊँगा। बता देने वाले मुझसे यह सभी भली भाँति समझ लीजिए ।७।

एतान्युक्तानि वै सम्यक्सप्तसप्त सु वै प्रजा: ।
मन्वंतराणि संक्षेपाच्छृणुतानागतानि मे ॥८
सावर्णस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ।
भविष्यस्य भविष्यं तु समासात्तन्निबोधत ॥९
अनागताश्च सप्तैव स्मृतास्त्विह महर्षय: ।
कौशिको गालवश्चैव जामदग्न्यश्च भार्गव: ॥१०
द्वैपायनो वशिष्ठश्च कृप: शारद्वतस्तथा ।
आत्रेयो दीप्तिमांश्चैव ऋष्यश्रृंगस्तु काश्यप: ॥११
भरद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महायशा: ।
एते सप्त महात्मानो भविष्या: परमर्षय: ।
सुतपाश्चामिताभाश्च सुखाश्चैव गणास्त्रय: ॥१२
तेषां गणस्तु देवानामेकैको विंशक: स्मृत: ।
नामतस्तु प्रवक्ष्यामि निबोधध्वं समाहित: ॥१३
ऋतुस्तपश्च शुक्रश्च कृतिर्नेमि: प्रभाकर: ।
प्रभासो मासकृद्धर्मस्तेजोरश्मि: क्रतुविराट् ॥१४

ये सात मन्वन्तर तो मैंने आपको बता दिये हैं और भली भाँति कह कर सुना दिये हैं। अब प्रजा सातों में जो होगी वे अनागत मन्वन्तर जो आगे आने वाले हैं उनको संक्षेप से बतलाता हूँ। आप लोग श्रवण कीजिए ।८। अब सावर्ण वैवस्वत मनु के विषय में बताऊँगा। यह भविष्य में होने

वाला है। इसका भविष्य मैं संक्षेप से कहूँगा। आप लोग समझ लीजिए ।६। जो अभी तक नहीं हुए हैं वे सब सात ही महर्षिगण कहे गये हैं। उनके परम शुभ नाम ये हैं—कौशिक—गालव—जामदग्न्य—भार्गव—द्वैपायन—वसिष्ठ—कृप—शारद्वत—आत्रेय—दीप्तिबान्—ऋष्यश्रृंग—काश्यप-भरद्वाज—द्रौणि—महायशस्वी अश्वत्थामा—ये सात महान् आत्मा वाले परमर्षिगण आगे होने वाले हैं। वे सब सुन्दर तप वाले—अपरिमित आभा से सुसम्पन्न और सुखद तीस गण हैं ।१०-१२। उन देवों का गण एक-एक विंशक कहा गया है। मैं अब उनके नाम बताते हुए कहूँगा। आप लोग बहुत ही सावधान होकर उनका श्रवण कीजिए और भली भाँति समझ लीजिए ।१३। क्रतु–तप–शुक्र–कृति–नेति–प्रभाकर–प्रभास–मासकृत्–धर्म–तेजोरश्मि–क्रतु–विराट् ।१४।

अर्चिष्मान् द्योतनो भानुर्यशः कीर्तिर्बुधो धृतिः ।।१५
विंशतिः सुतपा ह्येते नामभिः परिकीर्त्तिताः ।
प्रभुर्विभुर्विभासश्च जेता हंतारिहा ऋतुः ।।१६
सुमतिः प्रमतिर्दीप्तिः समाख्यातो महो महान् ।
देही मुनिरिनः पोष्टा समः सत्यश्च विश्रुतः ।।१७
इत्येते ह्यमिताभास्तु विंशतिः परिकीर्त्तिताः ।
दामो दानी ऋतः सोमो वित्तं वैद्यो यमो निधिः ।।१८
होमो हव्यं हुतं दानं देयं दाता तपः शमः ।
ध्रुवं स्थानं विधानं च नियमश्चेति विंशतिः ।।१९
सुखा ह्येते समाख्याताः सावर्ण्ये प्रथमेंतरे ।
मारीचस्यैव ते पुत्राः कश्यपस्य महात्मनः ।।२०
सांप्रतस्य भविष्यन्ति षष्टिर्देवास्तदन्तरे ।
सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्यंति नवैव तु ।।२१

अर्चिष्मान्—द्योतन–भानु–यश कीर्त्ति–बुध–धृति–।१५। ये सुन्दर तपों वाले हैं। इनकी विंशति है जो नाम बताकर कीर्त्तित कर दिये गये हैं। प्रभु–विभु-विभास-जेता-हंता-रिहा-क्रतु ।१६। सुमति-प्रमति-दीप्ति और महान् मह समाख्यात हुआ है। देही-मुनि-इन-पोष्टा-सम-सत्य-विश्रुत ।१७।

ये सब अमित आभा से सम्पन्न थे। इनकी भी विंशति कही गयी है अर्थात् इन बीसों का समुदाय बताया गया है। अब अन्य विंशति भी बतायी जाती है—दम-दानी–ऋत–सोम–वेद्यायम–निधि-होम-हव्य-हुत-दान-देय-दाता-तप-शम-ध्रुव-स्थान-विधान और नियम–ये विंशति होती हैं।१८-१९। ये सब सावर्ण्य मन्वन्तर में सुख बताये गये हैं। वे सब मारीच काश्यप के ही पुत्र हैं जो महान् आत्मा वाले थे।२०। इसके अन्तर में वर्त्तमान् काल के साठ देवता होंगे। सावर्णा मनु के पुत्र तो नौ ही होंगे।२१।

विरजाश्चार्वरीवांश्च निर्मोकाद्यास्तथा परे।
नव चान्येषु वक्ष्यामि सावर्णेष्वंतरेषु वै ॥२२
सावर्णमनवश्चान्ये भविष्या ब्रह्मणः सुताः।
मेरुसावर्णितस्ते वै चत्वारो दिव्यदृष्टयः ॥२३
दक्षस्य ते हि दौहित्राः क्रियाया दुहितुः सुताः।
महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः ॥२४
ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता।
महर्लोकं गता वृत्ता भविष्या मेरुमाश्रिताः ॥२५
महानुभावास्ते पूर्वं जज्ञिरे चाक्षुषेंतरे।
जज्ञिरे मनवस्ते हि भविष्यानागतांतरे ॥२६
प्राचेतसस्य दक्षस्य दौहित्रा मनवस्तु ये।
सावर्णा नामतः पंच चत्वारः परमर्षिजाः ॥२७
संज्ञापुत्रस्तु सावर्णिरेको वैवस्वतस्तथा।
ज्येष्ठः संज्ञासुतो नाम मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ॥२८

विरजा-चार्वरीवान् तथा दूसरे निर्मोक आद्य अन्य सावर्ण अन्तरों में नौ बतलाऊँगा।२२। अन्य सावर्ण मनु ब्रह्माजी के पुत्र होने वाले हैं। वे मेरु सावर्णि से लेकर चार दिव्य दृष्टि वाले हैं।२३। वे सब प्रजापति दक्ष के दौहित्र हैं और क्रिया नाम वाली उसकी दुहिता के पुत्र हैं। ये सब महान् तप से युक्त थे।२४। वे सब ब्रह्मादि के द्वारा तथा धीमान् दक्ष के द्वारा जनित हुए हैं। महर्लोक को गये थे और वृत्त भविष्य मेरु पर्वत पर समाश्रित थे।२५। वे महानुभाव पूर्व में समुत्पन्न हुए थे। जिस समय में चाक्षुष

मन्वन्तर था। वे सब मनु भविष्य अनागत अन्तर में समुत्पन्न हुए थे।२६। जो मनुगण प्राचेतस दक्ष के दौहित्र थे। वे नाम से पाँच तो सावर्ण थे और चार परमर्षि से समुत्पन्न हुए थे।२७। संज्ञा का पुत्र एक सावर्णि तथा वैवस्वत था। सबसे बड़ा संज्ञा का पुत्र प्रभु वैवस्वत मनु था।२८।

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते समुत्पत्तिस्तयोः शुभा।
चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्द्धनाः ॥२६
वेदे स्मृतौ पुराणे च सर्वे ते प्रभविष्णवः।
प्रजानां पतयः सर्वे भूतानां पतयः स्थिताः ॥३०
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना।
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः ॥३१
प्रजाभिस्तपसा चैव विस्तरस्तेषु वक्ष्यते।
चतुर्दशैते विज्ञेयाः सर्गाः स्वायंभुवादयः ॥३२
मन्वंतराधिकारेषु वर्त्तन्तेऽत्र सकृत्सकृत्।
विनिवृत्ताधिकारास्ते महर्लोकं समाश्रिताः ॥३३
समतीतास्तु ये तेषामष्टौ षट् च तथाऽपरे।
पूर्वेषु सांप्रतश्चायं शास्ति वैवस्वतः प्रभुः ॥३४
ये शिष्टास्तान्प्रवक्ष्यामि सह देवर्षिदानवैः।
सह प्रजानिसर्गेण सर्वांस्तेऽनागतान्द्विजः ॥३५

वैवस्वत मनु के अन्तर प्राप्त हो जाने पर उन दोनों की समुत्पत्ति परम शुभ हुई थी। हमने ये चौदह मनुओं का वर्णन कर दिया है जो कि परमाधिक कीर्त्ति का वर्धन करने वाले हुए हैं।२६। वेद में—स्मृति में और पुराण में वे सभी बहुत ही होनहार बताये गये हैं। ये सभी प्रजाओं के तथा प्राणियों के स्वामी हुए हैं।३०। उन्हीं नरेश्वरों के द्वारा पूरे सहस्र युगों तक यह सम्पूर्ण पृथ्वी सातों द्वीपों से समन्वित और बड़े-बड़े विशाल नगरों से युक्त परिपालन करने के योग्य है।३१। प्रजाओं के द्वारा तथा तप से जो उनका विस्तार है वह सब भी बताया जा रहा है। ये चौदह सर्ग स्वायम्भुव आदि के हैं सभी जान लेने के योग्य हैं।३२। यहाँ पर मन्वन्तरों के अधिकारों में एक-एक बार यह होता है। जब अधिकार विनिवृत्त हो जाता है

तो वे सब जाकर महर्लोक में समाश्रय वाले हो जाते हैं ।३३। उनमें जो आठ थे वे व्यतीत हो चुके थे और छै दूसरे थे । पूर्व में होने वालों में यह वर्त्तमान में होने वाला यह वैवस्वत प्रभु शासन कर रहे हैं ।३४। जो भी शिष्ट रहे हैं उनको देव-ऋषि और दानवों के ही साथ अब बतलाऊँगा । हे द्विज ! सम्पूर्ण प्रजा की सृष्टि के साथ ही उन सभी अनागतों को बतलाया जायगा अर्थात् आगे होने वाले हैं उनको कहेंगे ।३५।

वैवस्वतनिसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः ।
अनूना नातिरिक्तास्ते यस्मात्सर्वे विवस्वतः ।।३६
पुनरुक्तबहुत्वात्तु न वक्ष्ये तेषु विस्तरम् ।
मन्वन्तरेषु भाव्येषु भूतेष्वपि तथैव च ।।३७
कुले कुले निसर्गास्तु तस्माज्ज्ञेया विभागशः ।
तेषामेव हि सिद्धयर्थं विस्तरेणक्रमेण च ।।३८
दक्षस्य कन्या धर्मिष्ठा सुव्रता नाम विश्रुता ।
सर्वकन्यावरिष्ठा तु ज्येष्ठा या वीरिणीसुता ।।३९
गृहीत्वा तां पिता कन्यां जगाम ब्रह्मणोऽतिके ।
वैराजस्थमुपासीनं धर्मेण च भवेन च ।।४०
भवधर्मसमीपस्थं दक्ष ब्रह्माऽभ्यभाषत ।
दक्ष कन्या तवेयं वै जनयिष्यति सुव्रता ।।४१
चतुरो वै मनून्पुत्रांश्चातुर्वर्ण्यकराञ्छुभान् ।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा दक्षो धर्मो भवस्तदा ।।४२

वैवस्वत मनु के विसर्ग से उनका भी विस्तार जान लेना चाहिए । कारण यह है कि वे सब वैवस्वत मनुसेन तो अन्यून हैं और न उससे अतिरिक्त ही हैं ।३६। वे बहुत हैं इसलिए और उनका दूसरी बार कथन होने से उनके विषय में विस्तार नहीं कहूँगा । जो भी पहिले हो गये हैं तथा जो भविष्य में होने वाले हैं उन सभी के विषय में अधिक विस्तार नहीं कहा जायगा ।३७। इस कारण से कुल-कुल में विभाग से ही निसर्ग समझ लेने चाहिए । उन्हीं की सिद्धि के लिए विस्तार से और क्रम से कहता हूँ ।३८। प्रजापति दक्ष की कन्या बड़ी ही धर्म्मिष्ठा थी तथा उसका नाम सुव्रता

प्रसिद्ध था । समस्त कन्याओं में बहुत श्रेष्ठ ज्येष्ठा थी जो वैरिणी का सुता थी ।३६। पिता उस कन्या को लेकर ब्रह्माजी के समीप में गया था । ब्रह्माजी वैराज मे समवस्थित थे और धर्म तथा मन के द्वारा उपासीन थे ।४०। जब दक्ष भव और धर्म के समीप में स्थित थे तब उनसे ब्रह्माजी ने कहा था—हे दक्ष ! आपकी यह सुव्रत कन्य चार मनुओं को जन्म देगी जो इसके पुत्र चारों वर्णों के करने वाले परम शुभ होंगे । ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर दक्ष-धर्म और भव उस समय मे यह किया था ।४१-४२।

तां कन्यां मनसा जग्मुस्त्रयस्ते ब्रह्मणा सह ।
सत्याभिध्यायिनां तेषां सद्यः कन्या व्यजायत ।।४३
सदृशानूपतस्तेषां चतुरो वै कुमारकान् ।
संसिद्धाः कार्यकरणे संभूतास्ते श्रियान्विताः ।।४४
उपभोगासमर्थैश्च सद्योजातैः शरीरकैः ।
ते दृष्ट्वा तान्स्वयंभूतान्ब्रह्मव्याहारिणस्तदा ।।४५
सरंब्धा वै व्यकर्षंत मम पुत्रो ममेत्युत ।
अभिध्यायात्मनोत्पन्नानूचुर्वै ते परस्परम् ।।४६
यो अस्य वपुषा तुल्यो भजतां सततं सुतम् ।
यस्य यः सदृशश्चापि रूपे वीर्ये च मानतः ।।४७
तं गृह्णातु स भद्रं वो वर्णतो यस्य यः समः ।
ध्रुवं रूप पितुः पुत्रः सोऽनुरुध्यति सर्वदा ।।४८
तस्मादात्मसमः पुत्रः पितुर्मातुश्च वीर्यतः ।
एवं ते समयं कृत्वा सर्वेषां जगृहुः सुतान् ।।४९

उस समय ब्रह्माजी के साथ ही मन से उन तीनों ने उस कन्या को गमन किया था । सत्याभि ध्यायी उनकी कन्या के तुरन्त ही समुत्पन्न किया था । अर्थात् रूप से उन्हीं के सदृश चार कुमारों को जन्म दिया था वे कार्यों के करने में संसिद्ध थे तथा श्री से समन्वित हुए थे ।४५। उनके तुरन्त ही समुत्पन्न शरीर सभी उपभोगों के लिए समर्थ थे । स्वयं ही समुत्पन्न उन कुमारों को देखकर वे जो उस समय ब्रह्म के व्यापारी थे आपस में बहुत ही संरम्भ वाले होकर खींचातानी करने लगे कि यह मेरा पुत्र है—

यह मेरा पुत्र है—ऐसा ही कह रहे थे । फिर उन्होंने आपस में कहा था कि ये अभिध्यान से आत्मा से ही समुत्पन्न हैं ।४५-४६। अतएव जो भी जिसके शरीर के तुल्य हो वह उसी को अपना सुत मान लेवे । जो भी जिसके रूप-वीर्य और मात में सदृश होवे अथवा वर्ण से जो जिसके समान हो उसी को वह ग्रहण कर लेवे—इसी में आप का कल्याण है । यह तो निश्चित ही है कि पुत्र पिता के रूप को सर्वदा ग्रहण किया करता है ।४७-४८। इसलिए पिता और माता के वीर्य से पुत्र सदा आत्मा के ही समान हुआ करता है । उस प्रकार से उन्होंने समझौता करके सब सुतों का ग्रहण किया था ।४९।

चाक्षुषस्यांतरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य ह ।
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नामाभवत्सुतः ।।५०
भूत्यामुत्पादितो यस्तु भौत्यो नाम कवेः सुतः ।
वैवस्वतेऽतरे जातौ द्वौ मनू तु विवस्वतः ।।५१
वैवस्वतो मनुर्यश्च सावर्णो यश्च वै श्रुतः ।
ज्ञेयः संज्ञासुतो विद्वान्मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ।।५२
सवर्णायाः सुतश्चान्यः स्मृतो वैवस्वतो मनुः ।
सावर्णमनवो ये च चत्वारस्तु महर्षिजाः ।।५३
तपसा संभृतात्मानः स्वेषु मन्वन्तरेषु वै ।
भविष्येषु भविष्यंति सर्वकार्यार्थसाधकाः ।।५४
प्रथमे मेरुसावर्णेर्दक्षपुत्रस्य वै मनोः ।
परामरीचिगर्भाश्च सुधर्माणश्च ते त्रयः ।
संभूताश्च महात्मानः सर्वे वैवस्वतेंतरे ।।५५
दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः ।
भविष्यंति भविष्यास्तु एकैको द्वादशो गणः ।।५६

चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने पर और वैवस्त मन्वन्तर के सम्प्राप्त होने पर प्रजापति का रुचि से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम रौच्य हुआ था ।५०। जो भूति के गर्भ से उत्पन्न किया गया था उस पुत्र का नाम भौत्य हुआ था और यह कवि का पुत्र था । वैवस्वत मन्वन्तर

में विवस्वत के दो मनु उत्पन्न हुए थे ।५१। और जो वैवस्वत मन था और जो सावर्ण नाम से विश्रुत था । प्रभु वैवस्वत मनु संज्ञा का ही पुत्र जानना चाहिए । यह पर विद्वान् थे ।५२। सवर्णा का अन्य सुत था वैवस्वत मनु कहा गया है । और जो सावर्ण मनु हैं वे चार महर्षियों से जन्म ग्रहण वाले हैं ।५३। वे निश्चित रूप से तपश्चर्या से सम्भृत आत्माओं वाले हुए थे और अपने मन्वन्तरों में ही हुए थे । आगे होने वालों में सभी कार्यों के अर्थों का साधन करने वाले होंगे ।५४। प्रथम मेरु सावर्ण में दक्ष प्रजापति के पुत्र मनु के मरा मरीचि गर्भ और सुधर्माण ये तीन थे । वे सब महान् आत्माओं वाले वैवस्वत मन्वन्तर में समुत्पन्न हुए थे ।५५। वे दक्ष के पुत्र प्रजापति रोहित के पुत्र थे । जो आगे होने वाले हैं वे होंगे । एक-एक द्वादश गण हैं ।५६।

ऐश्वरश्च ग्रहो राहुर्वाकुर्वंशस्तथैव च ।
पारा द्वादश विज्ञेया उत्तरांस्तु निबोधत ।।५७
वाजिपो वाजिजिच्चैव प्रभूतिश्च ककुद्यथ ।
दधिक्रावा विषक्वश्च प्रणीतो विजतो मधुः ।।५८
उतथ्योत्तमकौ द्वौ तु द्वादशैते मरीचयः ।
सुधर्माणस्तु वक्ष्यामि नामतस्तान्निबोधत ।।५९
वणस्तथाथर्वाविश्च भुरण्यो ब्रजनोऽमितः ।
अमितो द्रवकेतुश्च जंभोऽथाजस्तु शक्रकः ।।६०
मुनेमिद्युतयश्चैव सुधर्माणः प्रकीर्तिताः ।
तेषामिन्द्रस्तदा भाव्यो ह्यद्भुतो नाम नामतः ।।६१
स्कन्दोऽसौ पार्वतीयो वै कार्तिकेयस्तु पावकिः ।
मेधातिथिश्च पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च ।।६२
ज्योतिष्मान्भार्गवश्चैव द्युतिमानंगिरास्तथा ।
वसितश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्यवाहनः ।।६३

ऐश्वर-ग्रह-राहु-वाकु-वंश- ये पारा बारह हैं जो जान लेने चाहिए । अब उत्तर जो हैं उनको भी जान लो ।५७। वाजिप-वाजिजित्-प्रभूति-ककुदी-दधिक्रावा-प्रणीत-विजय-मधु-उतथ्य-उत्तमक ये दो हैं—ये द्वादश

मरीचि हैं। सुधर्माण को बतलाऊँगा। उनको नाम से समझ लो।६८-६६। वर्ण अवगर्ज-भुरण्य-व्रजन-अभित-द्रवकेतु-जम्भ-आज-शक्रक-सुनेमि-द्युतय—ये सब सुधर्माण कीर्त्तित किये गये हैं। उस समय में उनका जो होने वाला इन्द्र है उसका नाम अद्भुत है।६०-६१। स्कन्द-पार्वतीय-कार्त्तिकेय-पावकि-मेधातिथि-पौलस्त्य-वसु-काश्यप।६२। ज्योतिष्मान्-भार्गव-द्युतिमान्-अङ्गिरा वसित-वासिष्ठ-आत्रेय-हव्य वाहन।६३।

सुतपाः पौलहश्चैव सप्तैते रोहितेतरे।
धृतिकेतुर्दीप्तिकेतुः शापहस्तनिरामयाः ॥६४
पृथुश्रवास्तथाऽनीको भूरिद्युम्नो बृहद्यशः।
प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्राः प्रकीर्तिताः ॥६५
दशमे त्वथ पर्याये धर्मपुत्रस्य वै मनोः।
द्वितीयस्य तु सावर्णेर्भाव्यस्यैवांतरे मनोः ॥६६
सुधमानो विरुद्धाश्च द्वावेव तु गणौ स्मृतौ।
दीप्तिमन्तश्च ते सर्वे शतसंख्याश्च ते समाः ॥६७
प्राणानां यच्छतं प्रोक्तं ऋषिभिः पुरुषेति वै।
देवास्ते वै भविष्यन्ति धर्मपुत्रस्य वै मनोः ॥६८
तेषामिंद्रस्तथा विद्वान्भविष्यः शांतिरुच्यते।
हविष्मान्पौलहः श्रीमान्सुकीर्तिश्चाथ भार्गवः ॥६६
आपोमूर्तिस्तथात्रेयो वसिष्ठश्चापवः स्मृतः।
पौलस्त्योऽप्रतिमश्चापि नाभागश्चैव काश्यपः ॥७०

सुतपा-पौलह—ये सात रोहितेतर हैं। धृतिकेतु-दीप्तिकेतु-शाप-हस्त निरामय।६४। पृथुश्रवा-अनीक-भूरिद्युम्न-बृहद्यश—ये प्रथम सावर्णि के नौ पुत्र बताये गये हैं।६५। इसके अनन्तर दशम पर्याय में धर्म के पुत्र द्वितीय सावर्णि मनु के जो आगे होने वाला है उस मनु के अन्तर में।६५। सुधामान और विरुद्ध—ये दो ही गण कहे गये हैं। वे सभी दीप्तिमान् थे और वे सम शत संख्या वाले थे।६७। ऋषियों ने प्राणों के शत को पुरुष—यह कहा है। वे धर्म के पुत्र मनु के देवगण होंगे।६८। उनका इन्द्र भविष्य विद्वान् हैं और

शान्ति नाम वाला कहा जाता है। हविष्मान्-पौलह-श्रीमान्-सुकीर्ति-भार्गव-आयोमूर्त्ति-आत्रेय-वसिष्ठ-अपव-पौलस्त्य-अप्रतिम-गाभाग-काश्यप।६९-७०।

अभिमन्युश्चांगिरसः सप्तैते परमर्षयः।
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्चाश्च वीर्यवान् ॥७१
शतानीको निरामित्रो बृषसेनो जयद्रथः।
भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च दशैते मानवाः स्मृताः ॥७२
एकादशे तु पर्याये सावर्णे वै तृतीयके।
निर्वाणरतयो देवाः कामगा वै मनोजवाः ॥७३
गणास्त्वेते त्रयः ख्याता देवतानां महात्मनाम्।
एकैकस्त्रिशतस्तेषां गणस्तु त्रिदिवौकसाम् ॥७४
मासस्याहानि त्रिंशत्तु यानि वै कवयो विदुः।
निर्वाणरतयो देवा रात्र्यस्तु विहंगमा ॥७५
गणस्तृतीयो यः प्रोक्तो देवतानां भविष्यति।
मनोजवा मूहूर्त्तास्तु इति देवाः प्रकीर्तिताः ॥७६
एते हि ब्रह्मण पुत्रा भविष्या मानवाः स्मृताः।
तेषामिंद्रो बृषा नाम भविष्यः सुरराट् ततः ॥७७

अभिमन्यु—आङ्गिरस—ये सात परम ऋषि अर्थात् सर्वोत्तम सात ऋषि हैं। सुक्षेत्र-उत्तमौजा-भूरिसेन-वीर्यवान्—शतानीक-निरामित्र—बृषसेन-जयद्रथ-भूरिसेन-सुवर्चा—ये दश मानव कहे गये हैं।७१-७२। एकादश पर्याय में तीसरे सावर्ण में निर्माण रति वाले देवगण हैं जो स्वेच्छा से गमन करने वाले है और मन के ही तुल्य वेग से समन्वित है।७३। महान् आत्माओं वाले देवताओं वाले देवताओं के ये तीन गण विख्यात हैं। उन स्वर्गवासियों एक-एक तीन सौ गण हैं।७४। एक मास के तीस होते हैं जिनको कविगण जानते हैं। निर्वाण (मोक्ष) में रति अर्थात् अनुराग रखने वाले हैं और रात्रियाँ तो विहङ्गम (पक्षी) हैं।७५। तीसरा गण जो कहा गया है वह देवताओं का होगा। मन के वेग और मुहूर्त्त—ये देव कीर्तित किये गये हैं।७६। ये सब ब्रह्मा जी के पुत्र होने वाले हैं जो कि मानव कहे गये हैं। फिर उनका इन्द्र बृषा नाम वाला सुरराट् होने वाला है।७७।

हविष्मान्काश्यपश्चापि वपुष्मांश्चैव भार्गवः ।।७८

आरुणिश्च तथात्रेयो वसिष्ठो नग एव च ।

पुष्टिरांगिरसो ज्ञेयः पौलस्त्यो निश्चरस्तथा ।।७९

पौलहो ह्यतितेजाश्च देवा ह्येकादशेतरे ।

सर्ववेगः सुधर्मा च देवानीकः पुरोवहः-।।८०

क्षेमधर्मा ग्रहेषुश्च आदर्शः पौंड्रको मरुः ।

सावर्णस्य तु ते पुत्राः प्राजापत्यस्य वै नव ।।८१

द्वादशे त्वथ पर्याये रुद्रपुत्रस्य वै मनोः ।

चतुर्थो रुद्रसावर्णो देवांस्तस्यांतरे शृणु ।।८२

पंचैव तु गणाः प्रोक्ता देवतानामनागशाः ।

हरिता रोहिताश्चैव देवाः सुमनसस्तथा ।।८३

सुकर्माणः सुतारश्च विद्वांश्चैव सहस्रदः ।

पर्वतोऽनुचरश्चैव अपाशुश्च मनोजवः ।।८४

उनके जो सप्त ऋषिगण होंगे वे भी बतलाये जा रहे हैं। उनको भली भाँति समझ लो। हविष्मान्-काश्यप-वपुष्मान्-भार्गव-आरुणि-आत्रेय-वसिष्ठ-नग पुष्टि-आङ्गिरस-पौलस्त्य-निश्चर--पौलह—अतितेजा—ये सब प्राजापत्य सावर्ण के नौ पुत्र हैं।८१। अब बारह वे पर्याय में रुद्र के पुत्र मनु के चतुर्थ रुद्र सावर्ण है। उसके अन्तर में जो देवगण हैं उनका भी आप लोग श्रवण कर लेवे।८२। जो अभी नहीं आगत हुए हैं वे देवताओं के पाँच ही गण कहे गये हैं। देव हारित--रोहित तथा सुमनस होते हैं।८३। सुकर्माण-सुतार-विद्वान्-सहस्रद—पर्वत-अनुचर-अपाशु-मनोजव।८४।

ऊर्जा स्वाहा स्वाधा तारा दशैते हरिताः स्मृताः ।

तपो ज्ञानी मृतिश्चैव वर्चा वंधश्च यः स्मृतः ।।८५

रजश्चैव तु राजश्च स्वर्णपादस्तथैव च ।

पुष्टिर्विधिश्च वै देवा दशैते रोहिताः स्मृताः ।।८६

तुषिताद्यास्तु ये देवास्त्रयस्त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ।
ते वै सुमनसो वेद्यान्निबोधत सुकर्मणः ॥८७

सुपर्वा वृषभः पृष्टा कपिद्युम्नविपश्चितः ।
विक्रमश्च क्रमश्चैव विभृतः कांत एव च ॥८८

एते देवाः सुकर्माणः सुतरांश्च निबोधत ।
वर्षो दिव्यस्तथांजिष्ठो वर्चस्वी द्युतिमान्कविः ॥८६

शुभो हविः कृतप्राप्तिर्व्यापृतो दशमस्तथा ।
सुतारा नामतस्त्वेते देवा वै संप्रकीर्तिताः ॥६०

तेषामिंद्रस्तु विज्ञेयो ऋतधामा महायशाः ।
द्युतिर्वशिष्ठपुत्रस्तु आत्रेयः सुतपास्तथा ॥६१

ऊर्जा–स्वाहा–स्वधा–तारा ये दश हरित कहे गये हैं तप—ज्ञानी—मृति वर्चा—जो बन्धु कहा गया है ।८५। रज–राज–स्वर्णपाद–पुष्टि और विधि ये दश देव रोहित संज्ञा वाले कहे गये हैं ।८६। जो तृषित आदि देव हैं वे तैतीस बताये गए हैं । वे सुमनस जानने के योग्य होते हैं । अब सुकर्मण संज्ञा वालों को समझलो ।८७। सुपर्वा–वृषभ–पृष्टा–कपिद्युम्न–विपश्चित्–विक्रम–क्रम–विभृत—कान्त ।८८। ये देव सुकर्माण संज्ञा वाले हैं । अब जो सुतर संज्ञक है उनको जान लीजिए । वर्ष—अंजिष्ठ—वर्चस्वी—द्युतिमान् कवि—शुभ—हवि—कृत प्राप्ति—व्यापृत-दशम—ये सब सुतार नाम वाले देवगण हैं जिनको कीर्त्तित कर दिया गया है ।८६-६०। उनका इन्द्र ऋतधामा जान लेना चाहिए जो कि महान् यश वाला है । द्युति—वसिष्ठ पुत्र—आत्रेय—सुतपा ।६१।

तपोमूर्तिस्त्वांगिरसस्तपस्वी काश्यपस्तथा ।
तपोधनश्च पौलस्त्यः पौलहश्च तपोरतिः ॥६२

भार्गवः सप्तमस्तेषां विज्ञेयस्तु तपोधृतिः ।
एते सप्तर्षयः सिद्धा अंत्ये सावर्णिकेऽनरे ॥६३

देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः ।
मित्रवान् मित्रसेनोऽथ चित्रसेनो ह्यमित्रहा ॥६४

निष्प्रकंप्यस्तथाऽत्रेयो निर्मोह· काश्यपस्तथा ।
सुतपाश्चैव वासिष्ठः सप्तते तु त्रयोदश ॥१०३
चित्रसेनो विचित्रश्च नयो धर्मो धृतो भवः ।
अनेकः क्षत्रविद्धश्च सुरसो निर्भयो दश ॥१०४
रौच्यस्यैते मनोः पुत्रा ह्यंतरे तु त्रयोदशे ।
चतुर्दशे तु पर्याये भौत्यस्याप्यंतरे मनोः ॥१०५

जो तैंतीस देव है उनको पृथक रूप से समझ लो । सुत्रामाण प्रकृष्ट रूप से यजन के योग्य होते हैं क्योंकि वे इस समय में आज्य (घृत) की आशा वाले होते हैं ।६६। सुकर्माण जो देवता हैं वे पश्चात् यजन करने वाले नामों के हैं क्योंकि वे पृषदाज्य के अशन करने वाले होते हैं । सुकर्माण देव उपयाज्य होते हैं । इस प्रकार से देवगण कीर्त्तित किए गए हैं ।१०१। उनका महान् सत्व वाला दिवस्पति इन्द्र होगा । वे पुलह के आत्मज रुचि के सुत जानने चाहिए ।१०१। अङ्गिरा ही धृति के धारण करने वाला है और वह पौलस्त्य भी अव्यय है । पौलह तत्वों का देखने वाला है तथा भार्गव उत्सुकता से रहित है ।१०२। निष्प्रकम्प्य तथा आत्रेय-निर्मोह-काश्यप-सुतपा और वसिष्ठ—ये सात हैं । ऐसे कुल तेरह हैं ।१०३। चित्रसेन–विचित्र–नय धर्म–धृत–भव–अनेक क्षत्रविद्ध–सुरस और निर्भय—ये दश हैं ।१०४। ये सब रौच्य के पुत्र हैं । जो तेरहवें अन्तर में मनु हैं। चौदहवें पर्याय में जो कि भौत्य मनु का अन्तर है ।१०५।

देवतानां गणाः पंच प्रोक्ता ये तु भविष्यति ।
चाक्षुषाश्च पवित्राश्च कनिष्ठा भ्राजितास्तथा ॥१०६
वाचावृद्धाश्च इत्येते पंच देवगणाः स्मृताः ।
निषादाद्याः स्वराः सप्त सप्त तान्विद्धि चाक्षुषान् ॥१०७
बृहदाद्यानि सामानि कनिष्ठान्सप्त तान्विदुः ।
सप्त लोकाः पवित्रास्ते भ्राजिताः सप्तसिंधवः ॥१०८
वाचावृद्धानृषीन्विद्धि मनोः स्वायंभुवस्य ये ।
सर्वे मन्वंतरेन्द्राश्च विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ॥१०६

तेजसा तपसा बुद्धया बलश्रुतपराक्रमैः ।
त्रैलोक्ये यानि सत्वानि गतिमंति ध्रुवाणि च ॥११०
सर्वशः स्वैर्गुणैस्तानि इन्द्रास्तेऽभिभवन्ति वै ।
भूतापवादिनो हृष्टा मध्यस्था भूतवादिनः ॥१११
भूताभिवादिनः शक्तास्त्रयो वेदाः प्रवादिनाम् ।
अग्नीध्रः काश्यपश्चैव पौलस्त्यो मागधश्च यः ॥११२

देवताओं के पाँच गण बताये गये हैं जो कि होंगे । चाक्षुष-पवित्र-कनिष्ठ तथा भ्राजित और वाचा वृद्ध—ये ही देवोंके पाँच गण कहे गये हैं । निषाद आदि सात स्वर है वैसे ही चाक्षुषों को भी सात समझ लो ।१०७। बृहद् आदिक साम हैं । उनको कनिष्ठ सात समझ लो । वे सात लोक पवित्र हैं वे भ्राजित सात सिन्धु हैं ।१०८। जो स्वाम्भुव मनु के ऋषि है उनको वाचा वृद्ध समझ लो । ये सभी तुल्य लक्षणों वाले मन्वन्तरों के इन्द्र जान लेने योग्य है ।१०९। तेज-तप-बुद्धि-बल-श्रुत पराक्रम के द्वारा इस त्रिभुवन में जो भी जीव गतिमान् और ध्रुव है ।११०। वे इन्द्र सभी प्रकार से अपने गुणों के द्वारा उनका अभिभव किया करते हैं। भूतापवादी हृष्ट-मध्य में स्थित और भूतवादी हैं ।१११। भूतों के अभिवादी प्रवादियों के लिए तीन वेद ही शक्ति वाले होते हैं । अग्नीध्र-काश्यप-पौलस्त्य और जो मागध है ।११२।

भार्गवो ह्यग्निबाहुश्च शुचिरांगिरसस्तथा ।
शुक्रश्चैव तु वासिष्ठः पौलहो मुक्त एव च ॥११३
आत्रेयः श्वाजितः प्रोक्तो मनुपुत्रानतः शृणु ।
उरुर्गुरुश्च गंभीरो बुद्धः शुद्धः शुचिः कृती ॥११४
ऊर्जस्वी सुबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः ।
सावर्णा मनवो ह्येते चत्वारो ब्रह्मणः सुताः ॥११५
एको वैवस्वतश्चैव सावर्णो मनुरुच्यते ।
रौच्यो भौत्यश्च यौ तौ तु मनौ पौलहभार्गवौ ।
भौत्यस्यैवाधिपत्ये तु तूर्णं कल्पस्तु पूर्यते ॥११६

सूत उवाच–

निःशेषेषु तु सर्वेषु तदा मन्वंतरेष्विह ॥११७

अंतोऽनेकयुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते ।

सप्तैते भार्गवा देवा अंते मन्वंतरे तदा ॥११८

भुक्त्वा त्रैलोक्यमध्यस्था युगाख्या ह्येकसप्ततिः ।

पितृभिर्मनुभिः सार्द्धं क्षीणे मन्वंतरे तदा ॥११९

भार्गव-अग्निबाहु-शुचि-आङ्गिरस-शुक्र-वासिष्ठ पौलह-मुक्त-आत्रेय-श्वाजित कहे गये हैं। इसके बाद में जो मनु के पुत्र हैं उसका श्रवण करो। उरु-गुरु-गम्भीर-बुद्ध-शुद्ध-शुचि-कृती-ऊर्जस्वी-सुबल-ये सब भौत्य मनु के पुत्र हैं। ये सावर्ण मनु हैं और चारों ब्रह्माजी के पुत्र हैं।११३-११५। एक वैवस्वत ही सावर्ण मनु कहा जाता है। रौच्य और भौत्य जो ये दो हैं वे पौलह और भार्गव माने गए हैं। भौत्य के ही आधिपत्य में तूर्ण कल्प पूर्ण हो जाता है।११६। श्री सूतजी ने कहा—यहाँ पर जब सभी मन्वन्तर निःशेष हो जाते हैं।११७। तब अनेक युगों के क्षीण हो जाने पर अन्त में संहार कहा जाया करता है। उस समय के अन्त में मन्वन्तर में ये सात भार्गव देव होते हैं।११८। ये त्रैलोक्य के मध्य में संस्थित हुए भोग करते हैं। युगों की आख्या एकहत्तर होती है। उस समय में पितरों और मनुओं के साथ मन्वन्तर क्षीण हो जाता है।११९।

अनाधारमिदं सर्वं त्रैलोक्यं वै भविष्यति ।

ततः स्थानानि शुभ्राणि स्थानिनां तानि वै तदा ॥१२०

प्रभ्रश्यंते विमुक्तानि तारा ऋक्षग्रहैस्तथा ।

ततस्तेषु व्यतीतेषु त्रैलोक्यस्येश्वरेष्विह ॥१२१

संप्राप्तेषु महर्लोकं यस्मिंस्ते कल्पवासिनः ।

अजिताद्या गणा यत्र आयुष्मंतश्चतुर्दश ॥१२२

मन्वंतरेषु सर्वेषु देवास्ते वै चतुर्द्दश ।

सशरीराश्च श्रूयंते जनलोके सहानुगाः ॥१२३

एवं देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जनं प्रति ।

भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरां तेषु तेषु वै ॥१२४

शून्येषु लोकस्थानेषु महान्तेषु भुवादिषु ।
देवेषु च गतेषूद्ध्वं सायुज्यं कल्पवासिनाम् ।।१२५

संहृत्य तांस्ततो ब्रह्मा देवर्षिपितृदानवान् ।
संस्थापयति वै सर्गमहर्द्दृष्ट्वा युगक्षये ।।१२६

चतुर्युगसहस्रांतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रांतां तेऽहोरात्रविदो जनाः ।।१२७

तब यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य आधार से रहित होता है । फिर जो भी स्थानीयों के परम शुभ्र स्थान हैं वे सभी नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं ।१२०। ये सभी तारे और नक्षत्र तथा ग्रहों द्वारा विमुक्त होते हुए विनष्ट हो जाया करते हैं । फिर जब ये सभी व्यतीत हो जाया करते हैं जो इन तीनों लोकों के स्वामी तथा संचलक होते हैं ।१२१। जिसमें जो भी कल्पवासी अर्थात् पूरे कल्पों तक रहने वाले हैं वे सभी महर्लोक में चले जाया करते हैं । जहाँ पर अजित आदि गण हैं और ये चौदह आयुष्मान हैं ।१२२। सभी मन्वन्तरों में देवता ये चौदह ही होते हैं । वे ऐसे सुने जाया करते हैं कि सब अपने अनुयायियों के साथ ही में शरीरों के सहित जनलोक में निवास किया करते हैं ।१२३। इस तरह से महर्लोक से जनलोक की ओर सभी देवों के व्यतीत हो जाने पर और स्थावरों के अन्त पर्यन्त सब भूतादि के अवशिष्ट होने पर ।१२४। भूलोक से लेकर महर्लोक तक जितने भी लोक स्थान हैं वे सब शून्य हो जाते हैं । सभी वेद भी कल्पवासियों के समीप में ऊपर की ओर चले जाया करते हैं ।१२५। इसके अनन्तर ब्रह्माजी उन सबका देव-ऋषि-पितृ-और दानवों का संहार करके युग क्षय में दिन को देखकर फिर सर्ग को संस्थापित किया करते हैं ।१२६। एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ी का जब अन्त हो जाता है तब ब्रह्माजी का दिन हुआ करता है और इसी रीति से एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ी का जब अन्त होता है तब ब्रह्माजी की एक रात्रि हुआ करती है । ऐसे पितामह का अहोरात्र होता है ।१२७।

नैमित्तिकः प्राकृतिको यश्चैवात्यंतिकोऽर्थंतः ।
त्रिविधिः सर्वभूतानामित्येष प्रतिसंचरः ।।१२८

ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाहः प्रसंयमः ।
प्रतिसर्गे तु भूतानां प्राकृतः करणक्षयः ।।१२९

ज्ञानाच्चात्यंतिकः प्रोक्तः कारणानामसंभवः ।
ततः संहृत्य तान्ब्रह्मा देवांस्त्रैलोक्यवासिनः ॥१३०
प्रहरांते प्रकुरुते सर्गस्य प्रलयं पुनः ।
सुषुप्सुर्भगवान्ब्रह्मा प्रजाः संहरते तदा ॥१३१
ततो युगसहस्रांते संप्राप्ते च युगक्षये ।
तत्रात्मस्थाः प्रजाः कर्तुं प्रपेदे स प्रजापतिः ॥१३२
तदा भवत्यनावृष्टिः संतता शतवार्षिकी ।
तया यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले ॥१३३

यह समस्त प्राणियों का सञ्चर तीन प्रकार का हुआ करता है—अर्थानुसार एक नैमित्तिक होता है—दूसरा प्राकृतिक है और तीसरा आत्यान्तिक होता है ।१२८। ब्रह्माजी का जो नैमित्तिक है वह प्रसंयम कल्पदाह है । प्रत्येक भूतों के सर्ग में प्राकृत करना क्षय होता है ।१२९। ज्ञान से अत्यधिक कहा गया है जहाँ पर कारणों की कोई सम्भवता नहीं होती है । इसके अनन्तर ब्रह्माजो उन समस्त त्रैलोक्य के निवासी देवों का संहार किया करते हैं ।१३०। फिर प्रहर के अन्त में सर्ग का प्रलय किया करते हैं । भगवान् ब्रह्माजी जब शयन करने की इच्छा वाले होते हैं उसी समय में समस्त प्रजाओं का संहार किया करते हैं ।१३१। फिर चारों युगों की एक सहस्र चौकड़ो का अन्त हो जाता है और युगों का क्षय प्राप्त होता है उस काल में वही प्रजापति समस्त प्रजाओं को अपनी ही आत्मा में स्थित करने के लिए समुद्यत हो जाया करते हैं । उस समय में जो महान् प्रजाओं का संहार होता है उसका आरम्भ इस तरह से हुआ करता है कि सबसे पूर्व तो वर्षा का एकदम निरन्तर रहने वाला अभाव सौ वर्षों तक होता है । उस समय में जल के एकदम सर्वथा न रहने दो जो बहुत अल्प सार वाले जीव हैं और इस पृथ्वी तल में निवास करते हैं वे सभी नष्ट हो जाया करते हैं ।१३२-१३३।

तान्येवात्र प्रलीयंते भूमित्वमुपयांति च ।
सप्तरश्मिरथो भूत्वा उदतिष्ठद्विभावसुः ॥१३४
असह्यरश्मिर्भगवान्पिबत्यंभो गभस्तिभिः ।
हरिता रश्मयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्ततिः ॥१३५

भूय एव विवर्त्तन्तो व्यापनुवंतोबरं शनैः ।
भौमं काष्ठेंधनं तेजो भृशमद्भिस्तु दीपयते ।।१३६
तस्मादुदकभृत्सूर्यस्तपतीति हि कथ्यते ।
नावृष्ट्या तपते सूर्य्यो नावृष्ट्या परिषिच्यते ।।१३७
नावृष्टया परिविश्येत वारिणा दीपयते रविः ।
तस्मादपः पिबन्यो वै दीपयते रविरंबरे ।।१३८
तस्य ते रश्मयः सप्त पिबंत्यंभो महार्णवात् ।
तेनाहारेण संदीप्ताः सूर्याः सप्त भवंत्युत ।।१३९
ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्यभूताश्चतुर्दिशम् ।
चतुर्लोकमिमं सर्वं दहंति शिखिनस्तदा ।।१४०

उस जलाभाव में वे ही जीव प्रलीन होकर भूमि में मिल जाया करते हैं। फिर सूर्यदेव सात रश्मियों वाले होकर अर्थात् सात गुने तेजस्वी होकर उदित हुआ करते हैं।१३४। उस समय में सूर्य भगवान् न सहन करने के योग्य किरणों वाले हो जाया करते हैं और वे अपनी किरणों से भूमि गत सम्पूर्ण जल को पी जाया करते हैं। उस सूर्य को संप्तति हरित रश्मियाँ दीप्यमान हो जाती हैं।१३५। फिर नभोमण्डल को व्याप्त करती हुई धीरे बढ़ती हैं। भूमि का काष्ठेन्धन बहुत ही तेज युक्त होकर दीप्त होता है जो जल के ही कारण से हो जाता है।१३६। इसी कारण से जल के भरने वाला सूर्य तपता है—यही कहा जाया करता है। सूर्य अवृष्टि से नहीं तपा करता है और अवृष्टि से सूर्य परिषिक्त भी नहीं होता है।१३७। अवृष्टि से सूर्य परिवृष्ट नहीं होता है प्रत्युत जल के ही द्वारा रवि दीप्त हुआ करता है। इसी कारण से जो जलों का पान करता रहता है वही रवि अम्बर में दीप्त हुआ करता है।१३८। उस सूर्य की सात रश्मियाँ (किरणें) महा सागर से जल का पान किया करती हैं। उसी आहार से सात सूर्य प्रदीप्त होते हैं। ।१३९। इसके अनन्तर वे रश्मियाँ चारों दिशाओं मे सात सूर्यों के समान होती हुई उस समय में वे अग्नियाँ इन चारों लोकों को दग्ध किया करती हैं।१४०।

प्राप्नुवंति च ताभिस्तु ह्यूर्द्ध्वं चाधश्च रश्मिभिः ।
दीप्यंते भास्कराः सप्त युगांताग्निप्रतापिनः ।।१४१

ते वारिणा प्रदीप्ताश्च बहुसाहस्ररश्मयः ।
स्वं समावृत्य तिष्ठंति निर्दहंतो वसुंधराम् ॥१४२

ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुन्धरा ।
साद्रिनद्यर्णवा पृथ्वी निस्नेहा समपद्यत ॥१४३

दीप्तिभिः संतताभिश्च चित्राभिश्च समंततः ।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् च संरुद्धा सूर्यरश्मिभिः ॥१४४

सूर्याग्नीनां प्रवृद्धानां संसृष्टानां परस्परम् ।
एकत्वमुपयातानामेकज्वाला भवत्युत ॥१४५

सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निभूत्वाऽनुमंडली ।
चतुर्लोकमिदं सर्वं निर्दहत्याशुतेजसा ॥१४६

ततः प्रलीने सर्वस्मिञ्जङ्गमे स्थावरे तथा ।
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठसमा भवेत् ॥१४७

उन रश्मियों के द्वारा ऊपर की ओर तथा नीचे की ओर अग्नियाँ प्राप्त होती हैं युग के अन्त में प्रताप देने वाले सात सूर्य दीप्त हुआ करते हैं ।१४१। सहस्र रश्मियों की बाहुएँ वारि के ही द्वारा ही प्रदीप्त होती हैं। वे आकाश को समावृत करके ही सम्पूर्ण वसुन्धरा का निर्दहन करती हुईं स्थिर रहा करती हैं ।१४२। इसके पश्चात् उनके परिताप से दहन को प्राप्त होती हुई सम्पूर्ण वसुन्धरा पर्वत-नदी और समुद्रों के सहित यह पृथ्वी स्नेह (द्रव जल) से रहित हो गयी थी ।१४३। निरन्तर विद्यमान रहने वाली-सुदीप्त और विचित्रता से चारों ओर युक्त सम्पूर्ण भूमि ऊपर-नीचे और तिरछी ओर सूर्य की किरणों से संरुद्ध हो गयी थीं ।१४४। प्रवृद्ध हुई और परस्पर में संसृष्ट हुई सूर्य की अग्नियाँ एक स्वरूप को प्राप्त होकर एक ही विशाल ज्वाला हो जाती है ।१४५। वह अग्नि अनुमण्डल वाली होकर समस्त लोकों का प्रणाश किया करता है और इन चारों लोकों का सबका बहुत ही शीघ्र तेज के द्वारा निर्दहन कर देती है ।१४६। इसके अनन्तर इस सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम के प्रलीन होने पर यह समग्र पृथ्वी वृक्षों से रहित बिना तृणों वाली कछुए की पीठ के ही समान यह जैसी हो गयी थी और उस पर कुछ भी शेष नहीं रह गया था ।१४७।

अंबरीषमिवाभाति सर्वमप्यखिलं जगत् ।
सर्वमेव तदर्चिभिः पूर्णं जाज्वल्यते घनः ॥१४८

भूतले यानि सत्वानि महोदधिगतानि च ।
ततस्तानि प्रलीयंते भूमित्वमुपयांति च ॥१४६

द्वीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महोदधिः ।
सर्वं तद्भस्मसाच्चक्रे सर्वात्मा पावकस्तु सः ॥१५०

समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वशः ।
पिबत्यपः समिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन् ॥१५१

ततः संवर्द्धितः शैलानतिक्रम्य ग्रहांस्तथा ।
लोकान्संहरते दीप्तो घोरः संवर्त्तकोऽनलः ॥१५२

ततः स पृथिवीं भित्वा रसातलमशोषयत् ।
निर्दह्यांते तु पातालं वायुलोकमथादहत् ॥१५३

अधस्तात्पृथिवीं दग्ध्वा तूर्द्धं स दहतो दिवम् ।
योजनानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥१५४

यह सब जगत् उस समय में अम्बरीष के ही समान आभात होता था। और यह सम्पूर्ण उस अग्नि की अर्चियों से पूर्ण घन प्रज्वलित हो रहा था।१४८। इस भूतल में जितने भी प्राणी थे तथा महासागर में जो भी सत्व थे वे सबके सब प्रलीन हो जाते हैं और भूमि को मिट्टी में मिल जाया करते हैं।१४६। समस्त द्वीप—पर्वत—वर्ष और महासागर इन सभी को उस सर्वात्मा पावक ने जलाकर भस्म के तुल्य ही बना दिया था।१५०। इस भूमि में रहने वाला वह परमाधिक प्रदीप्त अग्नि जलता हुआ होकर समुद्रों से-नदियों से और पातालों से सभी जगह से जल का पान किया करता है। ।१५१। इसके अनन्तर वह परम घोर सम्वर्त्तक अनल अधिक सम्वर्धित होकर शैलों और ग्रहों का अतिक्रमण करके परम दीप्त होता हुआ समस्त लोकों का संहार किया करता है।१५२। इसके पश्चात् वह भीषण अनल इस पृथ्वी का भेदन करके रसातल में पहुँच कर उसका भी शोषण कर देता है। अन्त में पाताल लोक को निर्दग्ध करके फिर वायु लोक को दग्ध कर दिया था।१५३। नीचे पृथ्वी का दाह करके और ऊपर की ओर स्वर्ग लोक को

दग्ध कर दिया था। सहस्रों तथा प्रयुतों और अर्बुदों योजन पर्यन्त उस कालानल की ज्वालाएँ ऊँची उठ रही थीं।१५४।

उदतिष्ठञ्छिखास्तस्य बह्वयः संवर्त्तकस्य तु।
गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च समहोरगराक्षसान् ॥१५५
तदा दहति संदीप्तो गोलकं चैव सर्वशः।
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च महस्तथा ॥१५६
घोरो दहति कालाग्निरेवं लोकचतुष्टयम्।
व्याप्तेषु तेषु लोकेषु तिर्यगूर्द्ध्वमथाग्निना ॥१५७
तत्तेजः समनुप्राप्य कृत्स्नं जगदिदं शनैः।
अयोगुडनिभं सर्वं तदा ह्येवं प्रकाशते ॥१५८
ततो गजकुलाकारास्तडिद्भिः समलंकृताः।
उत्तिष्ठन्ति तदा घोरा व्योम्नि संवर्तका घनाः ॥१५९
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः।
केचिद्वैडूर्यसंकाशा इन्द्रनीलनिभाः परे ॥१६०
शंखकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यंजननिभास्तथा।
धूम्रवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥१६१

उस सम्वर्तक अनल की शिखाएँ बहुत सी ऊपर की ओर उठ रही थीं और वे ज्वालाएँ ऊपर में संस्थित गन्धर्वों—पिशाचों और महोरगों तथा राक्षसों को निर्दग्ध कर रही थीं।१५५। उस समय में यह संदीप्त अनल सभी ओर से गोलक को दग्ध कर देता है। भूलोक-भुवर्लोक—स्वर्लोक और महर्लोक को भी जला देता है।१५६। यह परम कालग्नि इस रीति से चारों लोकों को निर्दग्ध कर दिया करता है। तिरछा और ऊपर की ओर इस प्रकार से उन समस्त लोकों में इसके व्याप्त हो जाने पर सभी को भस्मसात् कर देता है।१५७। धीरे-धीरे यह तेज इस सम्पूर्ण जगत् में सम्प्राप्त हो जाता है। उस समय में यह सम्पूर्ण जगत् एक परमाधिक संतप्त लोहे के गोले के ही समान प्रकाशित हुआ करता है।१५८। इसके उपरान्त उस समय में नभोमंडल में हाथियों के समूह के आकार वाले विद्युल्लता से समलङ्कृत परम घोर सम्वर्त्तक मेघ उमड़ कर उठते हैं।१५९। उन मेघों

में कुछ तो नील कमलों के सदृश आकार वाले होते हैं और कुछ कुमुदों के तुल्य हुआ करते हैं। कुछ वैडूर्यमणि के समान होते हैं तो दूसरे इन्द्रनील मणि के तुल्य हुआ करते हैं।१६०। कुछ शङ्ख और कुन्द पुष्प के सदृश श्वेत होते हैं तथा कुछ जाती और अञ्जन के समान हुआ करते हैं। कुछ मेघों का वर्ण धूम्र के समान होता है तथा कुछ पयोधर पीतवर्ण वाले होते हैं।१६१।

केचिद्रासभवर्णाभा लाक्षारसनिभास्तथा ।
मनशिलाभास्त्वपरे कपोताभास्तथांबुदा: ॥१६२
इन्द्रगोपनिभा: केचिद्धरितालनिभास्तथा ।
चाषपत्रनिभा: केचिदुत्तिष्ठंति घना दिवि ॥१६३
केचित्पुरवराकारा: केचिद्गजकुलोपमा: ।
केचित्पर्वतसंकाशा: केचित्स्थलनिभा घना: ॥१६४
क्रीडागारनिभा: केचित्केचिन्मीनकुलोपमा: ।
बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिन: ॥१६५
तदा जलधरा: सर्वे पूरयंति नभस्तलम् ।
ततस्ते जलदा घोरराविणो भास्करात्मका: ॥१६६
सप्तधा संवृतात्मानस्तमग्नि शमयंत्युत ।
ततस्ते जलदा वर्षं मुंचंति च महौघवत् ॥१६७
सुघोरमशिवं सर्वं नाशयंति च पावकम् ।
प्रवृष्टैश्च तथात्यर्थं वारिणा पूर्यते जगत् ॥१६८

कुछ मेघों का वर्ण रासभ (गधा) के सदृश होता है तथा कुछ लाख के रस के सदृश हुआ करते हैं। दूसरे कुछ मैनसिल के सदृश एकदम सुर्ख होते हैं तथा कुछ कबूतरों के समान वर्णों वाले होते हैं।१६२। कुछ इन्द्र गोप के सदृश हैं तो कुछ हरिताल के समान रङ्ग वाले हुआ करते हैं। उस समय में अन्तरिक्ष में चाष के पत्रों के ही सदृश मेघ उमड़कर उठा करते हैं।१६३। कुछ घन श्रेष्ठ पुर के आकार वाले हैं तो कुछ द्विज (पक्षी) कुलों के सदृश हुआ करते हैं। कुछ धन तो उस समय में विशाल पर्वतों के समान आकार वाले होते हैं तथा कुछ ऐसे प्रतीत होते हैं मानों स्थल ही होवें।१६४। कुछ

मेघ क्रीड़ा ग्रहों के तुल्य होते हैं तो कुछ मीनों के समुद्यम के सदृश दिखलाई दिया करते हैं। उस समय में मेघों के अनेक स्वरूप दिखाई दिया करते हैं। उनका स्वरूप परमाधिक घोर होता है और वे भयङ्कर गर्जन किया करते हैं।१६५। उस समय जलधर आकर नभस्तल को एक साथ समाच्छादित कर देते हैं। इसके अनन्तर वे मेघ परम भीषण घोष किया करते हैं और भास्कर के ही स्वरूप वाले होते हैं।१६६। सात स्वरूपों में संवृत होने वाले वे मेघ उस परम घोर अग्नि का शमन कर दिया करते हैं। इसके उपरान्त वे मेघ महान् घोर मूसलाधार वर्षा किया करते हैं।१६७। परम घोर अशिव उस अग्नि का विनाश कर दिया करते हैं और अत्यधिक वर्षा के द्वारा जल से सम्पूर्ण जगत् को भर दिया करते हैं।१६८।

अद्भिस्तेजोभिभूतं च तदाग्निः प्रविशत्यपः ।
नष्टे चाग्नौ वर्षगते पयोदाः पावकोद्भवाः ॥१६९
प्लावयंतो जगत्सर्वं बृहज्जलपरिस्रवैः ।
धाराभिः पूरयंतीमं चोद्यमानाः स्वयंभुवा ॥१७०
अन्ये तु सलिलौघैस्तु वेलामभिभवन्त्यपि ।
साद्रिद्वीपांतरं पीतं जलमन्येषु तिष्ठति ॥१७१
पुनः पतति भूमौ तत्पयोधस्तान्नभस्तले ।
संवेष्टयति घोरात्मा दिवि वायुः समंततः ॥१७२
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजंगमे ।
पूर्णे युगसहस्रे वै निःशेषः कल्प उच्यते ॥१७३
अथांभसाऽऽवृते लोके प्राहुरेकार्णवं बुधाः ।
अथ भूमिर्जलं खं च वायुश्चैकार्णवे तदा ॥१७४
नष्टेऽनलेऽन्धभूते तु प्राज्ञायत न किंचन ।
पार्थिवास्त्वथ सामुद्रा आपो दैव्याश्च सर्वशः ॥१७५

उस समय में तेज से समुद्भूत वह अग्नि जलों के द्वारा परिभूरित होकर फिर जल में प्रवेश कर जाया करती है। जब वर्षा से वह अग्नि विनष्ट हो जाती है तो पयोद भी पावकोद्भव हो जाया करते हैं।१६९। विशाल जलों उप्लवों से सम्पूर्ण जगत् प्लावित कर देते हैं और स्वयम्भू के

द्वारा प्रेरित होते हुए अपनी धाराओं से इस जगत् को भर दिया करते हैं ।१७०। कुछ अन्य मेघ अपने जलों के समुदायों से वेला को भी अभिभूत कर दिया करते हैं । सातों द्वीपों के अन्दर जो भी जल था उसका पान कर लिया था और वह जल अन्यत्र स्थित था ।१७१। फिर वही जल आकाश से नीचे भूमि में गिर रहा था । उस काल में आकाश में परम घोर स्वरूप वाला वायु सभी ओर से ढक लिया करता है ।१७२। उस समय में केवल परम घोर एक समुद्र ही दिखाई दिया करता है तथा अन्य स्थावर और जंगम स्वरूप पूर्णतया विनष्ट हो जाता है । पूर्ण जब एक सहस्र युगों की चौकड़ी होती है तभी निःशेष कल्प कहा जाया करता है ।१७३। इसके अनन्तर जब जल के द्वारा यह लोक समावृत होजाता है तो बुध जन इसको एक मात्र सागर ही कहा करते हैं । इसके अनन्तर भूमि—जल—आकाश और वायु—इन सबका एक ही सागर हो जाता है ।१७४। अनल के नष्ट होने पर एकदम अन्धकार हो जाता है और उस समय में अन्य कुछ भी नहीं दिखाई देता है । पार्थिव—अर्थात् पृथ्वी के भाग तथा सामुद्र अर्थात् समुद्र के भाग ये सभी ओर से दैव्य जल ही जल दिखाई दिया करते हैं ।१७५।

असरन्त्यो व्रजंत्यैक्यं सलिलाख्यां भजन्त्युत ।
आगतागतिके चैव तदा तत्सलिलं स्मृतम् ।।१७६
प्रच्छादयति महीमेतामर्णवाख्यं तु तज्जलम् ।
आभाति यस्मात्तद्भाभिर्भा शब्दो व्याप्तिदीप्तिषु ।।१७७
भस्म सर्वमनुप्राप्य तस्मादंभो निरुच्यते ।
नानात्वे चैव शीघ्रे च धातुर्वै अर उच्यते ।।१७८
एकार्णवे तदा ह्यो वै न शीघ्रस्तेन ता नराः ।
तस्मिन्युगसहस्रांते दिवसे ब्रह्मणो गते ।।१७९
तावंतं कालमेवं तु भवत्येकार्णवं जगत् ।
तदा तु सर्वे व्यापारा निवर्त्तंते प्रजापतेः ।।१८०
एकमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे ।
तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।।१८१

सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात्सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रवाक्
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीमयो यः पुरुषो
निरुच्यते ॥१८२

इनका सरण सर्वथा नहीं होता है और सब एक रूपता को प्राप्त हो जाया करती हैं जिसका नाम सलिल ही होता है। वह आगत और आगतिक जो भी है वह सब सलिल ही कहा गया है।१७६। वह अर्णव नाम वाला जल इस समग्र पृथ्वी को प्रच्छादित कर लिया करता है। क्योंकि उसकी भाओं से वह आभात होता है। यहाँ भी शब्द व्याप्ति और दीप्ति में आया है।१७७। वह सब भस्म को अनुप्राप्त करके ही—हुआ है अतएव अम्भ कहा जाया करता है। नानात्व में और शीघ्र में अरधातु कही जाती है।१७८। उस समय में एकार्णव में कल है और शीघ्र नहीं है इसीलिए वे नरा हैं। उस एक सहस्र चारों की चौकड़ी के अन्त में ब्रह्माजी का एक दिन व्यतीत होने पर उसने काल पर्यन्त यह जगत् एकार्णव के रूप में रहता है। वह समय ऐसा होता है कि उसमें प्रजापति के सभी व्यापार अर्थात् कार्यशीलता निवृत्त हो जाते हैं।१८०। उस समय में जब सभी स्थावर और जंगम विनष्ट हो जाया करते हैं और एकमात्र अर्णव हो रहता है तो एक ही ब्रह्माजी रहा करते हैं जो अनेक नेत्रों और चरणों वाले हैं।१८१। सहस्रों मस्तकों वाले—सुन्दर मन से सम्पन्न—अनेक चरणों सहस्रों चक्षुओं से युक्त और अनेकों वाणियों वाले एवं सहस्र बाहुओं से संयुत प्रथम प्रजापति त्रयीमय है जो पुरुष—इस नाम से कहा जाया करता है अर्थात वही परम पुरुष हैं।१८२।

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः प्रथमस्तुराषाट्।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महान्वै संपठ्यते वै रजसः
परस्तात ॥१८३

चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलाप्लुते।
सुषुप्सुरप्रकाशेप्सुः स रात्रिं कुरुते प्रभुः ॥१८४

चतुर्विधा यदा शेते प्रजाः सर्वा लयं गताः।
पश्यंति तं महात्मानं कालं सप्त महर्षयः ॥१८५

एवं स लोके निर्वृत्त उपशांते प्रजापतौ ।
ब्राह्मे नैमित्तिके तस्मिन्कल्पितो वै प्रसंयमे ।।१६२
देहैर्वियोगः सत्त्वानां तस्मिन्वै कृत्स्नशः स्मृतः ।
ततो दग्धेषु भूतेषु सर्वेष्वादित्यरश्मिभिः ।।१६३
देवर्षिमनुवर्येषु तस्मिन्नंबुप्लवे तदा ।
गंधर्वादीनि सत्त्वानि पिशाचांतानि सर्वशः ।।१६४
कल्पादावप्रतप्तानि जनमेवाश्रयंति वै ।
तिर्यग्योनीनि नरके यानि यानि गतान्यपि ।।१६५
तदा तान्यपि दग्धानि धूतपापानि सर्वशः ।
जले तान्युपपद्यंते यावत्संप्लवतो जगत् ।।१६६

इसके अनन्तर सबकी रचना करने वाले महान तेजस्वी ने सब कुछ को अपनी ही आत्मा में रखकर फिर रात्रि में ही उस एकार्णव स्वरूप जल में निवास किया करता है ।१६०। फिर उस रात्रि का क्षय प्राप्त हो जाने पर प्रजापति जागते हैं और सृष्टि के सृजन करने की इच्छा से संयुत करने के लिए मन किया करते हैं ।१६१। इसी रीति से वह लोक निर्वृत्त होता है जबकि प्रजापति उपशान्त हो जाया करते हैं । वह प्रसंयम ब्राह्म और नैमित्तिक कल्पित होता है ।१६२। उसमें जीवों का अपने देहों से पूर्णतया वियोग कहा गया है । फिर सूर्य देव की परमाधिक संतप्त रश्मियों के द्वारा समस्त प्राणियों के दग्ध हो जाने पर सर्वक्षय हो जाता है ।१६३। उस जल प्लावन में उस समय में देव-ऋषि-मनुष्य-गन्धर्व-पिशाच आदि जीव सभी यहाँ से जनलोक में निवास किया करते हैं तथा नरकगामी हैं उन सबका भी विनाश हो जाया करता है ।१६४-१६५। उस समय में वे भी पापों से रहित होकर सब निर्दग्ध हो जाया करते हैं और वे सभी जब तक यह सम्पूर्ण जगत जलमय रहता है जल में ही निमग्न हो जाया करते हैं अर्थात् जल ही के रूप में पहते हैं ।१६६।

व्युष्टायां च रजन्यां तु ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनितः ।
जायन्ते हि पुनस्तानि सर्वभूतानि कृत्स्नशः ।।१६७
ऋषयो मनवो देवाः प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ।

तेषामपि च सिद्धानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ॥१९८
यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमने स्मृते ।
तथा जन्मनिरोधश्च भूतानामिह दृश्यते ॥१९९
आभूतसंप्लवात्तस्माद्भवः संसार उच्यते ।
यथा सर्वाणि भूतानां जायन्ते वर्षणेष्विह ॥२००
स्थावरादीनि नियमात्कल्पे कल्पे तथा प्रजाः ।
यथार्त्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्यये ॥२०१
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्माहुरात्रिषु ।
प्रत्याहारे विसर्गे च गतिमंति ध्रुवाणि च ॥२०२
निष्क्रमन्ते विशंते च प्रजाः काले प्रजापतिम् ।
ब्रह्माणं सर्वभूतानि महायोगं महेश्वरम् ॥२०३

जिस समय में यह महानिशा नष्ट हो जाती है तब अव्यक्त योनि वाले ब्रह्मा से वे सभी भूत पूर्ण रूप से फिर समुत्पन्न हो जाया करते हैं ।१९७। ऋषिगण-मनुगण-देवगण और सब चारों प्रकार की प्रजा और उन्हीं सिद्धों की निधनोत्पत्ति कही जाया करती हैं ।१९८। जिस प्रकार से इस लोक में सूर्यदेव के उदय और अस्तमन कहे गये हैं उसी तरह से इन समस्त प्राणियों का जन्म और निरोध भी हुआ करता है जो कि सबको दिखाई दिया करता है । आत्मा तो नित्य है, उसका शरीर से वियोग ही निधन और संयोग जन्म कहा जाया करता है ।१९९। उस समस्त प्राणियों की जल निमग्नता से उत्पन्न हो जाना ही संसार कहा जाया करता है । जैसे वर्षा होने पर यहाँ पर सब भूतों के साहित्य समुत्पन्न हुआ करते हैं ।२००। स्थावर आदि सब प्रत्येक कल्प में तथा समस्त प्रजा जैसे ऋतु काल में सभी ऋतु के चिह्न नाना रूप वाले हो जाया करते हैं और बदल जाते हैं वैसे ही सब समुत्पन्न होते हैं ।२०१। जिस तरह से ब्रह्मा के दिन और रात्रि में हैं वही सबके सब दिखलाई दिया करते हैं । जब प्रत्याहरण होता है और विसर्ग होता है । उस समय में सभी निश्चित रूप से गतिमान् हुआ करते हैं ।२०२। समय के समुपस्थित हो जाने पर अपने ही आप ये सब प्रजाजन प्रजापति में प्रवेश और निष्क्रमण किया करते हैं । समस्त भूत ब्रह्माजी में

तथा महेश्वर में महायोग किया करते हैं अर्थात् सृजन काल में ब्रह्माजी में तथा संहरण काल में महेश्वर में इन सबका महान योग होता है।२०३।

स सृष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ।
व्यक्तोऽव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥२०४
येनैव सृष्टाः प्रथमं प्रयाता आपो हि मार्गेण महीतलेऽस्मिन् ।
पूर्वं प्रयातेन यथात्वथापस्तेनैव तेनैव तु स्वर्व्रजंति ॥२०५
यथा शुभेन त्वशुभेन चैव तत्रैव विवर्त्तमानाः ।
मर्त्यास्तु देहांतरभावितत्वाद्रवेर्वशादूर्ध्वमधश्चरंति ॥२०६
ये चापि देवा मनवः प्रजेशा अन्येऽपि ये स्वर्गगताश्च सिद्धाः ।
तद्भाविताः ख्यातिवशाच्च धर्म्याः पुनर्विसर्गेण
भवन्ति सत्त्वाः ॥२०७
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि कालमाभूतसंलवम् ।
मन्वन्तराणि यानि स्युर्व्याख्यातानि मया द्विजाः ॥२०८
सह प्रजानिसर्गेण सह देवैश्चतुर्दश ।
सा युगाख्या सहस्रं तु सर्वाण्येवांतराणि वै ॥२०९
अस्याः सहस्रे द्वे पूर्णे विशेषः कल्प उच्यते ।
एतद्ब्राह्ममहर्ज्ञेयं तस्य संख्यां निबोधत: ॥२१०

कल्पों के आदि काल में बार-बार समस्त प्राणियों का वही सृजन करने वाला हुआ करता है। महादेव का स्वरूप व्यक्त और अव्यक्त है और उसी का यह सम्पूर्ण जगत हुआ करता है।२०४। जिसके ही द्वारा ये सर्व प्रथम सृष्ट हुए हैं वे जल समग्र इसी महीतल में मार्ग के द्वारा चले गये हैं। जैसे पूर्व में यह गमन कर गये हैं उसी मार्ग से फिर भी स्वर्ग में चले जाते हैं।२०५। जो भी उनका कर्म शुभ अथवा अशुभ होता है उसी के अनुसार वे वहाँ-वहाँ अन्य देहों में स्थित रहते हुए सूर्य के वंश में रहकर ऊर्ध्व में अर्थात् देवलोक में और अधोभाग में अर्थात् नरकों में सञ्चरण किया करते हैं।२०६। और जो भी देवगण और मनुगण हैं—प्रवेश और अन्य भी जो स्वर्ग में गये हुए सिद्ध है वे सब उसी से होने वाले तथा ख्याति के वश होने से धर्म से युक्त होते हुए प्राणी फिर विसर्ग के द्वारा हुआ

करते हैं ।२०७। इसके आगे आभूत संप्लव अर्थात् समस्त प्राणियों को जल-मग्न हो जाना मैं उस काल के विषय में वर्णन करूँगा । हे द्विजो ! जो-जो भी मन्वन्तर होते हैं। उन सबको मैंने बतला ही दिया है ।२०८। प्रजाओं के निसर्ग और देवों के साथ चतुर्दश होते हैं। वह सहस्र युगाख्या है उसी में सभी अन्तर होते हैं ।२०९। इस युगाख्या के जब पूर्ण हो सहस्र होते हैं तब विशेष कल्प कहा जाया करता है । यही ब्रह्माजी का दिन समझना चाहिए। उसकी संख्या को भी समझ लो ।२१०।

निमेषतुल्यमात्रा हि कृता लब्धक्षणेन तु ।
मानुषाक्षिनिमेषास्तु काष्ठा पंचदश स्मृताः ।।२११
नव क्षणस्तु पंचैव विंशत्काष्ठा तु ते त्रयः ।
प्रस्था सप्तोदकाश्चैव साधिकास्तु लवः स्मृतः ।।२१२
लवास्त्रिंशत्कला ज्ञेया मुहूर्त्तस्त्रिंशतः कलाः ।
मुहूर्त्तास्तु पुनस्त्रिंशदहोरात्रमिति स्थितिः ।।२१३
अहोरात्रं कलानां तु अधिकानि शतानि षट् ।
ताश्चैव संख्यया ज्ञेयाश्चंद्रादित्यगतिर्यथा ।।२१४
निमेषा दश पंचैवं काष्ठास्तास्त्रिंशतः कला ।
त्रिंशत्कला मुहूर्त्तं तु दशभागं कला स्मृतम् ।।२१५
चत्वारिंशत्कलाः पंच मुहूर्त्ता इति संज्ञितः ।
मुहूर्त्ताश्च लवाश्चापि प्रमाणज्ञैः प्रकल्पिताः ।।२१६
तथानेनांभसश्चापि पलान्यथ त्रयोदश ।
मागधेनैव मानेन जलप्रस्थो विधीयते ।।२१७

क्षण के लाभ से निमेष की मात्रा होती है। मनुष्य की आँखों की पलकें जो चलती हैं उसी काल को निमेष कहा जाता है। ऐसे पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा होती है । नौ और पाँच क्षण ही बीस काष्ठा है । वे तीन तथा साधिक सात प्रस्थोदक लव कहा गया है ।२११-२१२। तीस लव की एक कला होती है और तीस कला का—एक मुहूर्त्त होता है । यही स्थिति हुआ करती है ।२१३। कलाओं का अहोरात्र साधिक शत और छै है । वे ही संख्या से जैसी चन्द्र और सूर्य की गति होती है जान लेनी

चाहिए ।२१४। पन्द्रह निमेष काष्ठा है और तीस काष्ठाओं की कला होती है। तीस कला का मुहूर्त्त होता है। दशभाग ही कला कहा गया है ।१२५। चालीस कलाओं के पाँच मुहूर्त्त संज्ञा होती है। ये मुहूर्त्त और लव प्रमाणों के ज्ञाताओं के द्वारा कल्पित किये हैं। उसी भाँति से इसके द्वारा जल के भी तरह पल होते हैं। मागध मान से भी जल प्रस्थ किया जाता है। २१६-२१७।

एते वाराप्लुतप्रस्थाश्चत्वारो नालिकोच्चयः ।
हेममाषैः कृतच्छिद्रश्चतुर्भिश्चतुरंगुलैः ।।२१८
समाहनि च रात्री च मुहूर्त्ता वै द्विनालिकाः ।
रवेर्गतिविशेषेण सर्वेष्वेतेषु नित्यशः ।।२१९
अधिकं षट्शतं यच्च कलानां प्रविधीयते ।
तदहर्मानुषं ज्ञेयं नाक्षत्रं तु दशाधिकम् ।२२०
सावनेन तु मानेन अब्दोऽयं मानुषः स्मृत ।
एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रविनिश्चयः ।।२२१
अह्नानेन तु या संख्या मासर्त्वयनवार्षिकी ।
तदा बद्धमिदं ज्ञानं संज्ञया ह्युपलक्षितम् ।।२२२
कलानां तु परीमाणं कला इत्यभिधीयते ।
यदहो ब्रह्मणः प्रोक्तः दिव्या कोटी तु सा स्मृतः ।२२३
शतानां च सहस्राणि दशद्विगुणितानि च ।
नवतिं च सहस्राणि तथैवान्यानि यानि तु ।।२२४

ये धारा प्लुत प्रस्थ नालिकोच्चय चार हैं। चार अंगुल चार हेम-माषों से कृतच्छिद्र है ।२१८। सम दिन में और रात्रि में द्विजालि का मुहूर्त्त होते हैं। नित्य ही इन सबों में रवि की गति विशेष से होते हैं ।२१९। और अधिक छै सौ कलाओं का प्रविधान किया जाता है। वह मनुष्यों का दिन समझना चाहिए और जो नक्षत्र है वह दशाधिक होता है ।२२१। इस दिन से जो संख्या होती है वह मास-ऋतु-अयन और वर्ष की होती है। उस समय में यह बद्धज्ञान संज्ञा के द्वारा उपलक्षित होता है ।२२२। कलाओं का जो परिमाण है वह कला—इस नाम से कहा जाया करता है। जो ब्रह्माजी

का दिन कहा गया है वह दिव्य कोटी कही गयी है ।२२३। शतों के सहस्र दश ही से गुणित होते हैं नब्बे सहस्र और उसी भाँति जो अन्य हैं ।२२४।

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयो विस्मयं परमाद्भुतम् ।
संख्यासंभजनं ज्ञानमपृच्छन्सुतरां तदा ॥२२५

ऋषयु ऊचु–
संप्रकालनमानं तु मानुषेणैव सम्मतम् ।
मानेन श्रोतुमिच्छामः संक्षेपार्थपदाक्षरम् ॥२२६
तेषां श्रुत्वा स देवस्तु वायुर्लोकहिते रतः ।
संक्षेपाद्दिव्यचक्षुष्ट्वात्प्रोवाच वचनं प्रभुः ॥२२७
एते रात्र्यहनी पूर्वं कीर्तिते त्विह लौकिके ।
तासां संख्याथ वर्षाग्रं ब्राह्मे वक्ष्याम्यहः क्षये ॥२२८
कोटीशतानि चत्वारि वर्षाणि मानुषाणि तु ।
द्वात्रिंशच्च तथा कोट्यः संख्याताः संख्यया द्विजैः ॥२२९
तथा शतसहस्राणि एकोननवतिः पुनः ।
अशीतिश्च सहस्राणि एष कालः प्लवस्य तु ॥२३०
मानुषाख्येन संख्यातः कालो ह्याभूतसंप्लवः ।
सप्तसूर्यप्रदग्धेषु तदा लोकेषु तेषु वै ।
महाभूतेषु लीयंते प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ॥२३१

समस्त ऋषियों ने जब यह सुना तो उनको बहुत ही अधिक आश्चर्य हुआ था। उस समय में पुनः इस संख्या के संभजन के ज्ञान को पूछा था ।२२५। ऋषियों ने कहा—यह संप्रकालन का ज्ञान मनुष्यों के द्वारा ही सम्मत होता है। अब हम लोग मान के द्वारा संक्षेपार्थ पदाक्षर को श्रवण करने की इच्छा करते हैं ।२२६। उनके इस वचन को सुनकर लोगों के हित में रति रखने वाले वायु देव ने जो प्रभु दिव्य चक्षु वाले थे यह वचन बोले ।२२७। वे रात और दिन जो कि लौकिक होते हैं और यहाँ पर माने जाते हैं और यहाँ पर माने जाते हैं वे तो अपने पूर्व में ही वर्णन कर दिए हैं। उनकी संख्या और इसके पश्चात् वर्षाग्र ब्राह्म क्षय में बताऊँगा ।२२८।

चार सौ करोड़ मानवों के वर्ष तथा बत्तीस करोड़ द्विजों के द्वारा संख्या से संख्यात हैं ।२२९। उसी भाँति एक सौ सहस्र और फिर उन्यासी अस्सो सहस्र यह उस महान् प्लव का काल होता है ।२३०। यह आभूत संप्लव का काल मानुष नामक संख्या से गिनकर बताया गया है । जिसमें समस्त प्राणियों का संक्षय होकर सर्वत्र जल ही जल हो जाता है उसी को आभूत संप्लव कहा जाया करता है । सात सूर्यों के द्वारा उस समय में उन लोकों के प्रदग्ध होने पर चारों प्रकार की सम्पूर्ण प्रजा महाभूतों में लीन हो जाया करती है । जरायुज—स्वेदज—अण्डज और उद्भिज—ये प्रजा के चार प्रकार होते हैं ।२३१।

सलिलेनाप्लुते लोके नष्टे स्थावरजंगमे ।।२३२
विनिवृत्ते च संहारे उपशान्ते प्रजापतौ ।
निरालोके प्रदग्धे तु नैशेन तमसा वृते ।।२३३
ईश्वराधिष्ठिते त्वस्मिस्तदा ह्येकार्णवे किल ।
तावदेकार्णवे ज्ञेयं यावदासीदहः प्रभोः ।।२३४
रात्रिस्तु सलिलावस्था निवृत्तौ वाप्यहः स्मृतम् ।
अहोरात्रस्तथैवास्य क्रमेण परिवर्तते ।।२३५
आभूतसंप्लवो ह्येष अहोरात्रः स्मृतः प्रभोः ।
त्रैलोक्ये यानि सत्वानि गतिमंति ध्रुवाणि च ।।२३६
आभूतेभ्यः प्रलीयंते तस्मादाभूतसंप्लवः ।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताः प्रजाः ।।२३७
दिव्यसंख्या प्रसंख्याता अपरार्धगुणीकृताः ।
परार्द्धं द्विगुणं चापि परमायुः प्रकीर्तितम् ।।२३८

उस समय में सम्पूर्ण लोक जल से समाप्लुत होकर नष्ट हो जाया करता है और सभी स्थावर तथा जङ्गम विनष्ट हो जाया करते हैं ।२३२। समग्र संहार के समीप हो जाने पर और प्रजापति के उपशान्त होने पर तथा सर्वत्र प्रकाश से रहित एवं दग्ध तथा रात्रि के अन्धकार से आवृत होने पर ।२३३। उस समय में यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वर के द्वारा ही अधिष्ठित था और सवत्र एक ही अर्णव था । यह तब तक एकार्णव का स्वरूप था जब

उसी को दिन कहा गया है। इसी रीति से इनका अहोरात्र क्रम से परिवर्त्तित हुआ करता है।२३५। यह आभूत संप्लव प्रभु का अहोरात्र कहा गया है। इन तीनों लोकों में जो भी प्राणी हैं वे सभी गतिमान् और ध्रुव हैं।२३६। जितने भी भूत हैं वे सभी प्रलीन होते हैं इसी कारण से इसका नाम आभूत संप्लव होता है। जो व्यतीत हो चुके हैं—जो भी वर्त्तमान हैं और जो प्रजा अनागत हैं और अपरार्ध से गुणी वृत हैं। परार्ध द्विगुण है और यही परम आयु कीर्तित की गयी है।२३७-२३८।

एतावान्स्थितिकालस्तु ह्यजस्येह प्रजापतेः ।
स्थित्यंतं प्रतिसर्गश्च ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।२३९
यथा वायुप्रगेन दीपार्चिरुपशाम्यति ।
तथैव प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति ।।२४०
तथा स्वप्रतिसंसृष्टे महादादौ महेश्वरे ।
महत्प्रलीयते व्यक्तो गुणसाम्यं ततो भवेत् ।।२४१
इत्येष वः समाख्यातो मया ह्याभूतसंप्लवः ।
ब्रह्मनैमित्तिको ह्येष संप्रक्षालनसंयमः ।
समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्णयामि वः ।।२४२
य इदं धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।
कीर्त्तयेद्वर्णयेद्वापि महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ।।२४३

उस अजन्मा प्रजापति का इतना ही स्थिति का काल होता है। उस परमेष्ठी ब्रह्माजी का स्थिति का अन्त और प्रति सर्ग होता है।२३९। जिस प्रकार से वायु के प्रवेग से दीप की शिखा उपशान्त हो जाया करते हैं।२४० उसी भाँति महदादि महेश्वर के अपने प्रति संसृष्ट होने पर महिमा है। जो भी कोई इसको नित्य धारण किया करता है अथवा इसका बारम्बार श्रवण किया करता है अथवा इसका कीर्त्तन किया करता है या वर्णन करता है वह मानव बड़ी भारी सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।२४३।

—×—

।। प्रतिसर्ग वर्णन ।।

सूत उवाच–

प्रत्याहारं प्रवक्ष्यामि परस्यांते स्वयंभुवः ।
ब्रह्मणः स्थितिकाले तु क्षीणे तस्मिंस्तदा प्रभोः ।।१
यथेदं कुरुते व्यक्तं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः ।
अव्यक्तं ग्रसते व्यक्तं प्रत्याहारे च कृत्स्नशः ।।२
पुरांतद्व्यणुकाद्यानां संपूर्णे कल्पसंक्षये ।
उपस्थिते महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु कस्याचित् ।।३
अंते द्रुमस्य संप्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तदा ।
अंते कलियुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते ।।४
संम्प्राप्ते तदा वृत्तें प्रत्याहारे ह्युपस्थिते ।
प्रत्याहारे तदा तस्मिन्भूततन्मात्रसंक्षये ।।५
महदादिविकारस्य विशेषांतस्य संक्षये ।
स्वभावकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते संचरे ।।६
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् ।
आत्तगंधा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ।।७

श्री सूतजी ने कहा—पर के अन्त में स्वयंम्भू का प्रत्याहार मैं कहूँगा। प्रभु ब्रह्म के स्थिति के काल में और उस समय में उसके क्षीण हो जाने पर।१। जैसे ईश्वर इस सुसूक्ष्म व्यक्त विश्व की रचना करता है। प्रत्याहार के समय में इस अव्यक्त को व्यक्त ग्रस लिया करता है और पूर्णतया यह ग्रस्त हो जाता है।२। पुरान्त द्वयणुक आदि का सम्पूर्ण कल्प संक्षय होने पर।३। अन्त में उस समय में पश्चिम द्रुम मनु के सम्प्राप्त होने पर अन्त में उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर संहार कहा जाता है।४। उस समय में वृत्त के सक्षाल होने पर और प्रत्याहार के उपस्थित होने पर उस काल में प्रत्याहार में भूतों और तन्मात्राओं का संक्षय हो जाता है।५। महत् तत्व आदि जो प्रकृति के विकार हैं विशेषान्त पर्यन्त सबका संक्षय हो जाता है। यह सभी कुछ स्वभाव से ही किया जाता है तब वह प्रति सञ्चर

प्रवृत होता है ।६। सर्व प्रथम जल भूमि का जो विशेष गुण गन्ध है उसको ग्रस लिया करते हैं। इसके अनन्तर गन्ध हीन भूमि प्रलय को ही प्राप्त हो जाया करती है ।७।

प्रणष्टे गंधतन्मात्रे तोयावस्था धरा भवेत् ।
आपस्तदा प्रविष्टास्तु वेगवत्यो महास्वनाः ।।८
सर्वमापूरयित्वेदं तिष्ठंति विचरंति च ।
अपामपि गणो यस्तु ज्योतिः ष्वालीयते रसः ।।९
नश्यंत्यापस्तदा तत्र रसतन्मात्रसंक्षयात् ।
तीव्रतेजोहृतरसा ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवंत्युत ।।१०
ग्रस्ते च सलिले तेजः सर्वतोमुखमीक्षते ।
अथाग्निः सर्वतो व्याप्त आदत्ते तज्जलं तदा ।।११
सर्वमापूर्यतोऽर्चिभिस्तदा जगदिदं शनैः ।
अर्चिभिः संतते तस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधस्ततः ।।१२
ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुरत्ति प्रकाशकम् ।
प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपार्चिरिव मारुते ।।१३
प्रणष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसुः ।
उपशाम्यति तेजो हि वायुराधूयते महान् ।।१४

गन्ध की तन्मात्रा जब प्रणष्ट हो जाती है तो यह समस्त पृथ्वी जल की ही अवस्था वाली हो जाया करती है और भूमि का अस्तित्व ही सर्वथा लुप्त हो जाता है। उस समय में यह जल बड़े भीषण घोष और वेग से समन्वित होकर प्रविष्ट हो जाया करते हैं ।८। ये जल सबको आपूरित करके ही स्थित हो जाया करते हैं तथा विचरण किया करते हैं। फिर जल का जो विशेष गुण रस है वह तेज में लीन हो जाता है ।९। जब रस की तन्मात्रा का विनाश हो जाता करता है। तेज की तीव्रता से जल के रस के अपहृत हो जाने पर वह जल तेज के ही स्वरूप को प्राप्त हो जाया करता है ।१०। तेज के द्वारा जल के ग्रस्त हो जाने पर वही तेज सभी ओर दिखाई दिया करता है। इसके पश्चात् सभी ओर व्याप्त हुआ अग्नि उस समय में

उस जल को अपने ही स्वरूप ले लेता है ।११। धीरे-धीरे यह सब जगत् अग्नि (तेज) की ज्वालाओं से सम्पूरित हो जाता है। वे सब अर्चियाँ ऊपर-नीचे और तिरछी ओर सवत्र व्याप्त हो जाती हैं।१२। इस तेज का विशेष गुण रूप होता है जो कि इसका प्रकाश करने वाला है। इस रूप को वायु भक्षण कर जाता है। उस समय में वह तेज की ज्वालाओं वायु में दीप की शिखा के ही समान प्रलीन हो जाया करती है। जब रूप की तन्मात्रा विनष्ट हो जाती है तो वह अग्नि रूप से रहित हो जाता है। तेज तो फिर उपशान्त हो जाता है और केवल वायु ही महान् स्वरूप को धारण करके धूम धाम से सर्वत्र वहन किया करता है ।१३-१४।

निरालोके तदा लोके वायुभूते च तेजसि ।
ततस्तु मूलमासाद्य वायुः संबंधमात्मनः ।।१५
ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश ।
वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते च तत् ।।१६
प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम् ।
अरूपमरसस्पर्शमगंधं न च मूर्तिमत् ।।१७
सर्वमापूरयच्छब्दैः सुमहत्तत्प्रकाशते ।
तस्मिँल्लीने तदा शिष्टमाकाशं शब्दलक्षणम् ।।१८
शब्दमात्रं तदाऽकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति ।
तत्र शब्दं गुणं तस्य भूतादिर्ग्रसते पुनः ।।१९
भूतेंद्रियेषु युगपद्भूतादौ संस्थितेषु वै ।
अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः ।।२०
भूतादिर्ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः ।
महानात्मा तु विज्ञेयः संकल्पो व्यवसायकः ।।२१

तेज को जब वायु ने ग्रस लिया था तो प्रकाशक रूप के अभाव होने से लोक में आलोक सर्वथा नहीं रहा था क्योंकि तेज तो वायु के ही रूप में लीन हो गया था। इसके पश्चात् वायु अपने सम्बन्ध भूत को प्राप्त करके ।१५। वह वायु ऊपर नीचे और इधर-उधर सर्वत्र दश दिशाओं में प्रकम्पित किया करता है। इस वायु का विशेष गुण स्पर्श होता है उस स्पर्श को

आकाश ग्रस लिया करता है ।१६। उस समय में वायु भी अस्तित्व खोकर प्रशान्त हो जाता है और केवल आकाश ही अनावृत होकर स्थित रहा करता है । न तो इसके रूप है और न रस–स्पर्श–गन्ध तथा मूर्त्ति हैं । ऐसा आकाश रहा करता है ।१७। आकाश का विशेष गुण शब्द है । वह इसी से सबको पूरित करके बहुत विशाल दिखाई देता है । तात्पर्य यही है कि इसी का अस्तित्व होता है । वायु में भी लीन होने पर केवल अवशिष्ट आकाश ही होता है जिसका लक्षण ही शब्द होता है ।१८। उस समय में केवल शब्द ही जिसमें शेष रह गया था ऐसा आकाश सबको ढककर स्थित था । वहाँ पर जो उसका गुण शब्द था उसको भूतादि ग्रस लेते हैं ।१६। भूतेन्द्रियों में एक साथ भूतादि के संस्थित होने पर यह अभिमान के ही स्वरूप वाला भूतादि तमस कहा गया है ।२०। बुद्धि के लक्षण वाला यह महान् भूतादि का ग्रसन कर लेता है, महान् के स्वरूप वाला यह व्यवसाय करने वाला सङ्कल्प ही समझ लेना चाहिए ।२१।

बुद्धिर्मनश्च लिगं च महानक्षर एव च ।
पर्यायवाचकैः शब्दैस्तमाहुस्तत्त्वचिंतकाः ।।२२

संप्रलीनेषु भूतेषु गुणसाम्ये ततो महान् ।
लीयंते गुणसाम्यं तु स्वात्मप्येवावतिष्ठते ।।२३
लीयंते सर्वभूतानां कारणानि प्रसंगमे ।
इत्येष संयमश्चैव तत्त्वानां कारणैः सह ।।२४

तत्त्वप्रसंयमो ह्येष स्मृतो ह्यावर्तको द्विजाः ।
धर्माधर्मे तपो ज्ञानं शुभं सत्यानृते तथा ।।२५
ऊर्ध्वभावो ह्यधोभावः सुखदुःखे प्रियाप्रिये ।
सर्वमेतत्प्रपंचस्थं गुणमात्रात्मकं स्मृतम् ।।२६

निरिन्द्रियाणां च तदा ज्ञानिनां तच्छुभाशुभम् ।
प्रकृत्यां चैव तत्सर्वं पुण्यं पापं प्रतिष्ठति ।।२७

यात्यवस्था तु स चैव देहिनां तु निरुच्यते ।
जंतूना पापपुण्यं तु प्रकृतौ यत्प्रतिष्ठितम् ।।२८

जो तत्वों का चिन्तन करने वाले महा मनीषी हैं वे उसको बुद्धि-मन-लिङ्ग-महान् और अक्षर—इन पर्याय वाचक शब्दों के द्वारा कहा करते हैं ।२२। जब ये सब भूतादिक भली भाँति से प्रलीन हो जाया करते हैं तब गुणों की (सत्त्व-राज-तम) समता हो जाती है और उस में वह गुणों का साम्य लीन हो जाता है तथा अपने ही स्वरूप में अवस्थित रहा करता है ।२३। समस्त भूतों के कारण प्रसङ्ग में लीन हो जाया करते हैं । यही तत्त्वों का कारणों के साथ संयम होता है ।२४। हे द्विजो ! यह तत्त्वों का प्रसंयम आवर्त्तक कहा गया है । धर्म और अधर्म, शुभ ज्ञान, सत्य और मिथ्या—ऊर्ध्वभाव और अधोभाव—सुख और दुःख–प्रिय और अप्रिय—यह सभी कुछ प्रपञ्च में स्थित गुणमात्र के स्वरूप वाला कहा गया है ।२५-२६। बिना इन्द्रियों वाले ज्ञानियों का उस समय में जो भी शुभ और अशुभ कर्म है वह सब पुण्य और पाप प्रकृति में प्रतिष्ठित होता है ।२७। और यही अवस्था होती है जो देह धारियों की कही जाया करती है और जन्तुओं का जो भी कुछ पुण्य और पाप है वह प्रकृति में प्रतिष्ठित होता है ।२८।

अवस्थास्थानि तान्येव पुण्यपापानि जंतवः ।
योजयंति पुनर्देहान्परत्वेन तथैव च ॥२९
धर्माधर्मौ तु जंतूनां गुणमात्रात्मकावुभौ ।
कारणैः स्वैः प्रचीयेते कार्यत्वेन जंतुभिः ॥३०
सचेतनाः प्रलीयंते क्षेत्रज्ञाधिष्ठिता गुणाः ।
सर्गे च प्रतिसर्गे च संसारे चैव जंतवः ॥३१
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते कारणैः संचरंति च ।
राजसी तामसी चैव सात्विकी चैव वृत्तयः ॥३२
गुणमात्राः प्रवर्तन्ते पुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा ।
उद्ध्वंदेशात्मकं सत्त्वमधोभागात्मकं तमः ॥३३
तयोः प्रवर्त्तकं मध्ये इहैवावर्त्तकं रजः ।
इत्येवं परिवर्तंते त्रयश्चेतोगुणात्मकाः ॥३४
लोकेषु सर्वभूतानां तन्न कार्यं विजानता ।
अविद्याप्रत्ययारंभा आरभ्यन्ते हि मानवैः ॥३५

उस अवस्था में स्थित हो वे ही सब पाप और पुण्य जन्तुओं को पुनः परत्व से उसी प्रकार से देहों के साथ योजित किया करते हैं अर्थात् उन्हीं पुण्य पापों के अनुसार जीव देहों को प्राप्त किया करते हैं ।२६। जीवों के धर्म और अधर्म दोनों ही गुण मात्रों के स्वरूप वाले होते हैं । जन्तुओं के द्वारा अपने ही कारणों से कार्य के रूप में परिणत होकर बढ़ जाया करते हैं ।३०। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) में अधिष्ठित गुण चेतन के सहित धलीन होते हैं । इस संसार में सर्ग में सब जन्तु होते हैं ।३१। राजसी तामसी और सात्त्विकी वृत्तियाँ संयुक्त होती हैं—वियुक्त होती हैं और कारणों के द्वारा सञ्चरण किया करती हैं ।३२। पुरुषों में अधिष्ठित केवल गुण ही प्रवृत्त हुआ करते हैं और तीन प्रकार से होते हैं । ऊर्ध्व दशात्मक सत्त्व है—और अधोभागात्मक तम है ।३३। इन दोनों का मध्य प्रवर्त्तक रजोगुण चेत इसी रीति से यहाँ पर है और ये तीनों परिवर्त्तित हुआ करते हैं ।३४। लोकों में समस्त भूतों के कार्यों को जानने वाले को वह नहीं करना चाहिए । मानवों के द्वारा अविद्या के विश्वास से ही सभी का आरम्भ किया जाया करता है । तात्पर्य यही है कि सबका आरम्भ अविद्या के ही विश्वास से हुआ करता है ।३५।

एतास्तु गतयस्तिस्रः शुभात्पापात्मिकाः स्मृताः ।
तमसोऽभिभवाज्जंतुर्यथातथ्यं न विंदति ॥३६
अतत्त्वदर्शनात्सोऽथ विविधं बध्यते ततः ।
प्राकृतेन च बन्धेन तथावैकारिकेण च ॥३७
दक्षिणाभिस्तृतीयेन बद्धोऽत्यंतं विवर्त्तते ।
इत्येते वै त्रयः प्रोक्ता बंधा ह्यज्ञानहेतुकाः ॥३८
अनित्ये नित्यसंज्ञा च दुःखे च सुखदर्शनम् ।
अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चयः ॥३९
येषामेते मनोदोषा ज्ञानदोषा विपर्ययात् ।
रागद्वेषनिवृत्तिश्च तज्ज्ञानं समुदाहृतम् ॥४०
अज्ञानं तमसो मूलं कर्मद्वयफलं रजः ।
कर्मजस्तु पुनर्देहो महादुःखं प्रवर्त्तते ॥४१
श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वग्जिह्वाघ्राणजा तथा ।
पुनर्भवकरी दुःखात्कर्मणा जायते तृषा ॥४२

ये तीन ही गतियाँ होती हैं जो शुभ और पापात्मिक कही गयी हैं। तमोगुण से अभिभूत होकर यह जीवात्मा यथार्थता को प्राप्त नहीं हुआ करता है।३६। तत्व के दर्शन न करने से ही वह जीवात्मा यहाँ पर अनेक प्रकार से बद्ध हो जाया करता है। वह बन्धन तत्व वैकारिक और प्राकृत है।३७। तृतीय दक्षिणओं में बद्ध हुआ यह अत्यन्त ही विवर्त्तित हो जाता है। ये ही तीन इस जीवात्मा के बन्धन होते हैं जो केवल अज्ञान के ही कारण से हुआ करते हैं।३८। यह जीवात्मा जो वस्तु अनित्य है उनमें नित्य होने का ज्ञान रखता है जो कि सर्वथा गलत है। जो दुःखमय है उसमें ही सुख का दर्शन किया करता है। जो वस्तुतः अपना नहीं है उसको ही अपना समझता है और जो वास्तव में अशुचि अर्थात् अपवित्र है उसको पवित्र जानता है।३६। ज्ञान की विपरीतता होने ही से ये सब दोष समुत्पन्न हुआ करते हैं और जिनमें ये होते हैं वे सब उनके मन के ही दोष हैं। जिसके मन में सांसारिक वस्तुओं के प्रति राग द्वेष की निवृत्ति होती है, उसी का नाम ज्ञान कहा गया है, किन्तु वास्तविक रूप से ऐसा होता नहीं है, दिखाने और कहने को भले ही कोई कुछ भी किया करे।४०। यह अज्ञान जो होता है उसका मूल तमोगुण की ही अधिकता है। ज्ञान का होना और अज्ञान का जमा रहना ये दोनों ही रजोगुण का परिणाम हैं। सभी जानते हैं कि कुछ भी साथ नहीं जाता है फिर भी सांसारिक वस्तुओं में प्रबल मोह नहीं छूटता है। यह देह तो कर्मों ही से प्राप्त होता है और फिर भी वही अज्ञान इसमें भरा ही रहता है तो यह महान् दुःख का भागी होता है।४१। विषयों के प्रति बड़ी भारी तृषा बनी रहती है। यही तृषा पुनः संसार में फँसाये रखने वाली होती है जो कर्मों के कारण दुःख से होती है। कानों में समुत्पन्न—नेत्रों से सम्भूत–त्वचा, रसना और नासिका से उत्पन्न यह विषयों के आस्वादन की पिपासा हुआ करती है।४२।

सतृष्णोऽभिहितो बालः स्वकृतैः कर्मणः फलैः।
तैलपीडकवज्जीवस्तत्रैव परिवर्त्तते ॥४३

तस्मान्मूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यते।
तां शत्रुमवधार्यैकं ज्ञाने यत्नं समाचरेत् ॥४४

ज्ञानाद्धि त्यजते सर्वं त्यागाद्बुद्धिर्विरज्यते।
वैराग्याच्छुध्यते चापि शुद्धः सत्त्वेन मुच्यते ॥४५

अत ऊद्‌र्ध्वं प्रवक्ष्यामि रागं भूतापहारिणम् ।
अभिष्वंग्राय योगः स्याद्विषयेष्ववशात्मनः ।।४६
अनिष्टमिष्टमप्रीतिप्रीतितापविषादनम् ।
दुःखलाभे न तापश्च सुखानुस्मरणं तथा ।।४७
इत्येष वैषयो रागः संभूत्याः कारणं स्मृतः ।
ब्रह्मादौ स्थावरांते वै संसारे ह्याधिभौतिके ।।४८
अज्ञानपूर्वकं तस्मादज्ञानं तु विवर्जयेत् ।
यस्य चार्षं न प्रमाणं शिष्टाचारं तथैव च ।।४९

बाल तृष्णा के सहित होता है और अपने ही द्वारा किये हुए कर्मों के फलों से तैल पीड़क की भाँति उसी में परिवर्त्तित हुआ करता है अर्थात् जैसे तेल निकालने की घानी में कोई पिरता है उसी तरह से इस संसार के चक्र में जीव घूमा करता है।४३। इस कारण से अनर्थों का मूल अज्ञान ही बताया जाया करता है। उसी एक अज्ञान को अपना शत्रु मानकर ज्ञान के प्राप्त करने में ही पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए।४४। मन से सब कुछ का त्याग किया जाता है और त्याग जब होता है तो उस त्याग से बुद्धि में वैराग्य हो जाया करता है अर्थात् फिर संसार की सभी वस्तु सार हीन और हेय प्रतीत हुआ करती हैं। वैराग्य से शुद्धि हो जाया करती है तथा शुद्ध सत्व से युक्त हो जाता है ।४५। अब इसके आगे हम उस राग के विषय में बतलायेंगे जो भूतों का अपहरण करने वाला होता है, विषयों में अवश आत्मा वाले का अभिष्यङ्ग के लिए योग हुआ करता है।४६। अनिष्ट–इष्ट–अप्रीति–प्रीति–ताप—विषाद—दुःखों के लाभ में ताप होता है और सुखों का अनुस्मरण नहीं हुआ करता है।४७। इतना यही विषयों में रहने वाला राग है और संभूति कारण यही राग बताया गया है। जो ब्रह्मा से आदि लेकर स्थावर पर्यन्त इस आधिभौतिक संसार में होता है।४८। यह सब अज्ञान पूर्वक अर्थात् अज्ञान से ही होता है। इस कारण से अज्ञान को परिवर्जित कर देना चाहिए। जिसका आर्षग्रन्थों में कोई प्रमाण नहीं है और जो शिष्ट पुरुषों का आचरण भी नहीं है।४९।

वर्णाश्रमविरुद्धो यः शिष्टशास्त्रविरोधकः ।
एष मार्गो हि निरये तिर्य्यग्योनौ च कारणम् ।।५०

तिर्य्यग्योनिगतं चैव कारणं तत्त्रिरुच्यते ।
त्रिविधो यातनास्थाने तिर्य्य योनौ च षड्विधे ।।५१
कारणे विषये चैव प्रतिघातस्तु सर्वशः ।
अनैश्वर्यं तु तत्सर्वं प्रतिघातात्मकं स्मृतम् ।।५२
इत्येषा तामसी वृत्तिर्भूतादीनां चतुर्विधा ।
सत्वस्थमात्रकं चित्तं यथासत्वं प्रदर्शनात् ।।५३
तत्वानां च यथातत्वं दृष्ट्वा वै तत्वदर्शनात् ।
सत्वक्षेत्रज्ञनानात्वमेतन्नानार्थदर्शनम् ।।५४
नानात्वदर्शनं ज्ञानं ज्ञानाद्वै योग उच्यते ।
तेन बद्धस्य वै बंधो मोक्षो मुक्तस्य तेन च ।।५५
संसारे विनिवृत्ते तु मुक्तो लिंगेन मुच्यते ।
निः संबंधो ह्यचैतन्यः स्वात्मन्येवावतिष्ठते ।।५६

जो कार्य वर्णों और आश्रमों के विरुद्ध है और जो शिष्ट शास्त्रों के विरोध करने वाला है—यह ऐसा ही मार्ग है जिसमें गमन करने वाला नरक में जाता है और तिर्यग् योनि में प्राप्त होने का भी यही कारण होता है। ।५०। तिर्यग् योनि में रहने वाला जो कारण है वह तीन कहे जाते हैं। यातना स्थान में तीन प्रकार का है और छः प्रकार का तिर्यग् योनि में होता है ।५१। कारण में और विषय में सभी ओर प्रतिघात है। वह सब अनैश्वर्य प्रतिघात है। यह सब अनैश्वर्य प्रतिघात के स्वरूप वाला कहा गया है। ।५२। यह इस प्रकार से भूतादिक की तामसी वृत्ति चार प्रकार की होती है। चित्त सत्वस्थ मात्रक होता है तथा सत्व प्रदर्शन से होता है यथा सत्व प्रदर्शन से होता है ।५३। और तत्वों का यथा तत्व देखकर तत्व प्रदर्शन से होता है। तत्व—क्षेत्रज्ञ का नानात्व जो है यही नानार्थ प्रदर्शन है ।५४। नानात्व का दर्शन ज्ञान है और ज्ञान से योग कहा जाया करता है उससे बद्ध का बन्ध और मुक्त का मोक्ष भी उसी से होता है ।५५। इस संसार के विशेष निवृत्त होने पर लिङ्ग से मुक्त हो जाया करता है। निःसम्बन्ध अचैतन्य अपनी ही आत्मा में अवस्थित होता है ।५६।

स्वात्मन्यवस्थितश्चापि विरूपाख्येन लिख्यते ।
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं समासाज्ज्ञानमोक्षयोः ।।५७

स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मोक्षो वै तत्वदर्शिभिः ।
पूर्वं वियोगो ज्ञानेन द्वितीये रागसंक्षयात् ॥५८
तृष्णाक्षयात्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षकारणम् ।
लिंगाभावात्तु कैवल्यं कैवल्यात्तु निरंजनम् ॥५९
निरंजनत्वाच्छुद्धस्तु नेताऽन्यो नैव विद्यते ।
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि वैराग्यं दोषदर्शनात् ॥६०
दिव्ये च मानुषे चैव विषये पंचलक्षणे ।
अप्रद्वेषोऽनभिष्वंगः कर्त्तव्यो दोषदर्शनात् ॥६१
तापप्रीतिविषादानां कार्यं तु परिवर्जनम् ।
एवं वैराग्यमास्थाय शरीरी निर्ममो भवेत् ॥६२
अनित्यमशिवं दुःखमिति बुद्ध्यानुचिंत्य च ।
विशुद्धं कार्यकरणं सत्वस्यातिनिषेवया ॥६३

वह अपने ही स्वरूप में अवस्थित होता हुआ भी विरूपात्मा के द्वारा लिखा जाता है। यह इतना ही संक्षेप से ज्ञान और मोक्ष का लक्षण कहा गया है।५७। वह मोक्ष भी तत्व दर्शियों के द्वारा तीन प्रकार का कहा गया है। पूर्व ज्ञान वियोग—दूसरे में राग का संक्षय से होता है।५८। तृष्णा के क्षय से तीसरा मोक्ष का कारण कहा गया है। लिङ्ग के अभाव से कैवल्य होता है और कैवल्य से निरञ्जन होता है। निरञ्जनत्व होने से शुद्ध होता है। अन्य कोई भी नेता नहीं होता है। इसके आगे हम दोषों के देखने से जो वैराग्य होता है उसको बतलायेंगे।५९-६०। दिव्य और मानुष पाँच लक्षणों वाला विषय है उसमें अप्रद्वेष और अनभिष्वङ्ग दोषों के देखने से करना चाहिए।६१। ताप प्रीति और विष आदि का अच्छी तरह से परि-वर्जन कर देना चाहिए। उस तरह से वैराग्य में समास्थित होकर यह शरीरधारी ममता से रहित हो जाया करता है।६२। बुद्धि से ऐसा अनुचिन्तन करना चाहिए कि यह दुःख अनित्य और अशिव है। सत्व की ही अति-निषेवा से सर्वथा परम विशुद्ध कार्यों को करे।६३।

परिपक्वकषायो हि कृत्स्नान्दोषान्प्रपश्यति ।
ततः प्रयाणकाले हि दोषैर्नैमित्तिकैस्तथा ॥६४

ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः ।
स शरीरमुपाश्रित्य कृत्स्नान्दोषान्रुणद्धि वै ।।६५

प्राणस्थानानि भिदन्हि छिदन्मर्माण्यतीत्य च ।
शैत्यात्प्रकुपितो वायुरूद्ध्वं तूत्क्रमते ततः ।।६६

स चायं सर्वभूतानां प्राणस्थानेष्ववस्थितः ।
समासात्संवृते ज्ञाने संवृत्तेषु च कर्मसु ।।६७

स जीवो नाभ्यधिष्ठानः कर्मभिः स्वैः पुराकृतैः ।
अष्टांगप्राणवृत्ति वै स विच्यावयते पुनः ।।६८

शरीरं प्रजहन्सोऽन्ते निरुच्छ्‌वासस्ततो भवेत् ।
एवं प्राणैः परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते ।।६९
यथेह लोके स्वप्ने तं नीयमानमितस्ततः ।
रंजनं तद्विधेयस्य तेनान्यो न च विद्यते ।।७०

जब मनुष्य परिपक्व कषाय वाला होता है अर्थात् सांसारिक दुःखों के भोगों से परिपक्व होता है। ऐसा मनुष्य सभी दोषों का अवलोकन किया करता है। इसके अनन्तर प्रयाण के समय में नैमित्तिक दोषों से इस शरीर में तीव्र वायु से प्रेरित ऊष्मा प्रकुपित होकर शरीर में उपाश्रय ग्रहण करके समस्त दोषों का अवरोध कर दिया करता है।६४-६५। वह प्राण के स्थानों का भेदन करता हुआ तथा मर्म स्थलों में अतिक्रमण करके उन का छेदन किया करता है और शैत्य से प्रकुपित हुआ वायु फिर ऊपर की ओर उत्क्रमण किया करता है।६६। और वही यह समस्त प्राणियों के प्राण के स्थानों में अवस्थित होता है। संक्षेप से ज्ञान के संवृत हो जाने पर सभी कर्म भी संवृत्त हो जाते हैं।६७। वह जीव अपने पूर्व में किये हुए कर्मों से अभ्यधिष्ठान नहीं होता है। फिर वह अष्टाङ्ग प्राण वृत्ति को भी विच्यावित कर दिया करता है।६८। वह अन्त में इस पाञ्चभौतिक शरीर का त्याग करता हुआ फिर बिना श्वासों वाला हो जाया करता है। इस रीति से प्राणों के द्वारा परित्यक्त होता हुआ वह मानव मर गया है—यही कहा जाया करता है।६९। जिस तरह से इस लोक में स्वप्न में इधर से उधर नीयमान होता है। उसके विधेय का रञ्जन है उससे अन्य नहीं होता है।७०।

तृष्णाक्षयस्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षलक्षणम् ।
शब्दाद्ये विषये दोषदृष्टिर्वै पचलक्षणे ॥७१

अप्रद्वेषोऽनभिष्वंगः प्रीतितापविवर्जनम् ।
वैराग्यकारणं ह्येते प्रकृतीनां लयस्य च ॥७२

अष्टौ प्रकृतयो ज्ञेयाः पूर्वोक्ता वै यथाक्रमम् ।
अव्यक्ताद्यास्तु विज्ञेया भूतांताः प्रकृतेर्भवाः ॥७३

वर्णाश्रमाचारयुक्तः शिष्टः शास्त्राविरोधनः ।
वर्णाश्रमाणां धर्मोऽयं देवस्थानेषु कारणम् ॥७४

ब्रह्मादीनि पिशाचांतान्यष्टौ स्थानानि देवताः ।
ऐश्वर्यमणिमाद्यं हि कारणं ह्यष्टलक्षणम् ॥७५

निमित्तमप्रतीघाते दृष्टे शब्दादिलक्षणे ।
अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥७६

क्षेत्रज्ञेष्वनुसज्जंते गुणमात्रात्मकानि तु ।
प्रावृट्काले पृथग्मेघं पश्यंतीव सचक्षुषः ॥७७

तीसरा तृष्णा का क्षय है जो कि मोक्ष का लक्षण व्याख्यान किया गया है। शब्दादि पञ्च लक्षण विषय में दोष दृष्टि होती है।७४। अप्रद्वेष-अभिष्वङ्ग-प्रीति ताप का विवर्जन ये ही प्रकृतियों का और लय का वैराग्य का कारण हैं।७२। आठ पूर्व में वर्णित क्रमानुसार प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। अव्यक्तादि और भूतान्त प्रकृति से उद्भूत समझने चाहिए ।७३। वर्णों ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र और आश्रमों (ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्य-वाणप्रस्थ-संन्यास) से समन्वित-शिष्ट और शास्त्रों का विरोध न करने वाला यह वर्णाश्रमों का देवों के स्थानों में कारण होता है।७४। ब्रह्मा से आदि लेकर पिशाचों के अन्त पर्यन्त ये आठ स्थान ही देवता हैं। ऐश्वर्य और अणिमादि आठ लक्षण ही कारण हैं।७५। शुक्रादि के लक्षण वाले अप्रतिघात के दृष्ट होने पर निमित्त हैं। ये क्रमानुसार आठ प्राकृत रूप हैं।७६। ये गुण मात्रात्मक क्षेत्रज्ञों में अनुसज्जित होते हैं। जिस तरह से नेत्रों वाले मनुष्य वर्षा काल में मेघ को पृथक् देखा करते हैं।७७।

पश्यंत्येवं विधाः सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा ।
खादतश्चान्नपानानि योनीः प्रविशतस्तथा ॥७८
तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च धावतोऽपि यथाक्रमम् ।
जीवः प्राणस्तथा लिंगं करणं च चतुष्टयम् ॥७९
पर्यायवाचकैः शब्दैरेकार्थैः सोऽभिलप्यते ।
व्यक्ताव्यक्तप्रमाणोऽयं स वै भुंक्ते तु कृत्स्नशः ॥८०
अव्यक्तानुग्रहांतं च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं च यत् ।
एवं ज्ञात्वा शुचिर्भूत्वा ज्ञानाद्वै वि मुच्यते ॥८१
नष्टं चैव यथातत्वं तत्वानां तत्वदर्शने ।
यथेष्टं परिनिर्याति भिन्ने देहे सुनिवृते ॥८२
भिद्यते करणं चापि ह्यव्यक्तज्ञानिनस्ततः ।
मुक्तो गुणशरीरेण प्राणाद्येन तु सर्वशः ॥८३
नान्यच्छरीरमादत्ते दग्धे बीजे यथांकुरः ।
ज्ञानी च सर्वसंसाराविज्ञशारीरमानसः ॥८४

इसी प्रकार के सिद्ध पुरुष जीव को दिव्य चक्षुके द्वारा देखा करते हैं तथा उनको जो अन्न को खाते हैं और पान किया करते हैं तथा योनियों में प्रवेश किया करते हैं ।७८। ऊपर-नीचे और तिरछा दौड़ता हुआ भी जो क्रम के ही अनुरूप उसका धावन होता है उस दशा में भी उसके जीव-प्राण-लिङ्ग और करण—ये चार वस्तुएँ विद्यमान हैं ।७९। ये चारों पर्याय वाचक अर्थात समानार्थक हैं तो भी एकार्थ वाले शब्दों से वह अभिलषित होता है । व्यक्त और अव्यक्त प्रमाण वाला यह है और वह पूर्णतया भोगता है ।८०। अव्यक्त के अनुग्रह के अन्त वाला है और जो क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित है । इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके शुचि होकर ज्ञान से ही निश्चित रूप से विमुक्ति को प्राप्त हुआ करता है ।८१। तत्वों के दर्शन में तत्व जैसे ही नष्ट होता है फिर भिन्न सुनिवृंत देह में जैसा भी इष्ट हो वह परिनिर्याण किया करता है ।८२। फिर अव्यक्त ज्ञानी का करण भी विद्यमान होता है । वह प्राणादि गुण शरीर से सब प्रकार से मुक्त ही हो जाता है ।८३। फिर वह अन्य शरीर को ग्रहण नहीं किया करता है क्योंकि जैसे जब बीज ही दग्ध हो जाता है

तो बीजांकुर भी समाप्त हो जाया करता है और ज्ञानी जो है वह तो सर्ग संसाराविज्ञ शरीर मानस होता है अर्थात् सभी संसार के द्वारा उसका शरीर और मन अविज्ञ ही रहता।८४।

ज्ञानाच्चतुर्दशो बुद्धः प्रकृतिस्थो निवर्त्तते ।
प्रकृति सत्यमित्याहुर्विकारोऽनृतमुच्यते ।।८५
असद्भावोऽनृतं ज्ञेयं सद्भावः सत्यमुच्यते ।
अनामरूपं क्षेत्रज्ञनामरूपं प्रचक्षते ।।८६
यस्मात्क्षेत्रं विजानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते ।
क्षेत्रं प्रत्ययते यस्मात्क्षेत्रज्ञः शुभ उच्यते ।।८७
क्षेत्रज्ञः स्मर्यते तस्मात्क्षेत्रं तज्ज्ञैर्विभाष्यते ।
क्षेत्रं त्वत्प्रत्ययं दृष्टं क्षेत्रज्ञः प्रत्ययः सदा ।।८८
क्षपणात्कारणाच्चैव क्षतत्राणात्तथैव च ।
भोज्यत्वविषयत्वाच्च क्षेत्रं क्षेत्रविदो विदुः ।।८९
महदाद्यं विशेषांतं सवैरूप्यं विलक्षणम् ।
विकारलक्षणं तद्वै सोऽक्षरः क्षरमेति च ।।९०
तमेवानुविकारं तु यस्माद्वै क्षरते पुनः ।
तस्माच्च कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते ।।९१

ज्ञान से चार प्रकार की दशा से बद्ध प्रकृति में स्थित निवृत्त हो जाता है । यह प्रकृति तो सत्य ही कही जाती है इस से जो भी विकार होता है वही मिथ्या बताया जाया करता है ।८५। जो असद्भाव वाला है वही अनृत समझना चाहिए और जो सद्भाव होता है वह सत्य कहा जाता है । यह क्षेत्रज्ञ नाम और रूप से रहित होता है । यह तो क्षेत्रज्ञ इसी नाम से बोला जाया करता है ।८६। क्षेत्रज्ञ इसका नाम इसीलिए होता है कि यह क्षेत्र को जानता है । जिस कारण से यह क्षेत्र को विश्वस्त मानता है इसी से क्षेत्रज्ञ परम शुभ कहा जाता है ।८७। क्षेत्रज्ञ का स्मरण किया जाता है इसी कारण से उसके ज्ञाताओं के द्वारा विभास्यमान होता है । क्षेत्र तो त्वत्प्रत्यय वाला देखा गया है और सदा ही क्षेत्रज्ञ प्रत्यय होता है ।८८। अब यह बताते हैं कि क्षेत्र यह नाम इसका क्यों हुआ है—इसका शयन होता है

एक तो यही कारण है और दूसरा कारण यह है कि क्षत का त्राणात्व वाला है। यह भोज्यत्व वाला है तथा इसमें विषय भी होता है। इसी लिये क्षेत्र के ज्ञाता इसको क्षेत्र कहा करते हैं।८९। महत तत्व से आरम्भ करके अर्थात् महत् तत्व जिसमें आदि है और विशेष के अन्त पर्यन्त में एक परम विलक्षण विरूपता रहा करती है। वह विकार का लक्षण है किन्तु वह अक्षर होता है और क्षरता को प्राप्त हो जाता है ।९०। कारण यह है कि उसी अनुविकार को फिर क्षरित करता है और उसी कारण से यह क्षर—इस नाम से पुकारा जाया करता है।९१।

संसारे नरकेभ्यश्च त्रायते पुरुषं च यत् ।
दुःखत्राणात्पुनश्चापि क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥९२
सुखदुःखमहंभावाद्भोज्यमित्यभिधीयते ।
अचेतनत्वाद्विषयस्तद्विधर्मा विभुः स्मृतः ॥९३
न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतं तु तत् ।
अक्षरं तेन वाप्युक्तमक्षीणत्वात्तथैव च ॥९४
यस्मात्पुर्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते ।
पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरुषेत्यभिधीयते ॥९५
पुरुषं कथयस्वाथ कथितोऽज्ञैर्विभाष्यते ।
शुद्धो निरंजनाभासो ज्ञाता ज्ञानविवर्जितः ॥९६
अस्तिनास्तीति सोऽन्यो वा बद्धो मुक्तो गतः स्थितः ।
नैहेंतुकात्वनिर्देश्यादहस्तस्मिन्न विद्यते ॥९७
शुद्धत्वान्न तु दृश्यो वै द्रष्टृत्वात्समदर्शनः ।
आत्मप्रत्ययकारित्वादन्यूनं वाप्यहेतुकम् ॥९८

जो इस परमाधिक दुःखमय संसार में नरकों से पुरुष का परित्राण किया करता है और फिर भी दुःखों के त्राण से इसका नाम क्षेत्र यह कहा जाता है।९२। इसमें सुख-दुःख और अहंभाव विद्यमान रहता है अतएव इसको भोज्य—इस नाम से भी पुकारा जाया करता है। इसमें अचेतना होती है इसीलिए यह विषय है और उससे विधर्मा होता है अतएव यह न तो क्षीण होता है और न इसका क्षरण ही होता है और विकार से प्रसृत

के द्वारा उस प्रकार से आत्मा को दिया करता है। वहाँ पर प्रकृति में कारण में अपनी आत्मा में ही उपस्थित होता है ।१०१। अस्ति—नास्ति—इससे वह अन्य है अथवा यहाँ पर अथवा परलोक में फिर होता है। एकत्व है अथवा पृथक्त्व है—क्षेत्रज्ञ है अथवा पुरुष है ।१०२। वह आत्मा है या निरात्मा है। चेतन है या अचेतन है। वह कर्त्ता है या अकर्त्ता है—वह भोक्ता है या भोज्य ही है ।१०३। जहाँ पर पहुँच कर फिर वहाँ से वापिस नहीं लौटता है क्षेत्रज्ञ निरञ्जन है। उसका कोई भी आख्यान नहीं होता है इसलिये वह अवाच्य है और वाद के हेतुओं के द्वारा अग्राह्य है ।१०४। चिन्तन न करने के योग्य होने से वह प्रतर्क के योग्य नहीं है। अवार्य योग्य नहीं है और मन के साथ भी अप्राप्त है ।१०५।

क्षेत्रज्ञे निर्गुणे शुद्धे शांते क्षीणे निरंजने ।
व्यपेतसुखदुःखे च निरुद्धे शांतिमागते ।।१०६
निरात्मके पुनस्तस्मिन्वाच्यावाच्यं न विद्यते ।
एतौ संहारविस्तारौ व्यक्ताव्यक्तौ ततः पुनः ।।१०७
सृज्यते ग्रसते चैव व्यक्तौ पर्यवतिष्ठते ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सर्वं पुनः सर्गे प्रवर्त्तते ।।१०८
अधिष्ठानं प्रपद्येत तस्यांते बुद्धिपूर्वकम् ।
साधर्म्यवैधर्म्यकृतः संयोगो विदितस्तयोः ।
अनादिमांश्च संयोगो महापुरुषजः स्मृतः ।।१०९
यावच्च सर्गप्रति सर्गकालस्तावज्जगत्तिष्ठति सनिरुध्य ।
पूर्वं हि तस्यैव च बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तते तत्पुरुषार्थमेव ।।११०
एषा निसर्गप्रतिसर्गपूर्वा प्राधानिकी चेश्वरकारिता वा ।
अनाद्यनंता ह्यभिमानपूर्वकं वित्रासयन्ती जगदभ्युपैति ।।१११
इत्येष प्राकृतः सर्गस्तृतीयो हेतुलक्षणः ।
उक्तो ह्यस्मिस्तदात्यंतं कालं ज्ञात्वा प्रमुच्यते ।।११२
इत्येष प्रतिसर्गो वस्त्रिविधः कीर्त्तितो मया ।
विस्तरेणानुपूर्व्यां च भूयः किं वर्त्तयाम्यहम् ।।११३

क्षेत्रज्ञ के निर्गुण—शुद्ध—शान्त—क्षीण—निरञ्जन—अपेत अर्थात् रहित सुख दुःख वाले—निरुद्ध और शान्ति को प्राप्त होने वाले और निरात्मक होने पर फिर उसमें वाच्य और अवाच्य नहीं रहता है। ये दो संहार और विस्तार और फिर व्यक्त और अव्यक्त होते हैं।१०६-१०७। सृजन किया जाता है ग्रसन होता है और व्यक्त पर्यवस्थित होते हैं। सब क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित फिर सर्ग में प्रवृत्त हुआ करता है।१०८। उसके अन्त में बुद्धि पूर्वक अधिष्ठान को प्रपन्न हो जाता है। उन दोनों का संयोग साधर्म्य और वैधर्म्य के द्वारा किया हुआ विदित होता है। महापुरुष से समुत्पन्न संयोग अनादिमान् कहा गया है।१०९। और जबतक सर्ग और प्रतिसर्ग काल होता है तब तक जगत संनिरुद्ध होकर स्थित रहा करता है और उसके पूर्व में ही बुद्धिपूर्वक उसका पुरुषार्थ ही प्रवृत्त होता है।११०। यह विसर्ग और प्रतिसर्ग पूर्व वाली प्राधानिकी अर्थात् प्रधान (प्रकृति) के द्वारा की हुई या ईश्वर की कराई हुई है। यह ऐसी है जिसका न आदि है और न अन्त ही है और यह अभिमान के साथ इस जगत को नित्रस्त करती हुई ही प्राप्त हुआ करती है।१११। यही प्राकृत तीसरा सर्ग है जो हेतु के लक्षण वाला है। जो इसमें कहा गया है तब अत्यन्त काल का ज्ञान प्राप्त करके ही प्राणी प्रसक्त हुआ करता है।११२। यही प्रतिसर्ग है जो तीन प्रकार का होता है जिसका वर्णन मैंने आपके सामने किया है। मैंने इसका विस्तार से और आनुपूर्वी से अर्थात् क्रम से आदि से अन्त पर्यन्त कह दिया है। अब फिर मैं क्या बताऊँ—यह बतलाइये।११३।

—×—

ब्रह्माणवर्त वर्णन

ऋषय ऊचुः—

श्रुतं सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्त्तितम्।
प्रजानां मनुभिः सार्द्धं देवानामृषिभिः सह ॥१
पितृगंधर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम्।
दैत्यानां दानवानां च यक्षाणामेव पक्षिणाम् ॥२
अप्यद्भुतानि कर्माणि विविधा धर्मनिश्चयाः।
विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥३

पूर्ववत्स तु विज्ञेयः समासात्तन्निबोधत ।
दृष्टेनैवानुमेयं च तर्कं वक्ष्यामि युक्तितः ।।१०
यस्माद्वाचो निवर्त्तते त्वप्राप्य मनसा सह ।
अव्यक्तवत्परोक्षत्वाद्गहनं तद्दुरासदम् ।।११
विकारैः प्रतिसंसृष्टो गुणः साम्येन वर्त्तते ।
प्रधानं पुरुषाणां च साधर्म्येणैव तिष्ठति ।।१२
धर्माधर्मौ प्रलीयेते ह्यव्यक्ते प्राणिनां सदा ।
सत्वमात्रात्मको धर्मो गुणे सत्वे प्रतिष्ठितः ।।१३
तमोमात्रात्मको धर्मो गुणे तमसि तिष्ठति ।
अविभागेन तावेतौ गुणसाम्ये स्थितावुभौ ।।१४

इस सर्ग की प्रवृत्ति होने की क्या रीति होती है—यही अब हम पूछते हैं उसको आप कृपा करके हमको बतला दीजिए इस तरह से अब लोम हर्षण सूतजी से पूछा गया था तो फिर उन्होंने पुनः उस सर्ग की जैसे प्रकृति हुआ करती है उसकी व्याख्या करने का उपक्रम किया था और उन्होंने कहा था कि यहाँ पर जैसे यह सर्ग प्रवृत्त होगा—उसको मैं आप लोगों को बतलाऊँगा ।८-९। हे वत्स ! यह सब पूर्व की ही भाँति समझ लेना चाहिए। और संक्षेप से अब भी समझ लो । जो भी दृष्ट है उसी से अनुमान कर लेना चाहिए। मैं युक्ति से तर्क बतलाऊँगा ।१०। वह ऐसा विषय है जहाँ पर वाणी की पहुँच नहीं हैं और मन भी वहाँ तक नहीं पहुँचता है । वह अव्यक्त के ही समान परोक्ष है अतएव बहुत ही गहन और दुरासद है ।११। विकारों के साथ प्रति संसृष्ट होता हुआ गुण समता से रहता है । प्रधान पुरुषों के साधर्म्य से ही स्थित रहा करता है ।१२। प्राणियों के सदा धर्म और अधर्म अव्यक्त में प्रलीन हो जाते हैं । उस समय में सत्व मात्रात्मक अर्थात् केवल सत्व स्वरूप वाला धर्म सत्वगुण में प्रतिष्ठित होता है ।१३। तमो मात्रात्मक धर्म तमोगुण में प्रतिष्ठित होता है । ये दोनों ही बिना ही विभाग के गुणों की समता में स्थित रहते हैं ।१४।

सर्वं कार्यं बुद्धिपूर्वं प्रधानस्य प्रपत्स्यते ।
अबुद्धिपूर्वं क्षेत्रज्ञ अधिष्ठास्यति तान्गुणान् ।।१५

तत्कथ्यमानमस्माकं भवता श्लक्ष्णया गिरा ।
मनः कर्णसुखं सूते प्रीणात्यमृतसन्निभम् ॥४

एवमाराध्य ते सूतं सत्कृत्य च महर्षयः ।
पप्रच्छुः सत्रिणः सर्वे पुनः सर्गप्रवर्त्तनम् ॥५

कथं सूत महाप्राज्ञ पुनः सर्गः प्रपत्स्यते ।
बन्धेषु संप्रलीनेषु गुणसाम्ये तमोमये ॥६

विकारेष्वविसृष्टेषु ह्यव्यक्ते चात्मनि स्थिते ।
अप्रवृत्ते ब्रह्मणा तु सहसा योज्यगैस्तदा ॥७

ऋषियों ने कहा—आपके द्वारा वर्णित यह महान आख्यान हमने सुन लिया है । इसमें मनुओं के साथ प्रजाओं का तथा ऋषियों के सहित देवों का–पितरों का—गन्धर्वों का—भूतों का—पिशाच—उरग और राक्षसों का—दैत्यों का—दानवों का—यक्षों का और पक्षियों का वर्णन है । इन सबके अत्यन्त अद्भुत कर्म हैं तथा धर्म आदि का भी निश्चय है और बहुत ही विचित्र कथा के योग हैं और अत्युत्तम तथा श्रेष्ठजन्म हैं । यह सभी का हमने भली श्रवण कर लिया है ।१-३। आपने जो भी वर्णन किया है वह बहुत ही श्रुति प्रिय सुन्दर वाणी के द्वारा किया है और हमारे मन और कानों को सुख देने वाला है तथा अमृत के ही समान प्रीणन करने वाला है ।४। उन सब महर्षियों ने सूतजी की इस रीति से आराधना करके उनका बड़ा ही सत्कार किया था । फिर उन सत्र करने वालों ने सबने पुनः सर्ग के प्रवर्तन के विषय में उनसे प्रश्न किया था ।५। उन्होंने कहा था—हे सूतजी ! आप तो महान् पण्डित हैं । अब हमको यही बतलाइये कि फिर इस सर्ग का प्रवर्त्तन किस प्रकार से होगा । जब ये सभी बन्धन प्रलीन हो जाते हैं और प्रकृति के तीनों गुणों में साम्यावस्था होती है और यह सर्वत्र अन्धकार से परिपूर्ण होता है । समस्त विकार अविसृष्ट होते हैं तथा अव्यक्त आत्मा में स्थित होता है । उस समय में योज्यगों के द्वारा सहसा ब्रह्माजी के अप्रवृत्त होने पर यह सर्ग कैसे होता है ।६-७।

कथं प्रपत्स्यते सर्गस्तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ।
एवमुक्तस्ततः सूतस्तदाऽसौ लोमहर्षणः ॥८

व्याख्यातुमुपचक्राम पुनः सर्गप्रवर्त्तनम् ।
अत्र वो वर्त्तयिष्यामि यथा सर्गं प्रपत्स्यते ॥९

एवं तानभिमानेन प्रपत्स्यति पुनस्तदा ।
यदा प्रवर्त्तितव्यं तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः ॥१६
भोज्यभोक्तृत्वसंबंधाः प्रपत्स्यंते च तावुभौ ।
तस्मादक्षरमव्यक्तं साम्ये स्थित्वा गुणात्मकम् ॥१७
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं तत्र वैषम्यं भजते तु तत् ।
ततः प्रपत्स्यते व्यक्तं क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः ॥१८
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सत्त्वं विकारं जनयिष्यति ।
महदाद्यं विशेषांतं चतुर्विंशगुणात्मकम् ॥१९
क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रवर्त्स्यतः ।
आदिदेवः प्रधानस्यानुग्रहाय प्रचक्षते ॥२०
अनाद्यौ बपमुत्पादौ उभौ सूक्ष्मौ तु तौ स्मृतौ ।
अनादिसंयोगयुतौ सर्वं क्षेत्रज्ञमेव च ॥२१

यह सभी कार्य बुद्धिपूर्वक प्रधान का ही होगा । यह क्षेत्रज्ञ अबुद्धि पूर्वक उन गुणों में अधिष्ठित होगा ।१५। इस प्रकार से उस समय में फिर अभिमान के साथ उनको प्राप्त होगा । जिस समय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दोनों का प्रवृत होना चाहिए ।१६। वे दोनों ही को भोज्य और भोक्तृत्व के सम्बन्ध प्राप्त होंगे । इससे गुणात्मक अक्षर अव्यक्त समता में स्थित होता है ।१७। वहाँ पर वह क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित विषमता को प्राप्त होता है । फिर दोनों क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को व्यक्त प्राप्त होगा ।१८। क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित सत्व विकार को उत्पन्न कर देगा । वह विकार महत् तत्व से लेकर विशेष के अन्त तक चौबीस गुणों के स्वरूप वाला है ।१९। क्षेत्रज्ञ का प्रधान का और पुरुष का प्रवृत्त होंगे । जो आदि देव हैं वे प्रधान के ही ऊपर अनुग्रह करने वाले कहे जाते हैं । वे दोनों अनादि और श्रेष्ठ उत्पाद तथा सूक्ष्म कहे गये हैं ।२०-२१।

अबुद्धिपूर्वकं युक्तमशक्तौ तु वरौ तदा ।
अप्रत्ययममोघं च स्थितावुदकमत्स्यवत् ॥२२
प्रवृत्तपूर्वौ तौ पूर्वं पुनः सर्वं प्रपत्स्यते ।
अज्ञा गुणैः प्रवर्त्तते रजः सत्वतमोऽभिधैः ॥२३

प्रवृत्तिकाले रजसाभिपन्नो महत्त्वभूतादिविशेषतां च ।
विशेषतां चेंद्रियतां च याति गुणावसानौषधिभिर्मनुष्यः ॥२४
सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिनः सन्निमित्तकम् ।
रजः सत्त्वतमौव्यक्ता विधुर्माणः परस्परम् ॥२५
आद्यंतं वै प्रपत्स्यंते क्षेत्रमज्ञाम्बु सर्वशः ।
संसिद्धकार्यकरणा उत्पद्यंतेऽभिमानिनः ॥२६
सर्वे सत्त्वाः प्रपद्यंते ह्यव्यक्तात्पूर्वमेव च ।
प्राक्सृतौ ये त्वसुवहाः साधकाश्चाप्यसाधकाः ॥२७
असंशांतास्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणैः सह ।
कार्याणि प्रतित्स्यंते उत्पत्स्यन्ते पुनः पुनः ॥२८

उस समय में अबुद्धि पूर्वक युक्त है और अशक्त पर हैं यह प्रत्यय रहित और अमोघ हैं और जल में मछली के ही समान स्थित हैं।२२। पूर्व में वे दोनों ही पूर्व की प्रवृत्ति वाले हैं फिर सर्व को प्राप्त हो जायगा। जो अज्ञ हैं वे रज-सत्व और तम नामों वाले गुणों से प्रवृत्त हुआ करते हैं।२३। यह मनुष्य प्रवृत्ति के समय से रजोगुण से अभिपन्न होता है और महत्वभूत आदि की विशेषता और इन्द्रियतता की विशेषता को गुणामुखी के और निमित्तों के साथ ध्यायी के ये रज-सत्व और तम पर स्वर में विधर्मी होते हुए व्यक्त होते हैं।२४-२५। आद्यन्त सभी ओर अज्ञाम्बु क्षेत्र में प्राप्त हो जांयगे। फिर संसिद्ध कार्य और करण वाले अभिमानी उत्पन्न हुआ करते हैं।२६। सभी सत्व अव्यक्त से पूर्व ही प्रसन्न होते हैं। पूर्व में होने वाली सृति में जो भी प्राणधारी हैं वे चाहे साधक होवे या असाधक होवे।२७। वे सभी स्थान प्रकरणों के साथ असंशान्त हैं। वे सब कार्यों को प्राप्त करेंगे और बार-बार उत्पन्न होंगे।२८।

गुणमात्रात्मकावेव धर्माधर्मौ परस्परम् ।
आरप्सेते हि चान्योन्यं वरेणानुग्रहेण वा ॥२९
शवस्तुल्यप्रसृष्टश्चथ सर्गादौ याति विक्रियाम् ।
गुणास्तं प्रतिधीयंते तस्मात्तस्य रोचते ॥३०

गुणास्ते यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे ।
तान्येव प्रतिपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥३१

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यंते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३२

महाभूतेषु नानात्वमिंद्रियार्थेषु मूर्त्तिषु ।
विप्रयोगश्च भूतानां गुणेभ्यः संप्रवर्त्तते ॥३३

इत्येष वो मया ख्यातः पुनः सर्गः समासतः ।
समासादेव वक्ष्यामि ब्रह्मणोऽथ समुद्भवम् ॥३४

अव्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात् ।
प्रधानपुरुषाभ्यां तु जायते च महेश्वरः ॥३५

धर्म और अधर्म परस्पर में केवल गुण के ही स्वरूप वाले होते हैं और वे एक दूसरे के वर के द्वारा या अनुग्रह के द्वारा आरम्भ हुआ करते हैं ।२६। इसके उपरान्त तुल्य प्रसृष्टि शव सर्ग के आदि काल में विक्रिया को प्राप्त होता है । गुण इस कारण से उसका प्रतिधान किया करते हैं वह उसको अच्छा लगता है ।३०। वे गुण जो भी कर्म कर्म पूर्व की सृष्टि में प्रतिपन्न हुए थे वे ही बार-बार सृज्यमान होते हुए प्रतिपन्न हुआ करते हैं ।३१। हिंस्र-अहिंस्र, मृदु-क्रूर, धर्म-अधर्म, ऋत-अनृत ये सब जो भी जिसको प्रिय लगता है उसी भाव से भावित होते हुए प्रसन्न हुआ करते हैं ।३२। महाभूतों में अनेक रूपता-इन्द्रियों के विषयों में तथा मूर्त्तियों में अनेक रूपता-इन्द्रियों के विषयों में तथा मूर्त्तियों में अनेकता होती है और प्राणियों के विप्रयोग गुणों से ही प्रवृत्त हुआ करते हैं ।३३। मैंने यह सर्ग आपको बहुत ही संक्षेप से बता दिया है । अब ब्रह्माजी का उद्भव भी मैं बहुत संक्षेप से वर्णन करूँगा ।३४। उसी अव्यक्त कारण से जो सत् और असत् स्वरूप वाला है । प्रधान से और पुरुष से महेश्वर जन्म ग्रहण किया करते हैं ।३५।

स पुनः संभावयिता जायते ब्रह्मसंज्ञितः ।
सृजते स पुनर्लोकानभिमानगुणात्मकान् ॥३६

अहंकारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि चात्मनः ।

युगपत्संप्रवर्त्तंते भूतान्येवेंद्रियाणि च ।।३७
भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः प्रवर्त्तते ।
विस्तरावयवस्तेषां यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् ।
कीर्त्यंतो वा यथापूर्वं तथैवाप्युपधार्यताम् ।।३८
एतच्छ्रुत्वा नैमिषेयास्तदानीं लोकोत्पत्ति सुस्थिति
चाप्ययं च ।
तस्मिन्सत्रेऽवभृथं प्राप्य शुद्धाः पुण्यं लोकमृषयः
प्राप्नुवंति ।।३९
यथा यूयं विधिना देवतादीनिष्ट्वा चैवावभृथं प्राप्य शुद्धाः ।
त्यक्त्वा देहानायुषोंऽते कृतार्थाः पुण्यं लोकं प्राप्य
मोदध्वमेवम् ।।४०
एते ते नैमिषेया वै इष्ट्वा स्पृष्ट्वा च वै तदा ।
जग्मुश्चावभृथस्नाताः स्वर्गं सर्वे तु सत्रिणः ।।४१
विप्रास्तथा यूयमपि इष्ट्वा बहुविधैर्मखैः ।
आयुषोंऽते ततः स्वर्गं गंतारः स्थ द्विजोत्तमाः ।।४२

वे ही फिर सम्मान करने वाला ब्रह्म के नाम वाले हो जाते हैं। और फिर यही ब्रह्माजी अभिमान और गुणात्मक लोकों का सृजन करते हैं।३६। महत् तत्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है और फिर अहंकार से भूतों का उद्भव हुआ करता है। ये भूत और इन्द्रियाँ एक ही साथ सम्प्रवृत्त हुआ करते हैं।३७। इन भूतों से अन्य भूतों के भेद होते हैं—इस तरह से सर्ग प्रवृत्त हुआ करता है। उनका विस्तार और अवयव जैसी प्रज्ञा है और जैसा भी सुना है मैंने आपको पूर्व में बता दिया है उसी प्रकार से इनका अवधारण आप कर लीजिये।३८। इसको नैमिष क्षेत्र में रहने वालों ने श्रवण करके जो उस समय में लोकों की उत्पत्ति और संहार कहा गया था उस सबमें अवभृथ को प्राप्त करके शुद्ध हुए ऋषिगण—पुण्य लोक को प्राप्त हो जाते हैं।३९। जिस रीति से आप लोग विधि पूर्वक यजन करके और देव आदि का अर्चन करके तथा अवभृथ को प्राप्त करके शुद्ध हुए हो। फिर आयु के समाप्त होने पर शरीरों का त्याग करके कृतार्थ हुई हैं और

परम पुण्यलोक को प्राप्त करके इस प्रकार से आनन्दित हो रहे हैं ।४०। ये वे भी नैमिषेय अर्थात् नैमिष क्षेत्र में रहने वाले सभी देखकर को और स्पर्श करके उस समय में अवभृथ स्नान किये हुए सबके सब स्वर्गलोक को गमन कर गये थे ।४१। हे विप्रो ! उसी प्रकार से आप लोगों ने भी बहुत प्रकार के यज्ञों के द्वारा यजन किया है । हे उत्तम द्विजगणो ! फिर जब आपकी आयु का अवसान होगा तब आप भी सब स्वर्ग में गमन कर जांयगे ।४२।

प्रक्रिया प्रथमः पादः कथायास्तु परिग्रहः ।
अनुषंग उपोद्धात उपसंहार एव च ।।४३
एवमेव चतुः पादं पुराणं लोकसम्मतम् ।
उवाच भगवान्सक्षाद्वायुर्लोकहिते रतः ।।४४
नैमिषे सत्रमासाद्य मुनिभ्यो मुनिसत्तम ।
तत्प्रसादं च संसिद्धं भूतोत्पत्तिलयान्वितम् ।।४५
प्राधानिकीमिमां सृष्टिं तथैवेश्वरकारिताम् ।
सम्यग्विदित्वा मेधावी न मोहमधिगच्छति ।।४६
इदं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहासं पुरातनम् ।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि तथाऽध्यापयतेऽपि च ।।४७
स्थानेषु स महेंद्रस्य मोदते शाश्वतीः समाः ।
ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोदते ।।४८
तेषां कीर्तिमतां कीर्ति प्रजेशानां महात्मनाम् ।
प्रथयन्पृथिवीशानां ब्रह्मभूयाय गच्छति ।।४९

इस महा पुराण में चार पाद हैं—सर्व प्रथम प्रक्रिया है जो कि प्रथम पाद है—फिर कथा का परिग्रह है । फिर अनुष्वंग है और अन्त में उपोद्घात तथा उपसंहार है ।४३। इसी रीति से चार पादों वाला यह पुराण लोक सम्मत है । इस पुराण को लोकों के हित में रति रखने वाले भगवान् वायु देव ने ही साक्षात् रूप से इसको कहा है ।४४। हे श्रेष्ठतम मुने ! नैमिष क्षेत्र में एक सत्र (यज्ञ) को प्राप्त करके मुनिगण एकत्रित हुए थे तभी उनसे कहा उसका प्रसाद संसिद्ध हो गया जो भूतों की उत्पत्ति और तप से संयुत है ।४५। इस प्राधिनिकी अर्थात् प्रधान के द्वारा की हुई तथा ईश्वर के द्वारा

करायी हुई सृष्टि को भली भाँति जानकर मेधावी पुरुष कभी भी मोह को प्राप्त नहीं होता है ।४६। जो भी कोई विद्वान विप्र इस ब्रह्माजी के परम पुरातन इतिहास का श्रवण करता है अथवा श्रवण कराता है और इसका ध्यान भी करता है वह महेन्द्र देव के स्थानों में अनन्त वर्षों पर्यन्त आनन्द प्राप्त किया करता है और ब्रह्म के सायुज्य को प्राप्त करके ब्रह्म के साथ आनन्दित होता है ।४७-४८। उन प्रजाओं के स्वामी महात्माओं तथा कीर्त्तिमानों की कीर्त्ति को जो कि इस पृथिवी के ईश हैं संसार में प्रथित करके ब्रह्म के ही समान हो जाता है ।४६।

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ।
कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिना ।।५०
मन्वन्तरेश्वराणां च यः कीर्ति प्रथयेदिमाम् ।
देवतानामृषीणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ।।५१
स सर्वैर्मुच्यते पापै पुण्यं च महदाप्नुयात् ।
यश्चेदं श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि ।।५२
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।
अक्षयं सर्वकामीयं पितृंस्तच्चोपतिष्ठते ।
यस्मात्पुरा ह्यणंतीदं पुराणं तेन चोच्यते ।।५४
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्या अधीयते ।।५५
इतिहासमिमं श्रुत्वा धर्माय विदधे मतिम् ।
यावंत्यस्य शरीरेषु रोमकूपानि सर्वशः ।।५६

यह पुराण परम धन्य है—यश की वृद्धि करने वाला है—आयु के बढ़ाने वाला—परम स्मरूप और वेदों की समानता रखने वाला है। यह पुराण ब्रह्मवादी श्रीकृष्ण द्वैपायन ने ही कहा है ।५१। जो मनुष्य इस मन्वन्तरों की कीर्त्ति को प्रथित करता है तथा देवों की और भूरि द्रविण तेज वाले ऋषियों की कीर्त्ति को फैलाता है वह सभी प्रकार के पापों से छूट जाता है और महान पुण्य का लाभ प्राप्त किया करता है और जो विद्वान प्रत्येक पर्व पर इसका श्रवण कराता है और इस अन्तिम पाद को श्राद्ध में ब्राह्मणों को सुनाता है वह अक्षय और सर्वकामनाओं की पूर्ति करने वाला

पितृगणों के समीप में उपस्थित होता है। कारण यही है कि पहिले यह उसी के द्वारा कहा जाता है ।५१-५४। जो पुरुष इसकी निरुक्ति को जानता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। उसी भाँति तीनों वर्णों में जो मनुष्य इसको पढ़ते हैं इस इतिहास का श्रवण करके धर्म की बुद्धि हो जाती है और शरीर में जितने भी करोड़ रोमों के छिद्र हैं उतने ही वर्ष वह सर्ग में निवास करता है ।५५-५६।

तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणि दिवि मोदते ।
ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा दैवतैः सह मोदते ।।५७
सर्वपापहरं पुण्यं पवित्रं च यशस्वि च ।
ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने ।।५८
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पतिः ।
बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनंतरम् ।।५९
सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेंद्राय वै पुनः ।
इन्द्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ।।६०
सारस्वतस्त्रिधाम्नेऽथ त्रिधामा च शरद्वते ।
शरद्वांस्तु त्रिविष्टाय सोंऽतरिक्षाय दत्तवान् ।।६१
चर्षिणे चांतरिक्षो वै सोऽपि त्रय्यारुणाय च ।
त्रय्यारुणाद्धनंजयः स वै प्रादात्कृतंजये ।।६२
कृतंजयात्तृणंजयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ ।
गौतमाय भरद्वाजः सोऽपि निर्य्यंतरे पुनः ।।६३

शरीर में स्थित रोम कूपों के समान उतने ही सहस्र वर्षों तक स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है। फिर ब्रह्म के सायुज्य में गमन करने वाला होकर देवों के साथ में परमानन्दित हुआ करता है ।५७। यह महापुराण सभी पापों के हरण करने वाला—पुण्य स्वरूप—पवित्र और यश वाला है। ब्रह्माजी ने ही इस शास्त्र पुराण को वायु देव के लिये दिया था ।५८। उस वासुदेव से इसकी प्राप्ति उशना ने की थी। उशना से देव गुरु बृहस्पति

जी ने प्राप्त किया था। बृहस्पति ने फिर सविता को बताया था।५९। सविता ने मृत्यु को दिया था और मृत्यु ने फिर इन्द्र को दिया था। इन्द्र ने वसिष्ठ मुनि को बताया था और वसिष्ठजी सारस्वत को दिया था।५९-६०। सारस्वत ने त्रिधामा को दिया था और त्रिधामा ने शरद्वान् को दिया था। शरद्वान् ने त्रिविष्ट को दिया और उसने अन्तरिक्ष को दिया था।६१। अन्तरिक्ष ने चर्षी को बतलाया और उसने त्र्य्यारुण को दिया था। त्र्य्यारुण ने धनञ्जय को दिया था उसने कृताञ्जय को दिया था।६२। कृतञ्जय से तृणञ्जय को मिला था और इससे भरद्वाज को प्राप्त हुआ था। भरद्वाज ने गौतम को दिया था और उसने फिर निर्य्यन्तर को दिया था।६३।

निर्य्यंतरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय वै।
स ददौ सोमशुष्माय स चादात्तृणबिंदवे ॥६४
तृणबिंदुस्तु दक्षाय दक्षः प्रोवाच शक्तये।
शक्तेः पराशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवानिदम् ॥६५
पराशराज्जातुकर्ण्यस्तस्माद्द्वैपायनः प्रभुः।
द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्राप्तं द्विजोत्तम ॥६६
मया चैतत्पुनः प्रोक्तं पुत्रायामितबुद्धये।
इत्येव वाक्यं ब्रह्मादिकगुरूणां समुदाहृतम् ॥६७
नमस्कार्याश्च गुरवः प्रयत्नेन मनीषिभिः।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ॥६८
पापघ्नं नियमेनेदं श्रोतव्यं ब्राह्मणैः सदा।
नाशुचौ नापि पापाय नाप्यसंवत्सरोषिते ॥६९
नाश्रद्दधानेऽविदुषे नापुत्राय कथंचन।
नाहिताय प्रदातव्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥७०

निर्य्यन्तर ने वाजश्रव को यह बताया था और उसने सोम शुष्म को दिया था फिर उसने तृण बिन्दु के लिए दिया था।६४। तृण बिन्दु ने दक्ष को दिया था और उसने फिर शक्ति को बताया था। शक्ति से गर्भ में ही स्थित पराशर मुनि ने इसका श्रवण किया था।६५। पराशर से जातुकर्ण्य ने प्राप्त किया था फिर उससे प्रभु द्वैपायन ने प्राप्त किया था। हे द्विजोत्तम !

द्वैपायन मुनि से इस महापुराण को मैंने प्राप्त किया था।६६। फिर मैंने अमित बुद्धि पुत्र को दिया था। यह इतना वाक्य ब्रह्मा से आदि लेकर गुरु वर्गों का मैंने बता दिया है।६७। मनीषियों को प्रयत्न से इन गुरु वर्णों के लिए नमस्कार करना चाहिए। यह पुराण यशस्य—आयुष्य—पुण्य और सब अर्थों का साधक है।६८। यह पापों के हनन करने वाला है। ब्राह्मणों को सदा ही इसका श्रवण करना चाहिए। इस पुराण को जो अशुचि हो—पापी हो तथा जो एक वर्ष से भी कम वास करने वाला हो उसको नहीं बताना चाहिए।६९। जिसमें इसके प्रति श्रद्धा न हो उसको—अविद्वान् को और पुत्रहीन को भी कभी नहीं बताना चाहिए। यह परम पवित्र तथा उत्तम है अतः जो अपना हित न हो उसको भी नहीं देना चाहिए।७०।

अव्यक्तं वै यस्य योनिं वदंति व्यक्तं देहं कालमेतं गतिं च।
वह्निर्वक्त्रं चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे दिशः श्रोत्रे घ्राणमाहुश्च
वायुम् ॥७१
वाचो वेदा अंतरिक्षं शरीरं क्षितिः पादास्तारका रोमकूपाः।
सर्वाणि द्यौर्मस्तकानि त्वथो वै विद्याश्चैवोपनिषद्यस्य
पुच्छम् ॥७२
तं देवदेवं जननं जनानां यज्ञात्मकं सत्यलोकप्रतिष्ठम्।
वरं वराणां वरदं महेश्वरं ब्रह्माणमादिं प्रयतो नमस्ये ॥७३

जिसकी योनि अव्यक्त है—व्यक्त जिसका देह है—यह काल ही गति है—अग्नि मुख हैं—चन्द्र और सूर्य ही नेत्र हैं—दिशायें जिसके श्रोत्र हैं और वायु घ्राण है।७१। वाणी जिसकी वेद हैं—अन्तरिक्ष ही शरीर है—क्षिति ही पाद हैं—तारे रोम कूप हैं—द्यौ मस्तक है—विद्या अधोभाग है और उपनिषद् जिसकी कूप है।७२। उस देवों के भी देव को और जनों के जन्म स्थल को—यज्ञ स्वरूप तथा सत्यलोक में प्रतिष्ठित को—वरों के देने वालों के श्रेष्ठ वर को आदि महेश्वर ब्रह्माजी को प्रणत होकर नमस्कार करता हूँ।७३।

—

अगस्त्य यात्रा जनार्दन आविर्भाव

श्रीगणेशाय नमः—

अथ श्रीललितोपाख्यान प्रारभ्यते ।

चतुर्भुजे चन्द्रकलावतंसे कुचोन्नते कुङ्कुमरागशोणे ।

पुंड्रेक्षुपाशांकुशपुष्पवाणहस्ते नमस्ते जगदेकमातः ॥१

अस्तु नः श्रेयसे नित्यं वस्तु वामाङ्गसुन्दरम् ।

यतस्तृतीयो विदुषां तृतीयस्तु परं महः ॥२

अगस्त्यो नाम देवर्षिर्वेदवेदाङ्गपारगः ।

सर्वसिद्धान्तसारज्ञो ब्रह्मानन्दरसात्मकः ॥३

चचाराद्भुतहेतूनि तीर्थान्यायतनानि च ।

शैलारण्यापगामुख्यान्सर्वाञ्जनपदानपि ॥४

तेषु तेष्वखिलाञ्जंतूनज्ञानतिमिरावृतान् ।

शिश्नोदरपरान्दृष्ट्वा चिन्तयामास तान्प्रति ॥५

तस्य चिन्तयमानस्य चरतो वसुधामिमाम् ।

प्राप्तमासीन्महापुण्यं कांचीनगरमुत्तमम् ॥६

तत्र वारणशैलेन्द्रमेकाग्रनिलयं शिवम् ।

कामाक्षीं कलिदोषघ्नीमपूजयदथात्मवान् ॥७

हे इस जगत् की एक ही जननि ! आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम निवेदित है। आप चार भुजाओं वाली हैं आपके मस्तक में चन्द्रमा की कला का भूषण विद्यमान है—आपके अत्यन्त उन्नत उरोज हैं-आपका वर्ण कुंकुम के राग के सदृश रक्त है—पुण्ड्र-इक्षु, पाश-अंकुश और पुष्पों का बाण आपके करों में सुशोभित है ।१। आपके वाम अङ्ग में परम सुन्दर वस्तु हमारे नित्य ही कल्याण के लिए होवे । जिससे विद्वानों में तीसरे और तृतीय परम तेज विद्यमान है ।२। वह अगस्त्य नाम वाले देवर्षि हैं जो वेदों और वेदाङ्ग शास्त्रों के पारगामी विद्वान् हैं । वे सब सिद्धान्तों के सार के ज्ञाता हैं और ब्रह्मानन्द के रस के ही स्वरूप वाले हैं ।३। अद्भुतता के हेतु स्वरूप तीर्थों का और पवित्र आयतनों का जिन्होंने सञ्चरण किया था

तथा समस्त शैल–अरण्य-नदियाँ आदि प्रमुख स्थलों का एवं जनपदों का भी जिन्होंने परिभ्रमण किया है ।४। उन-उन स्थलों में जहाँ-जहाँ पर उन्होंने परिभ्रमण किया था वहाँ पर सभी जन्तुओं को ज्ञान से शून्य तथा अत्यन्त ही अन्धकार से समन्वित एक केवल उदर पूर्ति तथा काम वासना में परायण देखा था । उन्होंने यह बुरी दशा देखकर उनके विषय में चिन्तन किया था ।५। वे इसी प्रकार से चिन्तन करते हुए संचरण कर रहे थे और इस भूमि पर विचर रहे थे कि उन्हें काञ्ची नगर मिला था जो महान् पुण्यमय और अत्युत्तम था ।६। वहाँ पर इन आत्मवान् अगस्त्यजी ने वारण शैल के स्वामी और एकाग्र ध्यान में तल्लीन भगवान् शिव का तथा कलियुग के दोषों का हनन करने वाली देवी कामाक्षी का अर्चन किया था ।७।

लोकहेतोर्दयार्द्रस्य धीमतश्चिन्तनो मुहुः ।
चिरकालेन तपसा तोषितोऽभूज्जनार्दन ॥८
हयग्रीवां तनुं कृत्वा साक्षाच्चिन्मात्रविग्रहाम् ।
शङ्खचक्राक्षवलयपुस्तकोज्ज्वलबाहुकाम् ॥९
पूरयित्रीं जगत्कृत्स्नं प्रभया देहजातया ।
प्रादुर्बभूव पुरतो मुनेरमिततेजसा ॥१०
तं दृष्ट्वानन्दभरितः प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ।
विनयावनतो भूत्वा सन्तुष्टाव जगत्पतिम् ॥११
अथोवाच जगन्नाथस्तुष्टोऽस्मि तपसा तव ।
वरं वरय भद्रं ते भविता भूसुरोत्तम ॥१२
इति पृष्टो भगवता प्रोवाच मुनिसत्तमः ।
यदि तुष्टोऽसि भगवन्निमे पामरजन्तवः ॥१३
केनोपायेन मुक्ताः स्युरेतन्मे वक्तुमर्हसि ।
इति पृष्टो द्विजेनाथ देवदेवो जनार्दनः ॥१४

लोकों के कारण से दया से आर्द्र (पसीजे हुए हृदय वाले)–परमधीमान् और बारम्बार चिन्तन करने वाले उन अगस्त्य मुनि के अधिक समय तक किये हुए तप से भगवान् प्रसन्न हो गये थे ।८। हयग्रीव के शरीर को

धारण करके साक्षात् चित् (ज्ञान) ही के विग्रह वाली और शंख, चक्र, बलय और पुस्तक के धारण करने से समुज्ज्वल बाहुओं वाली तथा अपने देह से समुत्पन्न प्रभा से सम्पूर्ण जगत् जगत् को पूरित करने वाली अपने अपरिमित तेज से मुनि के आगे प्रादुर्भूत हुई थी ।९-१०। उनका दर्शन प्राप्त करके आनन्द से भरे हुए ऋषि ने उनको बारम्बार प्रणाम किया था और विनय से अवनत होकर जगत् के पति की भली भाँति स्तुति की थी ।११। इसके अनन्तर जगन्नाथ प्रभु ने कहा था—हे भूसुरों में श्रेष्ठ ! मैं आपके तप से सन्तुष्ट हो गया हूं आप किसी भी वरदान का वरण करो। तुम्हारा कल्याण होगा ।१२। जय भगवान् के द्वारा इस रीति से पूछा गया तो श्रेष्ठ मुनि ने कहा—हे भगवन् ! यदि परम सन्तुष्ट है तो यही मुझे बतलाइए कि ये पामर जन्तुगण किस उपाय से मुक्त होगे। जब इस रीति से द्विज के द्वारा पूछा गया था तो देवों के भी देव जनार्दन ने कहा था— ।१३-१४।

एष एव पुरा प्रश्नः शिवेन चरितो मम ।
अयमेव कृतः प्रश्नो ब्रह्मणा तु ततः परम् ।।१५
कृतो दुर्वाससा पश्चाद्भवता तु ततः परम् ।।१६
भवद्भिः सर्वभूतानां गुरुभूतैर्महात्मभिः ।
ममोपदेशो लोकेषु प्रथितोऽस्तु वरो मम ।।१७
अहमादिर्हि भूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः ।
सृष्टिस्थितिलयानां तु सर्वेषामपि कारकः ।।१८
त्रिमूर्तिस्त्रिगुणातीतो गुणहीनो गुणाश्रयः ।।१९
इच्छाविहारो भूतात्मा प्रधानपुरुषात्मकः ।
एवं भूतस्य मे ब्रह्मंस्त्रिजगद्रूपधारिणः ।।२०
द्विधाकृतमभूद्रूपं प्रधानपुरुषात्मकम् ।
मम प्रधानं यद्रूपं सर्वलोकगुणात्मकम् ।।२१

यह ही प्रश्न बहुत पहिले शिवजी ने मुझसे किया था। इसके पीछे ऐसा ही प्रश्न ब्रह्माजी ने भी किया था ।१५। इसके अनन्तर दुर्वासा मुनि ने यह प्रश्न किया था। इसके बाद में अब आपने भी यह प्रश्न मुझ से किया

है ।१६। यह प्रश्न जो आपने किया है इसका कारण यही है कि आप महान् आत्मा वाले हैं और समस्त प्राणियों के गुरु के ही समान है । लोकों में मेरा उपदेश ही परम प्रसिद्ध वर है ।१७। मैं समस्त प्राणियों में आदि हूँ और मैं ही आदि कर्त्ता प्रभु हूँ जो स्वयं ही हुआ हूँ । इस लोक की सृष्टि-स्थिति और संहार के करने वाला भी सबका मैं ही हूँ ।१८। मैं ही तीन मूर्त्तियाँ वाला हूँ अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु और महादेव—ये तीन मूर्त्तियाँ मेरी ही हैं जो कि मैं गुणों से पर-गुणों से रहित और गुणों का समाश्रय भी हूँ ।१९। मैं समस्त भूतों को आत्मा हूँ और मैं अपनी ही इच्छा से बिहार करने वाला हूँ । हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार के जगत् में तीन रूप धारण करने वाला हूँ ।२०। मेरा ही रूप दो प्रकार का है एक पुरुष और दूसरा प्रधान मेरा जो प्रधान नामक रूप है वह सब (सत्व-रज-तम) गुणों के ही स्वरूप वाला है ।२१।

अपरं यद्गुणातीतं परात्परतरं महत् ।
एवमेव तयोर्ज्ञात्वा मुच्यते ते उभे किमु ॥२२
तपोभिश्चिरकालोत्थैर्यमैश्च नियमैरपि ।
त्यागैर्दुष्कर्मनाशांते मुक्तिराश्वेव लभ्यते ॥२३
यद्रूपं यद्गुणयुतं तद्गुण्यैक्येन लभ्यते ।
अन्यत्सर्वं जगद्रूपं कर्मभोगपराक्रमम् ॥२४
कर्मभिर्लभ्यते तच्च तत्त्यागेनापि लभ्यते ।
दुस्तरस्तु तयोस्त्यागः सकलैरपि तापसैः ॥२५
अनपायं च सुगमं सदसत्कर्मगोचरम् ॥२६
आत्मस्थेन गुणेनैव सतां चाप्यसतापि वा ।
आत्मैक्येनैव यज्ज्ञानं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥२७
वर्णत्रयविहीनीनां पापिष्ठानां नृणामपि ।
यद्रूपध्यानमात्रेण दुष्कृतं सुकृतायते ॥२८

दूसरा मेरा स्वरूप सब गुणों से परे है और पर से भी अधिक पर हैं तथा महान् है । इस रीति से उन दोनों के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके वे दोनों ही मुक्त हो जाते हैं ।२२। चिरकाल पर्यन्त किये हुए तप-यम और

नियम तथा त्याग से दुष्कर्मों के विनाश होने के अन्त में बहुत ही शीघ्र मुक्ति प्राप्ति हो जाया करती है ।२३। जो रूप जिस गुण से युक्त होता है उन गुणों की एकता से प्राप्त किया जाता है । अन्य समस्त जगत् के स्वरूप वाला है जो कर्म—भोग और पराक्रम से संयुत होता है ।२४। जो कर्मों के द्वारा प्राप्त किया जाता है वह कर्मों के त्याग से भी पाया जाया करता है । हे तपस्विन् ! सभी के द्वारा उन दोनों का त्याग करना बड़ा ही कठिन होता है ।२५। सत् और असत् कर्मों को प्रत्यक्ष रूप से जान लेना निर्विघ्न और सुगम होता है ।२६। आत्मा में स्थित गुण से जो सत् हो या असत् हो । आत्मा के साथ एकता से जो भी ज्ञान है वह समस्त सिद्धियों के देने वाला होता है ।२७। तीन वर्णों से जो हीन हैं और महान् पापी हैं ऐसे मनुष्यों को भी जिसके केवल ध्यान से ही दुष्कृत भी सुकृत के स्वरूप में परिणत हो जाया करता है ।२८।

येऽर्चयंति परां शक्तिं विधिनाऽविधिनापि वा ।
न ते संसारिणो नूनं मुक्ता एव न संशयः ।।२६
शिवो वा यां समाराध्य ध्यानयोगबलेन च ।
ईश्वरः सर्वसिद्धानामर्द्धनारीश्वरोऽभवत् ।।३०
अन्येऽब्जप्रमुखा देवाः सिद्धास्तद्ध्यानवैभवात् ।
तस्मादशेषलोकानां त्रिपुराराधनं विना ।।३१
न स्तो भोगापवर्गौ तु यौगपद्येन कुत्रचित् ।
तन्मनास्तद्गतप्राणस्तद्याजी तद्गतेहकः ।।३२
तादात्म्येनैव कर्माणि कुर्वन्मुक्तिमवाप्स्यसि ।
एतद्रहस्यमाख्यातं सर्वेषां हितकाम्यया ।।३३
सन्तुष्टेनैव तपसा भवतो मुनिसत्तम ।
देवाश्च मुनयः सिद्धा मानुषाश्च तथापरे ।
त्वन्मुखांभोजतोऽवाप्य सिद्धिं यांतु परात्पराम् ।।३४
इति तस्य वचः श्रुत्वा हयग्रीवस्य शार्ङ्गिणः ।
प्रणिपत्य पुनर्वाक्यमुवाच मधुसूदनम् ।।३५

जो मानव पराशक्ति का अर्चन किया करते हैं चाहे वे विधि के साथ करें या बिना ही विधि से करें वे संसारी नहीं होते हैं अर्थात् बारम्बार जीवन—मरण की घोर यातनाएं सहन करने वाले नहीं रहते हैं और निश्चय ही वे मुक्त हो जाया करते हैं— इसमें लेशमात्र भी जिसकी आराधना करके और ध्यान तथा योग के बल से अर्चना करके ईश्वर भी जो सभी सिद्धों के स्वामी हैं अर्धनारीश्वर हो गये थे।२६-३०। अन्य देव भी जिनमें अब्ज प्रमुख हैं उसके ध्यान के ही वैभव से ही सिद्ध हो गये हैं। इस कारण से यह सिद्ध होता है कि समस्त लोगों को त्रिपुरदेव का ही आराधन मुख्य है। इसके बिना कुछ भी नहीं होता है।३१। सुखों का उपभोग और मोक्ष दोनों ही एक साथ किसी भी प्रकार से नहीं प्राप्त हुआ करते हैं। उनमें ही मन के लगाने वाला—उसमें अपने प्राणों को संलग्न रखने वाला—उसका ही यजन करने वाला तथा अपनी इच्छा को उसमें ही केन्द्रित करने वाला मानव तादात्म्य भाव से अर्थात् उसमें ही सर्वतोभाव से एकता धारण करने वाला पुरुष कर्मों को करता हुआ मुक्ति को प्राप्त कर लेगा। यही रहस्य मैंने सबके हित की कामना से कह दिया है।३२-३३। हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! मैं आपके तप से परम सन्तुष्ट हो गया हूँ। इसी से मैंने आपको यह बतला दिया है। देवगण-मुनिमण्डल-सिद्धसमुदाय—मनुष्य तथा दूसरे लोग आपके मुख कमल से भी पर से भी पर सिद्धि को प्राप्त कर लेवें।३४। भगवान् हयग्रीव शार्ङ्गी के इस वचन का श्रवण करके अगस्त्य मुनि ने उनको प्रणिपात किया था और फिर मधुसूदन प्रभु से कहा था।३५।

भगवन्कीदृशं रूपं भवता यत्पुरोदितम् ।
किंविहारं किंप्रभावमेतन्मे वक्तुमर्हसि ॥३६

हयग्रीव उवाच—

एषोंऽशभूतो देवर्षे हयग्रीवो ममापरः ।
श्रोतुमिच्छसि यद्यत्त्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हति ॥३७
इत्यादिश्य जगन्नाथो हयग्रीवं तपोधनम् ।
पुरतः कुम्भजातस्य मुनेरंतरधाद्धरिः ॥३८
ततस्तु विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा तपोधनः ।
हयग्रीवेण मुनिना स्वाश्रमं प्रत्यपद्यत ॥३९

आप मुझको बतलाइए।३६। हयग्रीव जी ने कहा—हे देवर्ष ! यह अंशभूत मेरा अपर हयग्रीव है। आप जो-जो भी श्रवण करना चाहते हैं वही यह कहने के योग्य होता है। जगन्नाथ प्रभु इतना ही तपोधन हयग्रीव को आदेश देकर अगस्त्य मुनि के ही आगे अन्तर्हित हो गये थे।३७-३८। इसके पश्चात् अगस्त्य मुनि बड़े ही विस्मित हुए और उनके रोम-रोम प्रसन्नता से उद्गत हो गये थे। फिर वे तप के ही मन वाले मुनि हयग्रीव मुनि के साथ अपने आश्रम में प्राप्त हो गये थे।३९।

—×—

।। हयग्रीव अगस्त्य संवाद ।।

अथोपवेश्य चैवैनमासने परमाद्भुते ।
हयाननमुपागत्यागस्त्यो वाक्यं समब्रवीत् ।।१
भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वसिद्धान्तवित्तम ।
लोकाभ्युदयहेतुर्हि दर्शनं हि भवादृशाम् ।।२
आविर्भावं महादेव्यास्तस्या रूपान्तराणि च ।
विहाराश्चैव मुख्या ये तान्नो विस्तरतो वद ।।३
हयग्रीव उवाच—
अनादिरखिलाधारा सदसत्कर्मरूपिणी ।
ध्यानैकदृश्या ध्यानांगी विद्यांगी हृदयास्पदा ।।४
आत्मैक्याद्व्यक्तिमायाति चिरानुष्ठानगौरवात् ।।५
आदौ पादुरभूच्छक्तिर्ब्रह्मणो ध्यानयोगतः ।
प्रकृतिर्नाम सा ख्याता देवानामिष्टसिद्धिदा ।।६
द्वितीयमुदभूद्रूपं प्रवृत्तेऽमृतमंथने ।
सर्वसंमोहजनकमवाङ्मनसगोचरम् ।।७

इसके अनन्तर उनको परम अद्भुत आसन पर बिठाकर फिर हयानन के समीप में उपस्थित होकर अगस्त्य जी ने यह वाक्य कहा था।

।१। हे भगवन् ! आप तो सभी धर्मों के ज्ञाता हैं और समस्त सिद्धान्तों के परम श्रेष्ठ जानने वाले हैं। आप सरीखे महापुरुषों का दर्शन तो लोकों के अभ्युदय का ही हेतु हुआ करता है।२। महादेवी का आविर्भाव और उनके अन्य स्वरूप तथा मुख्य बिहार जो भी हैं उनको अब मेरे समक्ष में विस्तार से वर्णन कीजिए ।३। श्री हयग्रीवजी ने कहा—सत् और असत् कर्मों के रूप वाली जो पूर्ण धारा है वह अनादि है। ध्यान के ही अङ्गों वाली—विद्या ही जिसका शरीर है और उसका हृदय ही निवास का स्थल है वह ध्यान के ही द्वारा देखने के योग्य है। बहुत काल पर्यन्त अनुष्ठान के गौरव से जब अपनी आत्मा के साथ उसकी एकता हो जाती है तभी वह प्रकट हुआ करती है।४-५। आदि काल में ब्रह्माजी के ध्यान के योग से वह शक्ति प्रादुर्भूत हुई थी। उसका प्रकृति–यह नाम विख्यात हुआ था जो देवों के इष्ट की सिद्धि देने वाली थी ।६। उसका दूसरा स्वरूप उस समय में उद्‌भूत हुआ था जिस समय में देवों और असुरों के द्वारा अमृत के प्राप्त करने के लिये समुद्र का मन्थन करना प्रवृत्त हुआ था। जो भगवान् शिव को भी मोह उत्पन्न करने वाला था जो कि वाणी और मन के भी अगोचर हैं।७।

यद्दर्शनादभूदीशः सर्वज्ञोऽपि विमोहितः ।
विसृज्य पार्वतीं शीघ्रं तया रुद्रोऽतनोद्रतम् ।।८
तस्यां वै जनयामास शास्तारमसुरार्दनम् ।।९

अगस्त्य उवाच–

कथं वै सर्वभूतेशो वशी मन्मथशासनः ।
अहो विमोहितो देव्या जनयामास चात्मजम् ।।१०

हयग्रीव उवाच–

पुरामरपुराधीशो विजयश्रीसमृद्धिमान् ।
त्रैलोक्यं पालयामास सदेवासुरमानुषम् ।।११
कैलासशिखराकारं गजेंद्रमधिरुह्य सः ।
चचाराखिललोकेषु पूज्यमानोऽखिलैरपि ।
तं प्रमत्तं विदित्वाथ भवानीपतिरव्ययः ।।१२

दुर्वाससमथाहूय प्रजिघाय तदंतिकम् ।
खण्डाजिनधरो दंडी धूलिधूसरविग्रहः ।
उन्मत्तरूपधारी च ययौ विद्याधराध्वना ।।१३
एतस्मिन्नन्तरे काले काचिद्विद्याधरांगना ।
यदृच्छया गता तस्य पुरश्चारुतराकृतिः ।।१४

जिसके दर्शन करने से ईश्वर जो सर्वज्ञ हैं वे भी विमोहित हो गये थे। उन्होंने पार्वती जी को भी त्याग करके शीघ्रता से उसके द्वारा रुद्ध होकर रति का विस्तार किया था।८। उसमें असुरों के अर्दन करने वाले एक शासक को उसने उत्पन्न किया था।६। अगस्त्यजी ने कहा—शिव तो समस्त प्राणियों के स्वामी हैं तथा वशी और कामदेव को भी भस्मीभूत कर देने वाले हैं फिर वे कैसे देवी के द्वारा विमोहित हो गये थे और उन्होंने उसमें एक पुत्र को भी जन्म ग्रहण करा दिया था ?।१०। हयग्रीव ने कहा—पहिले समय में अमर पुर का स्वामी विजय की श्री तथा समृद्धि से समन्वित था और देव-असुर और मनुष्यों के समुदाय से युक्त त्रैलोक्य का पालन किया करता था।११। वह कैलास के शिखर के समान समुच्च आकार वाले गजेन्द्र पर समारूढ़ होकर सभी लोकों में विचरण करने लग गया था और सबके द्वारा उसकी पूजा की जाती थी। भवानी को पति ने उसको प्रमत्त जानकर जो कि अविनाशी हैं उसके मद का हनन करने की इच्छा की थी। फिर दुर्वासा मुनि को बुलाकर उसके समीप में भेजा था। जो खण्ड मृगचर्म के धारण करने वाले थे और दण्डधारी थे। उनका सब शरीर धूल से मटीला हो रहा था। उनका स्वरूप उन्मत्त जैसा था। वे विद्याधरों के मार्ग से गये थे।१२-१३। इसी बीच में उस समय में कोई विद्याधर की अङ्गना वहाँ पर यदृच्छा से उसके ही आगे समागत हो गयी थी। जिसकी आकृति अधिक सुन्दर थी।१४।

चिरकालेव तपसा तोषयित्वा परांबिकाम् ।
तत्समर्पितमाल्यं च लब्ध्वा संतुष्टमानसा ।।१५
तां दृष्ट्वा मृगशावाक्षीमुवाच मुनिपुङ्गवः ।
कुत्र वा गम्यते भीरु कुतो लब्धमिदं त्वया ।।१६
प्रणम्य सा महात्मानमुवाच विनयान्विता ।

चिरेण तपसा ब्रह्मन्देव्या दत्तं प्रसन्नया ॥१७

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः सोऽपृच्छन्माल्यमुत्तमम् ।
पृष्टमात्रेण सा तुष्टा ददौ तस्मै महात्मने ॥१८

कराभ्यां तत्समादाय कृतार्थोऽस्मीति सत्वरम् ।
दधौ स्वशिरसा भक्त्या तामुवाचातिहर्षितः ॥१९

ब्रह्मादीनामलभ्यं यत्तल्लब्धं भाग्यतो मया ।
भक्तिरस्तु पदांभोजे देव्यास्तव समुज्ज्वला ॥२०

भविष्यच्छोभनाकारे गच्छ सौम्ये यथासुखम् ।
सा तं प्रणम्य शिरसा ययौ तुष्टा यथागतम् ॥२१

उस अंगना ने बहुत लम्बे समय तक तप करके परा अम्बिका को प्रसन्न कर लिया था और उस अम्बिका के द्वारा अर्पित एक माला को प्राप्त किया था तथा उससे वह परम सन्तुष्ट मन वाली सुप्रसन्न थी ।१५। उस हिरन के समीप सुन्दर नेत्रों वाली को देखकर मुनिश्रेष्ठ ने उससे कहा था—हे भीरु ! आप कहाँ जा रही हो ? और आपने यह कहाँ से प्राप्त की है ? ।१६। उसने महात्माजी को प्रणाम करके नम्रता से कहा—हे ब्राह्मण ! बहुत समय तक तपश्चर्या करने से देवी ने प्रसन्न होकर मुझे यह दी है ।१७। उसके वचन को सुनकर फिर उसने उस उत्तम माला के बाबत पूछा था । केवल पूछने ही से परम प्रसन्न हो गयी थी और फिर उस माला को उस महात्मा को दिया था ।१८। उस महात्मा ने उसको अपने दोनों हाथों से लेकर यह कहते हुए कि मैं कृतार्थ हो गया उसको भक्तिभाव अपने शिर में धारण कर लिया था और फिर अति तर्षित होकर उससे कहा था ।१९। जो ब्रह्मादिक के लिए भी अलभ्य है वह आज मैंने भाग्य से प्राप्त की है । आपकी देवी के चरण कमलों में समुज्ज्वल भक्ति होवे ।२०। हे सौम्ये ! परम शोभन आकार वाली आप हैं अब सुख पूर्वक गमन करें । उस अंगना ने भी मुनि को प्रणाम करके और चरणों में शिर रखकर वह जैसे आई थी प्रसन्न होती हुई चली गई थी ।२१।

[illegible]षयित्वा स तां भूयो ययौ विद्याधराङ्गना ।
विद्याधरवधूहस्तात्प्रतिजग्राह वल्लकीम् ॥२२

दिव्यस्रगनुलेपांश्च दिव्यान्याभरणानि च ।
क्वचिद्दधौ क्वचिद्गृह्णन्क्वचिद्गायन्क्वचिद्धसन् ॥२३
स्वेच्छाविहारी स मुनिर्ययौ यत्र पुरंदरः ।
स्वकरस्थां ततो मालां शक्राय प्रददौ मुनिः ॥२४
तां गृहीत्वा गजस्कन्धे स्थापयामास देवराट् ।
गजस्तु तां गृहीत्वाथ प्रेषयामास भूतले ॥२५
तां दृष्ट्वा प्रेषितां मालां तदा क्रोधेन तापसः ।
उवाच न धृता माला शिरसा तु मयार्पिता ॥२६
त्रैलोक्यैश्वर्यमतेन भवता ह्यवमानिता ।
महादेव्या धृता या तु ब्रह्माद्यैः पूज्यते हि सा ॥२७
त्वया यच्छासितो लोकः सदेवासुरमानुषः ।
अशोभनो ह्यतेजस्को मम शापाद्भविष्यति ॥२८

उस अङ्गना को वहाँ से विदा करके वह मुनि फिर विद्याधरों के मार्ग से गये थे। विद्याधर की वधू के हाथ से वल्लकी का प्रतिग्रहण किया था ।२२। और दिव्य स्रक्-अनुलेप और गन्ध तथा परम दिव्य आभरण भी ग्रहण किये थे। कहीं पर तो इनको धारण कर लेते थे और कहीं पर हाथों में ही ग्रहण करते थे—कहीं पर गान करते जाते थे और कभी हँसते जाते थे ।२३। अपनी ही इच्छा से विहार करने वाले वह मुनि वहाँ पर पहुँचे थे जहाँ पुरन्दर विराजमान थे। फिर उस मुनि ने अपने करों में स्थित उस माला को इन्द्रदेव को समर्पित कर दी थी ।२४। उसको ग्रहण करके देवराज ने उस माला को हाथी के कन्धे पर स्थापित कर दिया। उस गज ने उसको लेकर भूतल में भेज दिया था ।२५। उस समय में उस माला को भूतल में प्रेषित की हुई देखकर तपस्वी को बड़ा क्रोध आ गया था और उसने कहा था कि मेरे द्वारा समर्पित की हुई माला को इन्द्र देव ने शिर पर धारण किया है ।२६। त्रैलोक्य के ऐश्वर्य से प्रमत्त आपने मेरी दी हुई माला का अपमान किया है। जिस माला को महादेवी ने धारण किया था और वह ब्रह्मा आदि के द्वारा पूजी जाया करती है ।२७। तूने देव असुर और मनुष्यों का लोक शासित किया है वह अब मेरे शाप से अशोभन तेज से रहित हो जायगा ।२८।

इति शप्त्वा विनीतेन तेन संपूजितोऽपि सः ।
तूष्णीमेव ययौ ब्रह्मन्भाविकार्यमनुस्मरन् ॥२९
विजयश्रीस्ततस्तस्य दैत्यं तु बलिमन्वगात् ।
नित्यश्रीर्नित्यपुरुषं वासुदेवमथान्वगात् ॥३०
इन्द्रोऽपि स्वपुरं गत्वा सर्वदेवसमन्वितः ।
विषण्णचेता निःश्रीकश्चिन्तयामास देवराट् ॥३१
अथामरपुरे दृष्ट्वा निमित्तान्यशुभानि च ।
बृहस्पतिं समाहूय वाक्यमेतदुवाच ह ॥३२
भगवन्सर्वधर्मज्ञ त्रिकालज्ञानकोविद ।
दृश्यतेऽदृष्टपूर्वाणि निमित्तान्यशुभानि च ॥३३
किंफलानि च तानि स्युरुपायो वाऽथ कीदृशः ।
इति तद्वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रस्य बृहस्पतिः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं धर्मार्थसहितं शुभम् ॥३४
कृतस्य कर्मणो राजन्कल्पकोटिशतैरपि ।
प्रायश्चित्तोपभोगाभ्यां विना नाशो न जायते ॥३५

इस रीति से शाप देकर जब वह शान्त हुए तो विनीत उस इन्द्र ने उनका पूजन भी किया था किन्तु हे ब्रह्मन् ! आगे होने वाले कार्य का अनुस्मरण करते हुए वह चुपचाप चले गये थे ।२९। इसके अनन्तर उस इन्द्र की जो विजय की श्री थी वह असुरराज बलि का अनुगमन कर गयी थी और और जो नित्य श्री थी वह नित्य पुरुष वासुदेव के समीप में चली गयी थी ।३०। इन्द्र भी अपने पुर में पहुँच कर सब देवगणों से युक्त होता हुआ श्री से विहीन होकर ही विषाद से युक्त चित्त वाला हो गया था और वह चिन्ता करने लगा था ।३१। इसके पश्चात् उस देवों के पुर में परमाशुभ निमित्तों को उसने देखा था । फिर अपने गुरु बृहस्पतिजी को बुलाकर यह वाक्य उनसे कहा—।३२। हे भगवान् ! आप तो सभी धर्मों के ज्ञाता हैं और तीनों कालों के ज्ञान के महान् पंडित हैं । अब तो ऐसे अशुभ निमित्त दिखलाई दे रहे हैं जो पहिले कभी भी नहीं देखे गये थे । इन सबका क्या

फल होगा और इनका क्या कैसा भी कोई उपाय भी है ? बृहस्पतिजी ने देवराज के इस वाक्य का श्रवण कर फिर उन्होंने धर्मार्थ के सहित परम शुभ वाक्य में उत्तर दिया था ।३३-३४। हे राजन् ! किये हुए कर्मों का फल सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी बिना प्रायश्चित्त और उपभोगों के कभी भी विनाश नहीं होता है ।३५।

इन्द्र उवाच–

कर्म वा कीदृशं ब्रह्मन्प्रायश्चितं च कीदृशम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तन्मे विस्तरतो वद ।।३६

बृहस्पतिरुवाच–

हननस्तेयहिंसाश्च पानमन्यांगनारतिः ।
कर्म पंचविधं प्राहुर्दुष्कृतं धरणीपतेः ।।३७
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रगोतुरंगखरोष्ट्रकाः ।
चतुष्पदोऽण्डजाब्जाश्च तिर्यंचोऽनस्थिकास्तथा ।।३८
अयुतं च सहस्रं च शतं दश तथा दश ।
दशपंचत्रिरेकार्धमानुपूर्व्यादिदं भवेत् ।।३९
ब्रह्मक्षत्रविशां स्त्रीणामुक्तार्धं पापमादिशेत् ।
पितृमातृगुरुस्वामिपुत्राणां चैव निष्कृतिः ।।४०
गुर्वाज्ञया कृतं पापं तदाज्ञालंघनेऽर्धकम् ।
दशब्राह्मणभृत्यर्थमेकं हन्याद्द्विजं नृपः ।।४१
शतब्राह्मणभृत्यर्थं ब्राह्मणो ब्राह्मणं तु वा ।
पंचब्रह्मविदामर्थे वैश्यमेकं तु दंडयेत् ।।४२

इन्द्रदेव ने कहा—हे ब्रह्मन् ! वह कर्म किस प्रकार का है और प्रायश्चित्त कैसा है ? वह सब मैं सुनने का इच्छुक हूँ । वह मुझे विस्तार के साथ बतलाइए ।३६। बृहस्पति जी ने कहा—राजा के लिये पाँच तरह के दुष्कृत कहे गये हैं—किसी का हनन करना—स्तेय (चोरी)—हिंसा—मदिरा पान और अन्य अङ्गना के साथ में रति करना ।३७। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, गौ—अश्व, गधा, ऊँट, चतुष्पद—अण्डज—अब्ज—तिर्यक्—

अनास्थिक ये योनियां हैं–इनमें अयुत, सहस्र–शत–दश–दश, पाँच, तीन, एक और आधा क्रम से आरम्भ से अन्त से अन्त तक जन्म धारण करना पड़ता है ।३८-३६। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और स्त्रियों का ऊपर में कहे हुए अर्थ में पाप समादिष्ट होता है । पिता-माता-गुरु–स्वामी और पुत्रों की निष्कृति होती है ।४०। गुरु की आज्ञा से कृत पाप उसकी आज्ञालंघन में अर्थ पाता है । राजा को दश ब्राह्मणों की भृति (भरण) के लिए चाहिए कि एक द्विजका हनन कर देवे । तात्पर्य यह है कि यदि दश ब्राह्मणों की जीविका की रक्षा होती है तो एक द्विज का हनन कर देना चाहिए ।४१। सौ ब्राह्मणों की भृति के लिए अथवा ब्राह्मण को ब्राह्मण तथा पाँच ब्रह्म (वेद) के ज्ञाताओं के लिए एक वैश्य को दण्ड राजा को दे देना चाहिए ।४२।

वैश्यं दशविशामर्थे विशां वा दंडयेत्तथा ।
तथा शतविशामर्थे द्विजमेकं तु दंडयेत् ।।४३
शूद्राणां तु सहस्राणां दंडयेद्ब्राह्मणं तु वा ।
तच्छतार्थं तु वा वैश्यं तद्दशार्द्धं तु शूद्रकम् ।।४४
बंधूनां चैव मित्राणामिष्टार्थे तु त्रिपादकम् ।
अर्थकलत्रपुत्रार्थे स्वात्मार्ये न तु किंचन ।।४५
आत्मानं हन्तुमारब्धं ब्राह्मणं क्षत्रियं विशम् ।
गां वा तुरगमन्यं वा हत्वा दोषैर्न लिप्यते ।।४६
आत्मदारात्मजभ्रातृबंधूनां च द्विजोत्तम ।
क्रमाद्दशगुणो दोषो रक्षणे च तथा फलम् ।।४७
भूपद्विजश्रोत्रियवेदविद्व्रतोवेदान्तविद्वेदविदां विनाशे ।
एकद्विपंचाशदथायुतं च स्यान्निष्कृतिश्चेति
वदंति संतः ।।४८
तेषां च रक्षणविधौ हि कृते च दाने पूर्वोदितोत्तरगुणं
प्रवदन्ति पुण्यम् ।
तेषां च दर्शनविधौ नमने च कार्ये शुश्रूषणेऽपि चरतां
सदृशांश्च तेषाम् ।।४९

दश वैश्यों की सुरक्षा के लिये एक वैश्य अथवा वैश्यों को दण्ड दे देना चाहिए। अथवा शत (सौ) वैश्यों का हित सम्पादन होता हो तो एक द्विज को दण्ड दे देना चाहिए।४३। सहस्र शूद्रों के लिए अथवा ब्राह्मण को दण्डित करे। उसके शतार्ध वैश्य को या उसका दशार्ध शूद्र को दण्ड देवे।४४। बन्धुओं के और मित्रों के अभीष्ट अर्थ में त्रिपाद अर्थात् तीन भाग में और कलत्र तथा पुत्र के लिए भी तीन भाग अर्थ का करे अपनी आत्मा के लिए कुछ भी न करे।४५। जो आत्मा को अर्थात् अपने को हनन करना आरम्भ करे वह चाहे ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य कोई भी हो अथवा अश्व—गौ या अन्य को मारता हो तो उसका हनन करके भी दोषों से लिप्त नहीं होता है।४६। हे द्विज श्रेष्ठ ! अपनी स्त्री-पुत्र—भाई और बन्धु का हनन करने में दशगुना दोष होता है और रक्षा करने में उतना ही फल भी होता है।४७। राजा—द्विज—श्रोत्रिय—वेदवेत्ता—व्रती—वेदान्त ज्ञाता और वेदों के मनीषी के विनाश करने में एक–दो–पचास और अयुत गुनी निष्कृति (प्रायश्चित्त) होता है—ऐसा सन्त पुरुष कहते हैं।४८। और इनकी रक्षा करने की विधि में और दान करने में पूर्व में जो कहा है उससे उत्तर गुना पुण्य कहते हैं। उनके दर्शन की विधि में तथा नमन करने में तथा इनकी सुश्रूषा करने में और इनके सदृश समाचरण करने वालों की भी शुश्रूषा आदि करने में भी वैसा ही फल होता है।४९।

सिंहव्याघ्रमृगादीनि लोकहिंसाकराणि तु ।
नृपो हन्याच्च सततं देवार्थे ब्राह्मणार्थके ॥५०
आपत्स्वात्मार्थके चापि हत्वा मेध्यानि भक्षयेत् ॥५१
नात्मार्थे पाचयेदन्नं नात्मार्थे पाचयेत्पशून् ।
देवार्थे ब्राह्मणार्थे वा पचमानो न लिप्यते ॥५२
पुरा भगवती माया जगदुज्जीवनोन्मुखी ।
ससर्ज सर्वदेवांश्च तथैवासुरमानुषान् ॥५३
तेषां संरक्षणार्थाय पशूनपि चतुर्दश ।
यज्ञाश्च तद्विधानानि कृत्वा चैनानुवाच ह ॥५४

सिंह-व्याघ्र और मृग आदि जो लोगों की हिंसा करने वाले हैं उनको राजा देवों के तथा ब्राह्मणों के लिए निरन्तर हनन कर सकता है।५०।

आवृत्ति के समय में अपने लिए भी हनन करके मेधों (पवित्रों) का भक्षण कर लेवे ।५१। अपने अन्न का पाचन न करे और पशुओं का भी पाचन नहीं करना चाहिए। देवों तथा ब्राह्मणों के लिये यदि पकाया भी जावे तो शेष से लिप्त नहीं होता है ।५२। पहिले इस जगत् के उज्जीवन की ओर प्रवृत्ति वाली भगवती माया ने देवों—असुरों और मानवों का सृजन किया था। उनकी रक्षा के लिए चौदह पशुओं की भी रचना की थी उसी भाँति यज्ञों की तथा उनके विधानों की भी रचना करके इनको बताया था ।५३-५४।

स्तेयपान वर्णन

इन्द्र उवाच—

भगवन्सर्वमाख्यातं हिंसाद्यस्य तु लक्षणम् ।
स्तेयस्य लक्षणं किं वा तन्मे विस्तरतो वद ॥१
बृहस्पतिरुवाच—
पापानामधिकं पापं हननं जीवजातिनाम् ।
एतस्मादधिकं पापं विश्वस्ते शरणं गते ॥२
विश्वस्य हत्वा पापिष्ठं शूद्रं वाप्यंत्यजातिजम् ।
ब्रह्महत्याधिकं पापं तस्मान्नास्त्यस्य निष्कृतिः ॥३
ब्रह्मज्ञस्य दरिद्रस्य कृच्छार्जितधनस्य च ।
बहुपुत्रकलत्रस्य तेन जीवितुमिच्छतः ।
तद्द्रव्यस्तेयदोषस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४
विश्वस्तद्रव्यहरणं तस्याप्यधिकमुच्यते ।
विश्वस्ते वाप्यविश्वस्ते न दरिद्रधनं हरेत् ॥५
ततो देवद्विजातीनां हेमरत्नापहारकम् ।
यो हन्यादविचारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥६
गुरुदेवद्विजसुहृत्पुत्रस्वात्मसुखेषु च ।
स्तेयादधः क्रमेणैव दशोत्तरगणं त्वघम् ॥७

इन्द्र देव ने कहा—हे भगवन् ! आपने हिंसादि का सम्पूर्ण लक्षण बता दिया है । अब स्तेय का क्या लक्षण है—यह भी आप मेरे सामने विस्तार के साथ वर्णन कीजिए ।१। समस्त पापों में अधिक पाप जीव जातियों का हनन करना ही होता है । इससे भी अधिक पाप उसके हनन करने का होता है जो विश्वस्त होवे तथा शरण में समागत हो गया हो ।२। विश्वास देकर पापिष्ठ शूद्र वा अन्त्य जातिज हो जो उसका हनन करता है वह ब्रह्म हत्या से भी अधिक पाप होता है जिसका कोई भी प्रायश्चित्त ही नहीं होता है ।३। जो ब्रह्मज्ञ हो–दरिद्र हो और बड़ी ही कठिनाई से जिसने धन का अर्जन किया हो तथा बहुत पुत्रों और कलत्र वाला हो एवं उसी धन से जो जीवित रहने की इच्छा रखता हो उसके द्रव्य की चोरी इतना महान दोष होता है कि फिर उसका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं होता है ।४। जो विश्वस्त हो उसके द्रव्य के हरण करने का पाप उससे भी अधिक होता है । विश्वस्त हो अथवा अविश्वस्त हो दरिद्र के धन का हरण कभी नहीं करना चाहिए ।५। देवों और द्विजतियों के सुवर्ण तथा रत्नों के अपहरण करने वाले को जो बिना ही विचार किये मार डालता है उसको अश्वमेध यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त होता है ।६। गुरु–देव-द्विज–पुत्र–और आत्म सुख के धन की चोरी करता है उसका अधःक्रम से ही दश गुना उत्तर अघ होता है ।७।

अंत्यजात्पादजाद्वैश्यात्क्षत्रियाद्ब्राह्मणादपि ।
दशोत्तरगुणैः पापैर्लिप्यते धनहारकः ॥८

अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ।
रहस्यातिरहस्यं च सर्वपापप्रणाशनम् ॥९
पुरा कांचीपुरे जातो वज्राख्यो नाम चोरकः ।
तस्मिन्पुरवरे रम्ये सर्वैश्वर्यसमन्विताः ।
सर्वे नीरोगिणो दांताः सुखिनो दययांचिताः ॥१०
सर्वैश्वर्यसमृद्धेऽस्मिन्नगरे स तु तस्करः ।
स्तोकास्तोकक्रमेणैव बहुद्रव्यमपाहरत् ॥११
तदरण्येऽवटं कृत्वा स्थापयामास लोभतः ।
तद्गोपनं निशार्धायां तस्मिन्दूरं गते सति ॥१२
किरातः कश्चिदागत्य तं दृष्ट्वा तु दशांशतः ।
जहाराविदितस्तेन काष्ठभारं वहन्ययौ ॥१३

सोऽपि तच्छिलयाच्छाद्य मृद्भिरापूर्य यत्नतः ।
पुनश्च तत्पुरं प्रायाद्वज्रोऽपि धनतृष्णया ।।१४

अन्त्यज–शूद्र–वैश्य–क्षत्रिय और ब्राह्मण से भी दश गुणोत्तर पापों से धन के हरण करने वाला लिप्त हुआ करता है ।८। इस विषय में एक पुराना इतिहास उदाहृत करते हैं । यह रहस्यों का भी अधिक रहस्य है और पापों का विनाश कर देने वाला है ।९। प्राचीन काल में काञ्चीपुर में एक वज्र नाम वाला चोर उत्पन्न हुआ था । वह पुर ऐसा था कि वहाँ पर बड़ी रम्यता थी और वहाँ के निवासी जन सभी प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त—नीरोग—दान्त–सुखी–और दयान्वित थे ।१०। यह नगर सब तरह के ऐश्वर्य से समन्वित था उससे वह तस्कर ने स्तोकास्तोक अर्थात् न्यूनाधिक क्रम से बहुत से धन का अपहरण किया था ।११। उसको वह जङ्गल में एक गड्ढा बनाकर लोभ से रख दिया करता था । उसका गोपन आधी रात में किया करता था । जब धन रख चला गया था तब किसी किरात ने वहाँ आकर उसको देखा था उसका दशम भाग उसमें से किरात ने ले लिया था । वह तस्कर इसको नहीं जान पाया था । वह किरात तो काष्ठ का भार लेकर चला गया था ।१२-१३। वह तस्कर भी एक शिला से उस गड्ढे को ढक कर और मिट्टी से भरकर फिर उसी नगर में धन की तृष्णा से चला गया था ।१४।

एवं बहुधनं हृत्वा निश्चिक्षेप महीतले ।
किरातोऽपि गृहं प्राप्य बभाषे मुदितः प्रियाम् ।।१५
मया काष्ठं समाहर्तुं गच्छता पथि निर्जने ।
लब्धं धनमिदं भीरु समाधत्स्व धनार्थिनि ।।१६
तच्छ्रुत्वा तत्समादाय निधायाभ्यंतरे ततः ।
चिंतयंती ततो वाक्यमिदं स्वपतिमब्रवीत् ।।१७
नित्यं संचरते विप्रो मामकानां गृहेषु यः ।
मां विलोक्यैवमचिराद् बहुभाग्यवती भवेत् ।।१८
चातुर्वर्ण्यासु नारीषु स्थेयं चेद्राजवल्लभा ।
किं तु भिल्ले किराते च शैलूषे चांत्यजातिजे ।
लक्ष्मीर्न तिष्ठति चिरं शाताद्वल्मीकजन्मनः ।।१९

तथापि बहुभाग्यानां पुण्यानामपि पात्रिणे ।
दृष्टपूर्वं तु तद्वाक्यं न कदाचिद्वृथा भवेत ॥२०

अथ वात्मप्रयासेन कृच्छ्राद्यल्लभ्यते धनम् ।
तदेव तिष्ठति चिरादन्यद्गच्छति कालतः ॥२१

इस रीति से बहुत सा धन चोर कर वज्र ने भूमि में रख दिया उस किरात ने भी घर में आकर प्रसन्न होते हुए अपनी पत्नी से कहा था ।१५। मैंने काष्ठ का समाहरण करने के लिए वन में गमन करते हुए मार्ग में यह धन प्राप्त किया है । हे भीरु ! आपको तो धन की इच्छा है इसे अब अपने पास रक्खो ।१६। यह श्रवण करके उसने उस धन को ले लिया था और घर में अन्दर रख दिया था । फिर मन में कुछ चिन्तन करती हुई उसने अपने पति से यह वाक्य कहा था ।१७। जो यह विप्र हमारे घरों में नित्य ही सञ्चरण किया करता है । वह मुझ को देखकर कि यह थोड़े ही समय में बहुत भाग्य वाली हो गई है । चारों वर्णों की नारियों में यह यदि राज वल्लभा हो–ऐसा ही कहेंगे । किन्तु भील-किरात-शैलूष और अन्त्य जातीय पुरुष में वाल्मीकि के शापसे यह लक्ष्मी अधिक समय तक नहीं स्थित रहा करती है ।१८-१९। तो भी बहुत भाग्य वाले पुण्यों के पात्र के लिए यह वाक्य पूर्व में देखा गया है और यह कभी भी वृथा नहीं होता ।२०। अथवा जो धन अपने प्रयास से कष्ट के साथ प्राप्त किया जाता है वह ही धन स्थिर होता है और अधिक समय पर्यन्त ठहरता है । इसके अतिरिक्त जो अनायास मिल जाता है वह कुछ ही समय में चला जाया करता है ।२१।

स्वयमागतवित्तं तु धर्मार्थे विनियोजयेत् ।
कुरुष्वैतेन तस्मात्वं वापीकूपादिकाञ्छुभान् ॥२२

इति तद्वचनं श्रुत्वा भाविभाग्यप्रबोधितम् ।
बहूदकसमं देशं तत्रकव्यलोथयत् ॥२३

निर्ममेऽथ महेंद्रस्य दिग्भागे विमलोदकम् ।
सुबहुद्रव्यसंसाध्यं तटाकं चाक्षयोदकम् ॥२४

दत्तेषु कर्मकारिभ्यो निखिलेषु धनेषु च ।
असंपूर्णं तु तत्कर्म दृष्ट्वा चिताकुलोऽभवत् ॥२५

तं चौरं वज्रनामानमज्ञातोऽनुचराम्यहम् ।
तेनैव बहुधा क्षिप्तं धनं भूरि महीतले ॥२६
स्तोकं स्तोकं हरिष्यामि तत्र तत्र धनं बहु ।
इति निश्चित्य मनसा तेनाज्ञातस्तमन्वगात् ॥२७
तथैवाहृत्य तद्द्रव्यं तेन सेतुमपूरयत् ।
मध्ये जलावृतस्तेन प्रसादश्चापि शार्ङ्गिणः ॥२८

यह धन तो बिना ही श्रम के आपके पास आगया है। इसका तो धर्मार्थ आपको विनियोग करना चाहिए। अतः आप इस धन से शुभ कर्म बावड़ी—कूप और तालाब आदि के निर्माण करने में व्यय कर दीजिए।२२। अपनी पत्नी के इस वचन का श्रवण करके जो कि आगे होने वाले भाग्य को सुबोधित करने वाला था उस किरात ने जहाँ-तहाँ पर देखा था कि सभी स्थल अधिक जल वाले थे।२३। फिर ऐन्द्री दिशा में उसने एक विमल उदक वाला तलाब जो बहुत अधिक धन से बनाये जाने वाला था बनवाया था जिसमें जल कभी भी क्षीण नहीं होता था।२४। सम्पूर्ण धन काम करने वालों को दे देने पर भी वह काम अपूर्ण देखकर वह चिन्ता से बेचैन हो गया था।२५। उसने सोचा कि उस वज्र नामक चोर के पीछे उसके बिना जाने हुए मैं गमन करूँ। उसने ही प्रायः भूमि में अधिक धन डाला ही होगा।२६। वहाँ-वहाँ से ही थोड़ा-थोड़ा करके बहुत-सा धन हरण करूँगा। ऐसा ही मन में निश्चय करके वह उसके बिना जाने हुए उसी के पीछे गया था।२७। उसी भाँति से उसने उस धन का आहरण किया था और उस सेतु को पूर्ण कर दिया था। उस तालाब के मध्य में जिसके चारों ओर जल था, एक भगवान् विष्णु का प्रासाद भी बनवाया था।२८।

———

अमृत मन्थन वर्णन

इन्द्र उवाच—

भगवन्सर्वधर्मज्ञ त्रिकालज्ञानवित्तम ।
दुष्कृतं तत्प्रतीकारो भवता सम्यगीरितः ॥१
केन कर्मविपाकेन ममापदियमागता ।
प्रायश्चित्तं च किं तस्य गदस्व वदतां वर ॥२

बृहस्पतिरुवाच—
काश्यपस्य ततो जज्ञे दित्यां दनुरिति स्मृतः ।
कन्या रूपवती नाम धात्रे तां प्रददौ पिता ।।३
तस्याः पुत्रस्ततो जातो विश्वरूपो महाद्युतिः ।
नारायणपरो नित्यं वेदवेदांगपारगः ।।४
ततो दैत्येश्वरो वव्रे भृगुपुत्रं पुरोहितम् ।
भवानधिकृतो राज्ये देवानामिव वासवः ।।५
ततः पूर्वे च काले तु सुधर्मायां त्वयि स्थिते ।
त्वया कश्चित्कृतः प्रश्नः ऋषीणां सन्निधौ तदा ।।६
संसारस्तीर्थयात्रा वा कोऽधिकोऽस्ति तयोर्गुणः ।
वदंतु तद्विनिश्चित्य भवन्तो मदनुग्रहात् ।।७

इन्द्र देव ने कहा—हे भगवन् ! आप तो सभी धर्मों के ज्ञान रखने वाले हैं और भूत वर्त्तमान और भविष्य के ज्ञान वाले हैं । आपने दुष्कृत और उसका प्रतीकार भली भाँति से वर्णित कर दिया है ।१। अब आप मुझे यही बताने की कृपा करें मुझे यह आपत्ति किस कर्म के विपाक से प्राप्त हुई है और इसका प्रायश्चित्त क्या हो सकता है ? आप तो बोलने वालों में भी परम श्रेष्ठ हैं ।२। बृहस्पतिजी ने कहा—काश्यप मुनि की पत्नी दिति में दनु नाम वाली कन्या ने जन्म ग्रहण किया था । वह कन्या रूपवती थी । पिता ने उसको धाता को दी थी ।३। उसका पुत्र फिर महती द्युति वाला विश्व-रूप उत्पन्न हुआ था वह भगवान नारायण में ही परायण था तथा वेद वेदाङ्गों का पारगामी विद्वान था ।४। इसके उपरान्त उस दैत्येश्वर ने भृगु के पुत्र पुरोहितजी से कहा था कि आप देवों में वासव की ही भांति राज्य में अधिकृत हैं ।५। फिर पूर्वकाल में देवों की सभा में आप जब स्थित थे तब आपने ऋषियों की सन्निधि में कोई प्रश्न किया था ।६। संसार अथवा तीर्थ यात्रा इन दोनों में कौन अधिक गुण वाला है । अब आप मेरे पर अनुग्रह करके उसका निश्चय करके मुझे बतलाइए ।७।

तत्प्रश्नस्योत्तरं वक्तुं ते सर्वं उपचक्रिरे ।
तत्पूर्वमेव कथितं मया विधिबलेन वै ।।८

तीर्थयात्रा समधिका संसारादिति च द्रुतम् ।
तच्छ्रुत्वा ते प्रकुपिताः शेपुर्मामृषयोऽखिलाः ॥९
कर्मभूमि व्रजेः शीघ्रं दारिद्र्येण मितैः सुतैः ।
एवं प्रकुपितैः शप्तः खिन्नः कांचीं समाविशम् ॥१०
पुरीं पुरोधसा हीनां वीक्ष्य चिंताकुलात्मना ।
भवता सह देवैस्तु पौरोहित्यार्थमादरात् ॥११
प्रार्थितो विश्वरूपस्तु बभूव तपतां वरः ।
स्वस्रीयो दानवानां तु देवानां च पुरोहितः ॥१२
नात्यर्थमकरोद्वैरं दैत्येष्वपि महातपाः ।
बभूवतुस्तुल्यबलौ तदा दैत्येन्द्रवासवौ ॥१३
ततस्त्वं कुपितो राजन्स्वस्रीयं दानवेशितुः ।
हंतुमिच्छन्नगाश्चाशु तपसः साधनं वनम् ॥१४

उस प्रश्न का उत्तर बताने के लिए उनने सबने उपक्रम किया था। उसके पूर्व ही मैंने विधाता के बल से पूर्व में ही शीघ्र कहा था कि तीर्थयात्रा संसार से समधिक है। यह सुनकर वे सब ऋषिगण बहुत प्रकुपित हो गये थे और उन्होंने मुझको शाप दे दिया था।८-९। कर्म भूमि में मित सुतों के सहित दरिद्रता से युक्त होकर गमन कर जाओ। इस तरह कुपित ऋषियों के द्वारा शाप दिया हुआ मैं काञ्ची में प्रवेश कर गया था।१०। चिन्ता से विकल पुरोहितजी ने हीन पुरी का अवलोकन करके आपके द्वारा देवों के सहित बड़े ही आदर से पौरोहित्य कर्म के लिए उनसे प्रार्थना की गयी थी।११। तापसों में श्रेष्ठ विश्व रूप से जब प्रार्थना की गयी थी तो वह दानवों का तो बहिन का पुत्र था और देवों का पुरोहित था।१२। उस महान तपस्वी ने दैत्यों में भी अत्यधिक बैर नहीं किया था। उस समय में दैत्येन्द्र और इन्द्र दोनों तुल्य बल वाले हुए थे।१३। इसके पश्चात् हे राजन्! दानवेश्वर के स्वस्रीय पर आप कुपित हो गये थे और उसका हनन करने की इच्छा रखते हुए शीघ्र ही तप के साधन वन में चला गया था।१४।

तमासनस्थं मुनिभिस्त्रिशृंगमिव पर्वतम् ।
त्रयी मुखरदिग्भागं ब्रह्मानन्दैकनिष्ठितम् ॥१५

सर्वभूतहितं तं तु मत्वा चेशानुकूलितः ।
शिरांसि यौगपद्येन छिन्नान्यासंस्त्वयैव तु ॥१६
तेन पापेन संयुक्तः पीडितश्च मुहुर्मुहुः ।
ततो मेरुगुहां नीत्वा बहूनब्दान्हि संस्थितः ॥१७
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा ज्ञात्वा तु मुनिवाक्यतः ।
पुत्रशोकेन संतप्तस्त्वां शशाप रुषान्वितः ॥१८
निःश्रीको भवतु क्षिप्रं मम शापेन वासवः ।
अनाथकास्ततो देवा विषण्णा दैत्यपीडिताः ॥१६
त्वया मया च रहिताः सर्वे देवाः पलायिताः ।
गत्वा तु ब्रह्मसदनं नत्वा तद्वृत्तमूचिरे ॥२०
ततस्तु चिंतयामास तदघस्य प्रतिक्रियाम् ।
तस्य प्रतिक्रियां वेत्तुं न शशाकात्मभूस्तदा ॥२१

मुनियों के साथ आसन पर स्थित उसको तीन शिखरों वाले पर्वत के समान वेदत्रयी से दिशाओं का भाग मुखरित हो रहा था और वह ब्रह्मानन्द में एकनिष्ठ था तथा सब भूतों का हितकर था उसको ऐसा मान कर ईशानुकूलित था। आपने ही एक साथ उसके शिरों को काट दिया था ।१५-१६। उस पाप से संयुत बार-बार पीड़ित हैं। फिर मेरु की गुहा में जाकर बहुत वर्षों तक रहा था ।१७। इसके अनन्तर उसके वचन का श्रवण करके और मुनि के वाक्य से ज्ञान प्राप्त करके पुत्र शोक से सन्तप्त होकर क्रोध से समन्वित उसने आपको शाप दे दिया था ।१८। इन्द्र मेरे शाप से शीघ्र ही श्री से विहीन हो जावे। फिर सभी देवगण बिना नाथ वाले हो गये थे और विषाद से युक्त हो गये थे तथा दैत्यों के द्वारा उत्पीड़ित हो गये थे ।१६। तुम्हारे द्वारा और मेरे द्वारा रहित सभी देव भाग गये थे। वे सब देवगण ब्रह्माजी के निवास स्थान में जाकर प्रणाम करके सम्पूर्ण वृत्त उनसे कह दिया था ।२०। इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने उसके पाप की प्रतिक्रिया का चिन्तन किया था किन्तु उस समय में ब्रह्माजी उसकी कोई भी प्रतिक्रिया न जान सके थे ।२१।

ततो देवैः परिवृतो नारायणमुपागमन् ॥२२

नत्वा स्तुत्वा चतुर्वक्त्रस्तद्वृत्तांतं व्यजिज्ञपत् ।
विचिंत्य सोऽपि बहुधा कृपया लोकनायकः ॥२३

तदघं तु त्रिधा भित्वा त्रिषु स्थानेष्वथार्पयत् ।
स्त्रीषु भूम्यां च वृक्षेषु तेषामपि वरं ददौ ॥२४

तदा भर्तृसमायोगं पुत्रावाप्तिमृतुष्वपि ।
छेदे पुनर्भवत्वं तु सर्वेषामपि शाखिनाम् ॥२५

खातपूर्तिं धरण्याश्च प्रददौ मधुसूदनः ।
तेष्वघं प्रबभूवाशु रजोनिर्यासमूषरम् ॥२६

निर्गतो गह्वरात्तस्मात्त्वमिंद्रो देवनायकः ।
राज्यश्रियं च संप्राप्तः प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥२७

तेनैव सांत्वितो धाता जगाद च जनार्दनम् ।
मम शापो वृथा न स्यादस्तु कालांतरे मुने ॥२८

इसके अनन्तर जब कोई भी प्रतिक्रिया समझ में नहीं आयी तो ब्रह्माजी देवों से घिरे हुए ही भगवान् नारायण के समीप में पहुँचे थे ।२२। सर्व प्रथम उन्होंने नारायण को प्रणाम किया था फिर स्तुति की थी और इसके उपरान्त यह वृत्तान्त उनकी सेवा में कहा था । उन लोकों के नायक प्रभु ने कृपाकर बहुत विचिन्तिन करके विचार किया था ।२३। उसके अघ को तीन भागों में विभक्त करने तीन स्थानों में अर्पित कर दिया था । स्त्रियों में—वृक्षा में और भूमि में उसको रख दिया था और उनको वरदान भी दिया था । उस अघ के देने के बदले में ही तीनों को तीन बरदान दिये थे ।२४। उस समय में जब ऋतुकाल हो तो स्वामी के साथ संयोग से पुत्र की प्राप्ति हो जायगी । वृक्षों का छेदन में पुनः जन्म धारण कर लेना हो जायगा ।२५। भूमि में गर्त्त कर दिया जाये तो वह अपने आप ही कुछ समय में भर जायगा—ये तीनों को तीन बरदान मधुसूदन प्रभु ने दिये थे । उसका अघ शीघ्र ही तीनों में प्रभूत हो गया था—स्त्रियों ये रजोदर्शन-वृक्षों में गोंद और भूमि में ऊपर में उसी अघ के कारण हुआ था ।२६। तुम इन्द्र उस गहन अघ से निकल गये थे और देव नायक के फिर परमेष्ठी के प्रसाद से राज्य की श्री को प्राप्त करने वाले हो गये थे ।२७। उसके द्वारा धाता को इस प्रकार सान्त्वना दी थी और जनार्दन प्रभु से कहा था । हे मुने ! मेरा शाप वृथा नहीं होगा और अन्य काल में होगा ।२८।

भगवांस्तद्वचः श्रुत्वा मुनेरमिततेजसः ।
प्रहृष्टो भाविकार्यज्ञस्तूष्णीमेव तदा ययौ ॥२६
एतावंतमिमं कालं त्रिलोकीं पालयन्भवान् ।
ऐश्वर्यमदमत्तत्वात्कैलासाद्रिमपीडयत् ॥३०
सर्वज्ञेन शिवेनाथ प्रेषितो भगवान्मुनिः ।
दुर्वासास्त्वन्मदभ्रंशं कर्त्तुकामो शशाप ह ॥३१
एकमेव फलं जातमुभयोः शापयोरपि ।
अधुना पश्यनिःश्रीकं त्रैलोक्यं समजायत ॥३२
न यज्ञाः संप्रवर्त्तंते न दानानि च वासव ।
न यमा नापि नियमा न तपांसि च कुत्रचित् ॥३३
विप्राः सर्वेऽपि निःश्रीका लोभोपहृतचेतसः ।
निःसत्वा धैर्यहीनाश्च नास्तिकाः प्रायशोऽभवन् ॥३४
निरौषधिरसा भूमिर्निर्वीर्या जायतेतराम् ।
भास्करो धूसराकारश्चन्द्रमाः कांतिवर्जितः ॥३५

उन अपरिमित तेज वाले मुनि के इस वचन का श्रवण करके भगवान उस समय में चुप चाप ही वहाँ से चले गये थे क्योंकि ये तो आगे होने वाले कार्य का ज्ञान रखने वाले थे।२६। आप इतने समय तक त्रिलोकी का पालन करते हुए ऐश्वर्य के मद से मत्तता होने के कारण से आपने कैलाश पर्वत को पीड़ित किया था।३०। इसके अनन्तर सर्वज्ञ भगवान शिव ने भगवान मुनि को भेजा था। दुर्वासा जी ने आपके मद को भ्रंश करने की ही इच्छा से शाप दिया था।३१। इन दोनों शापों का एक फल हुआ है। अब देखिए यह त्रैलोक्य श्री से रहित हो गया।३२। हे वासव ! न तो अब यज्ञ संप्रवृत्त हो हो रहे हैं और न दान ही दिये जा रहे हैं और इस समय में तो कहीं पर भी यम-नियम और तपश्चर्या कुछ भी नहीं हैं।३३। सभी विप्र श्री से रहित हैं और इनके हृदय में लोभ ऐसा बैठ गया है कि इनका चित्त उपहृत सा हो गया है। इनमें सत्व नाम मात्र को भी नहीं है—ये धैर्य से हीन हो गये हैं तथा बहुधा ये सब नास्तिक हो गये हैं। जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते हैं वे नास्तिक होते हैं।३४। यह

भूमि औषधियों के रस से विहीन है और अधिकतया वीर्य होना हो गयी है। यह सूर्य भी धूसर आकार वाला है तथा चन्द्रमा में कान्ति का अभाव दिखाई देना है।३५।

निस्तेजस्को हविर्भोक्ता मरुद्धूलिकृताकृतिः।
न प्रसन्ना दिशां भागा नभो नैव च निर्मलम् ॥३६
दुर्बला देवताः सर्वा विभांत्यन्यादृशा इव।
विनष्टप्रायमेवास्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३७
हयग्रीव उवाच—
इत्थं कथयतोरेव बृहस्पतिमहेंद्रयोः।
मलकाद्या महादैत्याः स्वर्गलोकं बबाधिरे ॥३८
नंदनोद्यानमखिलं चिच्छिदुर्बलगर्विताः।
उद्यानपालकान्सर्वानायुधैः समताडयन् ॥३९
प्राकारमवभिद्यैव प्रविश्य नगरांतरम्।
मंदिरस्थान्सुरान्सर्वानत्यंतं पर्यपीडयन् ॥४०
आजह्रुरप्सरोरत्नान्यशेषाणि विशेषतः।
ततो देवाः समस्ताश्च चक्रुर्भृशमबाधिताः ॥४१
तादृशं घोषमाकर्ण्य वासवः प्रोज्झितासनः।
सर्वैरनुगतो देवैः पलायनपरोऽभवत् ॥४२

हवि का भोक्ता अग्नि तेजसे शून्य है तथा मरुत् धूलि कृत आकृति वाला है। समस्त दिशायें प्रसन्न नहीं हैं और नभो मण्डल में निर्मलता का अभाव है।३६। सब देवगण भी परम दुर्बल कुछ और ही जैसे विभात हो रहे हैं। यह पूर्ण चराचर त्रैलोक्य विनष्ट युग्म सा ही हो गया है।३७। हयग्रीवजी ने कहा—इस रीति से बृहस्पति और महेन्द्र आलाप कर ही रहे थे कि महान दैत्यों ने स्वर्ग को बाधित कर दिया था।३८। बल के गर्व वाले दैत्यों ने नन्दन वन को पूर्णतया छेदन कर दिया था। जो उद्यान के पालक थे उन सबको दैत्यों ने आयुधों से प्रताड़ित किया था।३९। जो स्वर्ग के चारों ओर प्राकार भित्ति थी उसका भेदन करके नगर के भीतर प्रवेश कर गये थे। अन्दर जो मन्दिरों में संस्थित देवगण थे उनको अत्यन्त ही पीड़ित

किया था ।४०। विशेष रूप से जो रत्नों के समान अप्सराएँ थीं उनका हरण कर लिया था । इसके उपरान्त सभी देवगण बहुत ही बाधित कर दिए थे ।४१। उस प्रकार का जो बड़ा भारी शोर हुआ था उसको सुनकर इन्द्र ने अपना आसन त्याग दिया था और सब देवों के साथ में वहाँ से भाग जाने में तत्पर हो गया था ।४२।

ब्राह्मं धाम समभ्येत्य विषण्णवदनो वृषा ।
यथावत्कथयामास निखिलं दैत्यचेष्टितम् ॥४३
विधातापि तदाकर्ण्य सर्वदेवसमन्वितम् ।
हृतश्रीकं हरिहयमालोक्येदमुवाच ह ॥४४
इन्द्रत्वमखिलैर्देवैर्मुकुन्दं शरणं व्रज ।
दैत्यारातिर्जगत्कर्ता स ते श्रेयो विधास्यति ॥४५
इत्युक्त्वा तेन सहितः स्वयं ब्रह्मा पितामहः ।
समस्तदेवसहितः क्षीरोदधिमुपाययौ ॥४६
अथ ब्रह्मादयो देवा भगवंतं जनार्दनम् ।
तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिः सर्वलोकमहेश्वरम् ॥४७
अथ प्रसन्नो भगवान्वासुदेवः सनातनः ।
जगाद सकलान्देवाञ्जगद्रक्षणलंपटः ॥४८
श्रीभगवानुवाच—
भवतां सुविधास्यामि तेजसंवोपबृंहणम् ।
यदुच्यते मयेदानीं युष्माभिस्तद्विधीयताम् ॥४९

ब्रह्माजी के धाम में जाकर विषाद से युक्त मुख वाले इन्द्र ने जो कुछ भी दैत्यों ने किया था वह सभी ज्यों का त्यों कह दिया था ।४३। विधाता भी उसको सुनकर सब देवों के सहित और हृतश्री वाले हरिहय को देखकर यह बोले थे ।४४। हे इन्द्र ! अब आप सब देवों के साथ भगवान मुकुन्द की शरण में चले जाओ । वही दैत्यों के विनाशक और इस जगत के कर्त्ता हैं और वही तुम्हारा कल्याण करेंगे ।४५। इतना कहकर पितामह ब्रह्माजी उसके तथा समस्त देवों के सहित क्षीर सागर में गये थे ।४६। इसके अनन्तर ब्रह्मा आदि देवों ने भगवान जनार्दन की जो सब लोकों के महेश्वर हैं बहुत

ही श्रेष्ठ वाणियों के द्वारा स्तुति की थी।४७। इसके अनन्तर सनातन वासुदेव भगवान प्रसन्न हुए थे और इस जगत की रक्षा करने में विशेष संसक्त प्रभू ने सम्पूर्ण देवों से कहा था।४८। श्री भगवान ने कहा—आप लोगों का उपबृंहण मैं तेज के ही द्वारा कर दूंगा। अब मेरे द्वारा जो भी कहा जाता है आप लोगों को वह करना चाहिए।४९।

ओषधिप्रवराः सर्वाः क्षिपत क्षीरसागरे।
असुरैरपि संधाय सममेव च तैरिह ॥५०
मंथानं मंदरं कृत्वा कृत्वा योक्त्रं च वासुकिम्।
मयि स्थिते सहाये तु मथ्यताममृतं सुराः ॥५१
समस्तदानवाश्चापि वक्तव्याः सांत्वपूर्वकम्।
सामान्यमेव युष्माकमस्माकं च फलं त्विति ॥५२
मथ्यमाने तु दुग्धाब्धौ या समुत्पद्यते सुधा।
तत्पानाद् बलिनो यूयममर्त्याश्च भविष्यथ ॥५३
यथा दैत्याश्च पीयूषं नैतत्प्राप्स्यंति किंचन।
केवलं क्लेशवंतश्च करिष्यामि तथा ह्यहम् ॥५४
इति श्रीवासुदेवेन कथिता निखिलाः सुराः।
संधानं त्वतुलैर्दैत्यैः कृतवंतस्तदा सुराः।
नानाविधौषधिगणं समानीय सुरासुराः ॥५५
क्षीराब्धिपयसि क्षिप्त्वा चंद्रमोऽधिकनिर्मलम्।
मन्थानं मंदरं कृत्वा कृत्वा योक्त्रं तु वासुकिम्।
प्रारेभिरे प्रयत्नेन मंथितुं यादसां पतिम् ॥५६

इस क्षीर सागर में आप लोग असुरों के भी साथ में सन्धि अर्थात् मेल-जोल करके सब उनके भी साथ में समस्त परम श्रेष्ठ औषधियाँ डाल दो।५०। और मन्दराचल को मन्थान बनाकर अर्थात् मन्थन करने का साधन बनाकर तथा वासुकि नामक सर्पराज को योक्त अर्थात् मथने की डोरी करके सब देवगण मेरे सहायक होने पर अमृत का मथन करो अर्थात् अमृत निकालो।५१। सान्त्वना के साथ आपको समस्त दानवों से भी इस कार्य को

सम्पन्न कराने के लिए कहना चाहिए। यह उन्हें बताओ कि इसके करने से जो भी कुछ फल होगा वह तो हम और आपको सभी को सामान्य ही होगा अर्थात् उसको हम और आप सभी प्राप्त करेंगे ।५२। इस क्षीरसागर के मन्थन किये जाने पर जो सुधा उत्पन्न होगी उस अमृत के पान करने से आप लोग बलशाली और न मरण वाले हो जाओगे ।५३। जिस प्रकार से ये दैत्यगण उस अमृत को किञ्चित मात्र भी न प्राप्त कर पावेंगे और केवल मन्थन करने में क्लेश वाले ही होंगे उस प्रकार का उपाय तो मैं कर दूँगा ।५४। यह भगवान् वासुदेव के द्वारा समस्त सुरगणों में कहा गया था तब सब सुरगणों ने उन अतुल दैत्यों के साथ सन्धि की थी। फिर अनेक प्रकार की औषधियाँ सुरो और असुरों ने एकत्रित करके वहाँ पर प्राप्त की थी ।५५। उस क्षीर सागर के जल में डालकर चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल मन्दराचल को मन्थन करने का साधन और वासुकि सर्प को उसको डोरी बनाया था। फिर सभी ने मिल-जुलकर क्षीर सागर के मन्थन करने का कार्य बड़े ही प्रबल प्रयत्न से प्रारम्भ कर दिया था ।५६।

वासुकेः पुच्छभागे तु सहिताः सर्वदेवताः ।
शिरोभागे तु दैतेया नियुक्तास्तत्र शौरिणा ॥५७
बलवंतोऽपि ते दैत्यास्तन्मुखोच्छ्वासपावकैः ।
निर्दग्धवपुषः सर्वे निस्तेजस्कास्तदाभवन् ॥५८
पुच्छदेशे तु कर्षंतो मुहुराप्यायिताः सुराः ।
अनुकूलेन वातेन विष्णुना प्रेरितेन तु ॥५९
आदिकूर्माकृतिः श्रीमान्मध्ये क्षीरपयोनिधेः ।
भ्रमतो मंदराद्रेस्तु तस्याधिष्ठानतामगान् ॥६०
मध्ये च सर्वदेवानां रूपेणान्येन माधवः ।
चकर्ष वासुकिं वेगाद्दैत्यमध्ये परेण च ॥६१
ब्रह्मरूपेण तं शैलं विधायाक्रांतवारिधिम् ।
अपरेण च देवर्षिर्महता तेजसा मुहुः ॥६२
उपबृंहितवान्देवानन्येन ते बलशालिनः ।
तेजसा पुनरन्येन बलात्कारसहेन सः ॥६३

वासुकि सर्प के पूँछ के भाग में तो हित के साथ समस्त देवगण और उसके शिर के हिस्से में सब दैत्यगण भगवान् ने ही नियुक्त किये थे ।५७। यद्यपि दैत्यगण बहुत बलवान् थे तो भी उस सर्प के मुख के उच्छ्वासों की अग्नि से उनके समस्त शरीर निर्दग्ध हो गये थे और उस समय में वे बिल्कुल ही तेज से क्षीण हो गये थे ।५८। भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित अनुकूल वायु से पूँछ के भाग का कर्षण करते हुए देवगण बार-बार आप्यायित (सन्तृप्त) हो रहे थे ।५९। भगवान् आदि कूर्म के आकार वाले बनकर क्षीरसागर के मध्य में भ्रमण करते हुए मन्दर पर्वत के अधिष्ठान बन गये थे जिस पर वह पर्वत टिक रहा था। मध्य में सब देवों के दूसरे स्वरूप से माधव दिखाई दे रहे थे। दूसरे रूप से दैत्यों के मध्य में उन्होंने भी बड़े वेग से वासुकि का कर्षण किया था। ब्रह्म के रूप से जिसने सागर को आक्रान्त कर दिया था उस शैल को धारण किया था और एक दूसरे रूप से देवर्षि ने महान् तेज के द्वारा देवों को सबल बना दिया था ।६०-६२। भगवान् ने देवों का बलवर्धन किया था जिसके वे बली बने रहें और फिर बलात्कारके सहन करने वाले तेज से सभी को कार्य सम्पन्न करने की शक्ति प्रदान की थी ।६३।

उपबृंहितवान्नागं सर्वशक्तिजनार्दनः ।
मथ्यमाने ततस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः ॥६४
आविर्बभूव पुरतः सुरभिः सुरपूजिता ।
मुदं जग्मुस्तदा देवा दैतेयाश्च तपोधन ॥६५
मथ्यमाने पुनस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः ।
किमेतदिति सिद्धानां दिवि चिंतयता तदा ॥६६
उत्थिता वारुणी देवी मदाल्लोलविलोचना ।
असुराणां पुरस्तात्सा स्मयमाना व्यतिष्ठत ॥६७
जगृहुर्नैव तां दैत्या असुराश्चाभवंस्ततः ।
सुरा न विद्यते येषां तेनैवासुरशब्दिताः ॥६८
अथ सा सर्वदेवानामग्रतः समतिष्ठत ।
जगृहुस्तां मुदा देवाः सूचिताः परमेष्ठिना ।

सुराग्रहणतोऽप्येते सुरशब्देन कीर्तिता: ।।६६
मथ्यमाने ततो भूय: पारिजातो महाद्रुम: ।
आविरासीत्सुगंधेन परितो वासयञ्जगत् ।।७०

सर्वशक्ति शाली जनार्दन प्रभु ने उस नाग वासुकि की भी शक्ति का वर्धन किया था। फिर देवों और दानवों के द्वारा क्षीरसागर के मन्थन किये जाने पर।६४। फिर आगे अर्थात् सबसे पूर्व सुरों की पूजित सुरभि प्राविर्भूत हुई थी। हे तपोधन ! उसका अवलोकन करके उस समय में देवगण और दैत्यगण सभी प्रसन्नता से भर गये थे।६५। फिर उस क्षीर सागर के मन्थन करने पर जो कि देवों और दानवों के द्वारा किया गया था, उस समय में सिद्धगण यही चिन्तन कर रहे थे कि यह क्या वस्तु है।६६। तब उस क्षीर सागर से वारुणी देवी उत्थित हुई थी जिसके मद के कारण परम चञ्चल नेत्र थे। वह असुरों के आगे मुस्कुराती हुई संस्थित हो गयी थी।६७। दैत्यों ने उसका ग्रहण नहीं किया था। तभी से वे असुर हो गये थे क्योंकि सुरा ग्रहण करने वाले नहीं हुए थे जिनके पास सुरा नहीं है उसी से वे असुर शब्द से कहे गये थे।६८। इसके पश्चात् वह समस्त देवों के सामने स्थित हो गयी थी। परमेष्ठी के द्वारा संकेतित होकर उन देवों ने बड़े ही आनन्द के साथ उसको ग्रहण कर लिया था। सुरा के ही ग्रहण करने से ये लोग सुर शब्द से कीर्त्तित हुए थे।६९। फिर मन्थन किये जाने पर महान् द्रुम परिजात प्रकट हुआ था जो अपनी सुगन्ध से सम्पूर्ण जगत् को सुवासित कर रहा था।७०।

अत्यर्थसुन्दराकारा धीराश्चाप्सरसां गणा: ।
आविर्भूताश्च देवर्षे सर्वलोकमनोहरा: ।।७१
तत: शीतांशुरुदभूत्तं जग्राह महेश्वर: ।
विषजातं तदुत्पन्नं जगृहुर्नागजातय: ।।७२
कौस्तुभाख्यं ततो रत्नमाददे तज्जनार्दन: ।
तत: स्वपत्रगंधेन मदयंती महौषधी: ।
विजया नाम संजज्ञे भैरवस्तामुपाददे ।।७३
ततो दिव्यांबरधरो देवो धन्वंतरि: स्वयम् ।
उपस्थित: करे बिभ्रदमृताढ्यं कमंडलुम् ।।७४

ततः प्रहृष्टमनसो देवा दैत्याश्च सर्वतः ।
मुनयश्चाभवंस्तुष्टास्तदानीं तपसां निधे ॥७५

ततो विकसितांभोजवासिनीवरदायिनी ।
उत्थिता पद्महस्ता श्रीस्तस्मात्क्षीरमहार्णवात् ॥७६

अथ तां मुनयः सर्वे श्रीसूक्तेन श्रियं पराम् ।
तुष्टुवुस्तुष्टहृदया गंधर्वाश्च जगुः परम् ॥७७

विश्वाचीप्रमुखाः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
गङ्गाद्याः पुण्यनद्यश्च स्नानार्थमुपतस्थिरे ॥७८

फिर हे देवर्षे ! अत्यधिक सुन्दर आकृति वाली सब लोकों में मन को हरण करने वाली और अप्सराओं के गण आविर्भूत हुए थे ।७१। इसके पश्चात् शीतांशु (चन्द्रमा) प्रकट हुआ था जिसको महेश्वर भगवान् ने मस्तक पर धारण करने के लिये ग्रहण कर लिया था । फिर महा कालकूट विष उत्पन्न हुआ था जिसका ग्रहण नाग जातियों ने किया था ।७२। इसके अनन्तर कौस्तुभ मणि जिसका नाम है वह रत्न निकला था उसको भगवान् जनार्दन ने ले लिया था । इसके पश्चात् अपने पत्रों की गन्ध से मद उत्पन्न करती हुई एक महौषधि आविर्भूत हुई थी उसका विजया नाम रक्खा गया था और भैरव ने उसका उपादान किया ।७३। इसके उपरान्त परम दिव्य व शस्त्रों के धारण करने वाले देव आविर्भूत हुए थे जो स्वयं ही धन्वन्तरि वे अपने कर में एक अमृत से परिपूर्ण कमंडल लिए हुए ही उपस्थित हुए थे ।७४। हे तपों के निधे ! फिर देवगण-दैत्यवर्ग और मुनिगण सबके सब प्रसन्न मन वाले तथा परम सन्तुष्ट हुए थे ।७५। इसके बाद उत्फुल्ल कमलों के अन्दर निवास करने वाली—वरदान देने वाली–हाथों में पद्म धारण किये हुए श्री देवी उस क्षीर सागर से उठकर बाहिर आयी थी ।७६। फिर तो सभी मुनिगणों ने उस परा देवी श्री का श्रीसूक्त के द्वारा स्तवन किया था । और परम सन्तुष्ट हृदय वाले गन्धर्वों ने बहुत सुन्दर गान किया था ।७७। जिनमें विश्वाची प्रमुख थे उन सभी ने गान किया था । और अप्सराओं के समूह ने श्री देवी के आगे नृत्य किया था । गंगा आदि जो परम पुण्यमयी सरिताएँ थी वे सभी स्नान के लिए समुपस्थित हो गयी थीं ।७८।

अष्टौ दिग्दंतिनश्चैव मेध्यपात्रस्थितं जलम् ।
आदाय स्नापयांचक्रुस्तां श्रियं पद्मवासिनीम् ॥७९

तुलसीं च समुत्पन्नां पराध्यामैक्यजां हरेः ।
पद्ममालां ददौ तस्यै मूर्तिमान्क्षीरसागरः ॥८०
भूषणानि च दिव्यानि विश्वकर्मा समर्पयत् ।
दिव्यमाल्यांबरधरा दिव्यभूषणभूषिता ।
ययौ वक्षःस्थलं विष्णोः सर्वेषां पश्यतां रमा ॥८१
तुलसी तु धृता तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
पश्यति स्म च सा देवी विष्णुवक्षःस्थलालया ।
देवान्दयार्द्रया दृष्ट्या सर्वलोकमहेश्वरी ॥८२

आठ जो दिग्गज हैं अर्थात् आठों दिशाओं को बांध कर रोकने वाले आठ दन्ती हैं। वे सब पवित्र पात्रों में जल भरकर उस पद्मों में निवास करने वाली श्री स्नपन करा रहे थे ।७६। मूर्त्तिमान् क्षीर सागर ने हरि के साथ श्रेय को प्राप्त हुई समुत्पन्न तुलसी को तथा पद्म की माला उस देवी के लिये अर्पित की थी।८०। विश्वकर्मा ने परमाद्भुत एवं दिव्य भूषण उसकेलिए समर्पित किये थे । परम उत्तम माला और वस्त्रों के धारण करने वाली एवं दिव्य भूषणों से विभूषिता वह श्री देवी सबके देखते-देखते भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में चली गयी थी ।८१। प्रभविष्णु श्री विष्णु ने तुलसी को तो धारण कर लिया था । भगवान् के वक्षःस्थल में आलय वाली वह देवी देखती थी । सब लोकों की महेश्वरी देवी को दया से आर्द्र दृष्टि से देखा था ।८२।

—×—

॥ मोहिनी प्रादुर्भाव वर्णन ॥

हयग्रीव उवाच—

अथ देवा महेन्द्राद्या विष्णुना प्रभविष्णुना ।
अङ्गीकृता महाधीराः प्रमोदं परमः ययुः ॥१
मलकाद्यास्तु ते सर्वे दैत्या विष्णुपराङ्मुखाः ।
संत्यक्ताश्च श्रिया देव्या भृशमुद्वेगमागताः ॥२
ततो जगृहिरे दैत्या धन्वंतरिकरस्थितम् ।

परमामृतसाराढ्यं कलशं कनकोद्भवम् ।
अथासुराणां देवानामन्योन्यं कलहोऽभवत् ॥३
एतस्मिन्नंतरे विष्णुः सर्वलोकैकरक्षकः ।
सम्यगाराधयामास ललिता स्वैक्यरूपिणीम् ॥४
सुराणामसुराणां चरणं वीक्ष्य सुदारुणम् ।
ब्रह्मा निजपदं प्राप शम्भुः कैलासमास्थितः ॥५
मलकं योधयामास दैत्यानामधिपं वृषा ।
असुरैश्च सुराः सर्वे सांपरायमकुर्वत ॥६
भगवानपि योगीन्द्रः समाराध्य महेश्वरीम् ।
तदेकध्यानयोगेन तद्रूपः समजायत ॥७

श्री हयग्रीव ने कहा—इसके अनन्तर महेन्द्र आदि देवों को भगवान् प्रभविष्णु विष्णु ने जग अंगाकार कर लिया था तो महाधीर वे परम प्रसन्नता को प्राप्त हुए थे ।१। मलक आदि वे सब दैत्य भगवान् विष्णु के पराङ्मुख हो गये थे । जब श्री देवी के द्वारा वे संत्यक्त हो गये थे तो वे अत्यन्त अधिक उद्विग्न होगये थे ।२। इसके उपरान्त उन दैत्यों ने धन्वन्तरि भगवान् के कर में स्थित सुवर्ण निर्मित परमामृत के सार से युक्त कलश को ले लिया था अर्थात् हरण कर लिया था । इसके अनन्तर देवों का और असुरों का परस्पर में कलह उत्पन्न हो गया था ।३। इसी बीच में समस्त लोकों के एक ही रक्षा करने वाले विष्णु भगवान् ने अपने साथ एक रूप वाली ललिता की भली भाँति आराधना की थी ।४। सुरों और असुरों का परम दारुण युद्ध देखकर ब्रह्माजी अपने स्थान पर चले गये थे और शम्भु कैलास पर्वतपर समास्थित होगये थे।५।इन्द्र ने दैत्यों के अधिप मलक से युद्ध किया था । समस्त सुरों ने असुरों के साथ युद्ध किया था ।६। योगीन्द्र भगवान् ने भी महेश्वरी की समाराधना की थी । उन्होंने महेश्वरी का ध्यान योग से द्वारा करके एकता के साथ उसी रूप को प्राप्त हो गये थे ।७।

सर्वसंमोहिनी सा तु साक्षाच्छृङ्गारनायिका ।
सर्वश्रृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणभूषिता ॥८

सुराणामसुराणां च निवार्य रणमुल्वणम् ।
मंदस्मितेन दैतेयान्मोहयंती जगाद ह ॥९

अलं युद्धेन किं शस्त्रैर्मर्मस्थानविभेदिभिः ।
निष्ठुरैः किं वृथालापैः कंठशोषणहेतुभिः ॥१०

अहमेवात्र मध्यस्था युष्माकं च दिवौकसाम् ।
यूयं तथामी नितरामत्र हि क्लेशभागिनः ॥११

सर्वेषां सममेवाद्य दास्याम्यमृतमद्भुतम् ।
मम हस्ते प्रदातव्यं सुधापात्रमनुत्तमम् ॥१२

इति तस्या वचः श्रुत्वा दैत्यास्तद्वाक्यमोहिताः ।
पीयूषकलशं तस्यै ददुस्ते मुग्धचेतसः ॥१३

सा तत्पात्रं समादाय जगन्मोहनरूपिणी ।
सुराणामसुराणां च पृथक्पंक्ति चकार ह ॥१४

वह देवी तो सबका संमोहन करने वाली थी और वह साक्षात् शृंगार की नायिका थी। वह सम्पूर्ण शृंगार के वेषवाली थी और असुरों का जो अतीव उल्वण युद्ध था। उसका निवारण करके अपने मन्दस्मित के द्वारा दैत्यों की मोहित करती हुई वह बोली।८-९। अब यह युद्ध समाप्त करो, मर्म स्थानों के विभेदन करने वाले शास्त्रों से क्या लाभ होगा। और परम निष्ठुर व्यर्थ के इन अलापों से भी क्या लाभ है जो कि केवल कण्ठों के शोषण करने के कारण स्वरूप ही है ।१०। मैं ही आपके और देवों के मध्य में स्थित हूँ इसमें जैसा कि इस समय में आप लोग कर रहे हैं आप लोग तथा ये देवगण अत्यन्त ही क्लेश के भागी होंगे।११। मैं आप सभी के लिए आज इस अद्भुत अमृत को बराबर-बराबर दे दूँगी। अब आप लोग इस उत्तम सुधा के पात्र को मेरे हाथ में दे दीजिए।१२। इस उस महादेवी के वचन का श्रवण करके दैत्य विमोहित हो गये थे क्योंकि उसका वाक्य ही इस प्रकार था। मुग्ध चित्त वाले उन्होंने वह अमृत का कलश उस देवी को दे दिया था।१३। सम्पूर्ण इस जगत् के मोहन करने वाली उस देवी ने उस अमृत के कलश को ले लिया था और फिर उसने सुरों की तथा असुरों की पृथक्-पृथक् पंक्ति बिठा दी थी।१४।

द्वयोः पंक्त्योश्च मध्यस्थास्तानुवाच सुरासुरान् ।
तूष्णीं भवन्तु सर्वेपि क्रमशो दीयते मया ॥१५
तद्वाक्यमुररीचक्रुस्ते सर्वे समवायिनः ।
सा तु संमोहिताश्लेषलोका दातुं प्रचक्रमे ॥१६
क्वणत्कनकदर्वीका क्वणन्मंगलकंकणा ।
कमनीयविभूषाढ्या कला सा परमा बभौ ॥१७
वामे वामे करांभोजे सुधाकलशमुज्ज्वलम् ।
सुधां तां देवतापंक्तौ पूर्वं दर्व्या तदादिशत् ॥१८
दिशंती क्रमशस्तत्र चन्द्रभास्करसूचितम् ।
दर्वीकरेण चिच्छेद सैंहिकेयं तु मध्यगम् ।
पीतामृतशिरोमात्रं तस्य व्योम जगाम च ॥१९
तं दृष्ट्वाऽप्यसुरास्तत्र तूष्णीमासन्विमोहिताः ।
एवं क्रमेण तत्सर्वं विबुधेभ्यो वितीर्य सा ।
असुराणां पुरः पात्र सा निनाय तिरोदधे ॥२०
रिक्तपात्रं तु तं दृष्ट्वा सर्वे दैतेयदानवाः ।
उद्वेलं केवलं क्रोधं प्राप्ता युद्धचिकीर्षया ॥२१

उन दोनों पंक्तियों के मध्य में स्थित होकर उन समस्त सुरों और असुरों से उसने कहा था। आप सब लोग बिल्कुल चुपचाप रहें—मेरे द्वारा आप सबको क्रम से ही यह अमृत दिया जाता है ।१५। उन सभी ने जो समवायी थे उस देवी के उस वाक्य को स्वीकृत कर लिया था। वह तो सभी लोकों को संमोहित करने वाली थी। फिर उस देवी ने देने का उपक्रम किया था ।१६। उस समय में उसके सुवर्ण की करधनी क्वणित हो रही थी तथा उसके करों के कङ्कण भी क्वणित हो रहे थे जो परम मंगल स्वरूप थे। वह परम कमनीय भूषा से समन्वित थी। उस समय में वह परमाधिक मधुर मूर्त्ति सुशोभित हो रही थी ।१७। परम सुन्दर वाम कर कमल में तो वह उज्ज्वल सुधा का कलश था, उस सुधा को उसने दर्वी से प्रथम देवों की पंक्ति में ही देना आरम्भ किया था ।१८। वह वहाँ पर क्रम से देती हुई

देखती जा रही थी। उस समय में मध्य में सैंहिकेय स्थित था जिसकी सूचना संकेत द्वारा चन्द्र और सूर्य ने उसको दे दी थी। अत: दर्वी के कर से उसका उस देवी ने छेदन कर दिया था। वह अमृत का पान कर चुका था अतएव उसका केवल शिर आकाशमें चला गया था।१६।उसको देखकर वहाँ पर जो असुर थे वे विमोहित हुए चुप थे। इसी प्रकार से क्रमसे उस देवी ने वह सम्पूर्ण अमृत देवों के लिए वितीर्ण कर दिया था और असुरों के आगे उस खाली पात्र को रखकर वह तिरोहित हो गयी थी।२०। उन सब दैत्य दानवों ने उस खाली पात्र को देखा था और युद्ध करने की इच्छा से उन्होंने केवल असीम क्रोध किया था।२१।

इन्द्रादय: सुरा: सर्वे सुधापानाद्बलोत्तरा: ।
दुर्बलैरसुरै: सार्धं समयुद्ध्यन्त सायुधा: ।।२२
ते विध्यमाना: शतशो दानवेंद्रा: सुरोत्तमै: ।
दिगंतान्कतिचिज्जग्मु: पातालं कतिचिद्ययु: ।।२३
दैत्यं मलकनामानं विजित्य विबुधेश्वर: ।
आत्मीयां श्रियमाजह्रे श्रीकटाक्षसमीक्षित: ।।२४
पुन: सिंहासनं प्राप्य महेन्द्र: सुरसेवित: ।
त्रैलोक्यं पालयामास पूर्ववत्पूर्वदेवजित् ।।२५
निर्भया निखिला देवास्त्रैलोक्ये सचराचरे ।
यथाकामं चरन्ति स्म सर्वदा हृष्टचेतस: ।।२६
तदा तदखिलं दृष्ट्वा मोहिनीचरित मुनि: ।
विस्मित: कामचारी तु कैलासं नारदो गत: ।।२७
नन्दिना च कृतानुज्ञ: प्रणम्य परमेश्वरम् ।
तेन संभाव्यमानोऽसौ तुष्टो विष्टरमास्त स: ।।२८

इन्द्र आदि समस्त सुरगण सुधा के पान से विशेष बलवान् होकर दुर्बल असुरों के साथ आयुधों को लेकर भली भाँति लड़े थे।२२। उन उत्तम सुरों के द्वारा वे दानवेन्द्र सैकड़ों बार विध्यमान हुए थे उनमें से कुछ तो अन्य दिशाओं में चले गये थे और कुछ पाताल लोक में चले गये थे।२३। श्री देवी के कटाक्षों से सम्प्रेरित होकर देवों के स्वामी इन्द्र देव ने मलक नाम वाले दैत्य को जीत लिया था और

उसने अपनी श्री का आहरण कर लिया था।२४। सुरगणों के द्वारा सेवित महेन्द्र देव ने फिर अपने सिंहासन को प्राप्त कर लिया था और पूर्व की ही भाँति पूर्व देव जित् ने त्रैलोक्य का परिपालन किया था।२५। फिर समस्त देवगण निर्भय होकर इस चराचर त्रिलोकी में सर्वदा प्रसन्न चित्त होते हुए अपनी इच्छा के अनुसार सञ्चरण किया करते थे।२६। उस समय सम्पूर्ण मोहिनी के चरित को देखकर मुनि नारद बहुत ही आश्चर्यान्वित होकर स्वेच्छा से चरण करने वाले कैलास गिरि पर चले गये थे।२७। वहाँ पर नन्दी से आज्ञा पाकर उन्होंने परमेश्वर को प्रणाम किया था। शिव प्रभु के द्वारा भली भाँति आदर प्राप्त करके परम तुष्ट हुए थे और आसन पर समवस्थित हो गये थे।२८।

आसनस्थं महादेवो मुनिं स्वेच्छाविहारिणम् ।
पप्रच्छ पार्वतीजानिः स्वच्छस्फटिकसन्निभः ॥२९
भगवन्सर्ववृतज्ञ पवित्रीकृतविष्टर ।
कलहप्रिय देवर्षे किं वृत्तं तत्र नाकिनाम् ॥३०
सुराणामसुराणां वा विजयः समजायत ।
किं वाच्यमृतवृत्तांतं विष्णुना वापि किं कृतम् ॥३१
इति पृष्टो महेशेन नारदो मुनिसत्तमः ।
उवाच विस्मयाविष्टः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥३२
सर्वं जानासि भगवन्सर्वज्ञोऽसि यतस्ततः ।
तथापि परिपृष्टेन मया तद्वक्ष्यतेऽधुना ॥३३
तादृशे समरे घोरे सति दैत्यदिवौकसाम् ।
आदिनारायणः श्रीमान्मोहिनीरूपमादधे ॥३४
तामुदारविभूषाढ्यां मूर्तां शृङ्गारदेवताम् ।
सुरासुराः समालोक्य विरताः समरोद्यमात् ॥३५

परम स्वच्छ स्फटिक मणि के सदृश स्वरूप वाले पार्वती के स्वामी श्री महादेवजी ने आसन पर विराजमान नारदजीजी से जो कि अपनी ही इच्छा से विहार करने वाले थे पूछा था।२९। हे भगवान्! आपने इस

करने वाला है। अब यह बतलाइये कि उन स्वर्गवासी देवगणों का क्या हाल है ? ।३०। सुरों का अथवा असुरों का विजय हुआ है ? अथवा उस अमृत का क्या हुआ—यह भी वृत्तान्त बतलाइए तथा भगवान विष्णु ने उसमें क्या किया था ? ।३१। इस तरह से महेश प्रभु के द्वारा पूछे गये मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने परम विस्मय से आविष्ट होकर प्रसन्न मुख और नेत्रों वाले नारदजी ने कहा था ।३२। हे भगवन् ! आप तो सभी कुछ जानते हैं क्योंकि आप स्वयं सर्वज्ञ हैं। तो भी क्योंकि आपने मुझसे पूछा है अतः मैं अब वह सब बतलाता हूँ ।३३। उस प्रकार का महान् घोर जब दैत्यों और देवों का युद्ध शुरू हो गया था तो उस समय में आदि नारायण ने जो परम श्री सम्पन्न हैं मोहिनी का स्वरूप धारण कर लिया था ।३४। उस मोहिनी का विलोकन करते ही जो परमोज्ज्वल विभूषा से सुसम्पन्न थीं और मूर्त्तिमती शृङ्गार की देवता थी सभी सुर और असुर युद्ध के उद्यम से विरत हो गये थे ।३५।

तन्मायामोहिता दैत्याः सुधापात्रं च याचिताः ।
कृत्वा तामेव मध्यस्थामर्पयामासुरंजसा ।।३६
तदा देवी तदादाय मंदस्मितमनोहरा ।
देवेभ्य एव पीयूषमशेषं विततार सा ।।३७
तिरोहितामदृष्ट्वा तां दृष्ट्वा शून्यं च पात्रकम् ।
ज्वलन्मन्युमुखा दैत्या युद्धाय पुनरुत्थिताः ।।३८
अमरैरमृतास्वादादत्युल्वणपराक्रमैः ।
पराजिता महादैत्या नष्टाः पातालमभ्ययुः ।।३९
इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भवानीपतिरव्ययः ।
नारदं [illegible]पयित्वाशु तदुक्तं सततं स्मरन् ।।४०
अज्ञातः प्रमथैः सर्वैः स्कन्दनंदिविनायकैः ।
पार्वतीसहितो विष्णुमाजगाम सविस्मयः ।।४१
क्षीरोदतीरगं दृष्ट्वा सस्त्रीकं वृषवाहनम् ।
भोगिभोगासनाद्विष्णुः समुत्थाय समागतः ।।४२

उस मोहिनी की माया से मोहित होते हुए दैत्यों से जब सुधा का पात्र माँगा गया था तो उन्होंने उसी मोहिनी को मध्यस्थ बनाकर तुरन्त ही वह पात्र उसको दे दिया था ।३६। मन्द मुस्कान से परम मनोहर उस देवी ने उसी समय में उस पात्र को ले लिया था। उसने इस सम्पूर्ण सुधा को देवों के ही लिए बाँटकर खाली कर दिया था ।३७। जब उन्होंने देखा था कि वह मोहिनी तो तिरोहित हो गयी है और वह सुधा का पात्र खाली है तो क्रोध से उन सबका मुख लाल हो गया था और वे दैत्य फिर युद्ध करने के लिए समुद्यत हो गये थे ।३८। अमृत के खाने से वे देवगण तो अमर हो गये थे और उनका पराक्रम भी बहुत ही उल्वण हो गया था। उन्होंने उस युद्ध में दैत्यों को पराजित कर दिया था फिर वे महादैत्य नष्ट होते हुए पाताल लोक में चले गये थे ।३९। अविनाशी भवानी के स्वामी ने इस वृत्तान्त का श्रवण करके नारदजी को तो विदा कर दिया था और उसी वृत्तान्त का निरन्तर स्मरण करने लगे थे ।४०। स्कन्द-नन्दी और विनायक इन समस्त गणों के द्वारा अज्ञात होते हुए बड़े ही आश्चर्य से समन्वित होकर केवल पार्वती को साथ में लेकर भगवान विष्णु के समीप में आ गये थे ।४१। क्षीर सागर के तट पर अपनी प्रिया के साथ भगवान शम्भु का दर्शन करके शेष की शय्या से समुत्थित होकर भगवान विष्णु तुरन्त ही वहाँ पर समागत हो गये थे ।४२।

वाहनादवरुह्येश: पार्वत्या सहित: स्थितम् ।
तं दृष्ट्वा शीघ्रमागत्य संपूज्यार्घ्यादितो मुदा ।।४३
सस्नेहं गाढमालिंगय भवानीपतिमच्युत: ।
तदागमनकार्यं च पृष्टवान्विष्टरश्रवा: ।।४४
तमुवाच महादेवो भगवन्पुरुषोत्तम ।
महायोगेश्वर श्रीमन्सर्वसौभाग्यसुन्दरम् ।।४५
सर्वसंमोहजनकमवाङ्मनसगोचरम् ।
यद्रूपं भवतोपात्तं तन्मह्यं संप्रदर्शय ।।४६
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपं शृंगारस्याधिदैवतम् ।
अवश्यं दर्शनीयं मे त्वं हि प्रार्थितकामधुक् ।।४७
इति संप्रार्थित: शश्वन्महादेवेन तेन स: ।

यद्ध्यानवैभवाल्लब्धं रूपमद्वैतमद्भुतम् ॥४८

तदेवानन्यमनसा ध्यात्वा किंचिद्विहस्य सः ।
तथास्त्विति तिरोऽधत्त महायोगेश्वरो हरिः ॥४६

भगवान शिव वाहन से उतर कर पार्वती के सहित विष्णु भगवान के समीप में पहुँचे और संस्थित भगवान की बड़े आनन्द से पूजा की और अर्घ्य अर्पित किया था ।४३। भगवान अच्युत ने भवानी के पति का स्नेह के साथ गाढालिंगन किया था । विष्णु भगवान ने उनके समागमन का कारण पूछा था ।४४। महादेवजी ने भगवान से कहा—आप तो उत्तम पुरुष है और महान योगेश्वर हैं । आपने श्री सम्पन्न—सभी प्रकार के सौभाग्य से परम सुन्दर तथा सबको संमोह का पैदा करने वाला जो वाणी और मन से कभी गोचर नहीं हो सकता है कैसा स्वरूप आपने धारण किया था । उस स्वरूप का प्रदर्शन मुझे भी कृपाकर कराइए ।४५-४६। मैं आपके—उस स्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ जो कि शृंगार का अधिष्ठात्री देवता है । मुझे वह अवश्य दिखाना चाहिए । आप तो प्रार्थित पदार्थों के प्रदान करने वाले कामधेनु ही हैं ।४७। इस प्रकार से महादेवजी के द्वारा बराबर भगवान विष्णु की प्रार्थना की गयी थी । जिनके ध्यान के वैभव से अद्वैत और अद्भुत रूप प्राप्त किया था ।४८। उसी का अनन्यमन से ध्यान करके और कुछ हँसकर उन्होंने कहा—ऐसा ही होगा—और फिर महोयोगेश्वर हरि तिरोहित हो गये थे ।४६।

सर्वोऽपि सर्वतश्चक्षुर्मुहुर्व्यापारयन्क्वचित् ।
अदृष्टपूर्वमाराममभिरामं व्यलोकयत् ॥५०

विकसत्कुसुमश्रेणीविनोदिमधुपालिकम् ।
चंपकस्तबकामोदसुरभीकृतदिक्तटम् ॥५१

माकन्दवृन्दमाध्वीकमाद्यदुल्लोलकोकिलम् ।
अशोकमण्डलीकांडसतांडवशिखण्डिकम् ॥५२

भृङ्गालिनवझंकारजितवल्लकिनिस्वनम् ।
पाटलोदारसौरभ्यपाटलीकुसुमोज्ज्वलम् ॥५३

तमालतालहितालकृतमालाविलासितम् ।
पर्यन्तदीर्घिकादीर्घपङ्कजश्रीपरिष्कृतम् ॥५४

वातपातचलच्चारुपल्लवोत्फुल्लपुष्पकम् ।
सन्तानप्रसवमोदसन्तानाधिकवासितम् ॥५५

तत्र सर्वत्र पुष्पाढ्ये सर्वलोकमनोहरे ।
पारिजाततरोर्मूले कान्ता काचिदहृश्यत ॥५६

भगवान शिव ने भी सभी ओर अपनी दृष्टि डालते हुए देखा था तो एक पहिले जो कभी भी नहीं देखा था ऐसा परम सुन्दर उद्यान देखा था ।५०। जो एसा था कि प्रसून खिले हुए थे और उन पुष्पों पर मधुपों की श्रेणियाँ गुञ्जार करती हुई आनन्द ले रही थीं । चम्पा के पुष्पों के स्तवनों की परम रमणीय गन्ध से सभी दिशाएँ सुगन्धित हो रही थीं ।५१। माकन्दों के वृन्द और माध्वीक पर मदमस्त कोकिलें उल्लसित हो रही थीं । अशोक वृक्षों के समुदायों में मयूरगण अपना अद्भुत ताण्डव नृत्य कर रहे थे ।५२। भ्रमरों की पंक्तियों की गूँज की झङ्कार से वल्लभियों की ध्वनि भी वहाँ पर पराजित हो गयी थी । पाटलों की उदार सुगन्ध से पाटली कुसुमों की उज्ज्वलता वहाँ पर भरी हुई थी ।५३। ताल की सुखद मालाओं से वह शोभित था उस उद्यान के किनारों पर बड़े-बड़े सरोवर बने हुए थे जिनमें बड़ी विशाल कमलों की शोभा से वह आराम समलंकृत था ।५४। वायु के मन्द झोंके से द्रुमों के पत्र हिल रहे थे और उन पत्रों के मध्य में विकसित पुष्पों की अपूर्व छटा विद्यमान थी । प्रसून और फलों के आमोद के विस्तार से वह अभिराम उद्यान अधिक सुवासित हो रहा था । वहाँ पर सभी जगह विकसित पुष्पों की भरमार थी और वह सभी लोगों के लिए परम मनोहर था । वहाँ पर एक पारिजात के वृक्ष के नीचे कोई एक परमाधिक सुन्दरी दिखलाई दी थी ।५५-५६।

बालार्कपाटलाकारा नवयौवनदर्पिता ।
आकृष्टपद्मरागाभा चरणाब्जनखच्छदा ॥५७

यावकश्रीविनिक्षेपपादलौहित्यवाहिनी ।
कलनिःस्वनमञ्जीरपादपद्ममनोहरा ॥५८

अनंगवीरतूणीरदर्पोन्मदनजंघिका ।
करिशुण्डाकदलिकाकान्तितुल्योरुशालिनी ॥५९

अरुणेन दुकूलेन सुस्पर्शेन तनीयसा ।
अलंकृतनितंबाढ्या जघनाभोगभासुरा ॥६०
नवमाणिक्यसन्नद्धहेमकांचीविराजिता ।
नतनाभिमहावर्त्तत्रिवल्यूर्मिप्रभाझरा ॥६१
स्तनकुड्मलहिंदोलमुक्तादामशतावृता ।
अतिपीवरवक्षोजभारभंगुरमध्यभूः ॥६२
शिरीषकोमलभुजा कंकणांगदशालिनी ।
सोर्मिकांगुलिमन्मृष्टशंखसुन्दरकंधरा ॥६३

वह बाल सूर्य के समान पाटल की आकृति वाली थी और नूतन यौवन के दर्प से समन्वित थी। उसके चरण कमलोपम कोमल और नखछद आकृष्ट पद्मराग की आभा वाले थे।५७। यावक की श्री के विनिक्षेप से उसके चरणों में लालिमा थी जिसको वह वहन कर रही थी। उसके चरणों में परम मनोहर ध्वनि संयुक्त मञ्जीर थे।५८। उसके जघन कामदेव वीर के तूणीर को उन्मादित करने वाले थे। उसके उरुस्थल करिशुण्ड-कदली की कान्ति को भी शमन करने वाले थे।५९। यह अरुण वर्ण का बहुत ही बारीक और सुख स्पर्श वाला वस्त्र पहिने हुई थी जिसस उसके नितम्ब समलंकृत थे और वह जघनों के आभोग से परम भासुर थी।६०। नवीन माणिक्य से बँधी हुई सुवर्ण की करधनी से विभूषित थी। उसकी नाभि नत महावर्त्त के समान थी उसके ऊपर त्रिवली की ऊर्मियों की प्रभा झलक रही थी।६१। कलियों के आकार वाले स्तनों के हिण्डोलों पर सैंकड़ों मोतियों के हार पहिले हुई थी। उसके उरोज अत्यधिक स्थूल थे और उनके भार से उसका कटिभाग झुका हुआ था।६२। उसकी भुजाएँ शिरीष के सदृश अतीव कोमल थीं जिनमें कङ्कण और अंगद धारण किये हुई थीं। उसकी अंगुलियाँ ऊर्मियों के समान प्रतीत हो रही थीं जो अत्यधिक पतली और कोमल थीं तथा उसकी ग्रीवा सुन्दर शंख के समान नतोन्नत थी।६३।

मुखदर्पणवृत्ताभचुबुकापाटलाधरा ।
शुचिभिः पक्तिभिः शुद्धैर्विद्यारूपैर्विभास्वरैः ॥६४
कुन्दकुड्मलसच्छायैर्दंतैर्दर्शितचन्द्रिका ।

स्थूलमौक्तिकसन्नद्धनासाभरणभासुरा ।।६५

केतकांतर्दलद्रोणिदीर्घदीर्घविलोचना ।

अर्धेन्दुतुलिताफाले सम्यक्क्लृप्तालकच्छटा ।।६६

पालीवतंसमाणिक्यकुन्डलामडितश्रुतिः ।

नवकर्पूरकस्तूरीसामोदितवीटिका ।।६७

शरच्चारुनिशानाथमंडलीमधुरानना ।

स्फुरत्कस्तूरितिलका नीलकुन्तलसंहृतिः ।।६८

सीमंतरेखाविन्यस्तसिंदूरश्रेणिभासुरा ।।६९

स्फुरच्चन्द्रकलोत्तंसमदलोलविलोचना ।

सर्वश्रृङ्गारवेषाढ्या सर्वाभरणमंडिता ।।७०

उसका मुख दर्पण के सदृश वर्तुल आभा से युक्त था तथा चुबुक और अधर पाटल थे। उसकी दाँतों की पंक्ति परम शुचि-शुद्ध-विद्या स्वरूप भास्वर थीं। उनकी कान्ति कुन्द की कलियों के समान थी जिनसे चन्द्रिका सी दिखलायी दे रही थी। का आभरण स्थूल मोती से खचित नासिका था। इससे यह परमाधिक भासुर प्रतीत हो रही थी।६४-६५। केतक के अन्तर दल के सदृश शोभित बड़े-बड़े उसके नेत्र थे। अर्ध चन्द्र की तुलना वाले मुख पर बिखरी हुई अलकों की छटा थी।६६। पालीवतंस माणिक्य के कुण्डलों से उसके दोनों कर्ण विभूषित हो रहे थे। उसके मुख में ताम्बूल की वीटिका थी जो नव कर्पूर और कस्तूरी के रस से आमोदित थी।६७। शरकालीन चन्द्रमा के मण्डल के समान उसका परम मधुरमुख था। उसके भाल पर स्फुरित कस्तूरी का तिलक था और ऊपर शिर पर नीलाभ केशों का जूड़ा था।६८। वह सीमान्त रेखा से विन्यस्त सिन्दूर की श्रेणी से परम भासुर थी अर्थात् मध्य में सीधी केशों में सिन्दूर की रेखा विराजमान थी।६९। स्फुरित चन्द्र की कला के उत्तंस मद से चञ्चल नेत्रों वाली थी। वह सम्पूर्ण श्रृंगार के वेष से समन्वित तथा अंगों के समस्त आभरणों से समलकृत थी।७०।

तामिमां कंदुकक्रीडालोलामालोलभूषणम् ।

दृष्ट्वा क्षिप्रमुमां त्यक्त्वा सोऽन्वधावदथेश्वरः ।।७१

उमापि तं समावेक्ष्य धावंतं चात्मशः प्रियम् ।
स्वात्मानं स्वात्मसौन्दर्यं निंदंती चातिविस्मिता ।
तस्थावाङ्मुखी तूष्णीं लज्जासूयासमन्विता ॥७२
गृहीत्वा कथमप्येनामालिलिंग मुहुर्मुहुः ।
उद्धूयोद्धूय साप्येवं धावति स्म सुदूरतः ॥७३
पुनर्गृहीत्वा तामीशः कामं कामवशीकृतः ।
आश्लिष्टं चातिवेगेन तद्वीर्यं प्रच्युतं तदा ॥७४
ततः समुत्थितो देवो महाशास्ता महाबलः ।
अनेककोटिदैत्येंद्रगर्वनिर्वापणक्षमः ॥७५
तद्वीर्यबिंदुसंस्पर्शात्सा भूमिस्तत्र तत्र च ।
रजतस्वर्णवर्णाभूल्लक्षणाद्विध्यमर्दन ॥७६
तथैवांतर्दधे सापि देवता विश्वमोहिनी ।
निवृत्तः स गिरीशोऽपि गिरिं गौरीसखो ययौ ॥७७

वह एक कन्दुक से क्रीड़ा कर रही थी अर्थात् बार-बार गेंद को उछाल रही थी जिससे उसके सर्वाङ्ग भूषण भी समालोलित हो रहे थे । ऐसी उस रूप लावण्य एवं मादक यौवन से सुसम्पन्ना सुन्दरी को अवलोकित करके शिव ने पार्वती का त्याग कर दिया था और शीघ्र ही उस सुन्दरी को पकड़ कर आलिङ्गन करने के लिए उसके पीछे दौड़ पड़े थे । यद्यपि शिव अखिलेश्वर थे तो भी उसके सौन्दर्य को निरख कर विमोहित हो गये थे ।७१। उमा देवी ने जब अपने प्रिय पति को उसके पीछे दौड़ते हुए देखा था तो वह अपने आपको और अपनी सुन्दरता को भी हेय समझते हुए वह बहुत ही विस्मित हो गयी थी । विस्मय यही था कि परम ज्ञानी योगेश्वर को यह क्या कामदेव का अद्भुत विकार उत्पन्न हो गया है जब कि मैं सुन्दरी पत्नी भी समीप में विद्यमान हूँ । उस समय में उमा देवी लज्जा और असूया से युक्त होकर चुपचाप नीचे की ओर मुख करके स्थित हो गयी थीं ।७२। शिवजी ने किसी भी प्रकार से इसको पकड़ लिया था और बार-बार आलिङ्गन किया था किन्तु वह अपने आपको छुड़ा-छुड़ाकर बहुत दूर भागती चली जा रही थी ।७३। काम के वश में पड़े हुए शिव ने फिर उसको अच्छी तरह से पकड़ लिया था । उन्होंने बहुत ही वेग से आश्लेषण किया था और

उसी समय में उनका वीर्य स्खलित हो गया था ।७४। इसके अनन्तर महान बलवान और महान शासक देव उठकर खड़े हुए थे, जो कि बहुत से करोड़ों दैत्येन्द्रों के निर्वापण करने में समर्थ थे ।७५। शिवजी के वीर्य के संस्पर्श से वहाँ-वहाँ पर जो बिन्दुओं का पात हुआ था उससे हे विन्ध्य मर्दन ! वह भूमि रजत और सुवर्ण के वर्ण वाली हो गयी थी ।७६। उसी समय में वहीं पर वह विश्व मोहिनी देवता तिरोहित हो गयी थी । फिर निवृत्त हुए गिरीश भी अपनी गौरी के साथ कैलास पर चले गये थे ।७७।

अथाद्‌भुतमिदं वक्ष्ये लोपामुद्रापते शृणु ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं ममैव हृदये स्थितम् ।।७८
पुरा भंडासुरो नाम सर्वदैत्यशिखामणिः ।
पूर्वं देवान्बहुविधान्यः शास्ता स्वेच्छया पटुः ।।७९
विशुक्रं नाम दैतेयं वर्गसंरक्षणक्षमम् ।
शुक्रतुल्यं विचारज्ञं दक्षांशेन ससर्ज सः ।।८०
वामांसेन विषांगं च सृष्टवान्दुष्टशेखरम् ।
धूमिनीनामधेयां च भगिनीं भंडदानवः ।।८१
भ्रातृभ्यामुग्रवीर्याभ्यां सहितो निहताहितः ।
ब्रह्मांडं खंडयामास शौर्यवीर्यसमुच्छ्रितः ।।८२
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च तं दृष्ट्वा दीप्ततेजसम् ।
पलायनपराः सद्यः स्वे स्वे धाम्नि सदा वसन् ।।८३
तदानीमेव तद्‌बाहुसंमर्दनविमूर्च्छिताः ।
श्वसितुं चापि पटवो नाभवन्नाकिनां गणाः ।।८४

इसके अनन्तर हे लोपा मुद्रापते ! मैं एक अति अद्‌भुत बात बतलाऊँगा । उसका आप श्रवण कीजिए । जिसको मैंने किसी को भी अब तक नहीं कहा था और वह मेरे हृदय में ही स्थित है ।७८। बहुत पुराने समय में भण्डासुर नामक दैत्य था जो समस्त दैत्यों का शिरोमणि था । वह इतना कुशल था कि उसने पहिले अपनी ही इच्छा से बहुत से देवों का शास्ता हुआ था ।७९। उसने विशुक्र नाम वाले दैतेय को जो सबके संरक्षण में समर्थ था । वह शुक्र के ही समान विचारज्ञ था उसको दक्ष के अंश से उसने सृजन किया

था ।८०। उसने वामांश से दुष्ट शिरोमणि विषाङ्ग को सृजित किया था। भण्ड दानव ने धूमिनी नाम वाली श्रेष्ठ भगिनी का भी सृजन किया था। ।८१। उग्रवीर्य वाले भाइयों के साथ अपने अहित को निहित करने वाला था। शौर्य और वीर्य से समुच्छ्रित उसने पूर्ण ब्रह्माण्ड को खण्डित कर दिया था ।८२। ब्रह्मा, विष्णु और महेश दीप्त तेज वाले उसको देखकर ही भागने में तत्पर हो गये थे और तुरन्त ही अपने-अपने धाम में ही उसकी भुजा के द्वारा संमर्दन से बेहोश हुए देवों के गण श्वास लेने में भी कुशल नहीं हुए थे। अर्थात् श्वास भी न ले सके थे ।८३-८४।

केचित्पातालगर्भेषु केचिदंबुधिवारिषु ।
केचिद्दिगंतकोणेषु केचित्कुंजेषु भूभृताम् ।।८५
विलीना भृशवित्रस्तास्त्यक्तदारसुतस्त्रियः ।
भ्रष्टाधिकारा ऋभवो विचेरुश्छन्नवेषकाः ।।८६
यक्षान्महोरगान्सिद्धान्साध्यान्समरदुर्मदान् ।
ब्रह्माणं पद्मनाभं च रुद्रं वज्रिणमेव च ।
मत्वा तृणायितान्सर्वांल्लोकान्भंडः शशास ह ।।८७
अथ भंडासुरं हंतुं त्रैलोक्यं चापि रक्षितुम् ।
तृतीयमुदभूद्रूपं महायागानलान्मुने ।।८८
यद्रूपशालिनीमाहुर्ललितां परदेवताम् ।
पाशांकुशधनुर्बाणपरिष्कृतचतुर्भुजाम् ।।८९
सा देवी परमा शक्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी ।
जघान भंडदैत्येन्द्रं युद्धे युद्धविशारदा ।।९०

जब स्वर्ग लोक में देवों में भगदड़ मची थी तो उनमें से कुछ तो पाताल लोक में भागकर जा छिपे थे—कुछ महासागर के जल में चले गये थे—कुछ दूर दिशाओं के छोर में चले गये थे और कुछ पर्वतों की कुञ्जों में चले गये थे ।८५। वे सब बहुत ही भयभीत होते हुए अपने सुत दारा और स्त्रियों को वहाँ पर ही छोड़ कर परम समर्थ भी अधिकारों से भ्रष्ट होकर छिपे हुए वेष में इधर-उधर विचरण करने लगे थे ।८६। यक्ष-महोरग-सिद्ध-साध्य सबको जो समर के बड़े दुर्मद थे तथा ब्रह्मा-रुद्र और विष्णु को भी, समस्त लोकों को तिनके के समान समाचरण वाले समझकर वह भण्ड ही

सब पर शासन करने लगा था ।८७। हे मुने ! इसके अनन्तर उस महान बली भण्डासुर का हनन करने के लिए तथा तीनों लोकों की संरक्षा करने के वास्ते महायाग को अग्नि से एक तीसरा ही स्वरूप समुद्भूत हुआ था ।८८। जिस स्वरूप के धारण करने वाली को ललिता नाम से लोग कहा करते थे जो पर देवता थी । उसके चारों करों में पाश—अंकुश—धनुष और बाण ये आयुध थे ।८९। वह देवी परमाधिक शक्ति वाली थी और वह साक्षात् पर-ब्रह्म के स्वरूप वाली थी । युद्ध करने में महा विशारद उसने उस भण्ड दैत्येन्द्र को युद्ध में मार गिराया था ।९०।

भण्डासुर प्रादुर्भाव वर्णन

अगस्त्य उवाच—

कथं भंडासुरो जातः कथं वा त्रिपुरांबिका ।
कथं बभंज तं संख्ये तत्सर्वं वद विस्तरात् ॥१

हयग्रीव उवाच

पुरा दाक्षायणीं त्यक्त्वा पितुर्यज्ञविनाशनम् ॥२
आत्मानमात्मना पश्यञ्ज्ञानानन्दसात्मकः ।
उपास्यमानो मुनिभिरद्वंद्वगुणलक्षणः ॥३
गङ्गाकूले हिमवतः पर्यन्ते प्रविवेश ह ।
सापि शङ्करमाराध्य चिरकालं मनस्विनी ॥४
योगेन स्वां तनुं त्यक्त्वा सुतासीद्धिमभूभृतः ॥५
स शैलो नारदाच्छ्रुत्वा रुद्राणीति स्वकन्यकाम् ।
तस्य शुश्रूषणार्थाय स्थापयामास चांतिके ॥६
एतस्मिन्नंतरे देवास्तारकेण हि पीडिताः ।
ब्रह्मणोक्ताः समाहूय मदनं चेदमब्रुवन् ॥७

अगस्त्य मुनि ने कहा—यह भण्डासुर कैसे समुत्पन्न हुआ था अथवा यह त्रिपुराम्बिका देवी कैसे प्रादुर्भूत हुई थी । उसने समरांगण में उस महा-दैत्य को कैसे मारा था—यह सम्पूर्ण वृत्त मेरे सामने विस्तार के साथ वर्णन

कीजिए ।१। हयग्रीव जी ने कहा—पहिले दाक्षायणी का त्याग करके पिता के यज्ञ का विध्वंस हुआ था ।२। अपनी आत्मा से आत्मा को देखते हुए ज्ञान और आनन्द के रस के स्वरूप वाले जो कि अद्वन्द्व गुण के लक्षण वाले थे—मुनिगणों के द्वारा उपास्यमान थे ।३। वे प्रभु उस समय में हिमवान् पर्वत के अन्दर एक भीतरी भाग में प्रवेश कर गये थे। उस मनस्विनी ने भी बहुत लम्बे समय तक भगवान् शंकर की समाराधना की थी ।४। उस जगदम्बा ने भी योग के द्वारा अपने कलेवर का त्याग कर दिया था और फिर वह हिमवान् गिरिराज की पुत्री होकर प्रादुर्भूत हुई थी ।५। उस शैल राज ने देवर्षि नारद जी से यह सुना था कि उसकी कन्या साक्षात् रुद्राणी होगी। अतएव उस हिमवान् ने उस अपनी कन्या को समीप में ही भगवान् शिवकी शुश्रूषा करने के लिए स्थापित कर दिया था। अर्थात् शिव की आराधना करने की आज्ञा दे दी थी ।६। इसी बीच में तारक नामक महा दैत्य के द्वारा देवों को उत्पीड़ित किया गया था। ब्रह्माजी से जब देवों ने प्रार्थनाकी थी तो उन्होंने कामदेव को बुलाया था और उससे यह कहा था ।७।

सर्गादौ भगवान्ब्रह्मा सृजमानोऽखिलाः प्रजाः ।
न निर्वृतिरभूत्तस्य कदाचिदपि मानसे ।
तपश्चचार सुचिरं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥८
ततः प्रसन्नो भगवान्सलक्ष्मीको जनार्दनः ।
वरेण च्छंदयामास वरदः सर्वदेहिनाम् ॥९
ब्रह्मोवाच—
यदि तुष्टोऽसि भगवन्ननायासेन वै जगत् ।
चराचरयुतं चैतत्सृजामि त्वत्प्रसादतः ॥१०
एवमुक्तो विधात्रा तु महालक्ष्मीमुदैक्षत ।
तदा प्रादुरभूस्त्वं हि जगन्मोहनरूपधृक् ॥११
तवायुधार्थं दत्तं च पुष्पबाणेक्षुकार्मुकम् ।
विजयत्वमजेयत्वं प्रादात्प्रमुदितो हरिः ॥१२
असौ सृजति भूतानि कारणेन स्वकर्मणा ।
साक्षिभूतः स्वजनतो भवान्भजतु निर्वृतिम् ॥१३

एष दत्तवरो ब्रह्मा त्वयि विन्यस्य तद्भरम् ।
मनसो निर्वृतिं प्राप्य वर्ततेऽद्यापि मन्मथ ।।१४

जब इस जगत् का सृजन आरम्भ किया था उसके आदि काल में भगवान् ब्रह्माजी ने समस्त प्रजाका सृजन करना चाहा था किन्तु उनके मन में किसी भी समय में सन्तोष नहीं हुआ था । तब उन्होंने बहुत समय पर्यन्त मन-वाणी और शरीर से तपश्चर्या की थी ।८। तब भगवान् उन पर परम प्रसन्न हुए थे जो कि जनार्दन प्रभु अपनी प्रिया लक्ष्मी के ही साथ में आकर प्रसन्न हो गये थे । समस्त देहधारियों को वर देने वाले प्रभु ने उनको भी वरदान देकर सन्तुष्ट किया था ।९। ब्रह्माजी ने प्रार्थना की थी—हे भगवन् ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वरदान दीजिए कि मैं बिना ही किसी आयास के इस चराचर जगत् का आपकी कृपा से सृजन कर दूँ ।१०। जब इस रीति से ब्रह्माजी ने प्रार्थना की थी तो उन्होंने महालक्ष्मी की ओर देखा था । उसी समय में आप प्रादुर्भूत हुए थे जो कि इस जगत् को मोहित करने वाले स्वरूप को धारण करने वाले थे ।११। आपके आयुध के लिये उन्होंने आपको इक्षु का धनुष और पुष्पों का वाण प्रदान किया था । परम प्रसन्न हरि ने विजयी होना भी प्रदान किया था ।१२। यही कामदेव भूतों का सृजन अपने ही कर्म के कारण के द्वारा किया करेगा । आप अपने जन से साक्षिभूत होकर निर्वृति का समाश्रय ग्रहण करें । कामदेव ही आपके सृजन का कार्य करता रहेगा ।१३। ब्रह्माजी को यह वरदान जब दिया गया था तो उन्होंने सृजन का सब भार तुम पर छोड़कर हे मन्मथ ! ब्रह्माजी सन्तुष्ट होकर आज भी स्थित हैं ।१४।

अमोघं बलवीर्यंते न ते मोघः पराक्रमः ।।१५
सुकुमाराण्यमोघानि कुसुमास्त्राणि ते सदा ।
ब्रह्मदत्तवरोऽयं हि तारको नाम दानवः ।।१६
बाधते सकलाँल्लोकानस्मानपि विशेषतः ।
शिवपुत्रादृतेऽन्यत्र न भयं तस्य विद्यते ।।१७
त्वां विनास्मिन्महाकार्ये न कश्चित्प्रवदेदपि ।
स्वकराच्च भवेत्कार्यं भवतो नान्यतः क्वचित् ।।१८
आत्म्यैक्यध्याननिरतः शिवो गौर्या समन्वितः ।

हिमाचलतले रम्ये वर्तते मुनिभिर्वृतः ॥१९
तं नियोजय गौर्यां तु जनिष्यति च तत्सुतः ।
ईषत्कार्यमिदं कृत्वा त्रायस्वास्मान्महाबल ॥२०
एवमभ्यर्थितो देवैः स्तूयमानो मुहुर्मुहुः ।
जगामात्मविनाशाय यतो हिमवतस्तटम् ॥२१

आपका बलवीर्य तो अमोघ है और आपका पराक्रम भी मोघ नहीं है ।१५। आपके अस्त्र भी कुसुम परम सुकुमार है तथा वे सदा ही अमोघ हैं । अब यह तारक नाम का दानव ब्रह्माजी के ही द्वारा वरदान प्राप्त कर लेने वाला है ।१६। यह समस्त लोकों को बाधा दे रहा है और हमको तो विशेष रूप से सता रहा है । इसको भगवान् शिव के पुत्र के बिना अन्य किसी से भी कुछ भय नहीं है अर्थात् इसका वध शिव का ही पुत्र कर सकता है ।१७। यह एक महान् कार्य है । आपके बिना कोई भी अन्य इसको नहीं कर सकता है चाहे किसी से भी कहा जावे । यह तो आपके ही अपने कर से होगा और अन्य किसी से भी कभी नहीं हो सकता है ।१८। आत्मा की एकता के ध्यान में निरत भगवान् शिव इस समय में है और गौरी भी वहाँ पर विद्यमान हैं ये परम रम्य हिमाचल के तल में है और मुनिगण से घिरे हैं ।१९। हे महान् बलवाले ! आप उन शिव को गौरी में नियोजित कर दो । उस का सुत जन्म धारण करेगा । यह एक छोटा सा हमारा कार्य है । इस को आप करके हमारी सुरक्षा कीजिए ।२०। इस तरह से देवों के द्वारा कामदेव से बार-बार प्रार्थना की गयी थी और बहुत स्तवन भी उसका किया गया था । तब वह अपनी आत्मा के विनाश के लिए वहाँ से कामदेव हिमवान् के तट पर गया था ।२१।

किमप्याराधयंतं तु ध्यानसंमीलितेक्षणम् ।
ददर्शेशानमासीनं कुसुमेषुरुदायुधः ॥२२
एतस्मिन्नन्तरे तत्र हिमवत्तनया शिवम् ।
आरिराधयिषुश्चागाद्बिभ्राणा रूपमद्भुतम् ॥२३
समेत्य शम्भुं गिरिजां गंधपुष्पोपहारकैः ।
शुश्रूषणपरां तत्र ददर्शातिबलः स्मरः ॥२४

अदृश्यः सर्वभूतानान्नातिदूरेऽस्य संस्थितः ।
सुमनोमार्गणैरग्र्यैस्स विव्याध महेश्वरम् ॥२५

विस्मृत्य स हि कार्याणि बाणविद्धोऽन्तिके स्थिताम् ।
गौरीं विलोकयामास मन्मथाविष्टचेतनः ॥२६

धृतिमालंब्य तु पुनः किमेतदिति चिंतयन् ।
ददर्शाग्रे तु सन्नद्धं मन्मथं कुसुमायुधम् ॥२७

तं दृष्ट्वा कुपितः शूली त्रैलोक्यदहनक्षमः ।
तार्तीयं चक्षुरुन्मील्य ददाह मकरध्वजम् ॥२८

कुसुमों के बाणों वाले आयुध लिये हुए कामदेव ने वहाँ पर भगवान् शिव को देखा था जो कुछ का समाराधना करके ध्यान में नेत्रों को बन्द किये हुए समाधिस्थ संस्थित थे ।२२। इसी बीच में यह भी उसने देखा था कि हिमवान् की पुत्री पार्वती भी भगवान् शिव की आराधना की इच्छा वाली वहाँ पर आ गयी थी जो अत्यद्भुत स्वरूप से सुसम्पन्न थी ।२३। अति बलवान् मदन ने वहाँ देखा था कि यह पार्वती शम्भु के समीप में पहुँच कर गन्ध–पुष्प और उपहारों के द्वारा शिव की शुश्रूषा में संलग्न थी ।२४। वह मदन समस्त प्राणियों के द्वारा अदृश्य था और उनके समीप में ही संस्थित होकर उसने अत्युत्तम पुष्पों के बाणों से महेश्वर के हृदय को वेधा था ।२५। मन्मथ के द्वारा आविष्ट चेतना वाले उस भगवान् शिव ने समस्त ध्यान करने के कार्यों को भुलाकर काम के बाणों से विद्ध होकर समीप में स्थित गौरी की ओर देखा था ।२६। फिर उन्होंने धैर्य का समाश्रय ग्रहण किया था और मन में चिन्तन कर रहे थे कि यह विकार क्यों और कैसे हो रहा है । उसी समय में उन्होंने देखा था कि कामदेव कुसुमों के आयुध वाला आगे सन्नद्ध है ।२७। उसको देखकर त्रिशूली प्रभु बहुत ही क्रुद्ध हो गये थे जो कि तीनों लोकों को दग्ध कर देने में समर्थ थे । उन्होंने अपना मस्तक में स्थित तीसरा नेत्र खोल दिया था और उसी क्षण में मकरध्वज को भस्मसात् कर दिया था ।२८।

शिवेनैवमवज्ञाता दुःखिता शैलकन्यका ।
अनुज्ञया ततः पित्रोस्तपः कर्तुमगाद्वनम् ॥२९

तद्भस्मना तु पुरुष चित्राकार चकार सः ॥३०

तं विचित्रतनुं रुद्रो ददर्शाग्रे तु पूरुषम् ।
तत्क्षणाज्जात जीवोऽभून्मूर्तिमानिव मन्मथः ।
महाबलोऽतितेजस्वी मध्याह्नार्कसमप्रभः ॥३१

तं चित्रकर्मा बाहुभ्यां समालिग्य मुदान्वितः ।
स्तुहि बाल महादेवं स तु सर्वार्थसिद्धिदः ॥३२

इत्युक्त्वा शतरुद्रीयमुपादिशदमेयधीः ।
ननाम शतशो रुद्रं शतरुद्रियमाजपन् ॥३३

ततः प्रसन्नो भगवान्महादेवो वृषध्वजः ।
वरेण च्छंदयामास वरं वव्रे स बालकः ॥३४

प्रतिद्वंद्विबलार्थं तु मद्बलेनोपयोक्ष्यति ।
तदस्त्रमुख्यानि वृथा कुर्वंतु नो मम ॥३५

शिव के द्वारा अवज्ञात हुई शैल कन्या बहुत ही दुःखित हुई थी । फिर माता-सिता की आज्ञा से वह तपश्चर्या करने के लिए वन में चली गयी थी । इसके उपरान्त उस कामदेव की भस्म को देखकर गणेश्वर चित्रकर्मा उस भस्म से चित्र के आकार वाला पुरुष कर दिया था ।३०। भगवान् रुद्र ने विचित्र शरीर वाले पुरुष को अपने आगे देखा था । उसी क्षण में समुत्पन्न जीव वाला होगया था और ऐसा सुन्दर था । वह उसी क्षण में समुत्पन्न जीव वाला होगया था और ऐसा सुन्दर था मूर्तिमान् साक्षात् मन्मथ ही होंगे । वह महान् बलवाला और अत्यन्त मध्याह्न के सूर्य की सी प्रभा वाला तेजस्वी था ।३१। चित्रकर्मा ने उसका अपनी बाहुओं से आलिङ्गन किया था और बहुत प्रसन्न हुआ था । चित्रकर्मा ने उससे कहा था हे बाल ! भगवान् शिव की स्तुति करो क्योंकि वे समस्त अर्थों की सिद्धि के दाता है ।३२। यह कहकर उस अमेय बुद्धि वाले ने उसको शत रुद्रीय का उपदेश दे दिया था उसने शतरुद्रिय का जाप करते हुए सौ बार भगवान् रुद्र को प्रणाम किया था ।३३। इसके अनन्तर वृषध्वज महादेव जी परम प्रसन्न हुए थे । उन्होंने वर माँगने की आज्ञा दी थी और उस बालक ने यह वरदान माँगा

था ।३४। मेरे प्रतिद्वन्द्वी के बल के लिए मेरे बल से योजित करेंगे और उस मेरे प्रतिद्वन्द्वी के जो भी अस्त्र-शस्त्र होंगे वे व्यर्थ हो जायेंगे और मेरे नहीं होंगे ।३५।

तथेति तत्प्रतिश्रुत्य विचार्य किमपि प्रभुः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि राज्यमस्मै ददौ पुनः ॥३६
एतद्दृष्ट्वा तु चरितं धाता भंडिति भंडिति ।
यदुवाच ततो नाम्ना भंडो लोकेषु कथ्यते ॥३७
इति दत्त्वा वरं सर्वैर्मुनिगणैर्वृतः ।
दत्त्वाऽस्त्राणि च शस्त्राणि तत्रैवांतरधाच्च सः ॥३८

ऐसा ही सब होगा---यह कहकर फिर प्रभु ने कुछ विचार करके साठ सहस्र वर्ष तक इसको राज्य भी दे दिया था ।३६। इस चरित को देखकर धाता ने भण्डिति–भण्डिति–यह कहा था इसीलिये वह लोक में भण्ड—इस नाम से ही कहा जाया करता है ।३७। यह वरदान उस को देकर मुनिगणों से समावृत वह अस्त्र देकर वहाँ पर ही तिरोहित हो गये थे ।३८।

ललिता प्रादुर्भाव वर्णन

रुद्रकोपानलाज्जातो यतो भण्डो महाबलः ।
तस्माद्रौद्रस्वभावो हि दानवश्चाभवत्ततः ॥१
अथागच्छन्महातेजाः शुक्रो दैत्यपुरोहितः ।
समायाताश्च शतशो दैतेयाः सुमहाबलाः ॥२
अथाहूय मयं भंडो दैत्यवंश्यादिशिल्पिनम् ।
नियुक्तो भृगुपुत्रेण निजगादार्थवद्वचः ॥३
यत्र स्थित्वा तु दैत्येन्द्रैस्त्रैलोक्यं शासितं पुरा ।
तद्गत्वा शोणितपुरं कुरुष्व त्वं यथापुरम् ॥४
तच्छ्रुत्वा वचनं शिल्पी स गत्वाथ पुरं महत् ।
चक्रेऽमरपुरप्रख्यं मनसैवेक्षणेन तु ॥५
अथाभिषिक्तः शुक्रेण दैतेयैश्च महाबलैः ।
शुशुभे परया लक्ष्म्या तेजसा च समन्वितः ॥६

हिरण्याय तु यद्दत्तं किरीटं ब्रह्मणा पुरा ।
सजीवमविनाश्यं च दैत्येन्द्रैरपि भूषितम् ।
दधौ भृगुसुतोत्सृष्टं भंडो बालार्कसन्निभम् ॥७

क्योंकि भण्ड भगवान रुद्र की कोपाग्नि से समुत्पन्न हुआ था अत एव वह महा बलवान् था और उसका स्वभाव भी परम रौद्र हुआ था। ऐसा ही यह दानव था।१। इसके पश्चात महा तेजस्वी दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य वहाँ पर आये थे और सैकड़ों महाबली दैतेय भी समागत हुए थे।२। इसके उपरान्त भण्ड ने दैत्यों के वंश में होने वाले आदि शिल्पी मय को बुलाया था। भृगु के पुत्र के द्वारा नियुक्त होते हुए उसने उस शिल्पी से अर्थ युक्त वचन कहा था।३। जहाँ पर स्थित होकर पहिले दैत्यों के स्वामी ने त्रैलोक्य का शासन किया था वहाँ पर जाकर जैसा भी पुर होता है वैसा शोणित पुर का निर्माण करो।४। यह वचन श्रवण करके उस शिल्पी ने जाकर एक महान पुर की रचना की थी। वह पुर मन से ही ईक्षण के द्वारा अमरपुर के समान था।५। इसके अनन्तर शुक्राचार्य के द्वारा तथा महाबली दैत्यों के साथ अभिषेक किया गया था। वह परोत्कृष्ट लक्ष्मी से शोभित हुआ था तथा तेज से भी समन्वित था।६। पहिले हिरण्य के लिए जो किरीट ब्रह्माजी ने प्रदान किया था वह सजीव और विनाशन होने के योग्य था तथा दैत्येन्द्रों के भी द्वारा भूषित था। उसको भृगु सुत के द्वारा उत्सृष्ट जो था भण्ड ने धारण किया था। यह किरीट बाल सूर्य के ही सदृश था। इसके उपरान्त वह सिंहासन पर समासीन हुआ था और सभी आभरणों से विभूषित हुआ था।७।

चामरे चन्द्रसंकाशे सजीवे ब्रह्मनिर्मिते ।
न रोगो न च दुःखानि संदधौ यन्निषेवणात् ॥८
तस्यातपत्रं प्रददौ ब्रह्मणैव पुरा कृतम् ।
यस्य च्छायानिषण्णास्तु बाध्यंते नास्त्रकोटिभिः ॥९
धनुश्च विजयं नाम शंखं च रिपुघातिनम् ।
अन्यान्यपि महार्हाणि भूषणानि प्रदत्तवान् ॥१०
तस्य सिंहासनं प्रादादक्षय्यं सूर्यसन्निभम् ।
ततः सिंहासनासीनः सर्वाभरणभूषितः ।
बभूवातीव तेजस्वी रत्नमुत्तेजितं यथा ॥११

बभुवुरथ दैतेयास्तयाष्टौ तु महाबलाः ।
इन्द्रशत्रुरमित्रघ्नो विद्युन्माली विभीषणः ।
उग्रकर्मोग्रधन्वा च विजयश्श्रुतिपारगः ॥१२
सुमोहिनी कुमुदिनी चित्रांगी सुन्दरी तथा ।
चतस्रो वनितास्तस्य बभूवुः प्रियदर्शनाः ॥१३
तमसेवंत कालज्ञा देवाः सर्वे सवासवाः ।
स्यंदनास्तुरगा नागाः पादाताश्च सहस्रशः ॥१४

दो चमर भी चन्द्रमा के समान थे जो सजीव थे और ब्रह्माजी के ही द्वारा निर्मित हुए थे । इसके निषेवण करने का यह प्रभाव था कि सेवन करने वाले कोई भी रोग और दुःख नहीं हुआ करता था। उनको भी इसने धारण किया था ।८। उसका जो आतपत्र (छत्र) भी पहिले ही निर्मित किया हुआ ब्रह्माजी ने ही प्रदान किया था जिसकी छाया में जो भी उपविष्ट होते हैं उनको करोड़ों अस्त्र भी कुछ बाधा नहीं दिया करते हैं ।९। विजय नामक धनुष और रिपुओं का घात करने वाला शंख था। उनके अतिरिक्त अन्य-अन्य भी बहुत कीमती भूषण प्रदान किये थे ।१०। उसको जो सिंहासन प्रदान किया था वह अक्षय था और सूर्य के समान था उस पर वह बैठकर उत्तेजित रत्न के ही सदृश अतीव तेजस्वी हो गया था ।११। उसके आठ दैतेय महा बलवान हुए थे—उनके नाम ये थे—इन्द्र शत्रु—अमित्रघ्न-विद्युन्माली-विभीषण—उग्र कर्मा—उग्रधन्वा—विजय—श्रुतिपारग ।१२। उसकी चार प्रिय दर्शन वाली पत्नियाँ थीं जिनके नाम ये हैं—सुमोहिनी—कुमुदिनी—चित्रांगी और सुन्दरी ।१३। काल के ज्ञान रखने वाले इन्द्र के सहित सभी देवगणों ने उसकी सेवा की थी। उसके पास सहस्रों ही रथ—अश्व—गज और पदाति सैनिक थे ।१४।

संबभूवुर्महाकाया महांतो जितकाशिनः ।
बभूवुर्दानवाः सर्वे भृगुपुत्रमतानुगाः ॥१५
अर्चयंतो महादेवमास्थिताः शिवशासने ।
बभूवुर्दानवास्तत्र पुत्रपौत्रधनान्विताः ।
गृहे गृहे च यज्ञाश्च संबभूवुः समंततः ॥१६

ऋचो यजूंषि सामानि मीमांसान्यायकादयः ।
प्रवर्तंते स्म दैत्यानां भूयः प्रतिगृहं तदा ॥१७
यथाश्रमेषु मुख्येषु मुनीनां च द्विजन्मनाम् ।
तथा यज्ञेषु दैत्यानां बुभुजुर्हव्यभोजिनः ॥१८
एवं कुर्वतोऽप्यस्य भंडस्य जितकाशिनः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि व्यतीतानि क्षणार्धवत् ॥१६
वर्धमानमथो दैत्यं तपसा च बलेन च ।
हीयमानबलं चेन्द्रं संप्रेक्ष्य कमलापतिः ॥२०
ससर्ज सहसा कांचिन्मायां लोकविमोहिनीम् ।
तामुवाच ततो मायां देवदेवो जनार्दनः ॥२१

उसके सभी दानव भृगुपुत्र के मत का अनुगमन करने वाले थे और इन सबके कलेवर बहुत विशाल थे और ये जितकाशी थे ।१५। ये सबके सब महादेवजी का अर्चन किया करते थे और सर्वदा शिव के ही शासन में समास्थित रहते थे । वहाँ पर जो भी दानव गण थे वे सब पुत्रों-पौत्रों और धन से सुम्पन्न थे और घर-घर में चारों और यज्ञ हुआ करते थे ।१६। ऋग्वेद–यजुर्वेद–सामवेद–मीमांसा और न्याय शास्त्र आदि समस्त वेद और शास्त्र उस समय में प्रत्येक घर में पुनः प्रवृत्त हो गये थे ।१७। मुनियों के और द्विजों के मुख्य आश्रमों में तथा यज्ञों में जो कि दैत्यों के थे हव्य के भोजन करने वाले भोजन किया करते थे ।१८। इस रीति से करने वाले जित काशी भंड के सहस्र वर्ष आधे क्षण के ही समान व्यतीत हो गये थे ।१६। तप से और बल के द्वारा बढ़ते हुए इस भण्ड दैत्य को और क्षीण होने वाले बल से मुक्त इन्द्र को देखकर कमलापति ने माया के रचना करने का विचार किया था ।२०। और तुरन्त ही लोकों का विमोहन करने वाली कोई एक माया का सृजन किया था । फिर देवों के भी देव जनार्दन प्रभु ने उस माया से कहा था ।२१।

त्वं हि सर्वाणि भूतानी मोहयंती निजौजसा ।
विचरस्व यथाकामं त्वां न ज्ञास्यति कश्चन ॥२२
त्वं तु शीघ्रमितो गत्वा भंडं दैतेयनायकम् ।

मोहयित्वाचिरेणैव विषयानुपभोक्ष्यसे ॥२३
एवं लब्ध्वा वरं माया तं प्रणम्य जनार्दनम् ।
ययाचेऽप्सरसो मुख्याः साह्याय्यार्थं काश्चन ॥२४
तया संप्रार्थितो भूयः प्रेषयामास काश्चन ।
ताभिर्विश्वाचिमुख्याभिः सहिता सा मृगेक्षणा ।
प्रययौ मानसस्याग्र्यं तटमुज्ज्वलभूरुहम् ॥२५
यत्र क्रीडति दैत्येंद्रो निजनारीभिरन्वितः ।
तत्र सा मृगशावाक्षी मूले चंपकशाखिनः ।
निवासमकरोद्रम्यं गायन्ती मधुरस्वरम् ॥२६
अथागतस्तु दैत्येंद्रो बलिभिर्मंत्रिभिर्वृतः ।
श्रुत्वा तु वीणानिनदं ददर्श च वरांगनाम् ॥२७
तां दृष्ट्वा चारुसर्वांगीं विद्युल्लेखामिवापराम् ।
मायामये महागर्ते पतितो मदनाभिधे ॥२८

तू तो अतीव अद्भुत प्रभाव वाली है। तू अपने ही ओज से समस्त प्राणियों का मोहन किया करती है। अब तू अपनी ही इच्छा के अनुसार विचरण कर और तुमको कोई भी नहीं जान सकेगा।२२। अब तू यहाँ से शीघ्र ही जाकर दैत्यों के नायक भण्ड के समीप में पहुँच जा। और तुरन्त ही उसको मोहित कर दे कि विषयों को उपयोग करेगा।२३। इस प्रकार का वरदान प्राप्त करके उस माया ने जनार्दन प्रभु को प्रणाम किया था। फिर उस माया ने भगवान् से सहायता करने के लिए कुछ प्रमुख अप्सराओं के प्राप्त करने की याचना की थी।२४। जब माया के द्वारा प्रार्थना की गयी थी तो प्रभु ने कुछ अप्सराएँ भेजी थीं उन अप्सराओं में विश्वाची आदि प्रमुख थीं। उस सबके साथ वह मृगेक्षणा माया वहाँ से प्रस्थान कर गयी थी। वह मानसरोवर के उत्तम तट पर गयी थी जहाँ पर उत्तम द्रुम लगे हुए थे।२५। वह ऐसा सुरम्य स्थल था कि वह दैत्यराज वहाँ पर अपनी नारियों से युक्त होकर विहार की क्रीड़ा किया करता था। उसी स्थल में वह मृग के शावक के समान नेत्रों वाली माया एक चम्पक वृक्ष के मूल में निवास करने लगी थी और परम सुरम्य मधुर स्वर के कुछ गाया करती

थी ।२६। इसके अनन्तर वह दैत्यराज अपने मन्त्रियों के सहित वहाँ पर आ गया था। उसने वीणा की परम मधुर ध्वनि का श्रवण किया था और फिर उस वराङ्गना को भी देखा था ।२७। उस सुन्दर अंगों वाली को देख कर दूसरी विद्युत् की लेखा के ही समान थी वह मदन नामक माया से परिपूर्ण महान् गर्त्त में गिर गया था ।२८।

अथास्य मंत्रिणोऽभूवन्हृदये स्मरतापि ताः ॥२९
तेन दैतेयनाथेन चिरं संप्रार्थिता सती ।
तैश्च संप्रार्थितास्ताश्च प्रतिशुश्रुवुरंजसा ॥३०
यास्त्वलभ्या महायज्ञैरश्वमेधादिकैरपि ।
ता लब्ध्वा मोहिनीमुख्या निर्वृतिं परमां ययुः ॥३१
विसस्मरुस्तदा वेदांस्तथा देवमुमापतिम् ।
विजहुस्ते तथा यज्ञक्रियाश्चान्याः शुभावहाः ॥३२
अवमानहतश्चासीत्तेषामपि पुरोहितः ।
मुहूर्त्तमित्र तेषां तु ययावब्दायुतं तदा ॥३३
मोहितेष्वथ दैत्येषु सर्वे देवाः सवासवाः ।
विमुक्तोपद्रवा ब्रह्मन्नामोदं परमं ययुः ॥३४
कदाचिदथ देवेंद्रं वीक्ष्य सिंहासने स्थितम् ।
सर्वदेवैः परिवृतं नारदो मुनिराययौ ॥३५

इसके अनन्तर उसके मन्त्रीगण भी उनका स्मरण करने वाले के साथ ही थे ।२९। उस दैत्यों के स्वामी ने बहुत समय तक उस सती से प्रार्थना की थी। उनके द्वारा जब भली भाँति उनसे प्रार्थना की गयी थी तो उन्होंने भी तुरन्त ही प्रति श्रवण किया था ।३०। जो बड़े-बड़े यज्ञों के द्वारा जैसे अश्व मेधादिक यज्ञ हैं इनके द्वारा भी अलभ्य होती हैं उनको जिनमें मोहिनी मुख्य थी प्राप्त करके उनको बहुत ही अधिक आनन्द प्राप्त हुआ था ।३१। फिर तो उन सबने उस समय में भोग विलास के आनन्द में निमग्न होकर वेदों को भुला दिया था और उमापति देव का जो अर्चन था वह भी छोड़ दिया था। यज्ञादिक की जो भी अन्य परम शुभ के देने वाली क्रियाएँ थी उनका भी परित्याग कर दिया था ।३२। फिर तो उनके जो

पुरोहित थे उनका भी अपमान करके उन्हें छोड़ दिया था। उनके सहस्रों वर्ष एक मुहूर्त्त के ही समान व्यतीत हो गये थे।३३। उन समस्त दैत्यों के विमोहित हो जाने पर इन्द्रदेव के सहित सब देवगण हे ब्रह्मन् ! विमुक्त उपद्रव वाले होकर परम आनन्द को प्राप्त हो गये थे।३४। इसके अनन्तर किसी समय में देवेन्द्र को अपने सिंहासन पर विराजमान देखकर जो कि समस्त देवों से घिरा हुआ अवस्थित था नारद मुनि वहाँ पर समागत हो गये थे।३५।

प्रणम्य मुनिशार्दूलं ज्वलंतमिव पावकम् ।
कृतांजलिपुटो भूत्वा देवेशो वाक्यमब्रवीत् ॥३६
भगवन्सर्वधर्मज्ञ परापरविदां वर ।
तत्रैव गमनं ते स्याद्यं धन्यं कर्तुमिच्छसि ॥३७
भविष्यच्छोभनाकारं तवागमनकारणम् ।
त्वद्वाक्यामृतमाकर्ण्य श्रवणानंदनिर्भरम् ।
अशेषदुःखान्युत्तीर्य कृतार्थः स्याः मुनीश्वर ॥३८
नारद उवाच—
अथ संमोहितो भंडो दैत्येंद्रो विष्णुमायया ।
तया विमुक्तो लोकांस्त्रीन्दहेताग्निरिवापरः ॥३९
अधिकस्तव तेजोभिरस्त्रैर्मायाबलेन च ।
तस्य तेजोऽपहारस्तु कर्तव्योऽतिबलस्य तु ॥४०
विनाराधनतो देव्याः पराशक्तेस्तु वासव ।
अशक्योऽन्येन तपसा कल्पकोटिशतैरपि ॥४१
पुरैवोदयतः शत्रोराराधयत बालिशाः ।
आराधिता भगवती सा वः श्रेयो विधास्यति ॥४२

जाज्वल्यमान अग्नि के समान परम तेजस्वी मुनि शार्दूल को प्रणाम करके अपने दोनों हाथों को जोड़ कर देवेन्द्र ने यह वाक्य कहा था।३६। हे भगवन् ! आप तो सभी धर्मों के ज्ञान रखने वाले हैं और आप परावर के ज्ञाताओं में भी परम श्रेष्ठ हैं। आपका गमन तो वहाँ पर हुआ करता है

जिसको आप धन्य बनाना चाहते हैं ।३७। आपके शुभ आगमन का कारण भविष्य को परम शुभ बताने वाला होता है। हे मुनीश्वर ! श्रवणों को परमानन्द उपजाने वाले आपके मुख से निःसृत वाक्य को सुनकर मैं समस्त दुःखों को पार करके परम कृतार्थ होऊँगा ।३८। श्री नारदजी ने कहा—दैत्यों का स्वामी भण्ड विष्णु की माया से सम्मोहित हो गया है। उसके द्वारा विमुक्त हुआ वह तीनों लोकों को दूसरी अग्नि के ही समान दहन करता है ।३९। वह तेजों से-अस्त्रों से और मायाके बलसे आपसे भी अधिक है। उस अत्यधिक बलवान् के तेज का अपहरण अवश्य ही करना चाहिए ।४०। हे इन्द्र ! पराशक्ति देवी की आराधना के बिना किसी भी अन्य तप से सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी उसके अति बल का अपहरण नहीं हो सकता है ।४१। हे मूर्खों ! उदीयमान शत्रु के पूर्व में ही आराधना करो अर्थात् शत्रु जैसे ही बढ़ रहा हो उसी समय में पहिले ही आराधना करनी चाहिए। आराधना की हुई वह भगवती तुम्हारा श्रेय कर देगी ।४२।

एवं संबोधितस्तेन शक्रो देवगणेश्वरः ।
तं मुनिं पूजयामास सर्वदेवैः समन्वितः ।
तपसे कृतसन्नाहो ययौ हैमवतं तटम् ।।४३
तत्र भागीरथीतीरे सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वले ।
पराशक्तेर्महापूजां चक्रेऽखिलसुरैः समम् ।
इन्द्रप्रस्थमभून्नाम्ना तदाद्यखिलसिद्धिदम् ।।४४
ब्रह्मात्मजोपदिष्टेन कुर्वतां विधिना पराम् ।
देव्यास्तु महतीं पूजां जपध्यानरतात्मनाम् ।।४५
उग्रे तपसि संस्थानामनन्यार्पितचेतसाम् ।
दशवर्षसहस्राणि दशाहानि च संययुः ।।४६
मोहितानथ तान्दृष्ट्वा भृगुपुत्रो महामतिः ।
भंडासुरं समभ्येत्य निजगाद पुरोहितः ।।४७
त्वामेवाश्रित्य राजेंद्र सदा दानवसत्तमाः ।
निर्भयास्त्रिषु लोकेषु चरंतीच्छाविहारिणा ।।४८

जातिमात्रं हि भवतो हंति सर्वान्सदा हरिः ।
तेनैव निर्मिता माया यया संमोहितो भवान् ।।४९

उस महामुनि के द्वारा इस प्रकार से जब देवगणों के स्वामी को सम्बोधित किया गया था तो उस इन्द्र ने सब देवों के सहित मुनि का पूजन किया था और तपश्चर्या करने के लिये तैयारी करने वाला वह हैमवान् के तट पर चला गया था ।४३। वहाँ पर सब ऋतुओं के कुसुमों से समुज्ज्वल भागीरथी गंगा के तीर पर समस्त सुरगणों के साथ उस इन्द्र ने उस परा शक्ति की महा पूजा की थी । उस समय से ही लेकर अखिल सिद्धियों का प्रदान करने वाला वह स्थल इन्द्रप्रस्थ नाम वाला हो गया था ।४४। ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी के द्वारा उपदेश की गयी विधि से जप और ध्यान में निरत आत्मा वालों की उस देवी की महती परा पूजा करने वालों को बहुत समय व्यतीत हो गया था ।४५। वे सभी परम उग्र तप में संस्थित थे तथा अन्य किसी में भी उनका चित्त न लगकर उसी में निरत था । ऐसे उनको करते हुए दश सहस्र वर्ष और दश दिन बीत गये थे ।४६। इधर महामति भृगु के ने उन समस्त दैत्यों को मोहित देखकर वह भण्डासुर के समीप में पहुँचे थे और उससे पुरोहित जी ने कहा था ।४७। हे राजेन्द्र ! आपका ही समाश्रय लेकर सदा ही सब दानव गण निर्भय होकर तीनों लोकों में चरण किया करते हैं और अपनी इच्छा से ही विहार करते हैं ।४८। हरि भगवान् तो आपकी पूर्ण जाति का ही हनन किया करते हैं और सदा सबका विनाश करते हैं । उन्हीं के द्वारा इस माया की रचना की गयी है जिसके द्वारा आप समोहित हो गये हैं ।४९।

भवंतं मोहितं दृष्ट्वा रंध्रान्वेषणतत्परः ।
भवतां विजयार्थाय करोतींद्रो महत्तपः ।।५०
यदि तुष्टा जगद्धात्री तस्यैव विजयो भवेत् ।
इमां मायामयीं त्यक्त्वा मंत्रिभिः सहितो भवान् ।
गत्वा हैमवतं शैलं परेषां विघ्नमाचर ।।५१
एवमुक्तस्तु गुरुणा हित्वा पर्यंकमुत्तमम् ।
मंत्रिवृद्धानुपाहूय यथावृत्तांतमाह सः ।।५२
तच्छ्रुत्वा नृपतिं प्राह श्रुतवर्मा विमृश्य च ।

षष्टिवर्षसहस्राणां राज्यं तव शिवार्पितम् ।।५३
तस्मादप्यधिकं वीर गतमासीदनेकशः ।
अशक्यप्रतिकार्योऽयं यः कालशिवचोदितः ।।५४
अशक्यप्रतिकार्योऽयं तदभ्यर्चनतो विना ।
काले तु भोगः कर्त्तव्यो दुःखस्य च सुखस्य वा ।।५५
अथाह भीमकर्माख्यो नोपेक्ष्योऽरिर्यथाबलम् ।
क्रियाविघ्ने कृतेऽस्माभिर्विजयस्ते भविष्यति ।।५६

जब आप मोहित हो गये हैं तो ऐसी अवस्था में आपको देखकर छिद्रों की खोज में परायण इन्द्र आपके ऊपर विजय प्राप्त करने के लिये महान् तप कर रहा है ।५०। यदि जगत् की धात्री देवी प्रसन्न हो गयी तो फिर उसी की विजय होगी । इसलिए इस मायामयी को छोड़कर मन्त्रियों के साथ अन्य हैमवन्त पर्वत पर जाओ और उन देवों के नृप में विघ्न पैदा करो ।५१। श्री गुरुदेव के द्वारा जब इस रीति से कहा गया था तब दैत्येन्द्र ने अपना उत्तम पर्यंक त्याग दिया था और वृद्ध मन्त्रियों को बुलाकर को भी वृत्त था वह सब कह सुनाया था ।५२। इसका श्रवण करके श्रुतवर्मा ने विचार करके राजा से कहा था । आपका राज्य शासन साठ हजार वर्षों तक ही शिव ने आपको प्रदान किया था ।५३। हे वीर ! अब तो उसने समय से भी अधिक समय व्यतीत हो चुका है और अनेकों वर्ष निकल गये हैं । यह समय तो भगवान् शिव के द्वारा ही दिया गया था । अब इसका कोई भी प्रतीकार नहीं किया जा सकता है ।५४। अब उनके ही अभ्यर्चना के बिना यह राज्य का रहना असम्भव है और इसका कोई भी प्रतिकार नहीं हो सकता है । यह तो काल है इसमें तो सुख और दुःख का भोग करना होगा ।५५। इसके अनन्तर जो भीमकर्मा नाम वाला मन्त्री था उसने कहा— जहाँ तक बल है शत्रु की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । हम लोगों के द्वारा जब क्रिया का विघ्न किया जायेगा तो ऐसा करने पर आपका ही विजय होगा ।५६।

तव युद्धे महाराज परार्थं बलहारिणी ।
दत्ता विद्या शिवेनैव तस्मात्ते विजयः सदा ।।५७
अनुमेने च तद्वाक्यं भंडो दानवनायकः ।

निर्गत्य सह सेनाभिर्ययौ हैमवतं तटम् ॥५८
तपोविघ्नकरान्दृष्ट्वा दानवाञ्जगदंबिका ।
अलंघ्यमकरोदग्रे महाप्राकारमुज्ज्वलम् ॥५९
तं दृष्ट्वा दानवेंद्रोऽपि किमेतदिति विस्मितः ।
संक्रुद्धो दानवास्त्रेण बंभजातिबलेन तु ॥६०
पुनरेव तदग्रेऽभूदलंघ्यः सर्वदानवैः ।
वायव्यास्त्रेण तं धीरो बभंज च ननाद च ॥६१
पौनः पुन्येन तद्भस्म प्राभूत्पुनरुपस्थितम् ।
एतद्दृष्ट्वा तु दैत्येंद्रो विषण्णः स्वपुरं ययौ ॥६२
तां च दृष्ट्वा जगद्धात्रीं दृष्ट्वा प्राकारमुज्ज्वलम् ।
भयाद्विव्यथिरे देवा विमुक्तसकलक्रियाः ॥६३

हे महाराज ! आपके युद्ध में परों के बल के हरण करने वाली विद्या भगवान् शिव ने ही प्रदान की है इसलिए आपकी सदा ही विजय होगी ।५७। दानवों के नायक भण्ड ने उसके वाक्य को मान लिया था और सेनाओं के साथ वह निकल कर हैमवत के तट पर चला गया था ।५८। जगम्बिका ने तपश्चर्या के अन्दर विघ्न डालने वालों को देखा था उसने आगे उज्ज्वल जो महा प्रकार था उसको न लाँघने के योग्य बना दिया था ।५९। उसको देखकर वह दानवेन्द्र भी यह क्या है—इस बात से अत्यधिक विस्मित हो गया था । वह अधिक क्रुद्ध होगया था और उसने दानवास्त्र के द्वारा उसको भंग करना चाहा था ।६०। वह फिर भी उसके आगे गया था किन्तु वह सभी दानवों के द्वारा न लाँघने के योग्य हो गया था । और उस धीर ने दानवास्त्र के द्वारा उसका भंग किया था और बड़ी गर्जना भी की थी ।६१। बारम्बार भी ऐसा करने से वह भस्म फिर समुत्पन्न हो गयी थी और उपस्थित हो गयी थी । यह देखकर वह दानवेन्द्र परम विषाद से युक्त होकर अपने पुर को चला गया था ।६२। देवों ने उस जगत् की धात्री का दर्शन किया था और उस उज्ज्वल प्राकार को भी देखा था । देवगण भय से बहुत ही व्यथित हो गये थे और उन्होंने समस्त क्रियाओं को छोड़ दिया था ।६३।

तानुवाच ततः शक्रो दैत्येन्द्रोऽयमिहागतः ।
अशक्यः समरे योद्धुमस्माभिरखिलैरपि ॥६४
पलायितानामपि नो गतिरन्या न कुत्रचित् ।
कुण्डं योजनविस्तारं सम्यक्कृत्वा तु शोभनम् ॥६५
महायागविधानेन प्रणिधाय हुताशनम् ।
यजामः परमां शक्तिं महामांसैर्वयं सुराः ॥६६
ब्रह्मभूता भविष्यामो भोक्ष्यामो वा त्रिविष्टपम् ।
एवमुक्तास्तु ते सर्वे देवाः सेन्द्रपुरोगमाः ॥६७
विधिवज्जुहुवुर्मांसा न्युत्कृत्योत्कृत्य मंत्रतः ।
हुतेषु सर्वगांसेषु पादेषु च करेषु च ॥६८
होतुमिच्छत्सु देवेषु कलेवरमशेषतः ।
प्रादुर्बभूव परमन्तेजः पुंजो ह्यनुत्तमः ॥६९
तन्मध्यतः समुदभूच्चक्राकारमनुत्तमम् ।
तन्मध्ये तु महादेवीमुदयार्कसमप्रभाम् ॥७०

इसके पश्चात् इन्द्र देव ने उन देवगणों से कहा था कि यह दैत्येन्द्र यहाँ पर आ गया है और इसको इन सभी लोग भी जीतने में युद्ध में असमर्थ है ।६४। अगर हम सब लोग यहाँ से भागते भी हैं तो भी हमारी कहीं पर भी अन्य कोई गति नहीं है । एक योजनके विस्तार वाला कुण्ड बनाकर जो बहुत ही अच्छा और सुन्दर हो हम सब यज्ञ का कार्य सम्पन्न करें ।६५। महायाग का जो भी विधान है उसी से हुताशन का प्रणिधान करें। हम सब सुरगण महा मांसो से इस परमा शक्ति का ही इस समय में यजन करें ।६६। हम सब लोग ऐसा करने से ब्रह्मभूत हो जायँगे अथवा स्वर्ग लोक का भोग करेंगे । इस प्रकार से जब सब देवों से कहा गया था तो इन्द्र ही जिनमें अग्रणी था वे सभी देवगण प्रस्तुत हो गये थे ।६७। फिर उन्होंने मन्त्रों के द्वारा काट-काट कर विधि पूर्वक मांसों से हवन किया था। शरीरों के समस्त मांस का हवन करने पर तथा चरणों और करों का भी होम करने पर जब उन्होंने अपना सम्पूर्ण शरीर ही हवन कर देने की इच्छा की थी तो उसी समय एक परम उत्तम तेज का पुञ्ज प्रादुर्भूत हुआ था ।६८-६९।

उस तेज के पुञ्ज के मध्य से एक चक्र के समान आकार का पदार्थ समुत्पन्न हुआ था और उसके मध्य में समुदित सूर्य के सदृश प्रभा से समन्वित देवी प्रकट हुई थी ।७०।

जगदुज्जीवनकरीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
सौन्दर्यसारसीमां तामानन्दरससागराम् ।।७१
जपाकुसुमसंकाशां दाडिमीकुसुमांबराम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तां शृङ्गारैकरसालयाम् ।।७२
कृपातरंगितापांगनयनालोककौमुदीम् ।
पाशांकुशेक्षुकोदंडपंच बाणलसत्कारम् ।।७३
तां विलोक्य महादेवी देवाः सर्वे सवासवाः ।
प्रणेमुर्मुदितात्मानो भूयोभूयोऽखिलात्मिकाम् ।।७४
तया विलोकिताः सद्यस्ते सर्वे विगतज्वराः ।
सम्पूर्णांगा दृढतरा वज्रदेहा महाबलाः ।
तुष्टुवुश्च महादेवीमंबिकामखिलार्थदाम् ।।७५

अब उस महादेवी के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वह देवी इस जगत् के उज्जीवन करने वाली थी और ब्रह्मा—विष्णु और शिव के स्वरूप वाली थी। उसका स्वरूप सौन्दर्य के सार की सीमा ही था। और वह आनन्द के रस का सागर थी।७१। उसका कलेवर जपा के पुष्पों के सदृश था और उसके वस्त्र दाड़िमी के कुसुमों के समान वर्ण वाले थे। वह सभी आभरणों से भूषित थी तथा शृङ्गार रस का एक स्थल स्वरूप वह थी।७२। कृपा से तरंगित अपांगों वाले नेत्रों से प्रकाश करने वाली वह कौमुदी थी। उसके करों में पाश—अंकुश—इक्षु—को दण्ड और पांच बाण थे जिससे वह परम सुशोभित थी।७३। उस महादेवी का दर्शन करके इन्द्र के सहित समस्त देवगणों ने बारम्बार प्रसन्न मनों वाले होकर उस अखिलात्मिका के चरणोंमें प्रणाम किया था।७४। उसके द्वारा अवलोकित होकर सभी देवगण दुःख रहित हो गये थे। उनके सब अंग पूर्ण हो गये थे और बहुत अधिक सुदृढ़—वज्र के समान देहों वाले तथा महान् बल से सम्पन्न हो गये थे। सब कुछ देने वाली उस अम्बिका महादेवी का उन्होंने स्तवन किया था।७५।

—×—

।। ललिता स्तवराज वर्णन ।।

देवा ऊचुः—

जय देवि जगन्मातर्जय देवि परात्परे ।
जय कल्याणनिलये जय कामकलात्मिके ।।१
जयकारि च वामाक्षि जय कामाक्षि सुन्दरि ।
जयाखिलसुराराध्ये जय कामेशि मानदे ।।२
जय ब्रह्ममये देवि ब्रह्मात्मकरसात्मिके ।
जय नारायणि परे नन्दिताशेषविष्टपे ।।३
जय श्रीकण्ठदयिते जय श्रीललितेंबिके ।
जय श्रीविजये देवि विजयश्रीसमृद्धिदे ।।४
जातस्य जायमानस्य इष्टापूर्तस्य हेतवे ।
नमस्तस्यै त्रिजगतां पालयित्र्यै परात्परे ।।५
कलामुहूर्तकाष्ठाहर्मासर्तु शरदात्मने ।
नमः सहस्रशीर्षायै सहस्रमुखलोचने ।।६
नमः सहस्रहस्ताब्जपादपंकजशोभिते ।
अणोरणुतरे देवि महतोऽपि महीयसि ।।७

देवों ने कहा—हे परसे भी परे ! हे देवि ! आप तो इस समस्त जगत् की माता हैं, आपकी जय हो । आप तो सबके कल्याण करने का स्थल हैं और आप काम कला का स्वरूप वाली है, आपकी जय हो ।१। हे परम सुन्दर नेत्रों वाली ! हे कामाक्षि ! हे सुन्दरि ! आप जय करने वाली हैं । आप समस्त सुरों की आराधन करने के योग्य हैं । हे कामेशि ! आप मान देने वाली हैं आपकी जय हो-जय हो ।२। हे ब्रह्ममये ! हे देवि ! आप तो ब्रह्मात्मक रस के स्वरूप वाली हैं । हे नारायणि ! आप परा हैं जो सम्पूर्ण स्वर्ग वासियों के द्वारा वन्दित हैं ।३। आप श्री कण्ठ (शिव) की दायिता हैं आपकी जय हो । हे श्री ललिताम्बिके ! हे देवि ! आप श्री की विजय तथा श्री की समृद्धि का प्रदान करने वाली है ।४। हे पर से भी परे ! जो जन्म धारण कर चुका है और जन्म लेने वाला है आप उसके इष्टा पूर्त्त की हेतु

हैं। तीनों जगतों की पालन करने वाली उन आपके लिए हमारा सबका नमस्कार है ।५। कला-काष्ठा-मुहूर्त्त-दिन-मास-ऋतु और वर्षों के स्वरूप वाली आप हैं। सहस्र शीर्ष-मुख और लोचनों वाली आपके लिए हमारा प्रणाम है ।६। आप सहस्र हाथ—चरण कमलों से परम शोभित हैं। आप अणु तथा महान् से भी अधिक महान् से भी अधिक महान् है। हे देवि ! आपके लिए हमारा नमस्कार है ।७।

परात्परतरे मातस्तेजस्तेजीयसामपि ।
अतलं तु भवेत्पादौ वितलं जानुनी तव ।।८
रसातलं कटीदेशः कुक्षिस्ते धरणी भवेत् ।
हृदयं तु भुवर्लोकः स्वस्ते मुखमुदाहृतम् ।।९
दृशश्चन्द्रार्कदहना दिशस्ते बाहवोंबिके ।
मरुतस्तु तवोच्छ्वासा वाचस्ते श्रुतयोऽखिलाः ।।१०
क्रीडा ते लोकरचना सखा ते चिन्मयः शिवः ।
आहारस्ते सदानन्दो वासस्ते हृदये सताम् ।।११
दृश्यादृश्यरूपाणि स्वरूपाणि भुवनानि ते ।
शिरोरुहा घनास्ते तु तारकाः कुसुमानि ते ।।१२
धर्माद्या बाहवस्ते स्युरधर्माद्यायुधानि ते ।
यमाश्च नियमाश्चैव करपादरुहास्तथा ।।१३
स्तनौ स्वाहास्वधाकारौ लोकोज्जीवनकारकौ ।
प्राणायामस्तु ते नासा रसना ते सरस्वती ।।१४

हे माता ! आप पर से भी पर हैं और जो भी तेज धारण करने वाले हैं उनका भी तेज आप ही हैं। यह अतल लोक आपके दोनों चरण हैं और वितल लोक आपके दोनों जानु हैं ।८। रसातल आपका कटिभाग है और यह धरणी आपकी कुक्षि है। आपका मुख स्वर्लोक है तथा भुवर्लोक आपका हृदय है ।९। चन्द्र—सूर्य और अग्नि आपके नेत्र हैं। वायु आपके उच्छ्वास हैं और श्रुति (कान) आपकी वाणी है ।१०। यह समस्त लोकों की रचना आपकी क्रीड़ा है और ज्ञान से परिपूर्ण भगवान् शिव ही आपके सखा हैं। सर्वदा आनन्द का रहना ही आपका आहार है तथा आपका

निवास स्थल सत्पुरुषों का हृदय है ।११। ये समस्त भुवन ही आपके देखने के योग्य और अदृश्य रूप हैं । ये घन ही आपके केश हैं तथा तारागण आपके केशों में लगे हुए पुष्प हैं ।१२। ये धर्म आदि सब आपकी भुजाएँ हैं और अधर्म आदि सब आपके आयुध हैं । समस्त यम और नियम आपके कर और पाद के ।१३। स्वाहा और स्वधा के आकार वाले ही आपके दो स्तन है जो लोकों के उज्जीवन करने वाले हैं । प्राणायाम ही आपकी नासिका है तथा सरस्वती देवी ही आपकी रचना है ।१४।

प्रत्याहारस्त्विद्रियाणि ध्यानं ते धीस्तु सत्तमा ।
मनस्ते धारणाशक्तिर्हृदयं ते समाधिकः ।।१५
महीरुहास्तेंगरुहाः प्रभातं वसनं तव ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च नित्यं च तव विग्रहः ।।१६
यज्ञरूपा जगद्धात्री विश्वरूपा च पावनी ।
आदौ या तु दयाभूता ससर्ज निखिलाः प्रजाः ।।१७
हृदयस्थापि लोकावामदृश्या मोहनात्मिका ।।१८
नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया ।
तान्यधिष्ठाय तिष्ठन्ती तेष्वसक्तार्थकामदा ।
नमस्तस्यै महादेव्यै सर्वशक्त्यै नमोनमः ।।१९
यदाज्ञया प्रवर्तते वह्निसूर्येंदुमारुताः ।
पृथिव्यादीनि भूतानि तस्यै देव्यै नमोनमः ।।२०
या ससर्जादिधातारं सर्गादावादिभूरिदम् ।
दधार स्वयमेवैका तस्यै देव्यै नमोनमः ।।२१

आपका प्रत्याहार ही इन्द्रियाँ हैं और ध्यान ही परम श्रेष्ठ बुद्धि है । आपकी धारणा शक्ति ही मन है और आपका हृदय समाधिक है ।१५। पर्वत ही आपके अङ्गरुह हैं और प्रभात आपका वसन है । भूत-भव्य-भविष्य और नित्य आपका विग्रह है ।१६। जगत् की धात्री आप यज्ञ स्वरूप वाली हैं और परम पावनी विश्व के रूप वाली हैं । जिसने आदि काल में दया के स्वरूप वाली होकर इन समस्त प्रजाओं का सृजन किया था ।१७। आप सबके हृदयों में स्थित भी रहती हुई मोहन स्वरूप वाली लोकों के लिए

अदृश्य हैं ।१८। आप अपने नामों का और रूप का विभाग अपनी ही लीला से किया करती है । आप उनमें अधिष्ठित रहकर ही स्थित रहा करती है और उनमें जो असक्त हैं उनके अर्थ और कामनाओं के प्रदान करने वाली हैं । उन महादेवी के लिए बारम्बार नमस्कार है और सर्वशक्ति को बार-बार प्रणाम है ।१९। जिसकी आज्ञा से ही ये अग्नि—सूर्य तथा चन्द्रमा अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त हुआ करते हैं और पृथिवी आदि ये भूत भी कार्यरत रहा करते हैं उस देवी के लिये बारम्बार प्रणाम है ।२०। जिसने आदि धाता का सृजन किया था और जिसने सर्ग के आदि काल में आदि भू का रूप धारण किया था तथा इस सबको स्वयं एक ही ने धारण किया था उस देवी के लिए अनेक बार प्रणाम है ।२१।

यया धृता तु धरणी ययाकाशममेयया ।
यस्यामुदेति सविता तस्यै देव्यै नमोनमः ।।२२
यत्रोदेति जगत्कृत्स्नं यत्र तिष्ठति निर्भरम ।
यत्रांतमेति काले तु तस्यै देव्यै नमोनमः ।।२३

नमोनमस्ते रजसे भवायै नमोनमः सात्त्विकसंस्थितायै ।
नमोनमस्ते तमसे हरायै नमोनमो निर्गुणतः शिवायै ।।२४
नमोनमस्ते जगदेकमात्रे नमोनमस्ते जगदेकपित्रे ।
नमोनमस्तोऽखिलरूपतंत्रे नमोनमस्तोऽखिलयन्त्ररूपे ।।२५
नमोनमो लोकगुरुप्रधाने नमोनमस्तोऽखिलवाग्विभूत्यै ।
नमोऽस्तु लक्ष्म्यै जगदेकतुष्ट्यै नमोनमः
शांभवि सर्वशक्त्यै ।।२६

अनादिमध्यांतमपाञ्चभौतिकं ह्यवाङ्मनोगम्यमतर्क्यवैभवम्
अरूपमद्वंद्वमदृष्टिगोचरं प्रभावमग्र्यं कथमंब वर्णये ।।२७
प्रसीद विश्वेश्वरि विश्ववंदिते प्रसीद विद्येश्वरि वेदरूपिण
प्रसीद मायामयि मंत्रविग्रहे प्रसीद सर्वेश्वरि सर्वरूपिणि ।।२८

जिसने इस धरणी को धारण किया है और जिस अमेया ने इस आकाश को धारण किया है जिसमें सविता समुदित होता है उस महादेवी

यह अन्त को प्राप्त हो जाता है उस देवी के लिए बार-बार नमस्कार निवेदित है ।२३। आप रजो रूपा भवा के लिए मेरा नमस्कार है तथा सात्विक संस्थिता के लिए नमस्कार है । तमोरूपहरा आपको नमस्कार है । निर्गुण स्वरूपा शिवा आपको प्रणाम है ।२४। आप इस सम्पूर्ण जगत् की एक ही माता हैं ऐसी आपको बारम्बार नमस्कार है । इस जगत् की आप ही एकमात्र पिता अर्थात् जनक हैं ऐसी आपके लिए अनेक बार नमस्कार हैं। आपका यह सम्पूर्ण स्वरूप तन्त्र है तथा आप अखिल यन्त्र रूपा हैं ऐसी आप की सेवा में अनेकशः हमारा प्रणाम निवेदित है ।२५। आप लोक गुरु की प्रधान हैं ऐसी अखिल वाग् की विभूति के लिए हमारा बार-बार प्रणाम है । लक्ष्मी के लिए तथा जगत की एक तुष्टि के लिए हमारा बारम्बार नमस्कार है । हे शाम्भवि ! सर्वशक्ति आपको प्रणाम है ।२६। हे अम्ब ! आपका प्रभाव अत्युत्तम है तथा अनादि मध्यान्त हैं—अपाञ्च भौतिक है—वाणी मन से अगम्य है और अप्रतर्क्य वैभव वाला है । वह रूप तथा द्वन्द्व से रहित है एवं दृष्टिगोचर नहीं है, मैं किस प्रकार से इसका वर्णन करूँ ।२७। हे विश्वेश्वरि ! हे विश्व वन्दिते ! हे वेदों के स्वरूप वाली ! आप प्रसन्न होइये । हे मायामयि ! हे मन्त्रों के विग्रह वाली ! हे सर्वेश्वरि ! हे सर्वरूपिणि ! आप प्रसन्न होइए ।२८।

इति स्तुत्वा महादेवीं देवाः सर्वे सवासवाः ।
भूयोभूयो नमस्कृत्य शरणं जग्मुरञ्जसा ॥२९

ततः प्रसन्ना सा देवी प्रणतं वीक्ष्य वासवम् ।
वरेणाच्छन्दयामास वरदाखिलदेहिनाम् ॥३०

इन्द्र उवाच—

यदि तुष्टासि कल्याणि वरं दैत्येंद्र पीडितः ।
दुर्धरं जीवितं देहि त्वां गताः शरणार्थिनः ॥३१

श्री देव्युवाच—

अहमेव विनिर्जित्य भंडं दैत्यकुलोद्भवम् ।
आहरातव तास्यामि त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३२

निर्भया मुदिताः सन्तु सर्वे देवगणास्तथा ।
ये स्तोष्यन्ति च मां भक्त्या स्तवेनानेन मानवाः ॥३३
भाजनं ते भविष्यन्ति धर्मश्रीयशसां सदा ।
विद्याविनयसंपन्ना नीरोगा दीर्घजीविनः ॥३४
पुत्रमित्रकलत्राढ्या भवन्तु मदनुग्रहात् ।
इति लब्धवरा देवा देवेंद्रोऽपि महाबलः ॥३५
आमोदं परमं जग्मुस्तां विलोक्य मुहुर्मुहुः ॥३६

इस प्रकार से बहुत से बहुत लम्बी स्तुति करके इन्द्र के सहित समस्त देवगण महादेवी को बार-बार प्रणाम करके तुरन्त ही जगदम्बा के शरण में चले गये थे ।२९। फिर वह देवी परम प्रसन्न हो गयी थी और उसने इन्द्र को अपने चरणों में प्रणत देखा था। फिर समस्त देहधारियों को वरदान देने वाली देवी ने उसको वरदान देने के लिए कहा था ।३०। इन्द्र ने कहा—हे कल्याणि ! यदि आप मुझ पर सुप्रसन्न हैं तो मैं तो दैत्येन्द्र से पीड़ित हूँ। मुझे यही वरदान देवें कि मेरा दुर्धर जीवित होवे। हम लोग आपकी शरण में समागत हैं ।३१। श्री देवी ने कहा—मैं स्वयं ही दैत्य कुल में समुत्पन्न भण्ड को विनिर्जित करके धरा से लेकर तीनों लोकों को जिसमें सभी चर-अचर है तुझको दे दूँगी ।३२। फिर समस्त देवगण निर्भय और प्रसन्न होंगे और जो मनुष्य सदा ही धर्म-श्री और यश के भाजन होंगे तथा वे नीरोग-विद्या तथा विनय से सम्पन्न और दीर्घ जीवन होंगे ।३४। वे मेरे अनुग्रह से पुत्र-मित्र और कलत्र से सुसम्पन्न होंगे। इस रीति से देवगण और महान बलवान देवेन्द्र भी वर प्राप्त करने वाले होगये थे और बारम्बार उस जगदम्बा का दर्शन करके परमाधिक आनन्द को प्राप्त हो गये थे ।३५-३६।

—×—

॥ मदन कामेश्वर प्रादुर्भाव वर्णन ॥

हयग्रीव उवाच—

एतस्मिन्नेव काले तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
आजगामाथ देवेशीं द्रष्टुकामो महर्षिभिः ॥१

आजगाम ततो विष्णुरारूढो विनतासुतम् ।
शिवोऽपि वृषमारूढः समायातोऽखिलेश्वरीम् ॥२
देवर्षयो नारदाद्याः समाजग्मुर्महेश्वरीम् ।
आययुस्तां महादेवीं सर्वे चाप्सरसां गणाः ॥३
विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वाश्चैव यक्षकाः ।
ब्रह्मणाथ समादिष्टो विश्वकर्मा विशांपतिः ॥४
चकार नगरं दिव्यं यथामरपुरं तथा ।
ततो भगवती दुर्गा सर्वमन्त्राधिदेवता ॥५
विद्याधिदेवता श्यामा समाजग्मतुरंबिकाम् ।
ब्राह्म्याद्या मातरश्चैव स्वस्वभूतगणावृताः ॥६
सिद्ध्यो ह्यणिमाद्याश्च योगिन्यश्चैव कोटिशः ।
भैरवाः क्षेत्रपालाश्च महाशास्ता गणाग्रणीः ॥७

हयग्रीव ने कहा—इसी समय में लोकों के पितामह—ब्रह्माजी उस देवेशी के दर्शन करने की इच्छा वाले महर्षियों के साथ वहाँ पर समागत हो गये थे। इसके पश्चात् भगवान विष्णु की गरुड़ पर समारूढ़ होकर वहाँ पर आ गये थे। भगवान शिव भी वृष पर सवार होकर अखिलेश्वरी के दर्शनार्थ आ गये थे।१-२। नारद आदि देवर्षिगण महेश्वरी के समीप में समागत हो गये थे। सभी अप्सराओं के समुदाय भी महादेवी के दर्शनार्थ आ गये थे।३। विश्वावसु आदि गन्धर्व और यक्ष भी वहाँ पर आये थे। ब्रह्माजी के द्वारा आदेश पाकर विशांपति विश्वकर्मा ने एक दिव्य नगर की रचना की थी जैसा कि साक्षात अमर पुर ही होवे। इसके पश्चात् सब मन्त्रों की अधिदेवता श्यामा ये सब अम्बिका के समीप में समागत हुए थे। ब्राह्मी आदि समस्त मातृगण अपने-अपने भूतगणों के साथ समावृत होकर वहाँ पर आयी थीं।४-६। अणिमा-महिमा आदि आठ सिद्धियाँ और करोड़ों योगिनियों वहाँ पर आ गयी थीं। भैरव और क्षेत्रपाल-महाशास्ता गणों के अग्रणी वहाँ समागत हुए।७।

महागणेश्वरः स्कन्दो बटुको वीरभद्रकः ।
आगत्य ते महादेवीं तुष्टुवुः प्रणतास्तदा ॥८

तत्राथ नगरीं रम्यां साट्टप्राकारतोरणाम् ।
गजाश्वरथशालाढ्यां राजवीथिविराजिताम् ।।९
सामंतानाममात्मानां सैनिकानां द्विजन्मनाम् ।
वेतालदासदासीनां गृहाणि रुचिराणि च ।।१०
मध्यं राजगृहं दिव्यं द्वारगोपुरभूषितम् ।
शालाभिर्बहुभिर्युक्तं सभाभिरुपशोभितम् ।।११
सिंहासनसभां चैव नवरत्नमयीं शुभाम् ।
मध्ये सिंहासनं दिव्यं चिंतामणिविनिर्मितम् ।।१२
स्वयं प्रकाशमद्वंद्वमुदयादित्यसंनिभम् ।
विलोक्य चिंतयामास ब्रह्मा लोकपितामहः ।।१३
यस्त्वेतत्समधिष्ठाय वर्तते बालिशोऽपि वा ।
पुरस्यास्य प्रभावेण सर्वलोकाधिको भवेत् ।।१४

महान् गणों के ईश्वर स्वामी कार्त्तिकेय-वटुक-वीरभद्र-इन सबने आकर उस समय में प्रणत होकर महादेवी का स्तवन किया था ।८। वहाँ पर जो एक नगरी की थी वह नगरी परमाधिक सुरम्य थी उसमें बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ—प्राकार और विशाल तोरण थे । उसमें गजअश्व और रथ शालाएँ थीं । तथा राज वीथियाँ भी विद्यमान थीं । जिनसे वह परम शोभित हो रही थी ।९। उसमें सभी के पृथक्-पृथक् परम सुन्दर गृह बने थे—सामन्तों के—अमात्यों के—सैनिकों के और ब्राह्मणों के एवं वेताल के—दासों के और दासियों के गृह निर्मित थे ।१०। उस नगरी के मध्य में द्वारों और गोपुरों से समन्वित परम दिव्य राजगृह था । जिसमें बहुत सी शालायें और सभाएँ बनी हुई थीं । जिससे वह राजगृह उपशोभित था ।११। उसमें एक सिंहासन सभा थी जो नौ प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण और परम शुभ थी । उसके मध्य में एक दिव्य सिंहासन था जो चिन्ता मणियों के द्वारा ही निर्मित था । जिस मणि के समक्ष में जो चिन्तन किया जावे वही प्राप्त हो जाता है उसी को चिन्तामणि कहा जाता है ।१२। वह सिंहासन स्वयं प्रकाश करने वाला—अद्वन्द्व और उदित सूर्य के समान प्रभा वाला था । लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने जब उसका अवलोकन किया तो वे मन में चिन्तन करने लगे थे ।१३। जो भी कोई चाहे बालिश (महामूर्ख) ही क्यों

न हो, इस पर अधिष्ठित होता है वह इस परम सुरम्यपुर के प्रभाव से सभी लोकों से अधिक होता है ।१४।

न केवला स्त्री राज्यार्हा पुरुषोऽपि तया विना ।
मंगलाचार्यसंयुक्त महापुरुषलक्षणम् ।
अनुकूलांगनायुक्तमभिषिचेदिति श्रुतिः ॥१५
विभातीयं वरारोहा मूर्ता शृङ्गारदेवता ।
वरोऽस्यास्त्रिषु लोकेषु न चान्यः शङ्करादृते ॥१६
जटिलो मुण्डधारी च विरूपाक्षः कपालभृत् ।
कल्माषी भस्मदिग्धांगः श्मशानास्थिविभूषणः ॥१७
अमंगलास्पदं चैनं वरयेत्सा सुमंगला ।
इति चिंतयमानस्य ब्रह्मणोऽग्रे महेश्वरः ॥१८
कोटिकन्दर्पलावण्ययुक्तो दिव्यशरीरवान् ।
दिव्यांबरधरः स्रग्वी दिव्यगन्धानुलेपनः ॥१६
किरीटहारकेयूरकुण्डलाद्यै रलंकृतः ।
प्रादुर्बभूव पुरतो जगन्मोहनरूपधृक् ॥२६
तं कुमारमथालिंग्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
चक्रे कामेश्वरं नाम्ना कमनीयवपुर्धरम् ॥२१

केवल स्त्री तो इस राज्य के योग्य नहीं है और केवल पुरुष भी स्त्री से रहित जो हो वह भी इसके योग्य नहीं है । श्रुति का कथन तो यही है कि—मङ्गल मय आचार्य से संयुत और महापुरुषों के लक्षण वाला तथा जो अनुकूल अङ्गना से युक्त हो उसीका राज्यासन पर अभिषेक करना चाहिए ।१५। यह वरारोहा शोभित होती है जो मूर्तिमती शृङ्गार की देवता है । इसका वर भी तीनों लोकों में भगवान् शिव के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है ।१६। किन्तु शङ्कर तो जटा जूट धारीमुण्डों की माला धारण करने वाले-विरूप नेत्रों से युक्त और हाथ में कपाल ग्रहण करने वाले हैं वे तो कल्माषी–भस्म से भूषित अङ्गों वाले और श्मशान की अस्थियों के भूषणों वाले हैं ।१७। शिव तो पूर्णतया अमङ्गलों के स्थान हैं । क्या यह सुमङ्गला उनका वरण करेगी यही इस प्रकार से ब्रह्माजी मन में विचार कर रहे थे

कि उसी समय में ब्रह्माजी के आगे महेश्वर प्रकट हो गये थे।१८। उनका स्वरूप उस समय में करोड़ों कामदेवों के लावण्य से युक्त था और परम दिव्य शरीर से वे युक्त थे। उनके वस्त्र भी परम दिव्य थे तथा मालाऐं धारण किये हुए दिव्य सुगन्धित अनुलेपन वाले थे।१९। वे किरीट—कुण्डल —केयूर और हार आदि आभरणों से समलङ्कृत थे। इस प्रकार का जगत् के तोहन करने वाले स्वरूप को धारण किये हुए ब्रह्माजी के सामने प्रादुर्भूत हुए थे।२०। लोक पितामह ब्रह्माजी ने उस कुमार का आलिङ्गन करके उनका नाम कामेश्वर रखा दिया था क्योंकि वे परम कमनीय को धारण करने वाले थे।२१।

तस्यास्तु परमाशक्तेरनुरूपो वरस्त्वयम् ।
इति निश्चित्य तेनैव सहितास्तामथाययुः ।।२२
अस्तुवंस्तु परां शक्तिं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
तां दृष्ट्वा मृगशावाक्षीं कुमारो नीललोहितः ।
अभवन्मन्मथाविष्टो विस्मृत्य सकलाः क्रियाः ।।२३
सापि तं वीक्ष्य तन्वंगीमूर्तिमंतमिव स्मरम् ।
मदनाविष्टसर्वांगी स्वात्मरूपममन्यत ।
अन्योन्यालोकनासौ तावुभौ मदनातुरौ ।।२४
सर्वभावविशेषज्ञौ धृतिमंतौ मनस्विनौ ।
परैज्ञातचारित्रौ मुहूर्तास्वस्थचेतनौ ।।२५
अथोवाच महादेवीं ब्रह्मा लोकैकनायिकाम् ।
इमे देवाश्च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
त्वामीशां द्रष्टुमिच्छन्ति सप्रियां परमाहवे ।।२६
को वानुरूपस्ते देवि प्रियो धन्यतमः पुमान् ।
लोकसंरक्षणार्थाय भजस्व पुरुषं परम् ।।२७
राज्ञी भव पुरस्यास्य स्थिता भव वरासने ।
अभिषिक्तां महाभागैर्देवर्षिभिरकल्मषैः ।।२८
साम्राज्यचिह्नसंयुक्तां सर्वाभरणसंयुताम् ।
सप्रियामासनगतां द्रष्टुमिच्छामहे वयम् ।।२९

उन्होंने कहा था कि यह तो उस परमा शक्ति के सर्वथा अनुकूलवग हैं—ऐसा निश्चय करके शिव के ही साथ वे वहाँ देवी के समीप में समागत हो गये थे ।२२। उन ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर ने उस पराशक्ति का स्तवन किया था । उस शक्ति का अवलोकन करके ही जो मृगशावक के समान परम सुन्दर नेत्रों वाली थी वे नोललोहित कुमार समस्त क्रियाओं को भुला कर कामासक्त हो गये थे ।२३। वह तन्वङ्गी भी मूर्तिमान् कामदेव के सदृश उनको देखकर मदन से आविष्ट अङ्ग वाली उसने भी उसको अपने ही अनुरूप मान लिया था । परस्पर में एक दूसरे के देखने में आसक्त दोनों ही काम से आतुर हो गये थे । ये दोनों हो सक्त भावों की विशेषता के ज्ञाता-धृति (धीरज) मान् और परम मनस्वी थे । दूसरों के द्वारा इनका चरित्र ज्ञात नहीं हो सकता है ऐसे ये दोनों ही एक मुहूर्त्त मात्र समय तक तो चेतना से शून्य हो गये थे ।२५। इसके उपरान्त ब्रह्मा जी उस लोकों की एक नायिका से बोले—ये देवगण—ऋषि लोग—गन्धर्व और अप्सराओं का समुदाय स्वामिनी आपको इस परमाहव में अपने प्रिय के ही साथ में समन्वित देखने की इच्छा रखते हैं ।२६। हे देवि ! अब आप यही कृपया बतलाइए कि आपका अनुरूप प्रिय कौनसा धन्यतम पुरुष है ? अब आप लोकों के सरक्षण के लिए परम पुरुष का सेवन करिए ।२७। आप इस नगर की महारानी बनिए और इस वरासन पर विराजमान होइए । इन कल्मष रहित देवर्षियों के द्वारा ही हे महाभागे आप अभिषिक्त हो जाइए ।२८। हम तो अब यही अपने नेत्रों से देखने की अभिलाषा रखते हैं कि आप साम्राज्य के चिह्नों से समन्विता होवें और सभी आभरणों से समलङ्कृत होवें । आप अपने परम प्रिय के साथ आसन पर स्थित होवें ।२९।

—×—

वैवाहिकोत्सव वर्णन

तच्छ्रुत्वा वचनं देवी मंदस्मितमुखांबुजा ।
उवाच स ततो वाक्यं ब्रह्मविष्णुमुखान्सुरान् ॥१
स्वतंत्राहं सदा देवाः स्वेच्छाचारविहारिणी ।
ममानुरूपचरितो भविता तु मम प्रियः ॥२
तथेति तत्प्रतिश्रुत्य सर्वैर्देवैः पितामहः ।
उवाच च महादेवीं धर्मार्थसहितं वचः ॥३

कालक्रीता क्रयक्रीता पितृदत्ता स्वयंयुता ।
नारीपुरुषयोरेवमुद्वाहस्तु चतुर्विधः ॥४

कालक्रीता तु वेश्या स्यात्क्रयक्रीता तु दासिका ।
गन्धर्वोद्वाहिता युक्ता भार्या स्यात्पितृदत्तका ॥५

समानधर्मिणी युक्ता पितृवशंवदा ।
यदद्वैतं परं ब्रह्म सदसद्भाववर्जितम् ॥६

चिदानन्दात्मकं तस्मात्प्रकृतिः समजायत ।
त्वमेवासीच्च तद्ब्रह्म प्रकृतिः सा त्वमेव हि ॥७

यह श्रवण करके देवी के मुख कमल पर मन्द सी मुस्कान रेखा दौड़ गयी थी । इसके अनन्तर उस देवी ने उन ब्रह्मादिक जिनमें प्रमुख थे उन देवों से कहा था—हे देवगणो ! मैं परम स्वतन्त्र हूँ और सदा ही अपनी ही इच्छा से विहार करने वाली हूँ । मेरे ही अनुरूप चरित वाला ही मेरा प्रिय होगा ।१-२। ऐसा ही होगा—यह प्रतिज्ञा करके सब देवों के साथ पितामह ने उस देवी से धर्मार्थ के सहित वचन कहा था ।३। विवाह तो चार प्रकार का हुआ करता है—नारी और पुरुष का विवाह होता है—एक तो काल क्रीता नारी होती है—एक क्रय क्रीतानारी है—एक पितृदत्ता है और एक स्वयं युता होती है । काल क्रीता वेश्या होती है जो कुछ काल तक उपभोग के काम आती है । क्रयक्रीता दासी होती है जिसको जीवन भर भोग के लिए खरीद लिया जाया करता है । गान्धर्व विवाह से अर्थात् दोनों ही रजा मन्दी से प्रेम करके नारी बना लेते हैं यह स्वसंयुता होती है और जो भार्या होती है वह तो कन्या को पिता दान किया करता है, यही पितृदत्ता है ।५। समान धर्म वाली भार्यायुक्त होती है जो पिता के वशंवदा होती है और पिता जिसको भी योग्य वर समझता है उसे ही अपनी कन्या को दे दिया करता है । जो ब्रह्म अद्वैत है और सदसद्भाव से वर्जित है वह चिदानन्द स्वरूप वाला है । उससे प्रकृति समुत्पन्न हुआ करती है । आप ही तो वह ब्रह्म हैं और आप ही प्रकृति हैं ।६-७।

त्वमेवानादिरखिला कार्यकारणरूपिणी ।
त्वामेव सि विचिन्वंति योगिनः सनकादयः ॥८

सदसत्कर्मरूपां च व्यक्ताव्यक्तो दयात्मिकाम् ।
त्वामेव हि प्रशंसंति पञ्चब्रह्मस्वरूपिणीम् ।।९
त्वामेव हि सृजस्यादौ त्वमेव ह्यवसि क्षणात् ।
भजस्व पुरुषं कंचिल्लोकानुग्रहकाम्यया ।।१०
इति विज्ञापिता देवी ब्रह्मणा सकलैः सुरैः ।
स्रजमुद्यम्य हस्तेन चिक्षेप गगनांतरे ।।११
तयोत्सृष्टा हि सा माला शोभयन्ती नभःस्थलम् ।
पपात कण्ठदेशे हि तदा कामेश्वरस्य तु ।।१२
ततो मुमुदिरे देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।
ववृषुः पुष्पवर्षाणि मन्दवातेरिता घनाः ।।१३
अथोवाच विधाता तु भगवंतं जनार्दनम् ।
कर्तव्यो विधिनोद्वाहस्त्वनयोः शिवयोर्हरे ।।१४

हे देवि ! आप ही अखिला-अनारादि और कार्य का रण दोनों के स्वरूप वाली हैं। सनकादि योगीजन आपको ही खोजा करते हैं।८। सत् और असत् कर्मों के स्वरूप वाली—व्यक्त तथा अव्यक्त-दया से स्वरूप वाली आप ही की पर ब्रह्म स्वरूप वाली की सब प्रशंसा किया करते हैं। आप ही आरम्भ में सृजन किया करती हैं और आप ही क्षण भर में परिपालन किया करती हैं। अब लोकों पर अनुग्रह करने की आकाङ्क्षा से ही आप किसी भी पुरुष का सेवन करिये।९-१०। इस प्रकार से ब्रह्माजी तथा समस्त सुरों के द्वारा जब वह देवी विज्ञापित की गयी थी तो उसने अपने हाथ से एक माला उठाकर नभ मण्डल के मध्य में प्रक्षिप्त कर दी थी।११। उस देवी के द्वारा ऊपर की ओर प्रक्षिप्त की हुई वह माला आकाश मण्डल को सुशोभित करती हुई उस समय में कामेश्वर प्रभु के कण्ठ भाग में आकर गिर गयी थी।१२। फिर तो ब्रह्मा और विष्णु जिनमें अग्रणी थे ऐसे समस्त देवगण बहुत प्रसन्न हुए थे और मन्द वायु से सम्प्रेरित मेघों ने पुष्पों की वर्षा की थी।१३। इसके अनन्तर विधाता ने भगवान् जनार्दन से कहा—हे हरे ! अब इन दोनों शिव और शिवा का उद्वाह वैदिक विधान से करा देना चाहिए।।१४।

मुहूर्तो देवसम्प्राप्तो जगन्मंगलकारकः ।
स्वद्रूपा हि महादेवी सहजश्च भवानपि ॥१५
दातुमर्हसि कल्याणीमस्मै कामशिवाय तु ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य देवदेवस्त्रिविक्रमः ॥१६
ददौ तस्यै विधानेन प्रीत्या तां शङ्कराय तु ।
देवर्षिपितृमुख्यानां सर्वेषां देवयोगिनाम् ॥१७
कल्याणं कारयामास शिवयोरादिकेशवः ।
उपायनानि प्रददु सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ॥१८
ददौ ब्रह्मेक्षुचापं तु वज्रसारमनश्वरम् ।
तयोः पुष्पायुधं प्रादादम्लानं हरिरव्ययम् ॥१९
नागपाशं ददौ ताभ्यां वरुणो यादसांपतिः ।
अङ्कुशं च ददौ ताभ्यां विश्वकर्मा विशांपतिः ॥२०
किरीटमग्निः प्रायच्छत्ताटंकौ चन्द्रभास्करौ ।
नवरत्नमयीं भूषां प्रादाद्रत्नाकरः स्वयम् ॥२१

अब देव से सम्प्राप्त जगत् का मङ्गल करने वाला मुहूर्त्त प्राप्त हो गया है । यह महादेवी आपके ही स्वरूप वाली है और आप भी सहज ही हैं ।१५। इस कल्याणी को आप देने के योग्य होते हैं और इन काम रूप शिव के लिये प्रदान कर दीजिए । देवों के देव त्रिविक्रम भगवान् ने यह श्रवण करके उस देवी का दान करने का उपक्रम किया था ।१६। उन देवगण योगिगण सब देव-ऋषि और पितृगणों के मध्य में भगवान् विष्णु ने उस देवी को वैदिक विधि से भगवान् शङ्कर को प्रदान किया था और बड़ी प्रसन्नता से वह कन्यादान किया था ।१७। आदि केशव प्रभु ने उन दोनों शिवा और शिव का कल्याण करा दिया था और समस्त ब्रह्मादिक सुरगणोंने बहुतसे उपायन समर्पित किये थे ।१८। ब्रह्माजी ने तो इक्षु चाप दिया था श्री अविनाशी और वज्र के समान सार वाला था । भगवान् श्रीहरि ने उन दोनों पति-पत्नी को अविनाशी और अम्लान कुसुमों का आयुध समर्पित किया था ।१९। जल सागरों के स्वामी वरुण ने उन दोनों के लिए नाग पाश दिया था और निशापति विश्वकर्मा ने उन दोनों के लिए अंकुश अर्पित किया था ।२०।

अग्नि देव ने किरीट समर्पित किया था और चन्द्र तथा भास्कर देवों ने दो ताटंक दिये थे। रत्नाकर ने स्वयं समुपस्थित होकर नौ प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण भूषा प्रदान की थी।२१।

ददौ सुराणामधिपो मधुपात्रमथाक्षयम्।
चिन्तामणिमयीं मालां कुबेरः प्रददौ तदा ॥२२
साम्राज्यसूचकं छत्रं ददौ लक्ष्मीपतिः स्वयम्।
गङ्गा च यमुना ताभ्यां चामरे चन्द्रभास्वरे ॥२३
अष्टौ च वसवो रुद्रा आदित्याश्चाश्विनौ तथा।
दिक्पाला मरुतः साध्या गन्धर्वाः मथेश्वराः।
स्वानिस्वान्यायुधान्यस्यै प्रददुः परितोषिताः ॥२४
रथांश्च तुरगान्नागान्महावेगान्महाबलान्।
उष्ट्रानरोगानश्वांस्तान्क्षुत्तृष्णापरिवर्जितान्।
ददुर्वज्रोपमाकारान्सायुधान्सपरिच्छदान् ॥२५
अथाभिषेकमातेनुः साम्राज्ये शिवयोः शिवम्।
अथाकरोद्विमानं च नाम्ना तु कुसुमाकरम् ॥२६
विधाताम्लानमालं वै नित्यं चाभेद्यमायुधैः।
दिवि भुव्यंतरिक्षे च कामगं सुसमृद्धिमत् ॥२७
यद्गन्धघ्राणमात्रेण भ्रांतिरोगक्षुधार्तयः।
तत्क्षणादेव नश्यन्ति मनोह्लादकरं शुभम् ॥२८

सुरगणों के अधिप महेन्द्र ने उस समय में एक अक्षय मधुपात्र दिया था। उस समय में कुबेर ने एक माला दी थी जो चिन्तामणियों से निर्मित की हुई थी।२२। लक्ष्मी के स्वामी नारायण ने स्वयं ही एक साम्राज्य का सूचक छत्र अर्पित किया था। गङ्गा और यमुना ने उनको चन्द्र के ही समान भास्कर दो चमर दिए थे।२३। आठ वसुगण रुद्रगण–आदित्य–अश्विनी-कुमार–दिक्पाल–मरुद्गण-साध्य–गन्धर्व–प्रमथेश्वर–इन सभी ने परम परि-तोषित होते हुए अपने-अपने आयुध उस महादेवी के लिए समर्पित किये थे।२४। और रथ—तुरग तथा नाग जो महान बली और अधिक वेग से सम-न्वित थे एवं नीरोग उष्ट्र (ऊँट) और अश्व जो क्षुधा और प्यास से रहित

थे एवं वज्र की उपमा के आकार वाले थे तथा आयुधों के सहित एवं परिच्छदों से युक्त थे दिए थे ।२५। इसके अनन्तर उन दोनों शिवा और शिव का परम मंगल अभिषेक किया था। इसके उपरान्त एक विमान बनवाया था जिसका नाम कुसुमाकर था ।२६। इसकी रचना विधाता ने की थी जो कि अम्लान मालाओं वाला था तथा नित्य ही आयुधों के द्वारा अभेद्य था। यह इच्छा के अनुरूप दिवलोक और भूलोक में गमन करने वाला तथा सुसमृद्धि से समन्वित था ।२७। जिसके केवल गन्ध से ही भ्रान्तिक्षुधा-रोग और आर्त्ति सब नष्ट हो जाया करती हैं और यह मन के आह्लाद को करने वाला तथा परम शुभ था ।२८।

तद्विमानमथारोप्य तावुभौ दिव्यदंपती ।
चामरव्यजनच्छत्रध्वजयष्टिमनोरहरम् ।।२६
वीणावेणुमृदंगादिविविधैस्तौर्यवादनैः ।
सेव्यमाना सुरगणैर्निर्गत्य नृपमन्दिरात् ।।३०
ययौ वीथीं विहारेशा शोभायन्ती निजौजसा ।
प्रतिहर्म्याग्रसंस्थाभिरप्सरोभिः सहस्रशः ।।३१
सलाजाक्षतहस्ताभिः पुरंध्रीभिश्च वर्षिता ।
गाथाभिर्मंगलार्थाभिर्वीणावेण्वादिनिस्वनैः ।
तुष्यंती वीथिवीथीषु मन्दमन्दमथाययौ ।।३२
प्रतिगृह्याप्सरोभिस्तु कृतं नीराजनाविधिम् ।
अवरुह्य विमानाग्रात्प्रविवेश महासभाम् ।।३३
सिंहासनमधिष्ठाय सह देवेन शम्भुना ।
यद्यद्वांछंति तत्रस्था मनसैव महाजनाः ।
सर्वज्ञा साक्षिपातेन तत्तत्कामानपूरयत् ।।३४
तद्दृष्ट्वा चरितं देव्या ब्रह्मा लोकपितामहः ।
कामाक्षीति तदाभिख्यां ददौ कामेश्वरीति च ।।३५

उस विमान पर ये दोनों शुभ दम्पती समारूढ़ होकर नृप मन्दिर से बाहिर निकले थे। इस विमान में चमर-व्यजन-छत्र-ध्वजा आदि से परम

मनोहरता विद्यमान थी ।२६। उस समय में वीणा—वेणु-मृदङ्ग प्रभृति अनेक प्रकार के तौर्य वादनों से ये सेव्यमान हो रहे थे । सब सुरगण भी इनकी सेवा में समुपस्थित थे ।३०। विहार की स्वामिनी अपने ओज से शोभित करती हुई वीथी में गयी थी । वहाँ पर बड़े-बड़े धनियों के हर्म्य बने हुए थे । प्रत्येक हर्म्यों की छत पर सहस्रों अप्सरायें बैठी थीं ।३१। वहाँ पर जो पुरन्ध्रियाँ थीं उनके हाथों में लाजा और अक्षत थे जिनकी वे वर्षा कर रही थीं । परम मंगल अर्थो वाली गाथायें करती हुई थीं तथा वीणा-वेणु आदि की ध्वनियों से परम तोष को प्राप्त होती हुई वीथियों से अन्य वीथियों में धीरे-धीरे समागत हो रही थी ।३२। अप्सरायें जो मार्ग में आरती का विधान कर रही थीं उसका प्रति ग्रहण करके उस देवी ने विमान से अवरोहण करके सदा सभा में प्रवेश किया था ।३३। फिर देव शर्म्भ के ही साथ सिंहासन पर समधिष्ठित हुई थीं । वहाँ पर स्थित महाजन समुदाय ने जो भी इच्छा की थी और मन में ही कामना की थी उस सबका ज्ञान रखने वाली महादेवी ने अपनी दृष्टि के पात के ही द्वारा उन-उन सब कामनाओं को पूरा कर दिया था ।३४। लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उस चरित को देखकर ही उस देवी का उस समय में कामाक्षी और कामेश्वरी यह नाम रख दिया था ।३५।

ववर्षाश्चर्यमेघोऽपि पुरे तस्मिस्तदाज्ञया ।
महार्हाणि च वस्तूनि दिव्यान्याभरणानि च ।।३६

चिंतामणिः कल्पवृक्षः कमला कामधेनवः ।
प्रतिवेश्म ततस्तस्थुः पुरो देव्या जयाय ते ।।३७
तां सेवैकरसाकारां विमुक्तान्यक्रियागुणाः ।
सर्वकामार्थसंयुक्ता हृष्यंतः सार्वकालिकम् ।।३८
पितामहो हरिश्चैव महादेवश्च वासवः ।
अन्ये दिशामधीशास्तु सकला देवतागणाः ।।३९
देवर्षयो नारदाद्याः सनकाद्याश्च योगिनः ।
महर्षयश्च मन्वाद्या वशिष्ठाद्यास्तपोधनाः ।।४०
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा याश्चान्या देवजातयः ।

दिवि भूम्यंतरिक्षेषु ससंबाधं वसन्ति ये ॥४१

ते सर्वे चाप्यसंबाधं निवसंति स्म तत्पुरे ॥४२

उसकी आज्ञा से उस पुर में आश्चर्य मेघ ने भी वर्षा की थी और उस वर्षा में बहुत अधिक मूल्यवान वस्तुयें तथा परम दिव्य आभरण बरसे थे ।३६। चिन्तामणि-कल्प वृक्ष-कमला और कामधेनु ये सब प्रति गृह में देवी के नगर में उसकी जय के लिए उपस्थित हो गये थे ।३७। सभी उसकी सेवा में ही तत्पर थे और उसकी सेवा का रस ही उनका सबका आकार था तथा अन्य क्रियाओं के गुणों का परित्याग कर दिया था। ये सभी समस्त कामों के अर्थों से संयुक्त थे तथा सर्व काल में प्रसन्न ही रहा करते थे ।३८। पितामह-श्रीहरि-महादेव-महेन्द्र—अन्य दिशाओं के स्वामी—सब देवगण-नारद आदि महर्षि—वसिष्ठ आदि तपस्वीगण-गन्धर्व—अप्सरायें—यक्ष और जो भी अन्य देवों की जातियाँ हैं जो भी दिव लोक भूमि और अन्तरिक्ष में बाधा-सहित निवास किया करते थे ।३९-४१। वे सभी उसके पुर में बिना ही किसी बाधा के निवास किया करते थे ।४२।

एवं सद्वत्सला देवी नान्यत्रैत्यखिलाञ्जनात् ।

तोषयामास सततमनुरागेण भूयसा ॥४३

राज्ञो महति भूर्लोके विदुषः सकलेप्सिताम् ।

राज्ञी दुदोहाभीष्टानि सर्वभूतलवासिनाम् ॥४४

त्रिलोकैकमहीपाले सांबिके कामशङ्करे ।

दशवर्षसहस्राणि ययुः क्षण इवापरः ॥४५

ततः कदाचिदागत्य नारदो भगवानृषिः ।

प्रणम्य परमां शक्तिं प्रोवाच विनयान्वितः ॥४६

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमेश्वरि ।

सदसद्भावसंकल्पविकल्पकलनात्मिका ॥४७

जगदभ्युदयार्थाय व्यक्तभावमुपागता ।

असज्जनविनाशार्था सज्जनाभ्युदयार्थिनी ।

प्रवृत्तिस्तव कल्याणि साधूनां रक्षणाय हि ॥४८

अयं भंडोऽसुरो देवि बाधते जगतां त्रयम् ।

त्वयैकयैव जेतव्यो न शक्यस्त्वपरैः सुरैः ॥४९

इस प्रकार से सब पर स्नेह एवं प्यार करने वाली वह देवी थी और अन्यत्र ऐसा कहीं भी नहीं था। उस देवी ने समस्त जनों को निरन्तर अत्यधिक अनुराग से सन्तुष्ट कर रक्खा था।४३। इस महान भूलोक में वह राज्ञी राजा हों चाहे विद्वान होवें सकल की ईप्सा रखने वाले समस्त भूतल के निवासीजनों के अभीष्ट पदार्थों का दोहन किया करती थी।४४। तीनों लोकों के एक ही महीपाल अम्बिका के सहित काम शङ्का के होने पर दश सहस्र वर्ष एक ही क्षण के समान व्यतीत हो गये थे।४५। इसके अनन्तर देवर्षि नारद जी भगवान किसी समय में वहाँ पर समागत हुए थे और उस परमा शक्ति को प्रणाम करके उन्होंने विनय से समन्वित होकर कहा था था।४६। आपतो परब्रह्म-परधाम और पवित्र हैं। हे परमेश्वरि ! आप सद-असत् भावों के कलन के स्वरूप वाली हैं।४७। इस जगत के अभ्युदय के ही लिए आप इस व्यक्तभाव को प्राप्त हुई हैं। आप इस लोक में असज्जनों के विनाश के लिए और सज्जनों के अभ्युदय करने वाली हैं। हे कल्याणि ! आपकी जो प्रवृत्ति है वह साधु पुरुषों के रक्षण के ही लिए हैं।४८। यह एक भण्डासुर है हे देवि ! यह तीनों लोकोंको बाधा दे रहा है। यह केवल आप ही के द्वारा जीता जा सकता है ऐसी एक ही आप हैं और दूसरे सुरों के द्वारा तो यह कभी भी जीता नहीं जा सकता है।४९।

त्वत्सेवकपरा देवाश्चिरकालमिहोषिताः ।
त्वदाज्ञया गमिष्यंति स्वानि स्वानि पुराणि तु ॥५०
अमंगलानि शून्यानि समृद्धार्थानि संत्वतः ।
एवं विज्ञापिता देवी नारदेनाखिलेश्वरी ।
स्वस्ववासनिवासाय प्रेषयामास चामरान् ॥५१
ब्रह्माणं च हरिं शम्भुं वासवादीन्दिशां पतीन् ।
यथार्हं पूजयित्वा तु प्रेषयामास चांबिका ॥५२
अपराधं ततस्त्यक्तुमपि संप्रेषिताः सुराः ।
स्वस्वांशैः शिवयोः सेवामादिपित्रोरकुर्वत ॥५३
एतदाख्यानमायुष्यं सर्वमंगलकारणम् ।

आविर्भावं महादेव्यास्तस्या राज्याभिषेचनम् ।।५४

यः प्रातरुत्थितो विद्वान्भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।
जपेद्धनसमृद्धः स्यात्सुधासंमितवाग्भवेत् ।।५५

नाशुभं विद्यते तस्य परत्रेह च धीमतः ।
यशः प्राप्नोति विपुलं समानोत्तमतामपि ।।५६

ये समस्त देवगण चिरकाल से यहाँ पर ही निवास किये हुए हैं और ये आपकी सेवा में तत्पर हो रहे हैं। ये आपकी ही आज्ञा से अपने-अपने पुरों में जायेंगे ।५०। इनके सब पुर इस समय में शून्य और मङ्गल से रहित हो रहे हैं। ऐसी कृपा कीजिए कि ये सब समृद्ध अर्थों वाले हो जावे। इस रीति से जब नारद मुनि के द्वारा देवी को बताया गया था तो उस अखिलेश्वरी देवी ने देवों को अपने-अपने निवास स्थानों को भेज दिया था ।५१। फिर उस अम्बिका ने ब्रह्मा—श्री हरि-शम्भु-इन्द्र आदिक और दिक्पाल देवों का कथोचित पूजन करके विदा कर दिया था ।५२। फिर अपराध का त्याग करने के भी लिए सुरगण प्रेषित किए थे आदि पिता-माता-शिवा-शिव की अपने-अपने अंशों से सेवा भी करते थे ।५३। यह आख्यान आयु की वृद्धि करने वाला है—यह सभी प्रकार के मङ्गलों की कारण है-उस महादेवी का आविर्भाव का होना तथा उसके राज्यासन पर अभिषेचन का होना मङ्गल प्रद है ।५४। जो कोई पुरुष प्रातःकाल में उठकर भक्तिभाव से संयुत होकर विद्वान् श्रद्धालु बनकर इसका जाप किया करता है वह धन से समृद्ध हो जाता है और उसकी वाणी सुधा के सदृश ही परम मधुर हो जाया करती है ।५५। उस धीमान का इस लोक में और परलोक में कहीं पर भी कुछ भी अशुभ नहीं होता है। वह विपुल यश को प्राप्त किया करता है—उसका मान बढ़ता है तथा वह उत्तमता का लाभ किया करता है ।५६।

अचला श्रीर्भवेत्तस्य श्रेयश्चैव पदे पदे ।
कदाचिन्न भयं तस्य तेजस्वी वीर्यवान्भवेत् ।।५७

तापत्रयविहीनश्च पुरुषार्थैश्च पूर्यते ।
त्रिसंध्यं यो जपेन्नित्यं ध्यात्वा सिंहासनेश्वरीम् ।।५८

षण्मासान्महतीं लक्ष्मीं प्राप्नुयाज्जापकोत्तमः ॥५९

उसकी श्री चञ्चल होते हुए भी अचल हो जाती है और उसको पद-पद पर श्रेय होता है। उसको भय तो किसी भी समय में होता ही नहीं है और बहुत तेजस्वी तथा वीर्य वाला हो जाता है ।५७। उसको तीनों प्रकार के ताप नहीं रहा करते हैं। आध्यात्मिक-आधिभौतिक और आधिदैविक—ये तीन ताप होते हैं और वह पुरुष पुरुषार्थों से परिपूरित होता या करता है। तीनों समयों में (प्रातः-मध्याह्न-सायम्) जो नित्य ही इसका जाप किया करता है और सिंहासनेश्वरी का ध्यान करता है वह उत्तम जापक छै मास में ही महती लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है ।५८-५९।

—×—

सेना सहित विजय यात्रा

अथ सा जगतां माता ललिता परमेश्वरी ।
त्रैलोक्यकंटकं भंडं दैत्यं जेतुं विनिर्ययौ ॥१
चकार मर्दलाकारानंभोराशींस्तु सप्त ते ।
प्रभूतमर्द्दलध्वानैः पूरयामासुरंबरम् ॥२
मृदंगमुरजाश्चैव पटहोऽतुकुलीगणाः ।
सेलुकाझल्लरीरांधाहुण्डुकाहुण्डकाघटाः ॥३
आनकाः पणवाश्चैव गोमुखाश्चार्धचंद्रिकाः ।
यवमध्या मुष्टिमध्या मर्द्दलाडिंडिमा अपि ॥४
झर्झराश्च वरीताश्च इंग्यालिम्यप्रभेदजाः ।
उड्डुकाश्चंतुहुंडाश्च निःसाणा बर्बराः परे ॥५
हुंकारा काकतुण्डाश्च वाद्यभेदास्तथापरे ।
दध्वनुः शक्तिसेनाभिराहताः समरोद्यमे ॥६
ललितापरमेशान्या अंकुशास्त्रात्समुद्गता ।
संपत्करी नाम देवी चचाल सह शक्तिभिः ॥७

इसके अनन्तर वह जगतों की माता परमेश्वरी ललिता तीनों लोकों के कण्टक भण्ड दैत्य को जीतने के लिए वहाँ से निर्गत हुई थी ।१। बड़ा

हुआ जो मद्दलों का घोष था उसने उससे आकाश को भी पूरित कर दिया था ।२। मृदंग-मुरज-पटह-अनुकुलीगण-सेलुका-झल्लरी-रप्घा-हुडुका-हुण्डुक घटा-आनक-पणव-गोमुख-अर्ध चन्द्रिका-तममध्य मद्दल-डिण्डिम - झर्झर-बरीत-इ ग्याितिग्य भेदज-उढ्ढक-एड हुण्ड-निःसाण-बर्बर-हुँकार-काकतुण्ड तथा ये सब वाद्य और अन्य वाद्यों को उस समर के आरम्भ में शक्ति की सेनाओं के द्वारा आहत किया गया था और ये सभी बजाये गये थे ।३-६। परमेशानी ललिता के अंकु शास्त्र से समुद्गता सम्पत्करी नाम की देवी अपनी शक्तियों के साथ चलित हो गयी थी ।७।

अनेककोटिमातंगतुरंगरथपंक्तिभिः ।
सेविता तरुणादित्यपाटला संपदीश्वरी ॥८
मत्तमुद्दंडसंग्रामरसिकं शैलसन्निभम् ।
रणकोलाहलं नाम सारुरोह मतंगजम् ॥९
तामन्वगा ययौ सेना महती घोररावणी ।
लोलाभिः केतुमालाभिरुल्लिखन्ती घनाघनात् ॥१०
तस्याश्च संपन्नाथायाः पीनस्तनसुसंकटः ।
कंटको घनसंनाहो रुरुचे वक्षसि स्थितः ॥११
कंपमाना खड्गलता व्यरुचत्तत्करे धृता ।
कुटिला कालनाथस्य भ्रूकुटीव भयंकरा ॥१२
उत्पातवातसंपाताच्चलिता इव पर्वताः ।
तामन्वगा ययुः कोटिसंख्याकाः कुञ्जरोत्तमाः ॥१३
अथ श्रीललितादेव्या श्रीपाशायुधसंभवा ।
अतित्वरितविक्रांतिरश्वारूढाचलत्पुरः ॥१४

अनेकों करोड़ गज—अश्व और रथों की पंक्तियों के द्वारा सेवित सम्पदीश्वरी तरुण सूर्य के समान पाटल थी ।८। शैल के सदृश मत्त मुदण्ड संग्राम में रसिक रण कोलाहल नामक एक गज पर वह समा रूढ़ हुई थी ।९। परम घोर राग वाली बड़ी भारी सेना उसके पीछे अनुगमन करने वाली थी और परम चञ्चल केतुओं की मालाओं से वह सेना घनों को उल्लिसित करती हुई जा रही थी ।१०। उस सम्पदा की स्वामिनी का पीन

(स्थूल) स्तनों में सुसंकट घन के समान कंटक वक्षः स्थल में स्थित शोभित हो रहा था ।११। उसके कर में धरी हुई काँपती हुई खड्गलता शोभायुक्त हो रही थी जो काल नाथ की परम भयंकर कुटिला भृकुटी के ही समान थी ।१२। उत्पातों के बात की सम्पात वालो चलायमान पर्वतों के ही सदृश करोड़ों की संख्या वाले उत्तम कुञ्जर उस सम्पत्करी के पीछे अनुगमन करने वाले थे ।१३। इसके अनन्तर श्रीललिता देवी के श्रीपाशायुध से समुत्पन्न अतीव शीघ्र विक्रान्ति युक्त अश्व पर समारूढ़ आगे चल रही थी ।१४।

तया सह हयप्रायं सैन्यं ह्रेषातरंगितम् ।
व्यचरत्खुरकुद्दालविदारितमहीतलम् ।।१५
वनायुजाश्च कांबोजाः पारदाः सिंधुदेशजाः ।
टंकणाः पर्वतीयाश्च पारसीकास्तथा परे ।।१६
अजानेया घट्टधरा दरदाः कालवंदिजाः ।
वाल्मीकयावनोद्भूता गान्धर्वाश्चाथ ये हयाः ।।१७
प्राग्देशजाताः कैराता प्रांतदेशोद्भवास्तथा ।
विनीताः साधुवोढारो वेगिनः स्थिरचेतसः ।।१८
स्वामिचित्तविशेषज्ञा महायुद्धसहिष्णवः ।
लक्षणैर्बहुभिर्युक्ता जितक्रोधा जितश्रमाः ।।१९
पञ्चधारासु शिक्षाढ्या विनीताश्च प्लवान्विता ।।२०
फलशुक्तिश्रिया युक्ताः श्वेतशुक्तिसमन्विताः ।
देवपद्मं देवमणिं देवस्वस्तिकमेव च ।।२१

उस देवी के साथ ऐसी सेना थी जिसमें प्रायः अश्व थे जिनकी हिनहिनाहट से वह तरङ्गित थी । उन अश्वों के खुरों की टापों से सम्पूर्ण महीतल विदीर्ण हो रहा था । ऐसी सेना चली थी ।१५। उस सेना में विभिन्न प्रकार की जाति के अश्व विद्यमान थे । उनमें वनायुज–काम्बोज–पारद—सिन्धु देश में उत्पन्न होने वाले–टकण–पर्वतीय–पारसीक थे ।१६। अजानेय–घट्टधर—दरद–कालवन्दिज–वाल्मीक–यावनोद्भूत और गान्धर्व हय थे ।१७। उन अश्वों में कुछ प्राग्देशज थे कैरात तथा प्रान्त देशोद्भव

थे । ये सब अश्व बड़े ही विनीत–अच्छी तरह से वहन करने वाले–वेगगति से समन्वित और स्थिर चित्तों वाले थे ।१८। वे अश्व सभी ऐसे थे जो अपने स्वामी के मन का भाव जानने वाले थे और महान् युद्ध में परम सहिष्णु रहने वाले थे । उनमें बहुत से अच्छे-अच्छे लक्षण विद्यमान थे तथा ये सभी क्रोध को जीत लेने वाले और परमाधिक परिश्रमी थे ।१९। पञ्च धाराओं में शिक्षित—विनीत और प्लवन से संयुत थे ।२०। ये फल शुक्ति की श्री से सम्पन्न तथा श्वेत शुक्ति से समन्वित थे । उनमें देव पद्म–देव मणि और देव स्वस्तिक ये सुन्दर लक्षण विद्यमान थे ।२१।

अथ स्वस्तिकशुक्तिश्च गड्डरं पुष्पगंडिकाम् ।
एतानि शुभलक्ष्माणि जयराज्यप्रदानि च ।
वहंतो वातजवना वाजिनस्तां समन्वयुः ।।२२
अपराजितनामानमतितेजस्विनं चलम् ।
अत्यंतोत्तुंगवर्ष्माणं कविकाविलसन्मुखम् ।।२३
पार्श्वद्वयेऽपि पतितस्फुरत्केसरमंडलम् ।
स्थूलवालधिविक्षेपक्षिप्यमाणपयोधरम् ।।२४
जंघाकांडसमुन्नद्धमणिकिङ्किणिभासुरम् ।
वादयंतमिवोच्चण्डैः खुरनिष्ठुरकुट्टनैः ।।२५
भूमंडलमहावाद्यं विजयस्य समृद्धये ।
घोषमाणं प्रति मुहुः संदर्शितगतिक्रमम् ।।२६
आलोलचामरव्याजाद्वहंतं पक्षती इव ।
भांडैर्मनोहरैर्युक्तं घर्घरीजालमंडितम् ।।२७
एवां घोषस्य कपटाद्धुंकुर्वंतीमिवासुरान् ।
अश्वारूढा महादेवी समारूढा हयं ययौ ।।२८

इसके उपरान्त उनमें स्वस्तिक शुक्ति—गड्डुर और पुष्प गणिका—ये परम शुभ चिह्न विद्यमान थे जो जय और राज्य के प्रदान कराने वाले थे । ऐसे अश्व गण थे जो वहन करने वाले—वायु के समान वेग वाले थे । ऐसे अश्व उस देवी के पीछे गमन करने वाले थे ।२२। वह देवी एक ऐसे अश्व समारूढ़ थी जो अत्यन्त तेजस्वी था और अपराजित उसका नाम था

एवं बड़ा चञ्चल था। उस अश्व का कलेवर बहुत ही ऊँचा था और उसके मुख में लगाम शोभित हो रनुी थी ।२३। उस अश्व के दोनों ओर केशरों का मण्डल स्फुरित हो रहा था। उसकी पूँछ बहुत ही स्थूल थी जिसके विक्षेप से पयोधर क्षिप्यमाण हो रहे थे ।२४। जंघाओं के भाग में समुन्नद्ध मणियों की धीमी किन किनाहट की ध्वनि से भासुर था। उसकें खुरों के निष्ठुर कुट्टनों से जो बहुत ही तेज थे वादन सा कर रहा था ।२५। मानों ऐसा प्रतीत हो रहा था कि विजय की समृद्धि के ही लिए यह महान् वाद्य बजाया जा रहा था बार-बार गति के क्रम से छोटा करता हुआ वह संदर्शित हो रहा था ।२६। चञ्चल पूँछ जो उसकी बार-बार ऊपर की ओर उठ रही थी वह ऐसी ही प्रतीत हो रही थी मानों दोनों ओर चमर ढुराये जा रहे हों। वह अश्व मनोहर भाण्डों से युक्त था और घर्घरी के जाल से समलंकृत था ।२७। इनकी जो महाध्वनि हो रही थी उससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वह सभी असुरों को हुँकार की तर्जना दे रही थी। यह महा देवी अश्व पर समारूढ़ होकर वहां से गमन कर रही थी ।२८।

चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमंकुशं वेत्रमेव च ।
हयवल्गां च दधती बहुविक्रमशोभिनी ।।२९
तरुणादित्यसङ्काशा ज्वलत्काञ्चीतरंगिणी ।
सञ्चचाल हयारूढा नर्तयन्तीव वाजिनम् ।।३०
अथ श्रीदण्डनाथाया निर्याणपटहध्वनिः ।
उद्दंडसिन्धुनिस्वानश्चकार बधिरं जगत् ।।३१
वज्रबाणैः कठोरैश्च भिदंत्यः ककुभो दश ।
अत्युद्धतभुजाश्मानः शक्तयः काश्चिदुच्छ्रिताः ।।३२
काश्चिच्छ्रीदंडनाथायाः सेनानासीरसङ्गताः ।
खड्गं फलमादाय पुप्लुवुश्चंडशक्तयः ।।३३
अत्यंतसैन्यसम्बाधं वेत्रसंताडनैः शतैः ।
निवारयंत्यो वेत्रिण्यो व्युच्चलंति स्म शक्तयः ।।३४
अथ तुंगध्वजश्रेणीर्महिषांको मृगांकिकाम् ।
सिंहांकाश्चैव बिभ्राणाः शक्तयो व्यचलन्पुरा ।।३५

ततः श्रीदण्डनाथायाः श्वेतच्छत्रं सहस्रशः ।
स्फुरत्ककराः प्रचलिताः शक्तयः काश्चिदाददुः ।।३६

अत्यधिक विक्रम की शोभा वाली वह महा देवी अपने चारों करों में पाश--अंकुश--नेत्र और अश्व की वल्गा को लिये हुई थीं ।२९। तरुण सूर्य के समान जाज्वल्यमान चमकती हुई काञ्ची की तरङ्ग वाली वह अपने अश्व को नचाती हुई-सी अश्व पर समारूढ़ वह वहाँ से चली थी ।३०। इसके अनन्तर श्री दण्ड स्वामिनी की जो निर्माण के पटहकी ध्वनि हो रही थी वह परम उद्दण्ड सागर के घोष के ही समान थी जो कि सम्पूर्ण जगत् को बधिर कर रही थी ।३१। बहुत सी शक्तियाँ उसके आगे चल रही थीं जो कठोर वज्रोपम बाणों के द्वारा दशों दिशाओं का विहनन कर रही थीं । उनकी भुजाएँ अतीव उद्धत अश्म के समान थीं और परम उच्छ्रित कोई अद्भुत शक्तियाँ थी ।३२। कुछ शक्तियाँ उस श्री दण्ड नाथा के सेना नासीर के साथ थीं । ये परम चण्ड शक्तियाँ खड्ग को और फलक को लेकर उछाल खा रही थीं ।३३। सैकड़ों ही नेत्रों के सन्ताड़नों से उस सेना की जो सम्बाधा थी उसका क्षेत्रिणी निवारण करती हुई शक्तियाँ ऊपर की ओर चल रही थीं ।३४। इसके पश्चात् ऐसी शक्तियाँ आगे चली थी जो तुङ्ग ध्वजाओं की श्रेणी और महिष के चिन्हों वाली थीं तथा मृगों के चिह्नों को और सिंह के अङ्कों को धारण करने वाली थीं ।३५। इसके पश्चात् कुछ ऐसी शक्तियाँ थी जो श्रीदण्ड नाथा के सहस्रों छत्रों को जो श्वेत थे धारण करके चल रहीं थीं जिन छत्रों से उनके कर कमल स्फुरित हो रहे थे ।३६।

।। दण्डनाथा श्यामला सेना यात्रा ।।

दण्डनाथाविनिर्याणे संख्यातीतैः सितप्रभैः ।
छत्रैर्गगनमारेजे निःसंख्यशशिमण्डितम् ।।१

अन्योन्यसक्तैर्धवलच्छत्रैं रंतर्घनीभवत् ।
तिमिरं नुनुदे भूयस्तत्काण्डमणिरोचिषा ।।२

वज्रप्रभाधगधगच्छायापूरितदिङ्मुखाः ।
तालवृन्ताः शतविधाः क्रोडमुख्या बलेऽचलन् ।।३

चण्डो चण्डादयस्तीव्रा भैरवाः शूलपाणयः ।
ज्वलत्केशपिशङ्गाभास्तडिद्भासुरदिङ्मुखाः ।।४
दहत्य इव दैत्यौघांस्तीक्ष्णैर्मार्गणवह्निभिः ।
प्रचेलुर्दंडनाथायास्सेना नासीरधाविताः ।।५
अथ पोत्रीमुखीदेवीसमानाकृतिभूषणाः ।
तत्समानायुधकरास्तत्समानस्ववाहनाः ।।६
तीक्ष्णदंष्ट्रविनिष्ठ्यूतवह्निभूमामितांबराः ।
तमालश्यामलाकाराः कपिलाः क्रूरलोचनाः ।।७

इस दण्डनाथा का जो विशेष निर्माण हुआ था उसमें संख्यातीत अर्थात् अगणित छत्र थे जिनकी श्वेत प्रभा थी। उनसे नभोण्डल ऐसा शोभित हो रहा था मानों उसमें अगणित चन्द्रमा उदित हो गये होवें ।१। वे परम धवल छत्र एक दूसरे से परस्पर में सट से रहे थे जिनसे उनका अन्तर बहुत ही घना हो गया था। उनके समुदाय में जो मणियाँ थीं उनकी कान्ति से अन्धकार का विनाश हो गया था ।२। उस बल में वज्र की प्रभा को भी पराजित करने वाली कान्ति से समस्त दिशाओं के मुखों को पूरित करने वाले सैकड़ों ही प्रकार के क्रोड़ मुख्य ताल वृन्त चले थे ।३। उस दण्डनाथा की सेनाएँ नासीर से धावित होती हुई वहाँ से चली थीं उसमें जो सैनिक थे वे चण्ड दण्ड आदिक थे तथा परम तीव्र—भैरव और हाथों में शूल लिये हुए थे। वे जलते हुए केशों के समान पिशंग आभा से समन्वित थे तथा तडित् के समान भासुर थे जिनसे सभी दिशाएँ भी भासुर हो रही थीं। अपनी परम तीक्ष्ण बाणों की अग्नि से दैत्यों के समूहों को दग्ध कर रहीं थीं ।४-५। इसके अनन्तर बहुत-सी शक्तियाँ भी उसमें चलीं थीं जो पोत्री मुखों वाली थीं और उसी के समान आकृति और भूषणों से संयुत थीं। उसी के समान उनके करों में आयुध थे तथा उसी के तुल्य उनके अपने वाहन भी थे ।६। उनकी बहुत तीक्ष्ण दाढ़ें थी जिनसे वे वह्नि और धूम को निकाल रहीं थी जिससे सम्पूर्ण आकाश परिवृत हो गया था। तमाल वृक्ष के समान उनका श्यामल आकार था तथा कपिल और क्रूर नेत्रों वाली थीं ।७।

सहस्रमहिषारूढाः प्रचेलुः सूकराननाः ।
अथ श्रीदंडनाथा च करिचक्ररथोत्तमात् ॥८
अवरुह्य महासिंहमारुरोह स्ववाहनम् ।
वज्रघोष इति ख्यातं धूतकेसरमंडलम् ॥६
व्यक्तास्यं विकटाकारं विशंकटबिलोचनम् ।
दंष्ट्राकटकटत्कारवधिरीकृतदिक्तटम् ॥१०
आदिकूर्मकठोरास्थि खर्परप्रतिमैर्नखैः ।
पिबंतमिव भूचक्रमापातालं निमज्जिभिः ॥११
योजनत्रयमुत्तुंगं वेगादुद्धूतबालधिम् ।
सिंहवाहनमारुह्य व्यचलद्दंडनायिका ॥१२
तस्यामसुरसंहारे प्रवृत्तायां ज्वलत्क्रुधि ।
उद्वेगं बहुलं प्राप त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१३
किमसौ धक्ष्यति रुषा विश्वमद्यैव पोत्रिणी ।
किं वा मुसलघातेन भूमिं द्वेधा करिष्यति ॥१४

सूकर के समान जिनका मुख था ऐसी अनेक शक्तियाँ सहस्रों महिषों पर समारूढ़ होकर वहाँ पर चली थीं। इसके अनन्तर वह श्रीदण्डनाथा देवी अपने करिचक्र उत्तम रथ से नीचे उतरीं औप अपने प्रमुख वाहन महासिंह के ऊपर समारूढ़ हो गयी थीं। उसका नाम वज्र घोर प्रसिद्ध था जो अपने केसरों के मण्डल को कम्पित कर रहा था। इसका मुख खुला हुआ था तथा परम भीषण आकार वाला था एवं उसके लोचन विशंकट थे। वह अपनी दाढ़ों को कटकटा रहा था जिसकी कटकटा हट से सभी दिशाएँ वधिरीभूत हो गयी थीं।८-१०। उसकी अस्थियाँ आदि कूर्म के सदृश कठोर थीं और उसके नख खर्पर के समान विशाल थे। जो पाताल तक निमज्जित होकर इस भूमण्डल को पी से रहे थे।११। यह तीन योजन तक ऊँचा था और बड़े वेग से अपनी पूँछ को हिला रहा था। ऐसे अपने सिंह के वाहन पर समारूढ़ होकर वह महादेवी दण्ड नायिका चली थीं।१२। समस्त असुरों के संहार करने में जब वह प्रवृत्त हुई थी तो उस समय में उसकी क्रोध प्रज्वलित हो गया था और उसके प्रभाव से चराचर तीनों

लोक बड़े भारी उद्वेग को प्राप्त हो गये थे ।१३। सभी लोग यह कह रहे थे किया यह पोत्रिणी अपने क्रोध से आज ही सबको दग्ध कर देगी अथवा अपने मुसल की चोट से इस भूमण्डल के दो टुकड़े कर देगी ? ।१४।

अथ वा हलनिर्घातैः क्षोभयिष्यति वारिधीन् ।
इति त्रस्तहृदः सर्वे गगने नाकिनां गणाः ।।१५
दूराद्द्रुतं विमानैश्च सत्रासं ददृशुर्गताः ।
ववंदिरे च तां देवा वद्धांजलिपुटान्विताः ।
मुहुर्द्वादशनामानि कीर्तयंतो नभस्तले ।।१६

अगस्त्य उवाच—

कानि द्वादशनामानि तस्या देव्या वद प्रभो ।
अश्वानन महाप्राज्ञ येषु मे कौतुकं महत् ।।१७

हयग्रीव उवाच—

शृणु द्वादशनामानि तस्या देव्या घटोद्भव ।
यदाकर्णनमात्रेण प्रसन्ना सा भविष्यति ।
पञ्चमी दंडनाथा च संकेता समयेश्वरी ।।१८
तथा समयसंकेता वाराही पोत्रिणी तथा ।
वार्ताली च महासेनाप्याज्ञा चक्रेश्वरी तथा ।।१९
अरिघ्नी चेति सम्प्रोक्तं नामद्वादशकं मुने ।
नामद्वादशकाभिख्यवज्रपञ्जरमध्यगः ।
संकटे दुःखमाप्नोति न कदाचन मानवः ।।२०
एतैर्नामभिरभ्रस्थाः संकेतां बहु तुष्टुवुः ।
तेषामनुग्रहार्थाय प्रचचाल च सा पुनः ।।२१

अथवा यह अपने हल के निर्घात से समुद्रों को क्षुब्ध कर देगी। इस प्रकार से सभी स्वर्ग वासियों के गण डरे हुए हृदय वाले गगन मण्डल में संस्थित थे ।१५। बड़े ही त्रास के साथ शीघ्र ही दूर से विमानों के द्वारा गये हुओं ने देखा था । फिर उन देवगणों ने दोनों करों को जोड़कर उसके लिए

वन्दना की थी। वे बार-बार उसके द्वादश नामों का नभस्तल में कीर्त्तन कर रहे थे।१६। अगस्त्य जी ने कहा—हे प्रभो ! वे उस देवीके बारह नाम कौन से हैं उनको कृपया बतलाइए। हे अश्वानन ! आप तो महान् विद्वान् हैं। मेरे हृदय में इनके ज्ञान प्राप्त करने का बड़ा भारी कौतुक विद्यमान है।।१७। श्री हयग्रीवजी ने कहा—हे घटोद्भव ! अब आप उस देवी के द्वादश नामों का श्रवण कीजिए जिन नामों के केवल श्रवण करने ही से वह परम प्रसन्न हो जाया करती है। पञ्चमी—दण्डनाथा-संकेता—समयेश्वरी—समय संकेता-वाराही—पोत्रिणी—वार्त्ताली—महासेना—आज्ञा-चक्रेश्वरी—और अरिघ्नी—हे मुने ! ये ही उस देवी के द्वादश नाम हैं जिनको मैंने आपके सामने कहकर बता दिया है। यह द्वादश नामों का एक वज्र का पञ्जर है। इसके मध्य में रहने वाला अर्थात् इन बारह नामों का पाठ करने वाला बहुत ही सुरक्षित रहता है जैसे मानों वह वज्र निर्मित पञ्जर में बैठा होवे। वह मानव संकट में भी कभी दुःख नहीं पाता है। इन्हीं नामों के द्वारा गगन में संस्थित देवों ने उस देवी संकेता की बहुत स्तुति की थी। उन सब पर अनुग्रह करने के लिए उसका हृदय पसीज गया था और फिर वह प्रचलायमान हो उठी थी।१८-२१।

अथ संकेतयोगिन्या मंत्रनाथा पदस्पृशः।
निर्याणसूचनकरी दिवि दध्वान काहली ॥२२
शृङ्गारप्रायभूषाणां शार्दूलश्यामलत्विषाम्।
वीणासंयतपाणीनां शक्तीनां निर्ययौ बलम् ॥२३
काश्चिद्गायन्ति नृत्यंति मत्तकोकिलनिःस्वनाः।
वीणावेणुमृदंगाद्याः सविलासपदक्रमाः ॥२४
प्रचेलुः शक्तयः श्यामा हर्षयंत्यो जगज्जनान्।
मयूरवाहनाः काश्चित्कतिचिद्धंसवाहनाः ॥२५
कतिचिन्नकुलारूढाः कतिचित्कोकिलासनाः।
सर्वाश्च श्यामलाकाराः काश्चित्कर्णीरथस्थिता ॥२६
कादंबमधुमत्ताश्च काश्चिदारूढसैन्धवाः।
मंत्रनाथां पुरस्कृत्य संप्रचेलुः पुरः पुरः ॥२७

अथारुह्य समुत्तुंगध्वजचक्रं महारथम् ।
बालार्कवर्णकवचा मदालोलविलोचना ॥२८

इसके उपरान्त संकेत योगिनी की मन्त्र नाथा चरणों के स्पर्श करने वाली तथा निर्याण की सूचना करने वाली दिवलोक में काहली बजी थी ।।२२। शृङ्गार प्राय भूषा वाली—शार्दूल श्यामल कान्ति वाली—वीणा से संयत करों वाली शक्तियों की सेना निकल गयी थी ।२३। उनमें कुछ तो गान करती हैं जिनकी ध्वनि मत्त कोकिलों के समान थी—कुछ नृत्य करती हैं। वीणा-वेणु और मृदंग आदि लिये हुई थीं और उनका चरणों का विन्यास का क्रम विलास से युक्त था ।२४। जगत के जनों को हर्षित करती हुई श्यामा शक्तियाँ वहाँ से चल दी थीं । कुछ का वाहन मयूर था और कुछ हंसों को वाहन बनाये हुईं थी ।२५। कुछ नकुल पर समारूढ़ थीं और कुछ कोकिलों पर विराजमान थीं । ये सभी श्यामल आकार वाली थी । इनमें कुछ कर्णी रथों पर सब संस्थित थीं ।२६। ये कादम्ब मधु मत्ता थीं और कुछ सैन्धवों पर समारूढ़ थीं । मन्त्रनाथ को अपने आगे करके ही वहाँ से रवाना हो गयीं थीं ।२७। इसके उपरान्त समुत्तुंगध्वजा वाले रथ पर आरूढ़ होकर बाल सूर्य के वर्ण के समान कवच वाली तथा मद से आलोल लोचनों वाली थी ।२८।

ईषत्प्रस्वेदकणिकामनोहरमुखांबुजा ।
प्रेक्षयंती कटाक्षौघैः किंचिद्भ्रूवल्लितांडवैः ॥२९
समस्तमपि तत्सैन्यं शक्तीनामुद्धतोद्धतम् ।
पिच्छत्रिकोणच्छत्रेण विरुदेन महीयसा ॥३०
आसां मध्ये न चान्यासां शक्तीनाभुज्ज्वलोदया ।
निर्जगाम घनश्यामश्यामला मन्त्रनायिका ॥३१
तां तुष्टुवुः षोडशभिर्नामभिर्नाकवासिनः ।
तानि षोडशनामानि शृणु कुम्भसमुद्भव ॥३२
संगीतयोगिनी श्यामा श्यामला मन्त्रनायिका ।
मन्त्रिणी सचिवेशी च प्रधानेशी शुकप्रिया ॥३३
वीणावती वैणिकी च मुद्रिणी प्रियकप्रिया ।
नीपप्रिया कदंबेशी कदंबवनवासिनी ॥३४

सदामदा च नामानि षोडशैतानि कुम्भज ।
एतैर्यः सचिवेशानीं सकृत्स्तौति शरीरवान् ।
तस्य त्रैलोक्यमखिलं हस्ते तिष्ठत्यसंशयम् ।।३५

थोड़ी २ प्रस्वेद की कणिकाओं से मनोहर मुख कमल वाली-कुछ चुकटियों को नचाकर कटाक्ष पातोंसे प्रेक्षण करती हुईथीं।२९। उन शक्तियों का सम्पूर्णउद्धत भी उद्धत सैन्यबल था जो पिच्छ त्रिकोण महान विरुद वाले छत्र से संयुत था ।३०। इनके और अन्यों के मध्य में अर्थात् शक्तियों के बीच में ज्ज्वल उदय वाली-घन के समान श्यामला मन्त्र नायिका निकली थी। ।३१। स्वर्गवासियों ने उसका भी सोलह नामों के द्वारा स्तवन किया था। हे कुम्भोद्भव ! उन सोलह नामों का भी अब मुझसे श्रवण कर लो ।३२। संगीत योगिनी-श्यामा-श्यामल-मन्त्र नायिका—मन्त्रिणी—सचिवेशी—प्रधानेशी– शुक प्रिया—वीणावती—वैणिकी-मुद्रिणी--प्रियकप्रिया—नीप प्रिया—कदम्वेक्षी—कदम्ब वन वासिनी-सदामदा—हे कुम्भज ! ये ही सोलह नाम हैं। इनके द्वारा जो सदा शरीरधारी एक बार सचिवेशानी की स्तुति किया करता है उसके हाथ में सम्पूर्ण त्रैलोक्य निःसंशय स्थित रहा करता है ।३३-३५।

मन्त्रिनाथा यत्र यत्र कटाक्षं विकिरत्यसौ ।
तत्र तत्र गताशंकं शत्रुसैन्यं पतत्यलम् ।।३६
ललितापरमेशान्या राज्यचर्चा तु यावती ।
शक्तीनामपि चर्चा या सा सर्वत्र जयप्रदा ।।३७
अथ संगीतयोगिन्याः करस्थाच्छुकपोतकात् ।
निर्जगाम धनुर्वेदो वहन्सज्जं शरासनम् ।।३८
चतुर्बाहुयुतो वीरस्त्रिशिरास्त्रिविलोचनः ।
नमस्कृत्य प्रधानेशीमिदमाह स भक्तिमान् ।।३९
देवि भंडासुरेंद्रस्य युद्धाय त्वं प्रवर्त्तसे ।
अतस्तव मया साह्यं कर्तव्यं मन्त्रिनायिके ।।४०
चित्रजीवमिमं नाम कोदंडं सुमहत्तरम् ।
गृहाण जगतामंब दानवानां निबर्हणम् ।।४१

इमौ चाक्षयबाणाढ्यौ तूणीरौ स्वर्णचित्रितौ ।
गृहाण दैत्यनाशाय ममानुग्रहहेतवे ।।४२

वह मन्त्रनाथा जहाँ-जहाँ पर अपने कटाक्ष को विकीर्ण किया करती है वहाँ पर शत्रु की सेना गताशंक होकर पूर्णतया पतन को प्राप्त हो जाया करती है ।३६। परमेशानी ललिता की जितनी भी राज्य चर्चा होती है और उसकी शक्तियों की जो चर्चा है वह सर्वत्र विजय के प्रदान करने वाली होती है ।३७। इसके अनन्तर संगीत योगिनी के कर में स्थित शुक पोत (शिशु) से सज्जित शरासन का वहन करता हुआ धनुर्वेद निकला था ।३८। वह चार बाहुओं से संयुत था—तीन उसके शिर थे और उस वीर के तीन ही नेत्र थे । उसने प्रधानेशी को प्रणिपात करके यह उस भक्तिमान ने प्रार्थना की थी ।३९। हे मन्त्रिनायिके ! हे देवि ! इस समय में आप भण्डासुरेन्द्र के साथ युद्ध करने के लिए प्रवृत्त हो रही हैं । अतएव मेरे द्वारा आपकी सहायता करनी चाहिए ।४०। हे जगतों की जननि ! यह चित्र जीव नाम वाला को दण्ड बहुत ही अधिक महान् है । यह समस्त दानवों का निवर्हण करने वाला है । इसको आप ग्रहण कीजिए ।४१। ये दोनों तूणीर हैं जिनमें कभी भी बाणों का क्षय नहीं होता है और ये स्वर्ण से चित्रित हैं इनको भी आप केवल मुझ पर अनुग्रह करने के लिए ही ग्रहण कीजिए ।४२।

इति प्रणम्य शिरसा धनुर्वेदेन भक्तितः ।
अर्पितांश्चापतूणीराञ्जग्राह प्रियकप्रिया ।।४३
चित्रजीवं महाचापमादाय च शुकप्रिया ।
बिस्फारं जनयामास मौर्वीमुद्राद्य भूरिशः ।।४४
संगीतयोगिनी चापध्वनिना पूरितं जगत् ।
नाकालयानां च मनोनयनानंदसंपदा ।।४५
यंत्रिणी तंत्रिणी चेति द्वे तस्याः परिचारिके ।
शुकं वीणां च सहसा वहंत्यौ परिचेरतुः ।।४६
आलोलवलयक्वाणधिष्णुगुणनिस्वनम् ।
धारयंती घनश्यामा चकारातिमनोहरम् ।।४७
चित्रजीवशरासेन भूषिता गीतयोगिनी ।
कदंबिनीव रुरुचे कदम्बच्छत्रकार्गुका ।।४८

कालीकटाक्षवत्तीक्ष्णो नृत्यद्भुजगभीषणः ।
उल्लसन्दक्षिणे पाणौ विललास शिलीमुखः ॥४६
गेयचक्ररथारूढां तां पश्चाच्च सिषेवरे ।
तद्वच्छ्यामलशोभाढ्या देव्यो बाणधनुर्धराः ॥५०
सहस्राक्षौहिणीसंख्यास्तीव्रवेगा मदालसाः ।
आपूरयंत्य ककुभं कलैः किलिकिलारवैः ॥५१

इस प्रकार से प्रार्थना पूर्वक धनुर्वेद ने भक्ति भाव से प्रार्थना की थी और शिर टेककर प्रणाम किया था तथा चाप और तूणीर समर्पित किये थे । उनको प्रियक प्रिया ने सादर ग्रहण कर लिया था ।४३। उस शुकप्रिया ने उस महाचाप को ग्रहण कर जिसका नाम चित्रग्रीव था उसका विस्फार समुत्पन्न किया था और विपुल रूप उसकी मुर्वी का उद्वादन किया था ।४४। उस संगीत योगिनी ने चाप की ध्वनि से सम्पूर्ण जगत् को पूरित कर दिया था । वह देवों के मन और नयनों के आनन्द की सम्पदा थी ।४५। मन्त्रिणी और तन्त्रिणी—ये दो उसकी परिचारिकाएं थीं । वे शुक और वीणा का वहन करती हुई सहसा उसकी परिचर्या किया करती थीं ।४६। थोड़ा चञ्चल अर्थात् हिलने वाला जो वलय था उसके क्वणन से बढ़ने के स्वभाव वाला गुणों का निःस्वन था । वह धन के सदृश श्यामा उसको धारण करती हुई अति मनोहर ध्वनि कर रही थी ।४७। गीतयोगिनी चित्र जीव नामक शरासन से परम भूषित हो रही थी और कदम्ब छत्र कार्मुका कदम्बिनी की ही भाँति शोभित हुई थी ।४८। काली के कटाक्ष के सदृश परम तीक्ष्ण नृत्य करता हुआ भुजंग भीषण दक्षिण कर में उल्लासित होता हुआ शिलीमुख विलास कर रहा था ।४९। गेय चक्र वाले रथ पर समारूढ़ उसका पीछे सेवा कर रहे थे । उसी के समान श्यामल और शोभा से समन्वित बाण और धनुष को धारण करने वाली देवियाँ थीं ।५०। ये तीव्र वेगवाली और महालसा थीं जिनकी संख्या एक सहस्र अक्षौहिणी थी । परम मधुर जो किल किल की ध्वनि थी उससे दिशा पूरित कर रहीं थीं ।५१।

—×—

ललिता परमेश्वरी सेना जययात्रा

अथ राजनायिका श्रिता ज्वलितांकुशा फणिसमानपाशभृत् ।
कलनिक्वणद्वलयमैक्षवं धनुर्दधती प्रदीप्तकुसुमेषुपंचका ॥१
उदयत्सहस्रमहसा सहस्रतोऽप्यतिपाटलं निजवपुः प्रभाझरम्
किरती दिशासु वदनस्य कांतिभिः सृजतीव
चन्द्रमयमभ्रमंडलम् ॥२
दशयोजनायतिमता जगत्त्रयीमभिवृण्वता
विशदमौक्तिकात्मना ।
धवलातपत्रवलयेन भासुरा शशिमंडलस्य सखितामुपेयुषा ॥३
अभिवीजिता च मणिकांतशोभिना
विजयादिमुख्यपरिचारिकागणैः ।
नवचन्द्रिकालहरिकांतिकंदलीचतुरेण चामरचतुष्टयेन च ॥४
शक्तचक्रराज्यपदवीमभिसूचयंती साम्राज्य-
चिह्नशतमंडितसैन्यदेशा ।
संगीतवाद्यरचनाभिरथामरीणां संस्तूयमानविभवा
विशदप्रकाशा ॥५
वाचामगोचरमगोचरमेव बुद्धेरीदृक्तया न
कलनीयमनन्यतुल्यम् ॥६
त्रैलोक्यगर्भपरिपूरितशक्तिचक्रसाम्राज्यसं-
पदभिमानमभिस्पृशंती ।
आबद्धभक्तिविपुलांजलिशेखराणामारादहंप्रथमिका
कृतसेवनानाम् ॥७

इसके अनन्तर वह राज नायिका वहाँ पर विराजमान थी जिसका अंकुश ज्वलित था और जो सर्प के ही तुल्य पाश को धारण करने वाली थी । मधुर क्वणन करने वाला वलय और इक्षु का धनुष धारण किये हुए थी । उसके बाण पाँच कुसुमों के थे ।१। उदित सूर्य के तेज से भी अत्यधिक

पाटल उसका अपना कलेवर था जिससे प्रभा झर रही थी । वह अपने मुख की कान्तियों को दिशाओं में कीर्ण कर रही थी । ऐसा प्रतीत होता था मानो वह अभ्रमण्डल को चन्द्रों से परिपूर्ण बना रही हो ।२। शशि मण्डल की सखिता को प्राप्त होने वाला उसका परम धवल आतपत्र था जिसका आयतन दशयोजन था और तीनों लोकों का अभिवरण करने वाला था । उसका स्वरूप परम स्वच्छ मौक्तिक के सदृश था । ऐसे धवल छत्र से वह परमाधिक भासुर हो रही थी ।३। विजया आदि प्रमुख परिचारिकाओं के समुदाय के द्वारा चार चमरों से वह अभिवीजित हो रही थी जो चमर मणि के समान कान्त और शोभा वाले थे तथा नवीन चन्द्रिका की लहरी की कान्ति एवं चार कदालियों की कान्ति के समान थे ।४। वह अपनी शक्ति से एक ही राज्य की पदवी को अभिसूचित कर रही थी और सैकड़ों साम्राज्य के चिन्हों से उसका सैन्य देश मण्डित था । देवांगनाओं के संगीत और वाद्य रचनाओं के द्वारा उसके वैभव का संस्तवन किया जा रहा था एवं वह परम विशद प्रकाश वाली थी ।५। उसका शक्ति वैभव वाणी के तो अगोचर था ही किन्तु वह बुद्धि के भी अगोचर था । वह ऐसी है—इस तरह कथन के योग्य तथा बुद्धि में बैठने के योग्य नहीं है और उसकी तुल्यता रखने वाला कोई भी नहीं है ।६। तीनों लोकों के मध्य में परिपूरित शक्ति चक्र और साम्राज्य की सम्पदा है उसके अभिमान का अभिस्पर्शन करती हुई थी । पंक्तियों बद्ध तथा दोनों करों को विपुल भक्तिभाव में जोड़कर मस्तकों पर लगाने वाले देवगण समीप में प्रथम पहुँचाकर सेवा करूँ—ऐसी रीति से वह सेवमाना थी ।७।

ब्रह्मेशविष्णुवृषमुख्यसुरोत्तमानां वक्त्राणि वर्षितनुतीति
कटाक्षयन्ती ।
उद्दीप्तपुष्पशरपंचकतः समुत्थैर्ज्योतिर्मयं त्रिभुवनं
सहसा दधाना ।।८

विद्युत्समद्यु तिभिरप्सरसां समूहैर्विक्षिप्य-
माणजयमंगललाजवर्षा ।
कामेश्वरीप्रभृतिभिः कमनीयभाभिः
संग्रामवेषरचनासुमनोहराभिः ।।९

दीप्तायुधद्युतितिरस्कृतभास्कराभिर्नित्याभिरंघ्रिसविधे
समुपास्यमाना ।
श्रीचक्रनामतिलकं दशयोजनातितुंगध्वजोल्लिखितमेध-
कदंबमुच्चैः ॥१०
तीव्राभिरावणसुशक्तिपरंपराभियुक्तं रथं
समरकर्मणि चालयंती ।
प्रोद्यत्पिशंगरुचिभागमलांशुकेन वीतामनोहररुचिस्समरे
व्यभासीत् ॥११
पंचाधिकैर्विंशतिनामरत्नैः प्रपंचपापप्रशमातिदक्षैः ।
संस्तूयमाना ललिता मरुद्भिः संग्रामुद्दिश्य समुच्चचाल ॥१२
अगस्त्य उवाच–
वाजिवक्त्र महाबुद्धे पंचविंशतिनामभिः ।
ललितापरमेशान्या देहि कर्णरसायनम् ॥१३
हयग्रीव उवाच–
सिंहासना श्रीललिता महाराज्ञी परांकुशा ।
चापिनी त्रिपुरा चैव महात्रिपुरसुन्दरी ॥१४

ब्रह्मा—विष्णु और शम्भु जिनमें प्रमुख थे ऐसे देवों के मुखों को जो बराबर स्तुति कर रहे थे अपने कृपा कटाक्ष से देख रही थी। अतीव उदीप्त कुसुमों के पाँच शरों से समुत्थित प्रकाशों से सहसा ज्योतिर्मय त्रिभुवन को धारण करने वाली है।८। विद्युल्लता के समान कान्तिमती अप्सराओं के समुदाय के द्वारा जय और मङ्गल के लिए लाजाओं की वर्षा जिसके ऊपर हो रही थी। कामेश्वरी आदि—परम कमनीय आभा वाली और संग्राम के वेषकी रचना में सुमनोहर—दीप्त आयुधों की दीप्ति से भास्कर की आभा को तिरस्कृत कर देने वाली ऐसी नित्या परिचारिकाओं के द्वारा चरणों के समीप में भली भाँति उपास्यमाना थी। श्रीचक्र नाम वाले रथ पर विराजमान होकर समर में उसको चला रही थी। वह रथ ऐसा था जिसकी ध्वजा दश योजन से भी अधिक ऊँची थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वह आकाश को उल्लिखित कर रहीं होवें जिसमें मेघों का समुदाय

था ।९-१०। वह रथ परम तीव्र रावण की सुशक्तियों की परम्पराओं से समन्वित था। वह रथ उस समर में परम शोभित हो रहा था जिसमें उदित पिशंग रुचि के भागसे युक्त वस्त्रसे वह संवोत था औरपरम मनोहर कान्ति बाला था ।११। ललितादेवी मरुद्‌गणों के द्वारा संस्तूयमान होती हुई संग्राम करने के उद्देश्य से तेजी से चली थी। मरुद्‌गण उसके पच्चीस नाम रत्नों को कहकर ही उसका संस्तवन कर रहे थे जो नाम प्रपञ्चों के पापों के प्रशमन करने में परम दक्ष थे ।१२। अगस्त्य जी ने कहा—हे वाजि वक्त्र ! आप तो महती बुद्धि वाले हैं। आप उन पच्चीस ललिता परमेशानी के नामों से हमारे कानों के लिये रसपान कराइए ।१३। हयग्रीवजी ने कहा—उनके पच्चीस नाम ये हैं—सिंहासना-महाराज्ञी—परंकुशा-चापिनी-त्रिपुरा-महात्रिपुर सुन्दरी ।१४।

सुन्दरी चक्रनाथा च साम्राज्ञी चक्रिणी तथा ।
चक्रेश्वरी महादेवी कामेशी परमेश्वरी ।।१५
कामराजप्रिया कामकोटिगा चक्रवर्तिनी ।
महाविद्या शिवानंगवल्लभा सर्वपाटला ।।१६
कुलनाथाम्नायनाथा सर्वाम्नायनिवासिनी ।
शृङ्गारनायिका चेति पचविंशतिनामभिः ।।१७
स्तुवन्ति ये महाभागां ललितां परमेश्वरीम् ।
ते प्राप्नुवन्ति सौभाग्यमष्टौ सिद्धीर्महद्यशः ।।१८
इत्थं प्रचंडसंरंभं चालयंती महद्‌बलम् ।
भंडासुरं प्रति क्रुद्धा चचाल ललितांबिका ।।१९

सुन्दरी-चक्र नाथा-साम्राज्ञी-चक्रिणी-चक्रेश्वरी-महादेवी-कामेशी—परमेश्वरी ।१५। कामराज प्रिया—कामकोटिगा—चक्र वर्त्तिनी—महाविद्या-शिवा—अनंग वल्लभा—सर्वपाटला—।१६। कुलनाथा—आम्नाय नाथा—सर्वाम्नाय निवासिनी और शृंगार नायिका—ये ही पच्चीस नाम हैं ।१७। जो महाभाग पुरुष इन उपर्युक्त नामों से परमेश्वरी ललिता की स्तुति किया करते हैं वे परम सौभाग्य—आठों अणिमादिक सिद्धियाँ और महान् यश को प्राप्त किया करते हैं ।१८। इस प्रकार से परम प्रचण्ड के साथ अपनी महती सेना का सञ्चालन कर रही थी और भण्डासुर के प्रति अत्यधिक क्रुद्ध होकर वह ललिताम्बिका वहाँ से रवाना हुई थी ।१९।

।। चक्ररथ पर्वस्थ देवता नाम प्रकाशन ।।

अगस्त्य उवाच–

चक्रराजरथेंस्य याः पर्वणि समाश्रिताः ।
देवता प्रकटाभिख्यास्तासामाख्यां निवेदय ।।१
संख्याश्च तासामखिला वर्णभेदांश्च शोभनान् ।
आयुधानि च दिव्यानि कथयस्व हयानन ।।२

हयग्रीव उवाच–

नवमं पर्व दीप्तस्य रथस्य समुपस्थिताः ।
दश प्रोक्ता सिद्धिदेव्यस्तासां नामानि मच्छृणु ।।३
अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा ।
ईशिता वशिता चैव प्राप्तिः सिद्धिश्च सप्तमी ।।४
प्राकाम्यमुक्तिसिद्धिश्च सर्वकामाभिधापरा ।
एता देव्यश्चतुर्बाह्वयो जपाकुसुमसंनिभाः ।।५
चिंतामणिकपालं च त्रिशूलं सिद्धिकज्जलम् ।
दधाना दयया पूर्णा योगिभिश्च निषेविताः ।।६
तत्र पूर्वार्द्धभागे च ब्रह्माद्या अष्ट शक्तयः ।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही चैव माहेंद्री चामुण्डा चैव सप्तमी ।।७

श्री अगस्त्य जी ने कहा—जो देवता पर्व में चक्रराज रथेन्द्र के समाश्रित थे जिनका जो नाम प्रकट था उनका आख्यान कृपाकर बतलाइए ।१। हे हयानन ! उन सब देवों की संख्या और उनके परम शोभन वर्णों के भेद तथा उनके दिव्य आयुध यह सभी वर्णन कीजिए ।२। हयग्रीव जी ने कहा—उस दीप्त रथ के नवम पर्व में समुपस्थित ये दश सिद्धि देवियाँ कही गयी हैं। उनके नाम भी आप मुझसे श्रवण कीजिए ।३। अणिमा–लघिमा–गरिमा–ईशिता–वशिता–सातवीं प्राप्ति सिद्धि होती है। आठवी प्राकाप्य सिद्धि होती है जो सर्वकांता नाम वाली होती है। ये आठों देवियाँ चार-

चार भुजाओं वाली हैं और इनका वर्ण जपा के कुसुम के तुल्य होता है।४-५। ये चारों करों में चिन्तामणि–कपाल-त्रिशूल और सिद्धि कज्जल धारण किये रहा करती हैं। ये दया से परिपूर्ण होती हैं और योगिजनों के द्वारा सर्वदा सेवित रहा करती हैं।६। वहाँ पर पूर्वार्ध भाग में ब्राह्मी आदि आठ शक्तियाँ हुआ करती है। उनके नाम ये हैं—ब्राह्मी—माहेश्वरी—कौमारी–वैष्णवी—वाराही—माहेन्द्री और सातवीं चामुण्डा है।७।

महालक्ष्मीरष्टमी च द्विभुजाः शोणविग्रहाः ।
कपालमुत्पलं चैव बिभ्राणा रक्तवाससः ॥८
अथ वान्यप्रकारेण केचिद्ध्यानं प्रचक्षते ।
ब्रह्मादिसदृशाकारा ब्रह्मादिसदृशायुधाः ॥९
ब्रह्मादीनां परं चिह्नं धारयन्त्यः प्रकीर्तिताः ।
तासामूर्ध्वस्थानगतां मुद्रा देव्यो महत्तराः ॥१०
मुद्राविरचनायुक्तैर्हस्तैः कमलकांतिभिः ।
दाडिमीपुष्पसङ्काशाः पीतांबरमनोहराः ॥११
चतुर्भुजा भुजद्वन्द्वधृतचर्मकृपाणकाः ।
मदरक्तविलोलाक्ष्यस्तासां नामानि मच्छृणु ॥१२
सर्वसंक्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा ।
सर्वाकर्षणकृन्मुद्रा तथा सर्ववशङ्करी ॥१३
सर्वोन्मादनमुद्रा च षष्ठिः सर्वमहाङ्कुशा ।
सर्वखेचरिका मुद्रा सर्वबीजा तथापरा ॥१४

महालक्ष्मी आठवीं शक्ति है। इन सबकी दो-दो भुजाएँ होती हैं और इनके कलेवर का वर्ण शोण होता है। ये कपाल और उत्पल करों में लिये रहा करती हैं। इनके वस्त्र रक्त वर्ण के होते हैं।८। अथवा अन्य प्रकार से कुछ लोग इनका ध्यान कहा करते हैं। ये सब ब्रह्मा आदि के सदृश ही आयुधों वाली होती हैं।९। ये सब ब्रह्मादिक के ही परम चिह्नों को धारण करती हुई कीर्त्तित की गयी हैं। उनके ऊपर स्थान में रहने वाली मुद्रा देवियाँ इनसे भी अधिक महान् हैं।१०। कमल के समान कान्ति वाले मुद्रा विरचना से युक्त हाथों से युक्त होती है। इनका वर्ण दाडिमी के पुष्पों

के सदृश होता है और ये सब पीत अम्बर धारण करके परम मनोहर होती हैं ।११। इनकी चार-चार भुजाएँ होती हैं। ये दो-दो भुजाओं में चर्म (ढाल) और कृपाण धारण किये रहा करती हैं। मद से इनके लोचन चञ्चल और रक्त हुआ करते हैं। अब उनके भी नामों का श्रवण कीजिए ।१२। सर्वसंक्षोभिणी—सर्व विद्राविणी--सर्वाकर्षणकृन्मुद्रा—सर्ववशङ्करी—सर्वोन्मादन मुद्रा षष्ठिसर्व महाकुशा—सर्वखेचरिका मुद्रा—तथा अपरासर्व-बीजा है ।१३-१४।

सर्वयोनिश्च नवमी तथा सर्वत्रिखंडिका ।
सिद्धिब्राह्म्यादिमुद्रास्ता एताः प्रकटशक्तयः ।।१५
भंडासुरस्य संहारं कर्तुं रक्तरथे स्थिताः ।
या गुप्ताख्याः पूर्वमुक्तास्तासां नामानि मच्छृणु ।।१६
कामाकर्षणिका चैव बुद्ध्याकर्षणिका कला ।
अहङ्काराकर्षिणी च शब्दाकर्षणिका कला ।।१७
स्पर्शाकर्षणिका नित्या रूपाकर्षणिका कला ।
रसाकर्षणिका नित्या गन्धाकर्षणिका कला ।।१८
चित्ताकर्षणिका नित्या धैर्याकर्षणिका कला ।
स्मृत्याकर्षणिका नित्या नामाकर्षणिका कला ।।१९
बीजाकर्षणिका नित्या चात्माकर्षणिका कला ।
अमृताकर्षणी नित्या शरीराकर्षिणी कला ।।२०
एताः षोडश शीतांशुकलारूपाश्च शक्तयः ।
अष्टमं पर्वसम्प्राप्ता गुप्ता नाम्ना प्रकीर्तिताः ।।२१

और सर्वयोनि नवमी तथा सर्वत्रिखण्डिका है। सिद्धि ब्राह्मी आदि मुद्रा ये हैं—इतनी प्रकट शक्तियाँ हैं।१५। भण्डासुर के संहार करने के लिये वह रक्त रथ में संस्थित हुई थी। जो गुप्ता नाम वाली पूर्व में कही थीं उनके भी नामों का श्रवण अब आप मुझसे कीजिए।१६। कामकर्षणिका और बुद्धया—कर्षणिका कला—अहङ्कारा कर्षणिका—शब्दाकर्षणिका कला है।१७। स्पर्शा कर्षणिका नित्या—रूपा कर्षणिका कला। रसा कर्षणिका नित्या नित्या–गन्धाकर्षणिका कला—।१८। चित्ताकर्षणिका नित्या—धैर्या-

कर्षणिका कला—स्मृत्याकर्षणिका नित्यानामाकर्षणिका कला ।१९। बीजाकर्षणिका नित्या—आत्माकर्षणिका कला—अमृतकर्षिणी नित्या—शरीराकर्षिणी कला ।२०। ये षोडश रूप वाली शीतांशु कलारूपा शक्तियाँ हैं। अष्टम पर्व को सम्प्राप्त ये गुप्ता नामों से कीर्त्तित की गयी है ।२१।

विद्रुमद्रुमसङ्काशा मन्दस्मित मनोहराः ।
चतुर्भुजास्त्रिनेत्राश्च चन्द्रार्कमुकुटोज्ज्वलाः ॥२२
चापबाणौ चर्मखड्गौ दधाना दिव्यकान्तयः ।
भण्डारसुरवधार्थाय प्रवृत्ताः कुम्भसम्भव ॥२३
सायंतनज्वलद्दीपप्रख्यचक्ररथस्य तु ।
सप्तमे पर्वणि कृतावासा गुप्ततराभिधाः ॥२४
अनङ्गमदनानङ्गमदनातुरया सह ।
अनङ्गलेखा चानङ्गवेगानङ्गांकुशापि च ॥२५
अनंगमालिग्यपरा एता देव्यो जपात्विषः ।
इक्षुचापं पुष्पशरान्पुष्पकन्दुकमुत्पलम् ॥२६
बिभ्रत्योऽदभ्रविक्रांतिशालिन्यो ललिताज्ञया ।
भण्डासुरमभिक्रुद्धाः प्रज्वलंत्य इव स्थिताः ॥२७
अथ चक्ररथेंद्रस्य षष्ठं पर्वसमाश्रिताः ।
सर्वसंक्षोभिणीमुख्याः सम्प्रदायाख्यया युताः ॥२८

हे कुम्भ सम्भव ! जो भण्डासुर के वध के लिए प्रवृत्त हुईं वे विद्रुम के द्रुम के सदृश हैं तथा मन्दस्मित से मनोहर हैं। इनकी चार भुजाएँ हैं और तीन नेत्र हैं एवं चन्द्र और सूर्य इनके उज्ज्वल मुकुट हैं। चाप—बाण—चर्म और खड्ग को धारण करने वाली तथा दिव्यकान्ति से सुसम्पन्न हैं ।२२-२३। सायन्तन के जलते हुए दीप के समान चक्र रथ के सप्तम पर्व में आवास करने वाली गुप्ततरा नाम वाली हैं ।२४। अनङ्गमदनातुरा के साथ अनङ्गमदना—अनङ्ग लेखा—अनङ्ग वेगा—अनङ्गाकुंशा—अनङ्ग का आलिङ्गन में परायणा—ये देवियाँ जपा के कुसुम की कान्ति वाली हैं। ये इक्षु चाप, पुष्प बाण, पुष्पों का कन्दुक और उत्पल धारण करती हुईं—अभ्र की विक्रान्ति वाली हैं और ललिता की आज्ञा से भण्डासुर के प्रति

अत्यन्त क्रोध से प्रज्वलित होती हुई सी स्थित हैं।२५-२७। इसके अनन्तर चक्र रथेन्द्र के षष्ठ पर्व पर समाश्रित हैं। सर्व संक्षोभिणी मुख्य हैं और सम्प्रदाय की आख्या से युत हैं।२८।

वेणीकृतकचस्तोमाः सिंदूरतिलकोज्ज्वलाः ।
अतितीव्रस्वभावाश्च कालानलसमत्विषः ॥२९
वह्निबाणं वह्निचापं वह्निरूपमसिं तथा ।
वह्निचक्राख्यफलकं दधाना दीप्तविग्रहाः ॥३०
असुरेन्द्रं प्रति क्रुद्धाः कामभस्मसमुद्भवाः ।
आज्ञाशक्तय एवैता ललिताया महौजसः ॥३१
सर्वसंक्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा ।
सर्वाकर्षणिका शक्तिः सर्वाह्लादिनिका तथा ॥३२
सर्वसंमोहिनी शक्तिः सर्वस्तम्भनशक्तिका ।
सर्वजृंभणशक्तिश्च सर्वोन्मादनशक्तिका ॥३३
सर्वार्थसाधिका शक्तिः सर्वसम्पत्तिपूरणी ।
सर्वमन्त्रमयी शक्तिः सर्वद्वंद्वक्षयङ्करी ॥३४
एवं तु सम्प्रदायानां नामानि कथितानि वै ।
अथ पञ्चमपर्वस्थाः कुलोत्तीर्णा इति स्मृताः ॥३५

वेणीकृत हैं कचों के स्तोम जिनके ऐसी—सिन्दूर के तिलक से समुज्ज्वल–अतीव तीव्र स्वभाव से युक्त–कमल और अनल के समान कान्ति वाली हैं।२९। इनके कलेवर परम दीप्त हैं तथा वह्निबाण—वह्निचाप—वह्निरूप असि और वह्नि चक्राख्य फलक को धारण करने वाली हैं।३०। असुरेन्द्र के प्रति क्रोध से युक्त और कामदेव की भस्म से समुत्पन्न ये सब महान् ओज वाली ललिता देवी की आज्ञा शक्तियां हैं।३१। सर्व संक्षोभिणी सर्वविद्राविणी–सर्वाकर्षणिका शक्ति–सर्वा ह्लादिनिका—सर्व संमोहिनी शक्ति—सर्व स्तम्भन शक्ति—सर्व जृम्भण शक्ति—सर्वोन्मादन शक्ति—सर्वार्थसाधिका शक्ति—सर्व सम्पत्ति पूरणी—सर्व मन्त्रमयी शक्ति–सर्वद्वन्द्व क्षयंकरी—इस प्रकार से सम्प्रदाय के ये नाम कह दिये गये हैं ये पञ्चम पर्व में स्थित हैं और कुलोत्तीर्णा कही गयी हैं।३२-३५।

ताश्च स्फटिकसङ्काशाः परशु पाशमेव च ।
गदां घण्टां मणिं चैव दधाना दीप्तिविग्रहाः ॥३६
देवद्विषामति क्रुद्धा भ्रुकुटीकुटिलाननाः ।
एतासामपि नामानि समाकर्णय कुम्भज ॥३७
सर्वसिद्धिप्रदा देवी सर्वसम्पत्प्रदा तथा ।
सर्वप्रियंकरी देवी सर्वमंगलकारिणी ॥३८
सर्वकामप्रदा देवी सर्वदुःखविमोचिनी ॥३९
सर्वमृत्युप्रशमिनी सर्वविघ्ननिवारिणी ।
सर्वांगसुन्दरी देवी सर्वसौभाग्यदायिनी ॥४०
दशैताः कथिता देव्यो दयया पूरिताशयाः ।
चक्रे तुरीयपर्वस्था मुक्ताहारसमत्विषः ॥४१
निगर्भयोगिनी नाम्ना प्रथिता दश कीर्तिताः ।
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यप्रदा तथा ॥४२
सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी ।
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा ॥४३

और इसके अनन्तर स्फटिक मणि के सदृश हैं और परशु–पाश—गदा–घण्टा और मणि को धारण करने वाली हैं और परम दीप्त विग्रह वाली हैं ।३६। वे सब देवों के शत्रु के प्रति अत्यन्त क्रुद्ध थीं और उनके मुख तथा भृकुटियाँ कुटिल हैं । हे कुम्भज ! अब उनके भी नामों का श्रवण कीजिए ।३७। सर्व सिद्धि प्रदा देवी—सर्व सम्पद प्रदा–।३७-३९। सर्व प्रियङ्करी देवी—सर्व मङ्गल कारिणी । सर्वकामप्रदा देवी—सर्व दुःख विमोचिनी—सर्व मृत्यु प्रशमनी—सर्व विघ्न निवारिणी—सर्वांग सुन्दरी देवी—सर्व सौभाग्य दायिनी है ।४०। ये दश देवियाँ बतलायी गयी हैं जिनके आशय दया से पूरित हैं । ये चक्र में चतुर्थ पर्व में संस्थित हैं और मुक्ताओं के हार के समान कान्तिमती हैं ।४१। ये दश निगर्भ योगिनी के नाम से प्रसिद्ध कही गयी हैं । सर्वज्ञा-सर्वशक्ति-सर्वैश्वर्य प्रदा हैं ।४२।

सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी ।
दशमी देवता ज्ञेया सर्वेप्सितफलप्रदा ॥४४
एताश्चतुर्भुजा ज्ञेया वज्रं शक्ति च तोमरम् ।
चक्रं चैवाभिबिभ्राणा भण्डासुरवधोद्यताः ॥४५
अथ चक्ररथेन्द्रस्य तृतीयं पर्वसंश्रिताः ।
रहस्ययोगिनी नाम्ना प्रख्याता वागधीश्वराः ॥४६
रक्ताशोकप्रसूनाभा बाणकार्मुकपाणयः ।
कवचच्छन्नसर्वांग्यो वीणापुस्तकशोभिताः ॥४७
वशिनी चैव कामेशी भोगिनी विमला तथा ।
अरुणा च जयिन्याख्या सर्वेशी कौलिनी तथा ॥४८
अष्टावेताः स्मृता देव्यो दैत्यसंहारहेतवः ।
अथ चक्ररथेन्द्रस्य द्वितीयं पर्वसंश्रिताः ॥४६

सर्वज्ञान से परिपूर्ण देवी—सर्व व्याधि विनाशिनी—सर्वाधार स्वरूपा—सर्व पाप हरा है ।४३। सर्वानन्दमयी देवी—सर्व रक्षा स्वरूपिणी—और इनमें जो दशमी देवी है वह सर्वेप्सित फल प्रदा जानने के योग्य हैं ।४४। इनकी चार-चार भुजाएँ हैं ये वज्र—शक्ति—तोमर और चक्र को धारण करने वाली हैं तथा ये सभी उसी भण्डासुर के वध करने के लिए समुद्यत हैं ।४५। ये सब चक्र रथेन्द्र के तीसरे पर्व में संश्रय करने वाली हैं। ये वागधीश्वरा रहस्य योगिनी के नाम से प्रख्यात हैं ।४६। इनकी आभा रक्ताशोक के पुसून के तुल्य है और इनके करों में धनुष बाण रहा करते हैं। इनके सम्पूर्ण अंग कवचों से संच्छन्न रहते हैं तथा ये वीणा और प्रस्तकों के धारण करने वाली है ।४७। वशिनी–कामेशी–भोगिनी–विमला–अरुणा–जायिनी–सर्वेशी–कौलिनी–ये आठ देवियाँ असुर के संहार की हेतु कही गयी हैं और चक्ररथेन्द्र के द्वितीय पर्व में समाश्रित हैं ।४८-४६।

चापबाणो पानपात्रं मातुलुंगं कृपाणिकाम् ।
तिस्रस्त्रिपीठनिलया अष्टबाहुसमन्विताः ॥५०
पलकं नागपाशं च घंटां चैव महाध्वनिम् ।
बिभ्राणा मदिरामत्ता अतिगुप्तरहस्यकाः ॥५१

कामेशी चैव वज्रेशी भगमालिन्यथापरा ।
तिस्र एताः स्मृता देव्यो भण्डे कोपसमन्विताः ।।५२
ललितासममाहात्म्या ललितासमतेजसः ।
एतास्तु नित्यं श्रीदेव्या अन्तरङ्गाः प्रकीर्तिताः ।।५३
अथानन्दमहापीठे रथमध्यमपर्वणि ।
परितो रचितावासाः प्रोक्ताः पञ्चदशाक्षराः ।।५४
तिथिनित्याः कालरूपा विश्वं व्याप्यैव संस्थिताः ।
भण्डासुरादिदैत्येषु प्रक्षुब्धभ्रकुटीतटा ।।५५
देवीसमनिजाकारा देवीसमनिजायुधाः ।
जगतामुपकाराय वर्तमाना युगेयुगे ।।५६

ये चाप—बाण—पान पात्र—मातुलुंग और कृपाणिका धारण करने वाली हैं । ये तीन है और तीन पीठों पर इनका निलय है एवं आठ बाहुओं से संयुक्त है ।५०। पलक-नागपाश महाध्वनि घण्टा को धारण करने वाली हैं । ये मदिरा के पान से मत्त रहा करती है तथा अति गुप्त रहस्य वाली हैं ।५१। कामेशी-वज्रेशी-भगमालिनी—ये तीन देवियाँ कही गयी हैं जो भण्डासुर दैत्य पर अत्यधिक क्रोध से समन्वित थीं।५२। इनका माहात्म्य भी ललिता देवी के ही समान था। तथा ललिता देवी के ही समान ही इनका ओज महान् था । ये देवियाँ नित्य ही श्री देवी की अन्तरंग बतायी गयी हैं ।५३। इसके अनन्तर रथ के मध्य के पर्व पर आनन्द महापीठ पर सब ओर रचित आवास वाली पञ्चदशाक्षरा कही गयी हैं ।५४। ये तिथि नित्या-कालरूपा और विश्वको व्याप्त करके ही संस्थित रहा करती हैं । भण्डासुर आदि जो भी दैत्य हैं इनको उन पर प्रक्षुब्ध भृकुटियाँ रहा करती हैं ।५५। ये सभी देवी के ही तुल्य आकार वाली हैं और श्रीदेवी के ही समान अपने आयुधों वाली हैं । ये प्रत्येक युग में जन समूहों के उपकार के ही लिए वर्त्तमान रहा करती हैं ।५६।

तासां नामानि मत्तस्त्वमवधारय कुम्भज ।
कामेशी भगमाला च नित्यक्लिन्ना तथैव च ।।५७
भेरुण्डा वह्निवासिन्यो महावज्रेश्वरी तथा ।

द्रूती च त्वरिता देवी नवमीं कुलसुन्दरी ॥५८
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमंगला ।
ज्वालामालिनिकाचित्रे दश पंच च कीर्तिताः ॥५९
एताभिः सहिता देवी सदा सेवैकबुद्धिभिः ।
दुष्टं भंडासुरं जेतुं निर्ययौ परमेश्वरी ॥६०
मन्त्रिनाथा महाचक्रे गीतिं चक्रे रथोत्तमे ।
सप्तपर्वाणि चोक्तानि तत्र देव्याश्च ताः शृणु ॥६१
गेयचक्ररथे पर्वमध्यपीठनिकेतना ।
संगीतयोगिनी प्रोक्ता श्रीदेव्या अतिवल्लभा ॥६२
तदेव प्रथमं पर्व मन्त्रिण्यास्तु निवासभूः ।
अथ द्वितीयपर्वस्था गेयचक्रे रथोत्तमे ॥६३

हे कुम्भज ! अब उनके शुभ नाम भी मुझ से आप अवधारित कर लीजिए । कामेशी-भगमाला-नित्य क्लिन्ना ।५७। मेरुण्डा-वह्निवासिनी—महावज्रेश्वरी–द्रूती–त्वरिता—देवी नवमी कुल सुन्दरी है ।५८। नित्या—नीलपताका—विजया—सर्वमंगला—ज्वालामालिका— चित्रा— ये पन्द्रह कही गयी हैं ।५९। ये सदा ही सेवा की ही बुद्धिवाली रहती है और इनको ही साथ में रखकर वह परमेश्वरी भन्डासुर पर विजय प्राप्त करने के लिए वहाँ से निर्गत हुई थी ।६०। महाचक्र में मन्त्रि नाथा और रथोत्तम चक्र में गीति थी । ये वहाँ पर सात पर्व हैं जो आपको बतला दिए गए हैं । वहाँ पर जो श्री देवी की हैं उनका भी श्रवण करिए ।६१। गेय चक्र रथ में पर्व के मध्य में पीठ और निकेतन वाली संगीत योगिनी कही गयी है जो श्री देवी की अत्यधिक वल्लभा (प्रिया) है ।६२। वह ही प्रथम पर्व है जो मन्त्रिणी की निवास की भूमि है । इसके उपरान्त गेयचक्र रथोत्तम में द्वितीय पर्व में स्थित ये हैं–।६३।

रतिः प्रीतिर्मनोजा च वीणाकार्मुकपाणयः ।
तमालश्यामलाकारा दानवोन्मूलनक्षमाः ॥६४
तृतीयपर्वसंरूढा मनोभूबाणदेवता ।
द्राविणी शोषिणी चैव बंधिनी मोहिनी तथा ॥६५

उन्मादिनीति पंचैता दीप्तकामुंकपाणयः ।
तत्र पर्वण्यधस्तात्तु वर्तमाना महौजसः ॥६६
कामराजश्च कंदर्पो मन्मथो मकरध्वजः ।
मनोभवः पंचमः स्यादेते त्रैलोक्यमोहनाः ॥६७
कस्तूरीतिलकोल्लासिभालामुक्ताविराजिताः ।
कवचच्छन्नसर्वांगाः पलाशप्रसवत्विषः ॥६८
पंचकामा इमे प्रोक्ता भंडासुरवधार्थिनः ।
जेयचक्ररथेंद्रस्य चतुर्थं पर्वसंश्रिताः ॥६९
ब्राह्मीमुख्यास्तु पूर्वोक्ताश्चंडिका त्वष्टमी परा ।
तत्र पर्वण्यधस्ताच्च लक्ष्मीश्चैव सरस्वती ॥७०

रति-प्रीति-मनोज्ञा हैं जिनके करों में वीणा और कार्मुक हैं। इनका वर्ण तमाल के तुल्य श्यामल है और ये दानवों के उन्मूलन करने में परम समर्थ हैं ।६४। तीसरे पर्व में संरूढ़ मनोभूवाण देवता हैं। द्राविणी-शोषणी-बंधिनी-मोहिनी हैं ।६५। उन्मादिनी ये पाँच हैं जिनके करों में दीप्त कार्मुक हैं। वहाँ पर पर्व में नीचे की ओर महान् ओज वाले वर्त्तमान हैं ।६६। कामराज-कन्दर्प-मन्मथ-मकरध्वज और मनोभव—ये पाँच हैं जो त्रैलोक्य के मोहन करने वाले हैं ।६७। ये कस्तूरी के तिलक से उल्लासित भाल वाले तथा मुक्ताओं के तुल्य शोभित हैं। इनके सभी अंग कवचों से ढके हुए हैं और ये पलाश के पुष्पों के समान कान्ति वाले हैं ।६८। ये पाँच काम बताये गये हैं जो भन्डासुर के वध के लिए ही हैं। जय चक्र रथेन्द्र के चतुर्थ पर्व में संश्रय वाले हैं ।६९। ब्राह्मी जिनमें प्रमुख है पूर्व में वर्णित चन्डिका अष्टमी परा हैं। वहाँ पर पर्व में नीचे लक्ष्मी और सरस्वती हैं ।७०।

रतिः प्रीतिः कीर्तिशांती पुष्टिस्तुष्टिश्च शक्तयः ।
एताश्च क्रोधरक्ताक्ष्यो दैत्यं हंतु महाबलम् ॥७१
कुन्तचक्रधराः प्रोक्ताः कुमार्यः कुम्भसंभव ।
पंचमं पर्व संप्राप्ता वामाद्याः षोडशापराः ॥७२
गीतिं चक्ररथेंद्रस्य तासां नामानि मच्छृणु ।

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च शांतिः श्रद्धा सरस्वती ।।७३
श्री भूशक्तिश्च लक्ष्मीश्च सृष्टिश्चैव तु मोहिनी ।
तथा प्रमाथिनी चाश्वसिनी वीचिस्तथैव च ।।७४
विद्युन्मालिन्यथ सुरानन्दाथो नागबुद्धिका ।
एतास्तु कुरविंदाभा जगत्क्षोभणलंपटाः ।।७५
महासरसमन्नाहमादधानाः पदे पदे ।
वज्रकंटकसंछन्ना अट्टहासोज्ज्वलाः परे ।
वज्रदंडी शतघ्नीं च संबिभ्राणा भुशुण्डिकाः ।।७६
अथ गीतिरथेन्द्रस्य षष्ठं पर्व समाश्रिताः ।
असितांगप्रभृतयो भैरवाः शस्त्रभीषणाः ।।७७

रति-प्रीति-कीर्त्ति-शान्ति-पुष्टि-तुष्टि—ये शक्ति रक्त नेत्रों वाली हैं हैं ।७१। हे कुम्भ सम्भव ! ये कुमारियाँ कुन्त चक्रधर कही गयी हैं । पाँचवें पर्व में वामा आदिक दूसरी सोलह सम्प्राप्त हैं ।७२। गीति चक्र रथेन्द्र की हैं । उनके भी नामों का श्रवण कीजिए जिनको मैं बता रहा हूँ । वामा-ज्येष्ठा-रौद्री-शान्ति-श्रद्धा-सरस्वती-श्री-भूशक्ति-लक्ष्मी-सृष्टि-मोहिनी - प्रमाथिनी-अश्वासिनी-वीचि-विद्युन्मालिनी-सुरानन्दा-नाग बुद्धिका—ये सब कुरविन्दकी आभा वाली हैं और सम्पूर्ण जगत् के क्षोभण करने में संलग्न है ।७३-७५। ये पद-पद में महा सरसमन्नाह को धारण करने वाली हैं । ये वज्र कंकट से संच्छन्न हैं और अट्टहास करने से उज्ज्वल हैं । ये वज्र-दन्ड-शतघ्नी और भुशुन्डिकाओं को धारण करने वाली हैं ।७६। इसके पश्चात् गीतिरथेन्द्र के षष्ठ पर्व में समाश्रित है । असितांग प्रभृति शस्त्रों से महान भीषण भैरव हैं ।७७।

त्रिशिखं पानपात्रं च बिभ्राणा नीलवर्चसः ।
असितांगो रुरुश्चंडः क्रोध उन्मत्तभैरवः ।।७८
कपालीभीषणश्चैव संहारश्चाष्ट भैरवाः ।
अथ गीतिरथेंद्रस्य सप्तमं पर्व संश्रिताः ।।७९
मातंगी सिद्धलक्ष्मीश्च महामातंगिकापि च ।

महती सिद्धलक्ष्मीश्च भूशोणा बाणधनुर्धरा ॥८०
तस्यैव पर्वणोऽधस्ताद्गणपः क्षेत्रपस्तथा ।
दुर्गाम्बा बटुकश्चैव सर्वे ते शस्त्रपाणय: ॥८१
तत्रैव पर्वणोऽधस्ताल्लक्ष्मीश्चैव सरस्वती ।
शंख: पद्मो निधिश्चैव ते सर्वे शस्त्रपाणय: ॥८२
लोकद्विषं प्रति क्रुद्धा भंडं चंडपराक्रमम् ।
शक्रादयश्च विष्ण्वंता दश दिक्चक्रनायका: ॥८३
शक्तिरूपास्तत्र पर्वण्यधस्तात्कृतसंश्रया: ।
वज्रं शक्तिं कालदंडमसिं पाशं ध्वजं तथा ॥८४

त्रिशिख-पानपात्र को धारण करने वाले तथा नील वरचस है । असिताङ्ग-रुरु-चण्ड-क्रोध-उन्मत्त भैरव-कपाली-भीषण और संहार-ये आठ भैरव हैं और गीति रथेन्द्र के सप्तम पर्व में संशय वाले हैं ।७८-७९। मातंगी सिद्ध लक्ष्मी-महामातंगिका-महती-सिद्ध लक्ष्मी-भूशोणा-बाणधनुर्धरा-है ।८०। उसी पर्व के नीचे गणप तथा क्षेत्रप हैं—दुर्गा अम्बा और बटुक हैं । ये सब करों में शस्त्र धारण करने वाले हैं ।८१। वहाँ पर ही पर्व के नीचे लक्ष्मी और सरस्वती हैं । शंख-पद्म-निधि हैं । ये सब प्राणियों में शस्त्र वाले हैं ।८२। ये सब लोकों के शत्रु चण्ड पराक्रम वाले भन्ड के प्रति क्रुद्ध हैं । शक्र से आदि लेकर विष्णु भगवान् के अन्त पर्यन्त दश दिशाओं के चक्रनायक हैं ।८३। वहाँ पर्व के नीचे शक्ति रूप वाले संश्रय लेने वाले हैं । ये वज्र-शक्ति-कालदंड-असि-पाशध्वज के धारण करने वाले हैं ।८४।

गदां त्रिशूलं दर्भास्त्रं वज्रं च दधतस्त्वमी ।
सेवंते मंत्रिनाथां तां नित्यं भक्तिसमन्विता: ॥८५
भंडासुराद्दुरूढान्निहंतुं विश्वकंटकान् ।
मन्त्रिनाथाश्रयद्वारा ललिताज्ञापनोत्सुका: ॥८६
गीतिचक्ररथोपांते दिक्पाला: संश्रयं ददु: ।
सर्वेषां चैव देवानां मन्त्रिणी द्वारत: कृत: ॥८७
विज्ञापना महादेव्या: कार्यसिद्धिं प्रयच्छति ।

राज्ञी विज्ञापना चेति प्रधानद्वारतः कृता ॥८८
यथा खलु फलप्राप्तिः सेवाकानां हि जायते ।
अन्यथा कथमेतेषां सामर्थ्यं ज्वलितौजसः ॥८९
अप्रधृष्यप्रभावायाः श्रीदेव्या उपसर्पणे ।
सा हि संगीतविद्येति श्रीदेव्याः अतिबल्लभा ॥९०
नातिलंघति च क्वापि तदुक्तं कार्यसिद्धिषु ।
श्रीदेव्याः शक्तिसाम्राज्ये सर्वकर्माणि मन्त्रिणी ॥९१

ये गदा-त्रिशूल–दर्भास्त्र और वज्र को धारण किए हैं। ये सब उस मन्त्रिनाथा का भक्तिभाव से संयुत होते हुए नित्य ही सेवन किया करते हैं ।८५। दुर्दुल्लु—विश्व के कंटक भंडासुरों का निहनन करने के वास्ते मन्त्रिनाथा के आश्रय के द्वारा ललिता आज्ञापन के उत्सुक रहा करते हैं ।८६। गीति चक्ररथ के उपान्त में दिक्पालों ने इनको संश्रय दिया था। समस्त देवों की मन्त्रिणी द्वार से को गयी थी ।८७। विज्ञापना यह महादेवी के कार्य की सिद्धि किया करती है । राज्ञी और विज्ञापना ये दो प्रधान द्वार पर की गयी हैं ।८८। जैसी भी फल की प्राप्ति होती है । अन्यथा इनकी क्या सामर्थ्य है । जो ज्वलित ओज वाली और अप्रधृष्य प्रभाव वाली श्री देवी के समीप में सर्पण किया जा सके । वह निश्चय ही संगीत विद्या है जो श्री देवी की अतिवल्लभा है ।८९-९०। कार्यों की सिद्धियों में कहीं पर भी उसके कथित का अतिलंघन नहीं करती हैं । श्रीदेवी के शक्ति के साम्राज्य में वह मन्त्रिणी ही सब कर्मों को किया करती है ।९१।

अकर्त्तुमन्यथा कर्तुं कर्तुं चैव प्रगल्भते ।
तस्मात्सर्वेऽपि दिक्पालाः श्रीदेव्या जय कांक्षिणः ।
तस्याः प्रधानभूतायाः सेवामेव वितन्वते ॥९२
इति श्रीललितादेव्याश्चक्रराजरथोत्तमे ।
पर्वस्थितानां देवीनां नामानि कथितान्यलम् ॥९३
भंडासुरस्य संहारे तस्या दिव्यायुधान्यपि ।
प्रोक्तानि गेयचक्रस्य पर्वदेव्याश्च कीर्तिताः ॥९४

इमानि सर्वदेवीनां नामान्याकर्णयंति ये ।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते स्युर्विजयिनो नराः ॥९५

जो भी कुछ करने का अथवा नहीं करने का है उस सभी को करने में प्रगल्भ होती हैं। कारण से सभी दिक्पाल श्री देवीकी ही जय की कांक्षा वाले रहा करते हैं। प्रधानभूता उसकी ही सेवा का विस्तार किया करते हैं।९२। यह श्री ललिता देवी के चक्रराज रथोत्तम में पर्वों में संस्थित देवियों के नाम वर्णित कर दिए गए हैं।९३। भंडासुर के संहार में उसके परम दिव्य आयुधों का भी वर्णन कर दिया है। गेय चक्र और पवभी देवी के वर्णित किए गए हैं। इन समस्त देवियों के नामों का जो भी कोई श्रवण किया करते हैं वे नर समस्त पापों से छुटकारा पाकर विजयी हो जाते हैं।९४-९५

किरिचक्ररथ देवता प्रकाशन

हयग्रीव उवाच—
किरिचक्र रथेन्द्रस्य पंचपर्वसमाश्रिताः ।
देवताश्च शृणु प्राज्ञ नाम यच्छृण्वतां जयः ॥१
प्रथमं पर्वविद्वाख्यं संप्राप्ता दंडनायिका ।
सा तत्र जगदुद्दंडकण्टकव्रातघस्मरी ॥२
नानाविधाभिर्ज्वालाभिर्नर्तयंती जयश्रियम् ॥३
उद्दण्डपोत्र निर्घातनिर्भिन्नोद्धतदानवा ।
दंष्ट्राबालमृगांकांशुविभावनविभावरी ॥४
प्रावृषेण्यपयोवाहव्यूहनीलवपुर्लता ।
किरिचक्ररथेंद्रस्य सालंकारायते सदा ।
पोत्रिणी पुत्रिताशेषविश्वावर्तकदंबिका ॥५
तस्यैव रथनाभस्य द्वितीयं पर्व संश्रिताः ।
जृंभिनी मोहिनी चैव स्तंभिनी तिस्र एव हि ।
उत्फुल्लदाडिमीप्रख्यं सर्वदानवमर्दना ॥६

मुसलं च हलं हालापात्रं मणिगणार्पितम् ।
ज्वलन्माणिक्यवलयैर्विभ्राणाः पाणिपल्लवैः ॥७

श्री हयग्रीव जी ने कहा—किरि चक्र रथेन्द्र के पाँच वर्षों में समाश्रित जो देवता हैं उनके नामों का भी श्रवण कीजिए। हे प्राज्ञ ! जिनके श्रवण करने वालों का जय ही हुआ करता है।१। प्रथम पर्व बिन्दु नामक है। जिसमें दंड नायिका सम्प्राप्त है। वहाँ पर वह जगत के उदंडों के समुदाय की विनाशिका है।२। वह नाना प्रकार की ज्वालाओं से जय श्री को नर्तन कराया करती है।३। उद्दन्ड पौत्र के निर्घात से जिसने उद्धत दानवों को निर्भिन्न कर दिया है। दंष्ट्रा से गल मृगाङ्काशु के विभावन करने वाली विभावरी है। वर्षा कालीन मेघों के समूह के समान नील वपु वाली लता है। वह किरि चक्र रथेन्द्र की वह सदा अलंकार के समान है। पोत्रिणी पुत्रिता के अशेष विश्वके आवर्त्त की कदम्बिका है।४-५। उसी रथनाभ के द्वितीय पर्व में संश्रय लेने वाली है। दम्भिनी-मोहिनी और स्तम्भिनी—ये तीन ही हैं। विकसित दाड़िमी के समान और सभी दानवों के मर्दन करने वाली हैं।६। ये अपने कर पल्लवों द्वारा जिनमें देदीप्यमान मणियों के वलय है—मुसल-हल और हाला पात्र मणिगणों से समर्पित धारण करने वाली हैं।७।

अतितीक्ष्णकरालाक्ष्यो ज्वालाभिर्दैत्यसैनिकान् ।
दहंत्य इव निःशंकं सेवंते सूकराननाम् ॥८
किरिचक्रथेंद्रस्य तृतीयं पर्व संश्रिताः ।
अंध्रिन्याद्याः पञ्च देव्यो देवीयंत्रकृतास्पदाः ॥६
कठोरेणाट्टहासेन भिदंत्यो भुवनत्रयम् ।
ज्वाला इव तु कल्पाग्नेरंगनावेषमाश्रिताः ॥१०
भंडासुरस्य सर्वेषां सैन्यानां रुधिरप्लुतिम् ।
लिलिक्षमाणा जिह्वाभिर्लेलिहानाभिरुज्ज्वलाः ॥११
सेवंते सततं दंडनाथामुद्दण्डविक्रमाम् ।
किरिचक्रथेन्द्रस्य चतुर्थं पर्व संश्रिताः ॥१२
ब्रह्माद्याः पञ्चमीवर्ज्या अष्टमीवर्जिता अपि ।

षडेव देव्यः षट्चक्रज्वलज्ज्वालाकलेवराः ॥१३
महता विक्रमौघेण पिबंत्य इव दानवान् ।
आज्ञया दंडनाथायास्तं प्रदेशमुपासते ॥१४

इनके नेत्र अत्यधिक तीक्ष्ण एवं कराल है। जिनकी ज्वालाओं से दैत्यों के सैनिकों को दग्धसी कर रही है और निःशंक होकर सूकरानना की सेना किया करती है ।८। ये किरिचक्र रथेन्द्र के तीसरे पर्व में समाश्रय लेने वाली हैं। अग्निनी आदि पाँच देवियाँ देवी के यन्त्र में अपना आस्पद करने वाली हैं ।९। इनका इतना कठोर अट्टहास होता है जिससे ये तीनों भुवनों का भेदन किया करती हैं। अङ्गना के वेष का आश्रय ग्रहण कर कल्पाग्नि की ज्वालाओं के ही तुल्य होती हैं ।१०। भण्डासुर की समस्त सेनाओं की रुधिर के प्लावन को चाटने की इच्छा करती हुईं लेलिहान ज्वालाओं की जिह्वाओं से उज्ज्वल ।११। ये सभी अतीव उद्दण्ड विक्रम वाली दण्डनाथा का निरन्तर सेवन किया करती हैं। किरिचक्र रथेन्द्र के चौथे पर्व में इनका संश्रय होता है ।१२। ब्राह्मी आदि पाँचवीं से रहित तथा आठवीं से रहित ये छै ही देवियां षट्चक्र की जलती हुई ज्वालाओं के कलेवर वाली हैं ।१३। महान विक्रम के समुदाय के द्वारा दानवों का पान सा करने वाली हैं। दण्डनाथा की ही आज्ञा से ये उसी प्रदेश की उपासना किया करती हैं ।१४।

तस्यैव पर्वणोऽधस्तात्त्वरिताः स्थानमाश्रिताः ।
यक्षिणी शंखिनी चैव लाकिनी हाकिनी तथा ॥१५
शाकिनी डाकिनी चैव तासामैक्यस्वरूपिणी ।
हाकिनी सप्तमीत्येताश्चंडदोर्दंडविक्रमाः ॥१६
पिबंत्य इव भूतानि पिबंत्य इव मेदिनीम् ।
त्वचं रक्तं तथा मांसं मेदोऽस्थि च विरोधिनाम् ॥१७
मज्जानमथ शुक्रं च पिबन्त्यो विकटाननाः ।
निष्ठुरैः सिंहनादैश्च पूरयंत्यो दिशो दश ॥१८
धातुनाथा इति प्रोक्ता अणिमाद्यष्टसिद्धिदाः ।
मोहने मारणे चैव स्तंभने ताडने तथा ॥१९

भक्षणे दुष्टदैत्यानामामूलं च निकृन्तने ।
पंडिताः खंडिताशेषविपदो भक्तिशालिषु ॥२०
धातुनाथा इति प्रोक्ताः सर्वधातुषु संस्थिताः ।
सप्तापि वारिधीनूर्मिमालासंचुम्बितांबरान् ॥२१

उसी पर्व के नीचे त्वरिता स्थान के समाश्रित हैं। यक्षिणी-शंखनी-लाकिन-हाकिनी ।१५। शाकिनी-डाकिनी—उनकी एकता के स्वरूप वाली हाकिनी सातवीं हैं—ये प्रचंड दोर्दण्डों के विक्रम वाली हैं।१६। ये समस्त भूतों को पान सा करती हैं तथा सम्पूर्ण मेदिनी का पान सा करती हुई हैं। त्वचा-रक्त-मांस-मेद और विरोधियों की अस्थियों को तथा मज्जा और शुक्र को विकट मुखों वाली पान सा करती हुई थीं। उनके अत्यधिक कठोर सिंहनाद थे जिनसे वे दशों दिशाओं को पूरित कर रही थीं।१७-१८। अणिमा आदि आठों सिद्धियों को प्रदान करने वाली वे धातुनाथा कही हैं। दुष्ट दैत्यों के मोहन-मारण-स्तम्भन-ताड़न भक्षण और आमूल निकृन्तन में परम पंडित और भक्ति शालियों के विषय में समस्त विपदाओं का खंडन करने वाली थीं।१९-२०। समस्त धातुओं में संस्थित वे धातुनाथा बतायी गयी हैं। अपनी तरङ्गों की मालाओं से अम्बर को चुम्बित करने वाले सातों सागरों में संस्थित थीं।२१।

क्षणार्धेनैव निष्पातुं निष्पन्नबहुसाहसाः ।
शकटाकारदन्ताश्च भयंकरविलोचनाः ॥२२
स्वस्वामिनीद्रोहकृतां स्वकीयसमयद्रुहाम् ।
वैदिकद्रोहणादेव द्रोहिणां वीरवैरिणाम् ॥२३
यज्ञद्रोहकृतां दुष्टदैत्यानां भक्षणे समाः ।
नित्यमेव च सेवन्ते पोत्रिणीं दंडनायिकाम् ॥२४
तस्यैव पर्वणः पार्श्वे द्वितीये दिव्यमन्दिरे ।
क्रोधिनी स्तम्भिनी ख्याते वर्तेते देवते उभे ॥२५
चामरे वीजयन्त्यौ च लोलकंकणदोर्लते ।
देवद्विषां चमूरक्तहालापानमहोद्धते ॥२६
सदा विघूर्णमानाक्ष्यौ सदा प्रहसितानने ।

अथ तस्य रथेंद्रस्य किरिचक्राश्रितस्य च ॥२७
पार्श्वद्वयकृतावासमायुधद्वंद्वमुत्तमम् ।
हलं च मुसलं चैव देवतारूपमास्थितम् ॥२८

इन सब समुद्रों को आधे ही क्षण में पान करने में इनका बहुत अधिक साहस निष्पन्न था। इनके दाँत शकट के समान आकार वाले थे और इनके मुख बहुत ही विकराल थे एवं परम भीषण लोचन थे।२२। ये अपनी स्वामिनी से द्रोह करने वाले और अपने समय के द्रोहियों के तथा वैदिक द्रोहण से द्रोही वीर वैरियों के एवं यज्ञों से द्रोह करने वाले परम दुष्ट दैत्यों के भक्षण करने में ये सब समान थीं। ये नित्य ही पोत्रिणी दण्ड नायिका का सेवन किया करती हैं।२३-२४। उसी पर्व के पार्श्व में द्वितीय दिव्य मन्दिर में क्रोधिनी और स्तम्भिनी प्रसिद्ध हैं और ये दो देवता वर्त्तमान रहती हैं।२५। ये दोनों चमरों को डुराया करती हैं जिससे इनकी दो भुजाएँ हिलती हैं जिनमें उनके कङ्कण भी हिलते रहा करते हैं। ये देवों के शत्रुओं की सेना के रक्त और हाला के पान करने में मदोद्धत हैं।२६। इनके नेत्र दित्य ही विघूर्णित हैं और इनके मुखों पर प्रहास रहा करता है। इसके अनन्तर रथेन्द्र के किरि के दोनों पार्श्वों में आवास करने वाला उत्तम आयुधों का द्वन्द्व–हल–मुसल देवता के रूप में समास्थित है।२७-२८।

स्वकीयमुकुटस्थाने स्वकीयायुधविग्रहम् ।
आबिभ्राणं जगद्द्वेषिघस्मरं विबुधैः स्मृतम् ॥२९
एतदायुधयुग्मेन ललिता दंडनायिका ।
खण्डयिष्यति संग्रामं विषंगं नाम दानहम् ॥३०
तस्यैव पर्वणो दण्डनाथाया अग्रसीमनि ।
वर्त्तमानो महाभीमः सिंहो नादैर्ध्वनन्नभः ॥३१
दंष्ट्राकटकटात्कारबधिरीकृतदिङ्मुखः ।
चंडोच्चंड इति ख्यातश्चतुर्हस्तस्त्रिलोचनः ॥३२
शूलखड्गप्रेतपाशान्दधानो दीप्तविग्रहः ।
सदा संसेवते देवीं पश्यन्नेव हि पोत्रिणीम् ॥३३
किरिचक्ररथेंद्रस्य षष्ठ पर्व समाश्रिताः ।

वार्त्ताल्याद्या अष्ट देव्यो दिक्ष्वष्टासूपविश्रुताः ॥३४

अष्टपर्वतनिष्पातघोरनिर्घातनिः स्वनाः ।

अष्टनागस्फुरद्भूषा अनष्टबलतेजसः ॥३५

अपने मुकुट के स्थान में स्वकीय आयुधों के विग्रह को धारण करते हुए जगत् के नाशक का देवगणों ने स्मरण किया था ।२९। इसको आयुधों के जोड़े से दण्ड नायिका ललिता विषङ्ग नामदानह संग्राम का खण्डन कर देगी ।३०। दण्डनाथा के उसी पर्व की अग्र सीमा में वर्त्तमान महान् भीम-सिंह वर्त्तमान है जो अपनी गर्जना से नभो मण्डल को ध्वनित कर रहा था ।३१। वह अपने दाँतों को कटकटा रहा था जिस कट कटाहटसे सब दिशाओं में बधिरता छा गयी थी यह चंडोच्चंड—इस नाम ने विख्यात था और यह हाथ का तथा तीन लोचनों वाला था ।३२। यह शूल-खंग-प्रेत और पाशों को धारण करने वाला तथा परम दीप्त विग्रह था । यह सदा ही पोत्रिणी की ओर ही देखता हुआ देवी की सेवा किया करता है ।३३। किरिचक्र रथेन्द्र के षष्ठ पर्व पर समाश्रय लेने वाली वार्त्ताली—आदि आठ देवियाँ हैं जो आठों दिशाओं मे उपविश्रुत हैं ।३४। ये आठ पर्वतों के निष्पात से परम घोर निर्घात के घोष वाली थीं । आठ नागों के स्फुरित भूषा से संयुत तथा न नष्ट होने वाले बल और तेज वाली थी ।३५।

प्रकृष्टदोष्प्रकांडोष्महुतदानवकोटयः ।

सेवंते ललितां देव्यो दंडनाथामहर्निशम् ॥३६

तासामाख्याश्च विख्याताः समाकर्णय कुम्भज ।

वार्ताली चैव वाराही सा वाराहमुखी परा ॥३७

अंधिनी रोधिनी चैव जृंभिणी चैव मोहिनी ।

स्तंभिनीति रिपुक्षोभस्तंभनोच्चाटनक्षमाः ॥३८

तासां च पर्वणो वामभागे सततसंस्थितिः ।

दंडनाथोपवाह्यस्तु कासरो धूसराकृतिः ॥३९

अर्धक्रोशायतः श्रृंगद्वितये क्रोशविग्रहः ।

खड्गवन्निष्ठुरैर्लोमजातैः संवृतविग्रहः ॥४०

कालदंडवदुच्चंडबालकांगभयंकरः ।

नीलांजनाचलप्रख्यो विकटोन्नतरुष्टभूः ॥४१
महानीलगिरिश्रेष्ठगरिष्ठस्कन्धमंडलः ।
प्रभूतोष्मलनिश्वासप्रसराकंपितांबुधिः ॥४२

परम प्रकृष्ट बाहुओं की प्रकांड ऊष्मा में करोड़ों दानव हुत हो रहे थे । ऐसी ये देवियाँ अहर्निश दण्डनाथा श्री ललिता देवी की सेवा किया करती हैं । उनकी आख्या तो परम विख्यात है । हे कुम्भज ! उसका आप श्रवण कीजिए । वार्त्ताली-वाराही–वाराह मुखी—अन्धिनी—जृम्भिणी—मोहिनी—स्तम्भिनी—ये हैं जो शत्रुओं के क्षोभ और स्तम्भन तथा उच्चाटन करने में परम समर्थ है ।३६-३८। इनकी संस्थिति पर्व के वाम भाग में निरन्तर रहा करती है । उस दंडनाथा का उप वाह्य कासर हैं जिसको धूसर आकृति हैं ।३९। यह आधे कोश के बराबर आयत है । इसके दो सींग है और एक कोश के बराबर विग्रह वाला है । इसके जो केश हैं वे खड्ग के समान कठोर हैं जिनसे इसका कलेवर ढका हुआ है ।४०। कालडंड के तुल्य उच्चंड बालों के कांड से बड़ा ही भयंकर है । यह नीले आनन के पर्वत के समान परम विकट और उन्नत रुष्ट भू वाला है ।४१। महानील गिरि के समान गरिष्ठ एवं श्रेष्ठ स्कन्धों के मंडल वाला है । प्रभूत ऊष्मा से युक्त निश्वास के प्रसार से सागर को भी प्रकम्पित करने वाला है ।४२।

घर्घरध्वनिना कालमहिषं विहसन्निव ।
वर्त्तते खुरविक्षिप्तपुष्कलावर्तवारिदः ॥४३
तस्यैव पर्वणोऽधस्ताच्चित्रस्थानकृतालयाः ।
इन्द्रादयोऽनेकभेदा दिशामष्टकदेवताः ॥४४
ललितायां कार्यसिद्धिं विज्ञापयितुमागताः ।
इन्द्रश्चाप्सरसश्चैव स चतुष्षष्टिकोटयः ॥४५
सिद्धाअग्निश्च साध्याश्च विश्वेदेवास्तथापरे ।
विश्वकर्मा मयश्चैव मातरश्च बलोन्नताः ॥४६
रुद्राश्च परिचाराश्च रुद्राश्चैव पिशाचकाः ।
क्रन्दंति रक्षसां नाथा राक्षसा बहवस्तथा ॥४७
मित्राश्च तत्र गन्धर्वाः सदा गानविशारदाः ।

विश्वावसुप्रभृतयो विख्यातास्तत्पुरोगमा: ।।४८

तथा भूतगणाश्चान्ये वरुणो वासव: परे ।

विद्याधरा: किन्नराश्च मारुतेश्वर एव च ।।४९

इसकी ध्वनि घर्घराहट कालरूपी महिष का भी उपहास सा कर रही थी। इसके खुरों के निक्षेप से पुष्कल आवर्त्त वारिद हो गये थे ।४३। उसके ही पर्व के नीचे की ओर चिश्रालयों में संस्थिति करने वाले इन्द्र आदि अनेक भेदों वाले दिशाओं के आठ देवता थे ।४४। ये सबललिता में कार्यों की सिद्धि के ही विज्ञापन करने के लिये वहाँ पर समागत हुए थे। इन्द्र और अप्सराएँ सब चौंसठ करोड़ थे ।४५। सिद्ध-अग्नि-साध्य-विश्वेदेवा—विश्वकर्मा-भय--बलोन्नत मातृगण--रुद्र--परिचार--रुद्र--पिशाच-राक्षसों के नाम तथा बहुत राक्षस क्रन्दन करते हैं ।४६-४७। वहाँ पर मित्र-गन्धर्व सदा ही गान करने में परायण थे। विश्वा वसु आदि सब जो विख्यात हैं उसके आगे गमन करने वाले थे ।४८। उसी भाँति से भूतगण—अन्य थे तथा वरुण और वासव—विद्याधर—किन्नरगण और मारुतेश्वर थे जो आगे-आगे गमन कर रहे थे ।४९।

तथा चित्ररथश्चैव रथकारककारका: ।

तुंबुरुर्नारदो यक्ष: सोमो यक्षेश्वरस्तथा ।।५०

देवैश्च भगवांस्तत्र गोविंद: कमलापति: ।

ईशानश्च च जगच्चक्रभक्षक: शूलभीषण: ।।५१

ब्रह्मा चवाश्विनीपुत्रो वैद्यविद्याविशारदौ ।

धन्वंतरिश्च भगवानथान्ये गणनायका: ।।५२

कटकाण्डगलद्दान संतर्पितमधुव्रता: ।

अनंतो वासुकिस्तक्ष: कर्कोट: पद्म एव च ।।५३

महापद्म: शंखपालो गुलिक: सुबलस्तथा ।

एते नागेश्वराश्चैव नागकोटिभिरावृता: ।।५४

एवंप्रकारा बहवो देवतास्तत्र जाग्रति ।

पूर्वादिदिग्गमारभ्य परित: कृतमंदिरा: ।।५५

तत्रैव देवताश्चक्रे चक्राकारा मरुद्दिशः ।
आश्रित्य किल वर्तंते तदधिष्ठातृदेवताः ॥५६

उसी भाँति से चित्ररथ—रथकारक—तुम्बरु—नारद—यज्ञ-सोम-यज्ञेश्वर—समस्त देवगणों के सहित कमला के स्वामी भगवान् गोविन्द—जगत् चक्र के भक्षण करने वाले भीषण शूलपाणि ईशान—ब्रह्मा-अश्विनी कुमार जो कि वैद्य के विशारद थे—भगवान् धन्वन्तरि और अन्य गणों के नायक भी पुरोगामी थे ।५०-५२। इनके कटस्थलों से जो मद गिर रहा था उस पर भ्रमर झूम रहे थे। अनन्त—वासुकि—तक्षक—कर्कोट—पद्म—महापद्म—शंखपाल—गुलिक—सुबल—ये सब नागेश्वर थे जो करोड़ों नागों से समावृत होते हुए पुरोगमन कर रहे थे ।५३-५४। इस प्रकार वाले बहुत—से देवगण जाग्रत हो रहे थे। और पूर्व आदि दिशाओं से समारम्भ करके चारों ओर अपना निवास स्थल बनाये हुए थे ।५५। वहीं पर देवताओं ने मरुत् दिशा को चक्राकार कर दिया था। और उस दिशा का समाश्रयण करके वे सब अधिष्ठान देवता हो रहे थे ।५६।

जृम्भिणी स्तंभिनी चैव मोहिनी तिस्र एव च ।
तस्यैव पर्वणः प्रांते किरिचक्रस्य भास्वतः ॥५७
कपालं च गदां बिभ्रदूर्ध्वकेशो महावपुः ।
पातालतलजंबालबहुलाकारकालिमा ॥५८
अट्टहासमहावज्रदीर्णब्रह्मांडमण्डलः ।
भिन्दन्डमरुकध्वानै रोदसीकन्दरोदरम् ॥५९
फूत्कारीत्रिपुरायुक्तं फणिपाशं करे वहन् ।
क्षेत्रपालः सदा भाति सेवमानः किटीश्वरीम् ॥६०
तस्यैव च समीपस्थस्तस्या वाहनकेसरी ।
यमारुह्य प्रववृते भंडासुरवधैषिणी ॥६१
प्रागुक्तमेव देवेशीवाहसिंहस्य लक्षणम् ।
तस्यैव पर्वणोऽधस्ताद्दण्डनाथसमत्विषः ॥६२
दंडिनीसदृशाशेषभूषणायुधमंडिताः ।
शम्याः क्रोडाननाश्चंद्ररेखोत्तंसितकुन्तलाः ॥६३

जृम्भिणी--स्तम्भिनी--मोहिनी ये तीनों ही उसी पर्व के प्रान्त में जो कि भासुर किरि चक्र रथ था, विद्यमान थे ।५७। अब क्षेत्र पाल के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—क्षेत्रपाल कपाल और गदा को करों में धारण किये हुए है—इसके केश ऊपर की ओर उठे हुए हैं तथा इसका वपु महान् है । पाताल तल में जो जम्बाल है उसके समान आकार वाली इसमें कालिमया है ।५८। इसका अट्टहास वज्र के ही तुल्य है जिससे पूर्ण ब्रह्मांड मंडल विदीर्ण हो जाता है । यह अपने डमरू के घोषों से रोदसी की कन्द-राओं के उदर को भेद रहा है ।५९। फूत्कार (फुसकार) करने वाली त्रिपुरा से युक्त नागों के पाश को कर में वहन कर रहा था । ऐसा क्षेत्रपाल किटीश्वरी की सेवा करता हुआ सदा ही शोभित होता है ।६०। उसके ही समीप में स्थित उसका वाहन केसरी था जिस पर समारोहण करके भंडासुर के वध की इच्छा वाली प्रवृत्त हुई थी ।६१। देवी के वाहन सिंह का लक्षण तो पूर्व में ही कह दिया गया है । उसी पर्व के नीचे दंडनाथा के समान ही कान्ति वाली सहस्रों अन्य देवियाँ तथा देवता थे ।६२। ये सभी दंडनाथा के ही तुल्य समस्त भूषणों और आयुधों से मंडित थे । ये शम्या-क्रोडानना-चन्द्ररेखा और उत्तंसित कुन्तला थीं ।६३।

हलं च मुसलं हस्ते घूर्णयंत्यो मुहुर्मुहुः ।
ललिताद्रोहिणां श्यामाद्रोहिणां स्वामिनीद्रुहाम् ॥६४
रक्तस्रोतोभिरुत्कूलैः पूरयंत्यः कपालकम् ।
निजभक्तद्रोहकृता मन्त्रमालाविभूषणाः ॥६५
स्वगोष्ठीसमयाक्षेपकारिणां मुण्डमंडलैः ।
अखण्डरक्तविच्छर्दैर्बिभ्रत्यो वक्षसि स्रजः ॥६६
सहस्र देवताः प्रोक्ताः सेवमानाः किटीश्वरीम् ॥६७
तासां नामानि सर्वासां दंडिन्याः कुम्भसंभव ।
सहस्रनामाध्याये तु वक्ष्यंते नाधुना पुनः ॥६८
अथ तासां देवतानां कोलास्यानां समीपतः ।
वाहनं कृष्णसारंगो दंडिन्याः समये स्थितः ॥६९
क्रोशार्धार्द्धायतः शृंगे तदर्धायितो मुखे ।
क्रोशप्रमाणपादश्च सदा चोद्धुतवालधिः ॥७०

इसके कर में हल और मुसल था तथा ये बार-बार घूर्णन कर रही थीं जो भी ललिता देवी के द्रोही—श्यामा के द्रोही और स्वामिनी के साथ द्रोह करने वाले थे उन्हीं को घूर रहीं थीं ।६४। उमड़े हुए रक्त के स्रोतों से कपालों को भर रहीं थीं । इनके भूषण अपने भक्तों के साथ द्रोह करने वालों की मन्त्रों की मालाएँ ही थे ।६५। अपनी गोष्ठी के समय पर आक्षेप करने वालों के मुख मंडलों अर्थात् मुंडों से जिनसे रक्त स्राव हो रहा है अपने उर:स्थल पर मालाएँ धारण कर रहीं थीं ।६६। ऐसे उस किटीश्वरी की सेवा करते हुए सहस्रों ही देवता बताये गये हैं ।६७। हे कुम्भ सम्भव ! दंडिनी की उनके सबके नाम सहस्र नामाध्याय में कहेंगे अत: अब फिर नहीं कहते हैं ।६८। कोलास्य उन देवताओं के समीप में ही कृष्ण सारंग वाहन दंडिनी के समय में स्थित था । यह आधे कोश तक तो आयत था शृंग में और उससे आधा आयत मुख में था और एक कोश के प्रमाण वाले पाद थे और उसकी पूँछ तो सदा ही उद्धत रहा करती थी ।६९-७०।

उदरे धवलच्छायो हुंकारेण महीयसा ।
हसन्मारुतवाहस्य हरिणस्य पराक्रमम् ॥७१

तस्यैव पर्वणो देशे वर्त्तते वाहनोत्तमम् ।
किरिचक्ररथेन्द्रस्य स्थितस्तत्रैव पर्वणि ॥७२

वर्तते मदिरासिंधुर्देवतारूपमास्थिता ।
माणिक्यगिरिवच्छोणं हस्ते पिशितपिंडकम् ॥७३

दधाना घूर्णमानाक्षी हेमांभोजस्रगावृता ।
मदशक्यया समाश्लिष्टा धृतरक्तसरोजया ॥७४

यदा यदा भंडदैत्य: संग्रामे संप्रवर्तते ।
युद्धस्वेदमनुप्राप्ता: शक्तय: स्यु: पिपासिता: ॥७५

तदा तदा सुरासिंधुरात्मानं बहुधा क्षिपन् ।
रणे खेदं देवतानामंजसापाकरिष्यति ॥७६

तदप्यद्भुतमे वर्षे भविष्यति न संशय: ।
तदा श्रोष्यसि संग्रामे कथ्यमानं मया मुदा ॥७७

महान् हुङ्कार से उसके उदर में धवल कान्ति होती थी। हंसते मारुत के वाहन हरिण का पराक्रम था।७१। उसी पर्व के भाग में वह उत्तम वाहन रहता है जिस पर्व में किरिचक्र रथेन्द्र की स्थिति थी।७२। वहाँ पर मदिरा का सिन्धु भी एक देवता के स्वरूप में समास्थित होकर विद्यमान था। जो माणिक्य के समान शोण था तथा उसके हाथ में माँस का एक ढेला।७३। उसकी आँखें विशेष घूर्णित थी सुनहरी कमल के सदृश रुधिर से समावृत थीं। रक्त सरोज धारण करने वाली के द्वारा यह की शक्ति से समाश्लिष्ट थी।७४। जब-जब भंड दैत्य संग्राम में प्रवृत्त होता है। युद्ध के स्वेद को अनुप्राप्त शक्तियाँ पिपासित हो जाती हैं।७५। उसी-उसी समय में सुरा का सागर बहुधा अपने आपको क्षिप्त करता हुआ देवों के रण के खेद को तुरन्त ही दूर कर देता है।७६। वह भी अद्भुतम वर्ष में होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उस समय में मेरे द्वारा कहा जाने वाला संग्राम में बड़े ही आनन्द से तुम श्रवण करोगे।७७।

तस्यैव पर्वणोऽधस्तादष्टदिक्ष्वध एव हि।
उपर्यपि कृतावासा हेतुकाद्या दश स्मृताः ॥७८

महांतो भैरवश्रेष्ठाः ख्याता विपुलविक्रमाः।
उद्दीप्तायुततेजोभिर्द्विवा दीपितभानवः ॥७९

कल्पांतकाले दंडिन्या आज्ञया विश्वघस्मराः।
अत्युदग्रप्रकृतयो रददष्टौष्ठसंपुटाः ॥८०

त्रिशूलाग्रविनिर्भिन्नमहावारिदमंडलाः।
हेतुकस्त्रिपुरारिश्च तृतीयश्चाग्निभैरवः ॥८१
यमजिह्वैकपादौ च तथा कालकरालकौ।
भीमरूपो हाटकेशस्तथैवाचलनामवान् ॥८२

एते दशैव विख्याता दशकोटिभटान्विताः।
तस्यैव किरिचक्रस्य वर्तंते पर्वसीमनि ॥८३

एवं हि दंडनाथायाः किरिचक्रस्य देवताः।
जृंभिण्याद्यचलेंद्रांताः प्रोक्तास्त्रैलोक्यपावनाः ॥८४

उस ही पर्व के नीचे आठों दिशाओं में नीचे ही ऊपर-ऊपर आवास करने वाले हेतुक आदि दश कहे गये हैं ।७८। विपुल विक्रम से समन्वित महान् भैरव ख्यात हैं सहस्रों तेजों से ये उद्दीप्त हैं जैसे दिन में दीपित सूर्य होवें ।७९। कल्प के अन्त समय में दंडिनी देवी की आज्ञा से दृप्त सम्पूर्ण विश्व के विनाशक जिनकी अत्यन्त उदग्र स्वभाव हैं और जो अपने दाँतों और होठों को पीसने वाले हैं ।८०। ये त्रिशूलों के अग्रभाग से महान् मेघों के मंडल को भी निर्भिन्न कर रहे हैं—एक हेतुक है—त्रिपुरारि है और तीसरा अग्नि भैरव है ।८१। यम जिह्वा और एक पाद हैं और काल के ही समान कराल हैं । भीम स्वरूप से युक्त तथा हाटकेश हैं और उसी अचल के नाम वाला है ।८२। ये केवल दश ही विख्यात हैं जो कि दश करोड़ भटों से संयुत हैं । उसी किरिचक्र के पर्व की सीमा में रहा करते हैं ।८३। इस रीति से उस दंडनाथा के किरिचक्र के देवता हैं । जृम्भिणी से आदि लेकर अचलेन्द्र के अन्त तक हैं—ऐसे कहे गये हैं जो त्रैलोक्य के पावन हैं ।८४।

तत्रत्यैर्देवतावृन्दैर्बहवस्तत्र संगरे ।
दानवा मारयिष्यंते पास्यंते रक्तवृष्टयः ।।८५
इत्थं बहुविधत्राणं पर्वस्थैर्देवतागणैः ।
किरिचक्रं दंडनेत्र्या रथरत्नं चचाल ह ।।८६
चक्रराजरथो यत्र तत्र गेयरथोत्तमः ।
यत्र गेयरथस्तत्र किरिचक्ररथोत्तमः ।।८७
एतद्रथत्रयं तत्र त्रैलोक्यमिव जंगमम् ।
शक्तिसेनासहस्रस्यांतश्चचार तदा शुभम् ।।८८
मेरुमन्दरविंध्यानां समवाय इवाभवत् ।
महाघोषः प्रववृते शक्तीनां सैन्यमंडले ।
चचाल वसुधा सर्वा तच्चक्ररवदारिता ।।८९
ललिता चक्रराजाख्या रथनाथस्य कीर्तिताः ।
षट्सारथय उद्दण्डपाशग्रहणकोविदाः ।।९०
यत्र गेयरथस्तत्र किरिचक्ररथोत्तमम् ।
इति देवी प्रथमतस्तथा त्रिपुरभैरवी ।।९१

संहारभैरवश्चान्यो रक्तयोगिनिवल्लभः ।
सारसः पंचमश्चैव चामुण्डा च तथा परा ॥६२

उस संग्राम में वहाँ के देवताओं के समूहों के द्वारा बहुत से दानव मारे जायेंगे और रुधिर की वृष्टि का पान किया जायगा ।८५। इस प्रकार से पर्व में स्थित देवताओं के गणों के द्वारा बहुत तरह का परित्राण होगा तथा दंड नेत्री किरिचक्र चला था ।८६। जहाँ पर चक्र राज रथ था वहाँ पर ही गेय रथोत्तम था और जहाँ जहाँ पर गेय रथोत्तम था वहाँ पर ही किरि-चक्र रथोत्तम था ।८७। इन प्रकार से वहाँ पर तीन रथ थे । ऐसा प्रतीत होता था मानों त्रैलोक्य ही जंगम है । इसके अन्दर सहस्रों शक्ति सेनाओं का शुभ संचार उस समय में हो रहा था ।८८। ऐसा मालूम होता था मानों मेरु-मन्दर और विन्ध्य पर्वतों का समवाय ही हो गया होवे । उस शक्तियों के सैन्य मंडल में उस समय में महान घोष प्रवृत्त हो गया था । उस समय में उन रथों के चक्रों की ध्वनि से सम्पूर्ण वसुधा हिल गयी थी ।८९। रथवाक की चक्रराज नाम वाली ललिता ही कीर्त्तित की गयी है । उनमें छै सारथि थे जो उद्दण्ड पाशों के ग्रहण में बड़े कोविद थे ।९०। जहाँ पर ही गेय रथ था वहाँ-वहाँ पर किरिचक्र उत्तम रथ था । प्रथम तो देवी थी फिर उसी भाँति त्रिपुर भैरवी थी ।९१। और अन्य संहार भैरव था जो रक्त योगिनी का वल्लभ था । सारस पाँचवाँ था तथा अपरा चामुण्डा थी ।९२।

एतासु देवतास्तत्र रथसारथयः स्मृताः ।
गेयचक्ररथेन्द्रस्य सारथिस्तु हसतिका ॥९३
किरिचक्ररथेंद्रस्य स्तंभिनी सारथिः स्मृता ।
दशयोजनमुन्नम्रो ललितारथपुङ्गवः ॥९४
सप्तयोजनमुच्छ्रायो गीतचक्ररथोत्तमः ।
षड्योजनसमुन्नम्रो किरिचक्ररथो मुने ॥९५
महामुक्तातपत्रं तु दशयोजनविस्तृतम् ।
वर्तते ललितेशान्या रथ एव न चान्यतः ॥९६
तदेव शक्तिसाम्राज्यसूचकं परिकीर्तितम् ।
सामान्यमातपत्रं तु रथद्वंद्वेऽपि वर्तते ॥९७

अथ सा ललितेशानी सर्वशक्तिमहेश्वरी ।
महासाम्राज्यपदवीमारूढा परमेश्वरी ॥६८
चचाल भंडदैत्यस्य क्षयसिद्ध्यभिकांक्षिणी ।
शब्दायंते दिशः सर्वाः कंपते च वसुन्धरा ॥६६

इनमें वहाँ पर देवता ही उन रथों के सारथि थे ऐसा बताया गया है। जो गेय रथचक्र था उसकी सारथि हसन्तिका थी ।६३। किरिचक्र रथेन्द्र की स्तम्भिनी सारथि कही है। ललिता का उत्तम श्रेष्ठ रथ दश योजन ऊँचा था ।६४। गेतचक्र हयोत्तम सात योजन उच्छ्राय वाला था। षट् योजन ऊँचा हे मुने ! किरिचक्र रथ था ।६५। महान मुक्ताओं से विनिर्मित आतपत्र (छत्र) दशयोजन विस्तार वाला था। ललितेशानी का रथ ही ऐसा था और अन्य का वहीं था ।६६। और वह ही शक्ति के साम्राज्य का सूचक कीर्त्तित किया गया है। सामान्य छत्र तो अन्य दोनों पर भी थे ।६७। वह ललिता ईशानी समस्त शक्तियों की महेश्वरी थी। वह परमेश्वरी महान साम्राज्य की पदवी पर समारूढ़ थी ।६८। वह चंड दैत्य के क्षय की सिद्धि की अभिकांक्षा वाली वहाँ से चली थी। सभी दिशाएँ उस समय में शब्दायमान हो रही थीं और वसुधा प्रकम्पित हो रही थी ।६६।

क्षुभ्यंति सर्वभूतानि ललितेशाविनिर्गमे ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥१००
विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वाः सुरगायकाः ।
तुम्बुरुर्नारदश्चैव साक्षादेव सरस्वती ॥१०१
जयमंगलपद्यानि पठंतः पटुगीतिभिः ।
हर्षसंफुल्लवदनाः स्फुरत्पुलकभूषणाः ।
मुहुर्जययेत्येवं स्तुवाना ललितेश्वरीम् ॥१०२
हर्षेणाढ्या मदोन्मत्ताः प्रनृत्यंतः पदे पदे ।
सप्तर्षयो वशिष्ठाद्या ऋग्यजुः सामरूपिभिः ॥१०३
अथर्वरूपैर्मंत्रैश्च वर्धयंतो जयश्रियम् ।
हविषेव महावह्निशिखामत्यंतपाविनीम् ॥१०४
आशीर्वादेन महता वर्धयामासुरुत्तमाः ।

तैः स्तूयमाना ललिता राजमाना रथोत्तमे ॥१०५
भंडासुरं विनिर्जेतुमुद्दण्डैः सह सैनिकैः ॥१०६

जिस समय ईशानी ललिता देवी का विनिर्गम हुआ था उस समय में सभी प्राणी महान क्षुब्ध हो गये थे। देवगण दुन्दुभियाँ बजाने लगे थे तथा पुष्पों की वर्षा कर रहे थे।१००। विश्वावसु प्रभृति गन्धर्वगण जो सुरों के यहाँ गायक थे—तुम्बरु और नारद तथा साक्षात् सरस्वती देवी सब विजय के मंगल पद्यों का बहुत सुन्दर गीतों में पाठ कर रहे थे। सबके हर्ष से मुख खिले हुए थे तथा रोमाञ्चों के भूषण स्फुरित हो रहे थे। सभी बारम्बार जय हो–जय हो–इस प्रकार से ललितेश्वरी का स्तवन कर रहे थे।१०१-१०२। सभी कदम कदम पर हर्ष से युक्त और मद से उन्मत्त हो रहे थे तथा नृत्य कर रहे थे। सप्तर्षिगण जिनमें वसिष्ठ आदि महा मुनिगण थे वे ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद और अथर्ववेद के मन्त्रों से जय श्री का वर्णन कर रहे थे। जिस तरह से हवि से महा वह्नि की शिखा अत्यन्त पाविनी होती है वैसे ही ये सभी उत्तम ऋषिगण महान आशीर्वाद से वर्धन कर रहे थे। उनके द्वारा इस प्रकार से स्तवन की गयी ललिता उस उत्तम रथ में विराजमान हो रही थीं। वह देवी परम उद्दण्ड सैनिकों के साथ भंडासुर पर विजय प्राप्त करने को रवाना हुई थी।१०३-१०६।

—×—

भंडासुर अहंकार वर्णन

आकर्ण्य ललितादेव्या यात्रानिगमनिस्वनम् ।
महांतं क्षोभमायाता भंडासुरपुरालयाः ॥१
यत्र चास्ति दुराशस्य भंडदैत्यस्य दुर्धियः ।
महेन्द्रपर्वतोपांते महार्णवतटे पुरम् ॥२
तत्तु शून्यकनाम्नैव विख्यातं भुवनत्रये ।
विषंगाग्रजदैत्यस्य सदावासः किलाभवत् ॥३
तस्मिन्नेव पुरे तस्य शतयोजनविस्तरे ।
वित्रेसुरसुराः सर्वे श्रीदेव्यागमसंभ्रमात् ॥४
शतयोजनविस्तीर्णं तत्सर्वं पुरमासुरम् ।
धूमैरिवावृतमभूदुत्पातजनितैर्मुहुः ॥५

अकाल एव निर्भिन्ना भित्तयो दैत्यपत्तने ।
घूर्णमाना पतन्ति स्म महोल्का गगनस्थलात् ॥६
उत्पातानां प्राथमिको भूकंपः पर्यवर्तत ।
मही जज्वाल सकला तत्र शून्यकपत्तने ॥७

श्री ललिता देवी की यात्रा के निगम के घोष का श्रवण करके भंडासुर के पुर में निवास करने वाले बड़े भारी क्षोभ को प्राप्त होगये थे ।१। जहाँ पर दुराश और दुष्ट मति वाले भंड का नगर है वह महेन्द्र पर्वत के उपान्त में और महार्णव के तट पर है ।२। वह तो शून्यक के नाम से ही तीनों भुवनों में विख्यात है । वहाँ पर त्रिषंगाग्रज दैत्य का सदा ही आवास हुआ था ।३। सौ योजन के विस्तार वाले उसके उसी पुर में विश्वेसुर सुर सब श्री देवी के आगम के संभ्रम से सौ योजन विस्तीर्ण वह सम्पूर्ण असुरों का पुर बार-बार उत्पातों से समुत्पन्न धूमों से आवृत के ही समान हो गया था ।४-५। अकाल में ही उस दैत्य के नगर में भित्तियाँ निर्मित होगयी थीं । गगन स्थल से घूर्णमान महोल्का गिरा करते थे ।६। उत्पातों का सबसे प्रथम होने वाला भूकम्प हुआ था । वहाँ पर उस शून्यक पत्तन में सम्पूर्ण भूमि ज्वलित हो गयी थी ।७।

अकाल एव हृत्कंपं भेजुर्दैत्यपुरौकसः ।
ध्वजाग्रवर्तिनः कंकगृध्राश्चैव बकाः खगाः ॥८
आदित्यमंडले दृष्ट्वा दृष्ट्वा चक्रुरुच्चकैः ।
क्रव्यादा बहवस्तत्र लोचनैर्नावलोकिता ॥९
मुहुराकाशवाणीभिः परुषाभिर्बभाषिरे ।
सर्वतो दिक्षु दृश्यंते केतवस्तु मलीमसाः ॥१०
धूमायमानाः प्रक्षोभजनका दैत्यरक्षसाम् ।
दैत्यस्त्रीणां च विभ्रष्टा अकाले भूषणस्रजः ॥११
हाहेति दूरं क्रन्दंत्यः पर्यश्रु समरोदिषुः ।
दर्पणानां वर्मणां च ध्वजानां खड्गसंपदाम् ॥१२
मणीनामंबराणां च मालिन्यमभवन्मुहुः ।
सौधेषु चन्द्रशालासु केलिवेश्मसु सर्वतः ॥१३

अट्टालकेषु गोष्ठेषु विपणेषु सभासु च ।
चतुष्किकास्वलिंदेषु प्रग्रीवेषु वलेषु च ॥१४

उस दैत्य के पुर में निवास करने वाले लोग अकाल में ही हृदय के कम्प से संयत होगये थे । ध्वजाओं के आगे रहने वाले कंक-गृध्र-बक और पक्षी आदित्य मंडल में देख-देखकर बड़े ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने लगे । वहाँ पर बहुत से (क्रव्याद राक्षस) गण थे जो नेत्रों के द्वारा दिखलाई नहीं दिये गये थे ।८-९। बार-बार आकाश वाणियों के द्वारा बोलते थे और सभी ओर दिशाओं में केतु बहुत ही मलिन दिखलाई दे रहे थे ।१०। वे सब धूमायमान हो रहे थे और दैत्यों तथा राक्षसों के हृदयों में बड़े भारी क्षोभ को उत्पन्न करने वाले थे । और असमय में ही दैत्यों की स्त्रियों के भूषण और मालाऐं भ्रष्ट होकर गिर रहे थे ।११। हा-हा—ध्वनि करके अश्रुपात करती हुई रुदन की ध्वनि में सब रो रहीं थीं । वहाँ पर दर्पण-वर्म-ध्वजा-खंग और सम्पदाऐं एवं मणि तथा वस्त्रों में बार-बार मलिनता हो गयी थी । सौधों में-नन्द्य शालाओं में और सभी ओर केलि करने के गृहों में महान् भीषण घोष सुनाई दिया करता था ।१२-१३। अट्टालिकाओं में—गोष्ठों में—विपणों में और सभा भवनों में—चतुष्किकाओं में-अलिन्दों में-प्रग्रीवों में और वलों में सर्वत्र महान् अशुभ एवं कठोर घोष सुनाई देता था ।१४।

सर्वतोभद्रवासेषु नन्द्यावर्तेषु वेश्मसु ।
विच्छ दकेषु संक्षुब्धेष्ववरोधनपालिषु ।
स्वस्तिकेषु च सर्वेषु गर्भागारपुटेषु च ॥१५

गोपुरेषु कपाटेषु वलभीनां च सीमसु ।
वातायनेषु कक्ष्यासु धिष्ण्येषु च खलेषु च ॥१६
सर्वत्र दैत्यनगरवासिभिर्जनमंडलैः ।
अश्रूयन्त महाघोषाः परुषा भूतभाषिताः ॥१७
शिथिली सर्वतो जाता घोरपर्णा भयानका ।
करटैः कटुकालापैरवलोकि दिवाकरः ।
आराविषु करोटीनां कोटयश्चापतन्भुवि ॥१८

अपतन्वेदिमध्येषु बिंदवः शोणितांभसाम् ।
केशौघकाश्च निष्पेतुः सर्वतो धूमधूसराः ॥१६
भौमांतरिक्षदिव्यानामुत्पातानामिति व्रजम ।
अवलोक्य भृशं त्रस्ताः सर्वे नगरवासिनः ।
निवेदयामासुरमी भंडाय प्रथितौजसे ॥२०
स च भंडः प्रचंडोत्थैस्तैरुत्पातकदंबकैः ।
असंजातधृतिभ्रंशो मन्त्रस्थानमुपागमत् ॥२१

सर्वतोभद्रवासों में—नन्द्यावर्त्तों—घरों में—विच्छन्दकों में और अवरोधन पालियों ये सर्वत्र विक्षोभ हो रहा था । स्वस्तिकों में और समस्त गर्भागार पुरों में—गो पुरों में—कपाटों में और बलभियों की सीमाओं में–वातायनों में—कक्ष्याओं में और खलों में-सभी जगह दैत्यों के नगर में निवासी जनों के मण्डलों के द्वारा भूतों द्वारा कहे हुए परम कठोर महान् घोष सुनाई दे रहे थे ।१५-१७। शिथिली भूत होते हुए घोरवर्ण और भयानक हो गये थे तथा कटु आलाप वाले करटों के द्वारा दिवाकर देखा गया था । आरावियों में करोटियों की कोटियाँ भूमि में गिर गई थी ।१८। वेदियों के मध्य में शोणित मिश्रित जल की बिन्दुऐं गिर रहीं थीं और केशौधक सभी ओर धूम से धूसर होकर गिर गये थे ।१९। भूमि में होने वाले–अन्तरिक्ष में और दिवलोक में होने वाले उत्पातों के समुदायों को देखकर सभी नगर के निवासीजन अत्यधिक भयभीत हो गये थे । इन सभी ने परम प्रसिद्ध ओज वाले भण्डासुर से इस दृश्यमान भीषणता के विषय में निवेदन किया था ।२०। और वह भण्डासुर को इन परम प्रचण्ड उत्पातों के समुदायों से भी धीरज का भ्रंश नहीं हुआ था और वह मन्त्र स्थान को सम्प्राप्त हो गया था ।२१।

मेरोरिव वपुर्भेदं बहुरत्नविचित्रितम् ।
अध्यासामास दैत्येंद्रः सिंहासनमनुत्तमम् ॥२२
स्फुरन्मुकुटलग्नानां रत्नानां किरणैर्घनैः ।
दीपयन्नखिलाशान्तानद्य तद्दानवेश्वरः ॥२३
एकयोजनविस्तारे महत्यास्थानमंडपे ।
तुंगसिंहासनस्थं तं सिषेवाते तदानुजौ ॥२४

विशुकश्च विषंगश्च महाबलपराक्रमौ ।
त्रैलोक्यकंटकीभूतभुजदंडभयंकरौ ॥२५
अग्रजस्य सदंवाज्ञामविलंघ्य मुहुर्मुहुः ।
त्रैलोक्यविजये लब्धं वर्धयंतौ महद्यशः ॥२६
न तेन शिरसा तस्य मृद्नंतौ पादपीठिकाम् ।
कृतांजलिप्रणामौ च समुपाविशतां भुवि ॥२७
अथास्थाने स्थिते तस्मिन्नमरद्वेषिणां वरे ।
सर्वे सामंतदैत्येन्द्रास्तं द्रष्टुं समुपागताः ॥२८

वहाँ पर मेरु पर्वत के समान वपु वाले तथा बहुत से रत्नों से चित्रित अत्युत्तम सिंहासन पर दैत्येन्द्र संस्थित हो गया था ।२२। वह दानवेश्वर स्फुरित मुकुटों में लगे हुए रत्नों की किरणों से सब दिशाओं को दीपित करता हुआ वहाँ पर समवस्थित हुआ था ।२३। उस समय में उसके दो अनुजों के द्वारा वह सेवित हुआ था । वह आस्थान मण्डप महान् था तथा एक योजन के विस्तार से युक्त था । वहाँ पर एक बहुत ही ऊँचा सिंहासन था जिस पर यह दानवेन्द्र विराज मान हुआ था ।२४। विशुक्र और विषंग ये दोनों इसके छोटे भाई बड़े ही अधिक बल और पराक्रम वाले थे और ये दोनों तीनों लोकों के लिये कण्डक के ही समान भुजदण्ड वाले तथा भयङ्कर थे ।२५। ये दोनों ही अपने बड़े भाई की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया करते थे और उन्होंने त्रैलोक्य के विजय करने में महान् यश प्राप्त किया था ।२६। उन्होंने अपने शिर को झुकाकर उसकी पाद पीठिका को प्रणाम किया था और अपने दोनों करों को जोड़कर ये भूमि में बैठ गये थे ।२७। इसके अनन्तर जब वह सुरों का महान् शत्रु उस आस्थान मण्डप में समवस्थित हो गया था तो उसका दर्शन करने के लिए उस समय में समस्त सामन्त दैत्यों के साथ वहाँ पर समुपस्थित हो गये थे ।२८।

तेषामेकैकसैन्यानां गणना न हि विद्यते ।
स्वं स्वं नाम समुच्चार्य प्रणेमुर्भंडकेश्वरम् ॥२९
स च तानसुरान्सर्वानतिधीरकनीनकैः ।
संभावयन्समालोकैः कियंतं चित्क्षणं स्थितः ॥३०

अवोचत विशुक्रस्तमग्रजं दानवेश्वरम् ।
मथ्यमानमहासिंधुसमानार्गलनिस्वनः ॥३१
देव त्वदीयदोर्दंडविध्वस्तबलविक्रमाः ।
पापिनः पामराचारा दुरात्मानः सुराधमाः ॥३२
शरण्यमन्यतः क्वापि नाप्नुवंतो विषादिनः ।
ज्वलज्ज्वालाकुले वह्नौ पतित्वा नाशमागताः ॥३३
तस्माद्देवात्समुत्पन्ना काचित्स्त्री बलगर्विता ।
स्वयमेव किलाश्रावक्षुस्तां देवा वासवादयः ॥३४
तैः पुनः प्रबलोत्साहैः प्रोत्साहितपराक्रमाः ।
बहुस्त्रीपरिवाराश्च विविधायुधमंडिताः ॥३५

उन एक-एक की इतनी अधिक सेना थी जिसकी कोई गणना नहीं है। उनमें सबने अपने-अपने नाम का उच्चारण करके उस भंडकेश्वर के लिये प्रणिपात किया था।२६। उस दैत्येश्वर ने अत्यन्त धैर्ययुक्त नेत्रों से उन समस्त असुरों का समादर करते हुए कुछ क्षण तक चुप वह शान्त रहा था। फिर अग्रज दाननेश्वरों से विशुक्र बोला था—उस समय में उसका स्वर मथ्यमान सिन्धु के समान था।३०-३१। हे देव ! आपकी भुजाओं से जिनका बल और विक्रम विध्वस्त हो गया है वे पापी, पामर आचरण वाले दुष्ट आत्मा अधम सुरगण विषाद युक्त होकर अन्य कहीं पर भी शरण को प्राप्त नहीं हुए थे। तथा जलती हुई ज्वालाओं से समाकुल वह्नि में गिर कर विनाश को प्राप्त हो गये थे।३२-३३। उस देव से समुत्पन्न कोई स्त्री है जो अपने बल के अत्यधिक गर्व वाली है। वासव आदिक समस्त देवगण स्वयं ही उसकी शरण में गये हैं।३४। उन्हीं के द्वारा जिन को परम प्रबल उत्साह हो रहा है उनके पराक्रम को प्रोत्साहन दिया है। उसके साथ बहुत सी स्त्रियों के परिवार भी विद्यमान हैं और वे सब अनेक प्रकार के आयुधों से भूषित हैं।३५।

अस्माञ्जेतुं किलायाति हा कष्टं विधिवैशसम् ।
अबलानां समूहश्चेद्बलिनोऽस्मान्विजेष्यते ॥३६
तर्हि पल्लवभंगेन पाषाणस्य विदारणम् ।
ऊह्यमानमिदं हंतुं परिहासाय कल्प्यते ॥३७

विडंबना न किमसौ लज्जाकरमिदं न किम् ।
अस्मत्सैनिकनासीरभटेभ्योऽपि भवेद्भयम् ॥३८

कातरत्वं समापन्नाः शक्राद्यास्त्रिदिवौकसः ।
ब्रह्मादयश्च निर्विण्णविग्रहा मद्बलायुधैः ॥३९

विष्णोश्च का कथैवास्ते विग्रस्तः स महेश्वरः ।
अन्येषामिह का वार्ता दिक्पालास्ते पलायिताः ॥४०

अस्माकमिषुभिस्तीक्ष्णैरदृश्यैरंगपातिभिः ।
सर्वत्र विद्धवर्माणो दुर्मदा विबुधाः कृताः ॥४१

तादृशानामपि महापराक्रमभुजोष्मणाम् ।
अस्माकं विजयायाद्य स्त्री काचिदभिधावति ॥४२

वे सब हम लोगों पर विजय प्राप्त करने के लिये आ रही हैं। हां ! बड़े ही कष्टका विषय है। यह क्या विधाता का चेष्टित है। यदि यह अबलाओं का समुदाय हमको जीत लेगा।३६। तो फिर पत्तों के भंग से पाषाण का ही विदारण हो जायगा। जप इस हेतु पर विचार किया जाता है तो परिहास सा ही होता है।३७। क्या यह विडम्बना मात्र नहीं है और क्या यह लज्जा उत्पन्न करने वाली बात नहीं है ? जो हमारे सैनिकों की सेना से भी भय को प्राप्त होते हैं।३८। वे शक्र आदि देवगण कातरता को प्राप्त हुए हैं। हमारी सेना की आयुध शक्ति से ब्रह्मादिक भी निर्विण्ण विग्रह वाले होते हैं।३९। विष्णु के विषय में तो कहा ही क्या जावे साक्षात् महेश्वर भी भयभीत है। अन्यों की तो बात ही क्या है सब दिक्पाल भी भाग गये हैं। ।४०। हमारे परमाधिक तीक्ष्ण बाणों से जो अदृश्य हैं और अंग में गिरने वाले हैं सभी जगह वर्मों को भेदने वाले हैं ऐसे सब देवों को दुर्मद कर दिया है।४१। हम ऐसे हैं जिनके भुजों में महापराक्रम की ऊष्मा है उनके ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए इस समय में कोई स्त्री अभिधावन कर रही है।४२।

यद्यपि स्त्री तथाप्येषा नावमान्या कदाचन ।
अल्पोऽपि रिपुरात्मज्ञैर्नावमान्यो जिगीषुभिः ॥४३

तस्मात्तदुत्सारणार्थं प्रेष्यणीयास्तु किङ्कराः ।
सकचग्रहमाकृष्य सानेतव्या मदोद्धता ॥४४

देव त्वदीय शुद्धांतर्वर्तितीनां मृगीदृशाम् ।
चिरेण चेटिकाभावं सा दुष्टा संश्रयिष्यति ॥४५
एकैकस्माद्भटादस्मात्सैन्येषु परिपंथिनः ।
शङ्कते खलु वित्रस्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४६
अन्यद्देवस्य चित्तं तु प्रमाणमिति दानव ।
निवेद्य भण्डदैत्यस्य क्रोधं तस्य व्यवीवृधत् ॥४७
विषङ्गस्तु महासत्त्वो विचारज्ञो विचक्षणः ।
इदमाह महादैत्यमग्रजन्मानमुद्धतम् ॥४७
देव त्वमेव जानासि सर्वं कार्यमरिन्दम ।
न नु ते क्वापि वक्तव्यं नीतिवर्त्मनि वर्तते ॥४६

यद्यपि वह स्त्री है तो भी उसका अपमान कभी भी नहीं करना चाहिए। जो आत्मज्ञानी हैं उनके द्वारा छोटा भी शत्रु जीतने की इच्छा वालों के द्वारा कभी भी अपमानित नहीं होना चाहिए।४३। इसलिए उसके उत्सारण के वास्ते किङ्कर अवश्य ही भेज देने चाहिए कि वे उस मद से उद्धता स्त्री के शिर के केशों को पकड़ कर उसे यहाँ ले आवें।४४। हे देव! आपके यहाँ अन्दर अवरोध में रहने वाली जो हरिण के समान नेत्रों वाली सुन्दरियाँ हैं उनकी दासी बनकर बहुत समय तक वह दुष्टा स्त्री उनको सेवा किया करेगी।४५। हमारे एक-एक योद्धा से ही परिपन्थी की सेनाओं में त्रैलोक्य विशेष रूपसे त्रस्त होकर सम्पूर्ण चराचर शङ्कित होता है।४६। हे दानव! अन्य तो आपका चित्त ही प्रमाण है। ऐसा निवेदन करके उस भंडासुर का क्रोध और अधिक बढ़ा दिया था।४७। महान् सत्व वाला जो विषंग वह विचक्षण और विचारों का ज्ञाता था। वह अपने बड़े भाई से यह बोला था जो कि उद्धत दैत्य था।४८। हे देव! आप तो स्वयं शत्रुओं के दमन करने वाले हैं आप स्वयं ही सब कार्य को जानते हैं। आपको किसी को भी कुछ भी नहीं बताना चाहिए क्योंकि आप नीति के मार्ग में रहा करते हैं।४९।

सर्वं विचार्य कर्तव्यं विचारः परमा गतिः ।
अविचारेण चेत्कर्म समूलमवकृन्तति ॥५०

परस्य कटके चाराः [illegible]षणीयाः प्रयत्नतः ।
तेषां बलाबलं ज्ञेयं जयसंसिद्धिमिच्छता ॥५१
चारचक्षुर्दृढप्रज्ञः सदाशंकितमानसः ।
अशंकिताकारवांश्च गुप्तमन्त्रः स्वमंत्रिषु ॥५२
षडुपायान्प्रयुञ्जानः सर्वत्राभ्यर्हिते पदे ।
विजयं लभते राजा जाल्मो मक्षु विनश्यति ॥५३
अविमृश्यैव यः कश्चिदारम्भः स विनाशकृत् ।
विमृश्य तु कृतं कर्म विशेज्जयदायकम् ॥५४
तिर्यगित्यपि नारीति क्षुद्रा चेत्यपि राजभिः ।
नावज्ञा वैरिणां कार्या शक्तेः सर्वत्र सम्भवः ॥५५
स्तंभोत्पन्नेन केनापि नरतिर्यग्वपुर्भृता ।
भूतेन सर्वभूतानां हिरण्यकशिपुर्हतः ॥५६

जो कुछ भी करता है वह सब विचार करके ही करना चाहिए क्योंकि भली भाँति विचार का करना ही परम गति है । बिना भली भाँति से विचार के जो भी कुछ किया जाता है वह मूल के सहित ही सम्पूर्ण विनष्ट हो जाया करता है ।५०। शत्रु के कटक में दूत प्रयत्न पूर्वक भेजने चाहिए । अपनी विजय की सिद्धि की इच्छा रखने वाले को चाहिए कि शत्रु के बल और अबल का पहिले ज्ञान प्राप्त कर लेवे ।५१। जो दूतों के द्वारा ही देखने वाला है—जिसकी प्रतिज्ञा सुदृढ़ है—जो सदा ही शङ्कित मन वाला है—जो अशङ्कित आकार वाला है—जो अपने मन्त्रियों में गुप्त मन्त्रणा वाला होता है । ये छै उपाय हैं इनका प्रयोग करने वाला जो सदा अभ्यर्हित पद पर स्थित रहता है वही राजा विजय का लाभ प्राप्त किया करता है । जो जाल्म होता है उसका शीघ्र विनाश हो जाया करता है ।५२-५३। कोई भी कार्य का आरम्भ बिना आगा-पीछा सोचे ही कर दिया जाया करता है वह विनाश करने वाला ही हुआ करता है । जिसका भली भाँति विचार करके पीछे जो कर्म किया गया है वह विशेष रूप से जय देने वाला ही हुआ करता है ।५४। यह तिर्यग् है—यह नारी है अथवा यह क्षुद्रा है—इन बातों से भी राजाओं को कभी भी बैरियों की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए क्योंकि शक्ति तो ऐसी विलक्षण है कि वह सभी जगह हो सकती है । देखिये, ऐतिहासिक

घटना विद्यमान है—खम्भे से समुत्पन्न-नर और तिर्यग् (पशु) का वपु धारण करने वाले समस्त प्राणियों का भूत नरसिंह ने हिरण्यकशिपु जैसे महान् बलवान् को मार डाला था।५५-५६।

पुरा हि चंडिका नाम नारी मायाविजृंभिणि ।
निशुम्भशुंभौ महिषं व्यापादितवती रणे ॥५७
तत्प्रसंगेन बहवस्तया दैत्या विनाशिताः ।
अतो वदामि नावज्ञा स्त्रीमात्रे क्रियतां क्वचित् ॥५८
शक्तिरेव हि सर्वत्र कारणं विजयश्रियः ।
शक्तेराधारतां प्राप्तैः स्त्रीपुंलिंगैर्न नो भयम् ॥५९
शक्तिस्तु सर्वतो भाति संसारस्य स्वभावतः ।
तर्हि तस्या दुराशायाः प्रवृत्तिर्ज्ञायतां त्वया ॥६०
केयं कस्मात्समुत्पन्ना किमाचारा किमाश्रया ।
किंबला किंसहाया वा देव तत्प्रविचार्यताम् ॥६१
इत्युक्तः स विषंगेण को विचारो महौजसाम् ।
अस्मद्बले महासत्त्वा अक्षौहिण्यधिपाः शतम् ॥६२
पातुं क्षमास्ते जलधीनलं दग्धुं त्रिविष्टपम् ।
अरे पापसमाचार किं वृथा शङ्कसे स्त्रियः ॥६३

प्राचीन समय में भी चण्डिका नाम वाली एक नारी ही तो थी जिसने रण में निशुम्भ-शुम्भ और महिष को मार डाला था।५७। उसी के प्रसंग से उसने बहुत से दैत्यों का विनाश कर दिया था। इसी कारण से मैं यही बतलाता हूँ कि यह समझ करके केवल स्त्री ही तो है कभी भी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए।५८। शक्ति ही सर्वत्र विजय की श्री का कारण हुआ करती है। शक्ति के आधार को प्राप्त हैं उन स्त्री और पुरुषों से हम को भय नहीं है।५९। इस संसार की स्वभाव से ही शक्ति ही सर्व ओर विभात हुआ करती है। सो उस बुरे आशय वाली की क्या प्रवृत्ति है—आप को समझ लेना चाहिए।६०। हे देव ! आपको इन सभी बातों का विचार कर लेना चाहिए कि यह कौन है—किससे यह समुत्पन्न हुई है—इसके आचार क्या हैं—इसका आश्रय क्या है—इसका बल कैसा और कितना है—इसकी सहायता

करने वाले कौन-कौन हैं ।६६। उस विषंग छोटे भाई के द्वारा जब इस रीति से भंडासुर से कहा गया था तो उसने कहा था कि जो महान् ओज वाले हैं उनके लिए विचार का करने की क्या आवश्यकता है । हमारी सेना में महान् सत्वधारी हैं और सैकड़ों तो अक्षौहिणी सेना के अधिप हैं । वे इतने समर्थ हैं कि जलधि के जल का भी पान कर सकते हैं और स्वर्ग को भी दग्ध कर सकते हैं । अरे ! पापसमाचार ! व्यर्थ ही स्त्रियों के विषय में तू क्या ऐसी शङ्का कर रहा है ।६२-६३।

तत्सर्वं हि मया पूर्वं चारद्वारावलोकितम् ।
अग्रे समुदिता काचिल्ललितानामधारिणी ॥६४
यथार्थनामवत्येषा पुष्पवत्पेशलाकृतिः ।
न सत्त्वं न च वीर्यं वा न संग्रामेषु वा गतिः ॥६५
सा चाविचारनिवहा किंतु मायापरायणा ।
तत्सत्त्वेनाविद्यमानं स्त्रीकदम्बकमात्मनः ॥६६
उत्पादितवती किं ते न चैवं तु विचेष्टते ।
अथ वा भवदुक्तेन न्यायेनास्तु महद्बलम् ॥६७
त्रैलोक्यलंघिमहिमा भण्डः केन विजीयते ॥६८
इदानीमपि मद्बाहुबलसंमर्दमूर्च्छिताः ।
श्वसितुं चापि पटवो न कदाचन नाकिनः ॥६९
केचित्पातालगर्भेषु केचिदम्बुधिवारिषु ।
केचिद्दिगंतकोणेषु केचित्कुञ्जेषु भूभृताम् ॥७०

यह सब तो मैंने पहिले ही दूतों के द्वारा देख लिया है । इसके आगे कोई ललिता नाम वाली स्त्री समुदित हुई है ।६४। यह यथार्थ नाम वाली है अर्थात् जो भी इसके नाम का अर्थ होता है वैसी ही है । पुष्प के समान तो इसका परम कोमल शरीर है । न तो उसमें कोई सत्व है और न वीर्य-पराक्रम ही । संग्रामों में ऐसी स्त्री की क्या गति हो सकती है ।६५। और वह तो अविचारों का समुदाय ही है किन्तु माया फैलाने में अवश्य ही वह परायणा है । उसके सत्त्व से ही उसका अपना स्त्रियों का समुदाय अविद्य-मान है ।६६। उनसे उसने क्या उत्पादन किया है और न इस प्रकार से

विशेष चेष्टा ही करती है। अथवा आपके द्वारा कथित न्याय से महान् भी उसका बल होवे तो रहे।६७। तीनों लोकों के द्वारा जिसकी महिमा का उल्लंघन नहीं होता है ऐसा यह भण्डासुर किसके द्वारा जीता जा सकता है अर्थात् इसको कोई भी पराजित नहीं कर सकता है।६८। इस समय में भी देवगण मेरे बाहुबल के संमर्दन से मूच्छित किसी समय में भी श्वास लेने में भी समर्थ नहीं हैं।६९। उनमें से कुछ तो पाताल के गर्भों में जा छिपे हैं और कुछ समुद्र के जलों में छिपे हुए हैं। कुछ दिशाओं के अन्त में कोणों में छिप रहे हैं तथा कुछ कुञ्जों में जाकर छिपाये हैं जो कि पर्वतों में है।७०।

विलीना भृशवित्रस्तास्त्यक्तदारसुतश्रियः ।
भ्रष्टाधिकाराः पशवश्छन्नवेषाश्चरंति ते ॥७१
एतादृशं न जानाति मम बाहुपराक्रमम् ।
अबला न चिरोत्पन्ना तेनैषा दर्पमश्नुते ॥७२
न जानन्ति स्त्रियो मूढा वृथा कल्पितसाहसाः ।
विनाशमनुधावन्ति कार्याकार्यविमोहिताः ॥७३
अथ वा तां पुरस्कृत्य यद्यागच्छन्ति नाकिनः ।
यथा महोरगाः सिद्धाः साध्या वा युद्धदुर्मदाः ॥७४
ब्रह्मा वा पद्मनाभो वा रुद्रो वापि सुराधिपः ।
अन्ये वा हारितां नाथास्तान्संपेष्टु महं पटुः ॥७५
अथ वा मम सेनासु सेनान्यो रणदुर्मदाः ।
पक्वकर्करिकापेषमवपेक्ष्यंति वैरिणः ॥७६
कुटिलाक्षः कुरंडश्च करंकः कालवाशितः ।
वज्रदंतो वज्रमुखो वज्रलोमा बलाहकः ॥७७

ये सभी अपने दारा-पुत्र और श्री का त्याग करके अत्यधिक डरे हुए विलीन हो रहे हैं जिनके सब अधिकार भ्रष्ट हो गये हैं। एक पशु के समान ही अपना वेष छिपाये सब इधर-उधर विचरण कर रहे हैं।७१। इस प्रकार के मेरा जो बाहुओं का पराक्रम है उसको वह नहीं जानती है कारण यही है कि एक तो वह स्त्री है दूसरे अभी-अभी उत्पन्न हुई है। इसी से वह इतना दर्प करती है।७२। स्त्रियाँ तो स्वभाव से ही मूढ़ हुआ करती हैं।

इनका तो जो भी कुछ साहस होता है वह वृथा ही कल्पित हुआ करता है। ये कार्य और अकार्य में मोहित ही हुआ करती हैं तथा ये विनाश की ओर अनुधावन किया करती हैं ।७३। अथवा ऐसा भी हो कि उस स्त्री को आगे करके ये देवगण यदि पीछे से आते हैं तो कोई भी क्यों न होवें—चाहे वे महोरग हों—साध्य हों या दुर्मद सिद्ध भी होवें। ब्रह्मा तथा पद्मनाभ और रुद्र भी क्यों न हों। या सुराधिप इन्द्र भी होवे और दिक्पाल होवें उन सबको पीस देने में मैं एक ही परम समर्थ हूँ। मुझे इन सबका कुछ भी भय नहीं है ।७५। अथवा मेरी सेनाओं में जो भी सेनानी हैं वे बड़े रण दुर्मद हैं। वे तो वैरियों को पक्वकर्करिका के समान पीस देने की अवेक्षा ही कर रहे हैं ।७६। उन सेनानियों के कुछ प्रथित नाम मैं बतलाता हूँ—कुटिलाक्ष—कुरण्ड—कटंक—कालवाशित—वज्रदन्द—वज्रमुख—वज्रलोमा—बलाहक हैं ।७७।

सूचीमुखः फलमुखो विकटो विकटाननः ।
करालाक्षः कर्कटको मदनो दीर्घजिह्वकः ॥७८
हुंबको हलमुल्लुंचः कर्कशः कल्किवाहनः ।
पुल्कसः पुण्ड्रकेतुश्च चण्डबाहुश्च कुक्कुरः ॥७९
जंबुकाक्षो जृंभणश्च तीक्ष्णश्रृंगस्त्रिकंटक ।
चतुर्गुप्तश्चतुर्बाहुश्चकाराक्षश्चतुः शिराः ॥८०
वज्रघोषश्चोर्ध्वकेशो महामायो महाहनुः ।
मखशत्रुर्मखारस्कन्दी सिंहघोषः शिरालकः ॥८१
अंधकः सिंधुनेत्रश्च कूपकः कूपलोचनः ।
गुहाक्षो गंडगल्लश्च चण्डधर्मो यमांतकः ॥८२
लड्डनः पट्टसेनश्च पुरजित्पूर्वमारकः ।
स्वर्गशत्रुः स्वर्गबलो दुर्गाख्यः स्वर्गकण्टकः ॥८३
अतिमायो बृहन्माय उपमाय उलूकजित् ।
पुरुषेणो विषेणश्च कुन्तिषेणः परूषकः ॥८४

सूचीमुख—फलमुख—विकट—विकटानन—करालाक्ष—कर्कटक-मदन—दीर्घजिह्वक—हुम्बक—हलमुल्लुंच—कर्कश—कल्कि—वाहन—पुल्कश—

पुण्ड्रकेतु—चण्डबाहु—कुक्कुर—जम्बुकाक्ष—जृम्भण—तीक्ष्णभृङ्ग—त्रिक-ण्टक—चतुर्गुप्त—चतुर्बाहु—चकाराक्ष-चतुश्शिरा—वज्रघोष—ऊर्ध्वकेश-महामाया—महाहन—मखशत्रु—मरखास्कन्दी—सिंहघोष—शिरालक—अन्धक—सिन्धु नेत्र—कूपक—कपलोचन—गुहाक्ष—गणुगल्ल-चण्डधर्म—यमान्तक—लड्डुन—पट्टसेन—पुरजित्—पूर्वट्टारक—स्वर्गशत्रु—स्वर्गबल-दुर्गारक्ष्य—स्वगकण्टक—अतिमाय—बृहन्माय—उपमाय—उलूकजित्–पुरुषेण—विषेण—कुन्तिषेण—परूषक ।७८-८४।

भलकश्च कशूरश्च मंगलोद्रघणस्तथा ।
कोल्लाटः कुजिलाश्वश्च दासेरो बभ्रुवाहनः ॥८५

दृष्टहासो दृष्टकेतुः परिक्षेप्तापकंचुकः ।
महामहो महादंष्ट्रो दुर्गतिः स्वर्गमेजयः ॥८६

षट्केतुः षड्वसुश्चैव षड्दन्त षट्प्रियस्तथा ।
दुःशठो दुर्विनीतश्च छिन्नकर्णश्च मूषकः ॥८७

अट्टहासी महाशी च महाशीर्षो मदोत्कटः ।
कुम्भोत्कचः कुम्भनासः कुम्भग्रीवो घटोदरः ॥८८

अश्वमेढ्रो महांडश्च कुम्भांडः पूतिनासिकः ।
पूतिदन्तः पूतिचक्षुः पूत्यास्यः पूतिमेहनः ॥८९

इत्येवमादयः शूरा हिरण्यकशिपोः समाः ।
हिरण्याक्षसमाश्चैव मम पुत्रा महाबलाः ॥९०

एकैकस्य सुतास्तेषु जाताः शूराः परःशतम् ।
सेनान्यो मे मदोद्वृत्ता मम पुत्रैरनुद्रुताः ॥९१

भलक—कशूर—मङ्गल—द्रघण—कोल्लाट—कुजिलाश्व—दासेर-बभ्रुवाहन—दृष्टहास—दृष्टकेतु—परिक्षेप्ता—अपकञ्चुक—महामह—महा-दंष्ट्र—दुर्गति—स्वर्गमेजय—षट्केतु—षड्वसु—षड्दन्त—षट्प्रिय–दुःशट-दुर्विनीत—छिन्न कर्ण—मूषक—अट्टहासी—महाशी—महाशीर्ष–मदोत्कट-कुम्भोत्कच-कुम्भनास–कुम्भग्रीव–घटोदर–अश्वमेढ्रमहाण्ड–कुम्भाण्ड–पूति-नासिक—पूतिदन्त—पूति चक्षु–पूत्यास्य—पूतिमेहन—इत्यादिक इस प्रकार से ये शूर हिरण्यकशिपु के ही समान हैं। और मेरे महाबल वाले पुत्र

हिरण्याक्ष के तुल्य हैं ।८५-९०। उनके एक-एक के सैंकड़ों से भी अधिक पुत्र हैं बहुत ही शूर उत्पन्न हुए हैं। मेरे सेनानी मदोद्धत्त हैं और मेरे पुत्रों के पीछे दौड़ लगाने वाले हैं ।९१।

नाशयिष्यन्ति समरे प्रोद्धतानमराधमान् ।
ये केचित्कुपिता युद्धे सहस्राक्षौहिणी वराः ।
भस्मशेषा भवेयुस्ते हा हन्त किमुताबला ।।९२
मायाविलासाः सर्वेऽपि तस्याः समरसीमनि ।
महामायाविनोदाश्च कुप्युस्ते भस्मसाद्बलम् ।।९३
तद्वृथा शंकया खिन्नं मा ते भवतु मानसम् ।
इत्युक्त्वा भंडदैत्येन्द्रः समुत्थाय नृपासनात् ।।९४
उवाच निजसेनान्यं कुटिलाक्षं महाबलम् ।
उत्तिष्ठ रे बलं सर्वं संनाहय समंततः ।।९५
शून्यकस्य समंताच्च द्वारेषु बलमर्पय ।
दुर्गाणि संगृहाण त्वं कुरु क्षेपणिकाशतम् ।।९६
दुष्टाभिचाराः कर्तव्या मन्त्रिभिश्च पुरोहितैः ।
सज्जीकुरु त्वं शस्त्राणि युद्धमेतदुपस्थितम् ।।९७
सेनापतिषु ये केचिदग्रे प्रस्थापयाधुना ।
अनेकबलसंघातसहितं घोरदर्शनम् ।।९८

जब भी संग्राम होगा तब उसमें ये लोग प्रोद्धत और अधम अमरों का नाश कर देंगे। जो कोई भी युद्ध में कुपित होंगे परम श्रेष्ठ सहस्रों अक्षौहिणी सेनाएँ हैं वे सब भस्मीभूत ही हो जायेंगे। हा ! हन्त ! विचारी स्त्रियाँ क्या हैं अर्थात् युद्ध में ये क्या ठहर सकती हैं ।९२। उसके समर की सीमा में सभी माया के विलास वाले हैं तथा महामाया के विनोद से समन्वित हैं। जब वे मेरे शूर कोप करेंगे तब सम्पूर्ण बल भस्मसात् हो जायगा ।९३। सो व्यर्थ ही शंका से तुम्हारा मन खिन्न नहीं होवे। इतना यह कहकर भण्डदैत्येन्द्र नृप के आसन से उठकर खड़ा हो गया था ।९४। और महाबली कुटिलाक्ष सेनानी से बोला था। रे उठ जाओ और अपनी समस्त सेना को सब ओर से सज्जित करो ।९५। और शून्य के सब ओर द्वारों पर सेना लगा

दो। तू दुर्गों को संग्रहण करो जहाँ पर सैकड़ों ही क्षेपणिकाएँ होवें।९६। मन्त्रियों और पुरोहितों के द्वारा दुष्ट अभिचार कर्मानुष्ठान करना चाहिए। तुम शस्त्रों को सज्जित करो क्योंकि यह युद्ध अब उपस्थित हो गया है।९७। सैनापतियों में जो कोई भी हैं उनको इसी समय हमारे सामने करो। जो अनेक बल के संघात के सहित घोर दर्शन वाले हैं।९८।

तेन संग्रामसमये सन्निपत्य विनिर्जितम्।
केशेष्वाकृष्य तां मूढां देवसत्त्वेन दर्पिताम्॥९९
इत्याभाष्य चमूनाथे सहस्रत्रितयाधिपम्।
कुटिलाक्षं महासत्त्वं स्वयं चान्तःपुरं ययौ॥१००
अथापतन्त्या: श्रीदेव्या यात्रानिःसाणनि.स्वनाः।
अश्रूयंत च दैत्येन्द्रैरतिकर्णज्वरावहाः॥१०१

उसने संग्राम के समय में आगे समापतित होकर विजय प्राप्त की है। देवों के सत्त्व से बहुत ही दर्प वाली उसको महामूढ़ा को चोटी खींचकर खींच लाओ।९९। तीन सहस्र के अधिप महान् सत्त्व वाले चमू के नाथ कुटिलाक्ष से यह कहकर वह भण्ड अन्तःपुर में चला गया था।१००। इसके अनन्तर आक्रमण करके आती हुई श्री देवी की यात्रा के निःसाथ महान् घोर ध्वनियाँ दैत्येन्द्रों के द्वारा सुनायी दी थीं जो कानों को बहुत ही दुःखद हो रही थीं।१०१।

—×—

दुर्मद कुरंड वध वर्णन

अथ श्रीललितासेना निस्साणाप्रतिनिस्वनः।
उच्चचालासुरेन्द्राणां योद्धतो दुन्दुभिध्वनिः॥१
तेन मर्दितदिक्केन क्षुभ्यद्गर्भपयोधिना।
बधिरीकृतलोकेन चकम्पे जगतां त्रयी॥२
मर्दयन्ककुभां वृन्दं भिन्दन्भूधरकन्दराः।
पुप्रोथे गगनाभोगे दैत्यनिःसाणनिस्वना॥३
महानरहरिक्रुद्धहुङ्कारोद्धतिमद्ध्वनिः।
विरसं विररासोच्चैर्विबुधद्वेषिझल्लरी॥४

ततः किलकिलारावमुखरा दैत्यकोटयः ।
समनह्यन्त संक्रुद्धाः प्रति तां परमेश्वरीम् ॥५
कश्चिद्रत्नविचित्रेण वर्मणाच्छन्नविग्रहः ।
चकाशे जंगम इव प्रोत्तुङ्गो रोहणाचलः ॥६
कालरात्रिमिवोदग्रां शस्त्रकारेण गोपिताम् ।
अणुनीत भटः कश्चिदतिधौतां कृपाणिकाम् ॥७

इसके अनन्तर श्री ललिता देवी की सेना के निस्सरण की प्रतिध्वनि ने असुरेन्द्रों को उच्चालित कर दिया था जो कि दुन्दुभियों की अतीव उद्धत ध्वनि उस समय में हो रही थी ।१। दिशाओं के मर्दित करने वाली उससे पयोधियों का गर्भ भी क्षुब्ध हो गया था और समस्त लोक उस महान् भीषण एवं घोर ध्वनि से बहरा हो गया था। उस समय में तीनों भुवन कांप उठे थे ।२। इधर दैत्यों के निःसाण का घोष भी दिशाओं के समूह को मर्दित कर रहा था तथा पर्वतों की कन्दराओं का भेदन कर रहा था एवं नभो मण्डल में ऊपर उठ गया था ।३। महान् नरसिंह के क्रोध से निकलने वाली हुँकार के समान जो उद्धत ध्वनि थी वह देवों के शत्रुओं की झल्लरी बहुत ही अधिक बिरसता उत्पन्न कर रही थी ।४। इसके उपरान्त किल-किल की ध्वनि से शब्दायमान दैत्यों की श्रेणियाँ हो रही थी। वे सभी परमेश्वरी उस देवी के प्रति बहुत ही क्रुद्ध होकर सन्नद्ध हुए थे ।५। वह बहुत ही ऊँचा रोहणाचल रत्नों से विचित्र कर्म (कवच) से ढके हुए शरीर वाला एक जङ्गम के ही समान शोभित हो रहा था ।६। कोई भट अपनी अतिधौत कृपाण को जो शस्त्रकार से गोपित थी कालरात्रि के ही समान उदग्र को हिला रहा था ।७।

उल्लासयन्कराग्रेण कुन्तपल्लवमेकतः ।
आरूढतुरगो वीथ्यां चारिभेदं चकार ह ॥८
केचिदारुरुहुर्योधा मातंगांस्तुंगवर्ष्मणः ।
उत्पातवातसंपातप्रेरितानिव पर्वतान् ॥९
पट्टिशैर्मुद्‌गरैश्चैव भिदुरैर्भिण्डिपालकैः ।
द्रुहणैश्च भुशुण्डीभिः कुठारैर्मुसलैरपि ॥१०

गदाभिश्च शतघ्नीभिस्त्रिशिखैर्विशिखैरपि ।
अर्धचक्रैर्महाचक्रैर्वक्रांगैरुरगाननैः ॥११

फणिशीर्षप्रभेदैश्च धनुर्भिः शार्ङ्गधन्विभिः ।
दण्डैः क्षेपणिकाशस्त्रैर्वज्रवाणैर्दृषद्वरैः ॥१२

यवमध्यैर्मुष्टिमध्यैर्वललैः खंडलैरपि ।
कटारैः कोणमध्यैश्च फणिदन्तैः परः शतैः ॥१३

पाशायुधैः पाशतुण्डैः काकतुण्डैः सहस्रशः ।
एवमादिभिरत्युग्रैरायुधैर्जीवहारिभिः ॥१४

एक ओर अपने कर के अग्रभाग से भाला हाथ में लिये हुए अश्व पर समारूढ़ होकर वीथी में चरण करने वालों को तितर-बितर कर रहा था ।८। कुछ योधागण बहुत ही ऊँचे वपु वाले हाथियों पर समारूढ़ थे जो कि उत्पात वाली वायु के सम्पात से प्रेरित पर्वतों के ही तुल्य दिखाई दे रहे थे ।९। उस समय में बड़े-बड़े आयुधों के द्वारा प्रहार किये जा रहे थे—उनमें कतिपय आयुधों के नाम ये हैं—पट्टिश–मुद्गरभिदुर–भिण्डी पालक–द्रुहिण–भुशुण्डी—कुठार—मुसल—गदा—शतघ्नी—त्रिशिख—विशिख—अर्धचक्र–महाचक्र—वक्राङ्ग—उरगानन—फणि—शीर्ष—धनुष–दण्ड–क्षेपणिकास्त्र–वज्रवाण—दृषद्वर—यवमध्य—मुष्टिमध्य—वलल—खण्डल—कटार–कोण-मध्य—सैकड़ों से भी अधिक फणिदन्त—पाशायुध—पाशतुण्ड—सहस्रों काकतुण्ड—इस प्रकार से जीवों के विनाशक आयुधों का प्रयोग किया जा रहा था ।१०-१४।

परिकल्पितहस्ताग्रा वर्मिता दैत्यकोटयः ।
अश्वारोहा गजारोहा गर्दभारोहिणः परे ॥१५

उष्ट्रारोहा वृकारोहा शुनकारोहिणः परे ।
काकादिरोहिणो गृध्रारोहाः कंकादिरोहिणः ॥१६

व्याघ्रादिरोहिणश्चान्ये परे सिंहादिरोहिणः ।
शरभारोहिणश्चान्ये भेरुण्डारोहिणः परे ॥१७

सूकरारोहिणो व्यालारूढाः प्रेतादिरोहिणः ।
एवं नानाविधैर्वाहवाहिनो ललितां प्रति ॥१८

प्रचेलुः प्रबलक्रोधसंमूर्च्छितनिजाशयाः ।
कुटिलं सैन्यभर्त्तारं दुर्मदं नाम दानवम् ।
दशाक्षौहिणिकायुक्तं प्राहिणोल्ललितां प्रति ॥१६
दिधक्षुभिरिवाशेषं विश्वं सह बलोत्कटैः ।
भटैर्युक्तः स सेनानी ललिताभिमुखे ययौ ॥२०
भिदन्पटहसंरावैश्चतुर्दश जगन्ति सः ।
अट्टहासान्वितन्वानो दुर्मदस्तन्मुखो ययौ ॥२१

परिकल्पिता हस्तों के अग्रवाली वर्णित दैत्यों की कोटियाँ हैं । कुछ अश्वों पर सवार थे—कुछ हाथियों पर आरूढ़ थे—और कुछ गर्दभों पर बैठे हुए थे ।१५। कुछ ऊँटों पर सवार—कुछ वृकों पर समारूढ़ तथा कुछ श्वानों पर सवार थे । काक आदिकों पर भी सवार थे तथा गृध्रों पर और कंकों पर सवार कुछ हो रहे थे ।१६। कुछ व्याघ्र आदि पर सवार थे तथा कुछ सिंह आदि पर आरूढ़ थे । अन्य शरभों पर सवार थे सो कुछ भेरुण्डों पर समारूढ़ हो रहे थे ।१७। सूकरों पर कुछ दैत्य सवारी किये हुए थे एवं व्यालों पर और प्रेतों पर कुछ सवार थे । इस रीति से अनेक प्रकार के वाहनों पर बैठकर दैत्यगण ललिता देवी के प्रति आक्रमण कर रहे थे ।१८। प्रबल क्रोध से उनका अपना आशय भी मूर्च्छित हो रहा था । परम कुटिल दुर्मद नामक सेनापति को दश अक्षौहिणी सेना से संयुत करके ललितादेवी पर आक्रमण करने के लिए भेजा था ।१९। अपने अत्युत्कट बल के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को दग्ध करने की इच्छा वाले की तरह ही भटों से युक्त वह सेनानी ललिता देवी के सामने गया था ।२०। वह अपने पटहों के महाघोषों से चौदह भुवनों का भेदन करता हुआ गया था । वह दुर्मद अट्टहास से समन्वित होकर उस देवी के समक्ष में प्राप्त हुआ था ।२१।

अथ भंडासुराज्ञप्तः कुटिलाक्षो महाबलः ।
शून्यकस्य पुरद्वारे प्राचीने समकल्पयत् ।
रक्षणार्थं दशाक्षौहिण्युपेतं तालजंघकम् ॥२२
अर्वाचीने पुरद्वारे दशाक्षौहिणिकायुतम् ।
नाम्ना तालभुजं दैत्यं रक्षणार्थमकल्पयत् ॥२३

प्रतीचीने पुरद्वारे दशाक्षौहिणिकायुतम् ।
तालग्रीवं नाम दैत्यं रक्षार्थं समकल्पयत् ॥२४
उत्तरे तु पुरद्वारे तालकेतुं महाबलम् ।
आदिदेश स रक्षार्थं दशाक्षौहिणिकायुतम् ॥२५
पुरस्य सालवलये कपिशीर्षकवेश्मसु ।
मण्डलाकारतो वस्तुं दशाक्षौहिणिमादिशत् ॥२६
एवं पञ्चाशता कृत्वाक्षौहिण्या पुररक्षणम् ।
शून्यकस्य पुरस्यैव तद्वृत्तं स्वामिनेऽवदत् ॥२७
कुटिलाक्ष उवाच–
देव त्वदाज्ञया दत्तं सैन्यं नगररक्षणे ।
दुर्मदः प्रेषितः पूर्वं दुष्टां तां ललितां प्रति ॥२८

इसके पश्चात् भंडासुर की आज्ञा पाकर महान बलवान कुटिलाक्ष ने शून्यक के प्राचीन पुरद्वार पर रक्षा करने के लिए दश अक्षौहिणी सेना से समन्वित तालजंघ को कल्पित किया था ।२२। जो अर्वाचोन नगर का द्वार था उस पर दश अक्षौहिणी सेना से संयुत तालभुज नामक दैत्य को रक्षण के लिए नियुक्त किया था ।२३। पश्चिमके पुर द्वार पर भी दश अक्षौहिणियों से युक्त तालग्रीव नाम वाले दैत्य को कल्पित किया था ।२४। उत्तर में जो पुर द्वार था उस पर महान बली तालकेतु को रक्षा के लिए उसने आज्ञा प्रदान की थी वह भी दश अक्षौहिणी सेना से समन्वित था ।२५। नगर के साल वलय में कपि शीर्षक गृहों में मण्डल के आकार से वास करने के लिये दश अक्षौहिणी सेना को आदेश दिया था ।२६। इस रीति से पाँच सौ अक्षौ-हिणी सेना को पुर की रक्षा के लिये नियुक्त किया था । उस नगर शून्यक को सुरक्षा के पूरे प्रबन्ध का समाचार अपने स्वामी से निवेदन कर दिया था ।२७। कुटिलाक्ष ने कहा—हे स्वामिन् ! आपकी आज्ञा से नगर की सुरक्षा के लिए सेना नियुक्त करदी है और उस ललिता पर धावा करने के लिए जो कि बहुत ही दुष्टा स्त्री है पहिले ही दुर्मद को भेज दिया गया है ।२८।

अस्मत्किंकरमात्रेण सुनिराशा हि साबला ।
तथापि राज्ञामाचारः कर्त्तव्यं पुररक्षणम् ॥२६

इत्युक्त्वा भंडदैत्येंद्रं कुटिलाक्षोऽतिगर्वितः ।
स्वसैन्यं सज्जयामास सेनापतिभिरन्वितः ॥३०
दूतस्तु प्रेषितः पूर्वं कुटिलाक्षेण दानवः ।
स ध्वनन्ध्वजिनीयुक्तो ललितासैन्यमावृणोत् ॥३१
कृत्वा किलकिलारावं भटास्तत्र सहस्रशः ।
दोधूयमानैरसिभिर्निपेतुः शक्तिसैनिकैः ॥३२
ताश्च शक्तय उद्दंडाः स्फुरिताट्टहासस्वनाः ।
देदीप्यमानशस्त्राभाः समयुध्यंत दानवैः ॥३३
शक्तीनां दानवानां च सशोभितजगत्त्रयः ।
समवर्तत संग्रामो धूलिग्रामततांम्बरः ॥३४
रथवंशेषु मूर्च्छंत्यः करिकंठैः प्रपञ्चिताः ।
अश्वनिःश्वासविक्षिप्ता धूलयः खं प्रपेदिरे ॥३५

हमारे किङ्करों से ही वह अबला तो बहुत ही निराश होगी फिर भी आपकी आज्ञा थी और राजाओं का यह आचार भी है कि अपने नगर की सुरक्षा करनी चाहिए ।२९। भंडासुर से यह कहकर कुटिलाक्ष बहुत गर्व से युक्त हुआ था और सेनापतियों के साथ उसने अपनी सेना को सुसज्जित किया था ।३०। इसके अनन्तर कुटिलाक्ष ने एक दानव दूत को भेजा था। वह ध्वजिनी से संयुत ध्वनि करता हुआ आया था और उसने ललिता की सेना को आवृत कर लिया था। उसने किल-किल की ध्वनि की थी। वहाँ पर सहस्रों की संख्या में योधा थे और कम्पायमान असियों के द्वारा शक्ति के सैनिकों ने निपात किया था ।३१-३२। वे शक्तियाँ बहुत ही उद्दण्ड थी तथा स्फुरित अट्टहास के घोष वाली थीं। वे देदीप्यमान अस्त्रों की आभा से समन्वित थीं और उन्होंने दानवों के साथ भली भाँति से युद्ध किया था ।३३। उन शक्तियों का और दानवों का ऐसा अद्भुत संग्राम हुआ था जिससे ये तीनों लोक संशोभित थे तथा उस संग्राम में इतनी धूलि उड़ी थी वह नभोमण्डल तक छा गयी थी ।३४। रथों के बाँसों में छाई हुई उठकर गजों के कण्ठों तक फैल गई थी तथा अश्वों के निश्वासों से विक्षिप्त होकर वे धूलियाँ ऊपर आकाश में पहुँच गयी थीं ।३५।

तमापतन्तमालोक्य दशाक्षौहिणिकावृतम् ।
संपत्सरस्वती क्रोधादभिदुद्राव संगरे ॥३६
सम्पत्करीसमानाभिः शक्तिभिः समधिष्ठिताः ।
अश्वाश्च दंतिनो मत्ता व्यमर्दन्दानवीं चमूम् ॥३७
अन्योन्यतुमुले युद्धे जाते किलकिलारवे ।
धूलीषु धूयमानासु ताड्यमानासु भेरिषु ॥३८
इतस्ततः प्रववृधे रक्तसिन्धुर्महीयसी ।
शक्तिभिः पात्यमानानां दानवानां सहस्रशः ॥३९
ध्वजानि लुठितान्यासन्विलूनानि शिलीमुखैः ।
विस्रस्ततत्तच्चिह्नानि समं छत्रकदम्बकैः ॥४०
रक्तारुणायां युद्धोर्व्यां पतितैश्छत्रमण्डलैः ।
आलंभि तुलना संध्यारक्ताभ्रहिमरोचिषा ॥४१
ज्वालाकपालः कल्पाग्निरिव चारुपयोनिधौ ।
दैत्यसैन्यानि निवहाः शक्तीनां पर्यवारयन् ॥४२

उस दानव को अपने ऊपर चढ़कर आते हुए को देखकर जो कि दश अक्षौहिणी सेना से समावृत था सम्पत्सरस्वती देवी क्रोध से उस संग्राम में अभिद्रुत हो गयी थीं ।३६। सम्पत्करी के समान ही शक्तियों से वह समधिष्ठित थी । उसके अश्व और मदमत्त गज थे । उसने दानवों की उस सेना का विमर्दन कर दिया था ।३७। परस्पर में यह बहुत ही तुमुल युद्ध हुआ था जिसमें सभी ओर किल-किलाहट की ध्वनि हो रही थी । धूलियाँ धूममान हो रही थीं और भेरियाँ बजायी जा रही थीं ।३८। इधर-उधर बहुत बड़ी रुधिर की नदी बह निकली थी । शक्तियों के द्वारा जो सहस्रों दानव मार-काट कर गिरा दिये थे उनके ही रुधिर की नदी बह चली थी ।३९। बाणों के द्वारा काटी गयी ध्वजाएँ पड़ी हुई थी जिनमें उन-उनके छिन्न विस्रस्त हो गये थे तथा उनके ही साथ उन दानवों के छत्रों का समुदाय भी गिरा हुआ था ।४०। युद्ध की भूमि रुधिर से लाल हो गयी थी उसी में दानवों के छत्र पड़े हुए थे । उस समय में सन्ध्या कालीन चन्द्रमा की लालिमा से

तुलना हो रही थी ।४१। ज्वालाओं का समुदाय वाला कल्पान्त की अग्नि के ही समान चारु पयोनिधि में दैत्यों की सेनाओं को शक्तियों के समूह ने परिवारित कर दिया था ।४२।

शक्तिच्छन्दोज्ज्वलच्छस्त्रधारानिष्कृत्तकन्धराः ।
दानवान रणतले निपेतुर्मुण्डराशयः ॥४३
दष्टौष्ठैर्भ्रुकुटीक्रूरैः क्रोधसंरक्तलोचनैः ।
मुण्डैरखण्डमभवत्संग्रामधरणीतलम् ॥४४
एवं प्रवृत्ते समये जगच्चक्रभयंकरे ।
शक्तयो भृशसंक्रुद्धा दैत्यसेनाममर्दयन् ॥४५
इतस्ततः शक्तिशस्त्रैस्ताडिता मूर्च्छिता इति ।
विनेशुर्दानवास्तत्र संपद्देवीबलाहताः ॥४६
अथ भग्नं समाश्वास्य निजं बलमरिन्दमः ।
उष्ट्रमारुह्य सहसा दुर्मदोऽभ्यद्रवच्चमूम् ॥४७
दीर्घग्रीवः समुन्नद्धः पृष्ठे निष्ठुरतोदनः ।
अधिष्ठितो दुर्मदेन वाहनोष्ट्रश्चचाल ह ॥४८
तमुष्ट्रवाहनं दुष्टमन्वीयुः क्रुद्धचेतसः ।
दानावनश्वसत्सर्वान्भीताञ्छक्तियुयुत्सया ॥४६

शक्तियों के समुदाय के जाज्वल्यमान शस्त्रों की धारों से कटे हुए दानवों की कन्धराएं तथा मुण्डों की राशियां उस रणस्थल में भूमि पर पड़ी हुई थीं ।४३। उन मुन्डों में दाँतों से अपने होठों को चबाते हुए तथा भृकुटियां करते हुए और क्रोध से लाल नेत्र स्पष्ट दिखाई दे रहे थे और वे इतनी अधिक संख्या में थे कि समस्त धरणी तल एक समान हो गया था अर्थात् सर्वत्र नर मुन्ड ही मुन्ड दिखाई दे रहे थे ।४४। इस प्रकार से जब महान् भीषण एवं परम घोर युद्ध हो रहा था तो उस समय में जबकि सम्पूर्ण जगत् के लिए वह बहुत ही भयंकर था वे सब शक्तियां अत्यन्त क्रुद्ध हो गयी थीं और उन्होंने दैत्यों की सेनाओं का विमर्दन कर दिया था ।४५। सम्पद्देवी के सैनिकों से समाहत होकर वहाँ दानव इधर-उधर शक्तियों के

शस्त्रों से प्रताड़ित होकर मूर्च्छा को प्राप्त हो गये थे और अन्त में विनष्ट हो गये थे ।४६। इसके अनन्तर अरियों का दमन करने वाले दुर्मद ने भग्न हुए अपने सैनिकों को समाश्वासन दिया था और फिर एक ऊँट पर चढ़कर वह तुरन्त ही सेना के ऊपर आक्रमण करने लगा था ।४७। दीर्घग्रीव निष्ठुर-तोदन वाला समुन्नद्ध होकर पीछे दुर्मद के साथ अधिष्ठित था और उसका वाहन वह ऊँट वहाँ से चल दिया था ।४८। उस उष्ट्र के वाहन वाले दुष्ट के पीछे अन्य दानव भी बड़े ही क्रुद्ध होकर अनुगमन कर रहे थे और वे अन्य दानवों को समाश्वासन देते जा रहे थे जो कि शक्ति के साथ युद्ध करने में डरे हुए थे ।४९।

अवाकिरद्दिशो भल्लैरुल्लसत्फलशालिभिः ।
संपत्करीचमूचक्रं वनं वार्भिरिवांबुदः ।।५०
तेन दुःसहसत्त्वेन ताडिता बहुभिः शरैः ।
स्तंभितेवाभवत्सेना संपत्कर्याः क्षणं रणे ।।५१
अथ क्रोधारुणं चक्षुर्दधाना संपदम्बिका ।
रणकोलाहलगजमारूढायुध्यतामुना ।।५२
आलोलकंकणक्वाणरमणीयतरः करः ।
तस्याश्चाकृष्य कोदण्डमौर्वीमाकर्णमाहवे ।।५३
लघुहस्ततयापश्यन्नाकृष्टन्न च मोक्षणम् ।
ददृशे धनुषश्चक्रं केवलं शरधारणे ।।५४
आश्वर्काविरसंपर्कस्फुटप्रतिफलत्फलाः ।
शराः सम्पत्करीचापच्युताः समदहन्नरीन् ।।५५
दुर्मदस्याथ तस्याश्च समभूद्युद्धमुद्धतम् ।
अभूदन्योन्यसंघट्टाद्विस्फुलिंगशिलीमुखैः ।।५६

उल्लसित फलों वाले भालों से समस्त दिशाओं को अवकीर्ण कर दिया था और सम्पत्करी देवी की सेना का जो समूह था उसको इसी तरह से ढक दिया था जैसे मेघ जलों के द्वारा वन को आवृत कर दिया करता है। ।५०। उस दुःसह सत्व वाले के द्वारा बहुत से बाणों से ताड़ित हुई संपत्करी

देवी की सेना क्षण भर के लिए रणस्थल में स्तम्भित सी ही हो गयी थी। ।५१। इसके अनन्तर महान क्रोध से लाल नेत्रों को धारण करती हुई सम्पदम्बिका रण कोलाहल नामक गज पर समारूढ़ होकर इस दानव के साथ युद्ध करने लगी थी ।५२। कुछ थोड़ा चंचल कङ्कण की क्वणन की ध्वनि से विशेष सुन्दर उसके करने उस युद्ध में धनुष की मौर्वी को कानों तक खींचा था ।५३। हाथ के हलकेपन से न तो मौर्वी को खींचते हुए देखा था और न उसके छोड़ने को ही देखा था केवल शर के धारण करते ही देखा गया था जो धनुष पर लगाया था ।५४। शीघ्र ही अर्काम्बर के सम्पर्क से प्रतिफलित फल वाले शरसंपत्करी के चाप से गिरे हुए शत्रुओं का सन्दाह कर देते थे। ।५५। उस देवी का और दुर्मद का अत्यन्त ही अद्भुत युद्ध हुआ था जो कि परस्पर में एक दूसरे के संघट्ट से विस्फुलिंग निकलने वाले बाणों के द्वारा किया गया था ।५६।

प्रथमं प्रसृतैर्बाणैः सम्पद्देवीसुरद्विषोः ।
अन्धकारः समभवत्तिरस्कुर्वन्नहस्करम् ।।५७

तदन्तरे च बाणानामतिसंघट्टयोनयः ।
विस्फुलिंगा विदधिरे दधिरे भ्रमचातुरीम् ।।५८

तयाधिरूढः संश्रोण्या रणकोलाहलः करी ।
पराक्रमं बहुविधं दर्शयामास संगरे ।।५९

करेण कतिचिद्दैत्यान्पादघातेन कांश्चन ।
उदग्रदन्तमुसलघातैरन्यांश्च दानवान् ।।६०

बालकांडहतैरन्यान्फेत्कारैरपरान्रिपून् ।
गात्रव्यामर्दनैरन्यान्नखघातैस्तथापरान् ।।६१

पृथुमानाभिघातेन कांश्चिद्दैत्यान्व्यमर्दयत् ।
चतुरं चरितं चक्रे संपद्देवीमतंगजः ।।६२

सुदुर्मदः क्रुधा रक्तो दृढेनैकेन पत्रिणा ।
संपत्करीमुकुटगं मणिमेकमपाहरत् ।।६३

सम्पद्देवी और उस सुरों के शत्रु के प्रसृत बाणों से सर्व प्रथम ऐसा अन्धकार हो गया था जिसने सूर्य के तेज के आलोक को भी तिरस्कृत कर

दिया था ।५७। इसके पश्चात् बाणों के अत्यन्त संघट्ट से समुत्पन्न विस्फुलिंग हो गये थे फिर वे विस्फुलिंग इधर-उधर भ्रमण करने की चातुरी वाले हो गये थे ।५८। सुन्दर श्रोणी वाली उस देवी के द्वारा अधिरूढ़ गज जो रण कोलाहल नाम वाला था उसने उस संग्राम में बहुत प्रकार का पराक्रम प्रदर्शित किया था ।५९। उस गज ने भी कुछ असुरों को तो अपनी सूँड़ से और कुछ दैत्यों को अपने पदों की चोट से तथा कुछ को अपने तीक्ष्ण दाँतों के मुसलों की चोटों से मार डाला था ।६०। बालकांड से अन्यों को चोट दी थी तथा अन्यों को फेत्कारों के द्वारा शत्रु को निहत किया था । कुछ को अपने शरीर के द्वारा मर्दित किया था एवं अन्य शत्रुओं को अपने नखों के प्रहारों से मार डाला था ।६१। कुछ दैत्यों को उस गज ने पृथुमानाभिघात से विमर्दित कर दिया था । इस तरह से उस सम्पद्देवी के हाथी ने बहुत ही कौशल से पूर्ण अपना चरित दिखाया था ।६२। सुदुर्मद ने परमाधिक क्रोध से लाल होते हुए एक सुदृढ़ बाण से उस सम्पत्करी देवी के मुकट में स्थित एक मणि को गिरा दिया था ।६३।

अथ क्रोधारुणदृशा तया मुक्तैः शिलीमुखैः ।
विक्षतो वक्षसि क्षिप्रं दुर्मदो जीवितं जहौ ।।६४
ततः किलकिलारावं कृत्वा शक्तिचमूवरैः ।
तत्सैनिकवरास्त्वन्ये निहता दानवोत्तमाः ।।६५
हतावशिष्टा दैत्यास्तु शक्तिबाणैः खिलीकृताः ।
पलायिता रणक्षोण्याः शून्यकं पुरमाश्रयन् ।।६६
तद्वृत्तांतमथाकर्ण्य संक्रुद्धो दानवेश्वरः ।।६७
प्रचंडेन प्रभावेण दीप्यमान इवात्मनि ।
स पस्पर्श नियुद्धाय खड्गमुग्रविलोचनः ।
कुटिलाक्षं निकटगं बभाषे पृतनापतिम् ।।६८
कथं सा दुष्टवनिता दुर्मदं बलशालिनम् ।
निपातितवती युद्धे कष्ट एव विधेः क्रमः ।।६९
न सुरेषु न यक्षेषु नोरगेंद्रेषु यद्बलम् ।
अभूत्प्रतिहतं सोऽपि दुर्मदोऽबलया हतः ।।७०

इसके अनन्तर क्रोध से लाल नेत्रों वाली उस देवी के द्वारा छोड़े हुए बाणों से शीघ्र ही वक्ष: स्थल में विक्षत हुआ था और उस दुर्मद ने अपने प्राणों को त्याग दिया था।६४। इसके अनन्तर शक्ति की श्रेष्ठ सेनाओं ने किल-किल की ध्वनि की थी और उन्होंने उस दैत्य के जो परम श्रेष्ठ अन्य सैनिक दानव थे उन सबको मार गिराया था।६५। मरने से बचे हुए जो भी दैत्य थे वे सब शक्ति के बाणों से चुटैल होकर उस रण की भूमि से भाग गये थे और शून्यक में जाकर छिप गये थे।६६। उनके द्वारा शक्तिद्वारा किये हुए युद्ध के वृत्तान्त का श्रवण करके वह दानवेश्वर बहुत ही क्रुद्ध होगया था।६७। उदग्र नेत्रों वाला वह अपने प्रचण्ड प्रभाव से आत्मा से दीप्यमान जैसा हो गया था और उसने युद्ध करने के लिए अपने खड्ग को उठाया था। और उसने समीप में ही स्थित सेनापति कुटिलाक्ष से कहा था।६८। किस प्रकार से उस महादुष्टा नारी ने बड़े भारी बल वाले दुर्मद को युद्ध में मार गिराया है। यह विधाता का क्रम बड़ा कष्ट दायक है।६९। ऐसा महान बल तो न देवों में है और न यक्षों में है और उरगेन्द्रों में भी ऐसा बल विद्यमान नहीं है वह तो ऐसा बलवान था कि उसका मारने वाला कोई भी नहीं था, वह दुर्मद भी उस अबला के द्वारा मारा गया है।७०।

तां दुष्टवनितां जेतुमाकृष्टुं च कचं हठात् ।
सेनापति कुरंडाख्यं प्रेषयाहवदुर्मदम् ॥७१
इति संप्रेषितस्तेन कुटिलाक्षो महाबलम् ।
कुरंडं चंडदोर्दंडमाजुहाव प्रभो: पुर: ॥७२
स कुरंड: समागत्य प्रणामं स्वामिनेऽदिशत् ।
उवाच कुटिलाक्षस्तं गच्छ सज्जय सैनिकान् ॥७३
मायायां चतुरोऽसि त्वं चित्रयुद्धविशारद ।
कूटयुद्धे च निपुणस्तां स्त्रियं परिमर्दय ॥७४
इति स्वामिपुरस्तेन कुटिलाक्षेण देशित: ।
निर्जगाम पुरात्तूर्णं कुरंडचण्डविक्रम: ॥७५
विंशत्यक्षौहिणीभिश्च समंतात्परिवारित: ।
मर्दयन्स महीगोलं हस्तिवाजिपदातिभि: ।
दुर्मदस्याग्रजश्चंड: कुरंड: समरं ययौ ॥७६

धूलीभिस्तुमुलीकुर्वन्दिगंतं धीरमानसः ।
शोकरोषग्रहग्रस्तो जवनाश्वगतो ययौ ॥७७

अब उस परम दुष्टा नारी को जीतने के लिए और उसकी चोटी बल पूर्वक खींचकर लाने के लिए युद्ध के परम दुर्मद कुटिलाक्ष्य सेनापति को शीघ्र मेरे पास भेज दो ।७१। इस प्रकार से उसने कुटिलाक्ष को भेजा था । महान बलवान प्रचण्ड बाहुओं वाले कुरण्ड को स्वामी के सामने बुलाया था ।७२। उस कुरण्ड ने वहाँ आकर स्वामी के लिए प्रणाम किया था और कुटिलाक्ष ने उससे कहा था कि जाओ और सैनिकों को तैयार करो ।७३। आप तो माया के फैला देने में बहुत चतुर हैं और विचित्र प्रकार के युद्ध करने में महान पंडित हैं और आप कूट युद्ध करने में भी बहुत निपुण हैं । अब जाकर उस नारी का परिमर्दन करो ।७४। इस तरह से स्वामी के हीआगे उस कुटिलाक्ष के द्वारा उसको आदेश दिया गया था । फिर वह चण्ड विक्रम वाला कुरण्ड शीघ्र ही नगर से निकलकर चला गया था ।७५। वह बीस अक्षौहिणी सेना से परिवृत था और अपने हाथी-अश्व तथा पैदल सैनिकों से इस भूमण्डल को वह मर्दित कर रहा था । दुर्मद का बड़ा भाई परम प्रचण्ड कुरन्ड युद्ध स्थल में गया था ।७६। वह धीर मन वाला जब युद्ध स्थल में गया तो इतनी धूलि उड़ने लगी थी कि सभी दिशाएँ उससे भर गयी थी । वह शोक और रोष से भरा हुआ था और बड़े वेग वाले अश्व पर समारूढ़ होकर वहाँ पर गया था ।७७।

शार्ङ्गं धनुः समादाय घोरटंकारमुत्स्वनम् ।
ववर्ष शरधाराभिः संपत्कर्या महाचमूम् ॥७८
पापे मदनुजं हत्वा दुर्मदं युद्धदुर्मदम् ।
वृथा वहसि विक्रांतिलवलेशं महामदम् ॥७९
इदानीं चैव भवतीमेतैर्नाराचमंडलैः ।
अंतकस्य पुरीमत्र प्रापयिष्यामि पश्य माम् ॥८०
अतिहृद्यमतिस्वादु त्वद्वपुर्बिलनिर्गतम् ।
अपूर्वमंगनारक्तं पिबन्तु रणपूतनाः ॥८१
ममानुजवधोत्थस्य प्रत्यवायस्य तत्फलम् ।
अधुना भोक्ष्यसे दुष्टे पश्य मे भुजयोर्बलम् ॥८२

इति संतर्जयन्संपत्करीं करिवरस्थिताम् ।
सैन्यं प्रोत्साहयामास शक्तिसेनाविमर्दने ॥८३

अथ तां पृतनां चण्डी कुरंडस्य महौजसः ।
विमर्दयितुमुद्युक्ता स्वसैन्यं प्रोदसीसहत् ॥८४

उसने परमाधिक ऊँची आवाज वाली टंकार से युक्त शार्ङ्ग धनुष लेकर सम्पत्करी की बड़ी भारी सेना पर शरों की धाराओं की वर्षा की थी।७८। उसने सम्पत्करी से कहा—हे पापे! से युद्ध करने में दुर्मद मेरे छोटे भाई को हनन करके विक्रान्ति के लवलेश वाले इस महान मद को व्यर्थ ही कर रही है।७९। अब आपको मैं इन नाराचों के मन्डलों से यहीं पर यमराज की पुरी को पहुँचा दूँगा—अब तू मुझको देख ले।८०। ये रण पूतनाएँ तेरे अतीव स्वादिष्ट-रम्य-तेरे शरीर के बिलों से निकला हुआ—अपूर्व अङ्गना का रुधिर पान करें।८१। मेरे छोटे भाई के वध से जो तूने बड़ा अनर्थ किया है उसका यही परिणाम है। हे दुष्टे! अब तू उस फल को भोगेगी और अब तू मेरी भुजाओं के बल को देख ले।८२। करिवर विराजमाना उस सम्पत्करी को इस प्रकार फटकारते हुए उसने अपनी सेना को शक्ति की सेना के विमर्दन करने के लिए प्रोत्साहन दिया था।८३। इसके पश्चात् उस चन्डी ने महान ओज वाले कुरन्ड की सेना का विमर्दन करने के लिए उद्युक्त होकर अपनी सेना को उत्साहित किया था।८४।

अपूर्वाहवसंजातकौतुकाथ जगाद ताम् ।
अश्वारूढा समागत्य सस्नेहार्द्रमिदं वचः ॥८५

सखि संपत्करि प्रीत्या मम वाणी निशम्यताम् ।
अस्य युद्धमिदं देहि मम कर्तुं गुणोत्तरम् ॥८६

क्षणं सहस्व समरे मयैवैष नियोत्स्यते ।
याचितासि सखित्वेन नात्र संशयमाचर ॥८७

इति तस्या वचः श्रुत्वा संपद्देव्या शुचिस्मिता ।
निवर्तयामास चमूं कुरण्डाभिमुखोत्थिताम् ॥८८

अथ बालार्कवर्णाभिः शक्तिभिः समधिष्ठिताः ।
तरंगा इव सैन्याब्धेस्तुरंगा वातरंहसः ॥८९

खरैः खुरपुटैः क्षोणीमुल्लिखंतो मुहुर्मुहुः ।
पेतुरेकप्रवाहेण कुरण्डस्य चमूमुखे ॥९०
वल्गाविभागकृत्येषु संवर्तनविवर्तने ।
गतिभेदेषु चारेषु पञ्चधा खुरपातने ॥९१

उस अपूर्व युद्ध से समुत्पन्न कौतुक वाली अश्व पर समारूढ़ा होती हुई वहाँ आकर स्नेह के सहित यह वचन उससे बोली थी ।८५। हे सखि ! हे सम्पत्करि ! प्रीति से मेरी वाणी का श्रवण करो । इसके साथ युद्ध मुझे करने दो । मेरा युद्ध करना गुणोत्तर है ।८६। क्षणभर के लिए तुम शान्त हो जाओ । यह मेरे ही द्वारा युद्ध करेगा आप मेरी सखी हैं इसीलिए यह याचना मैंने की है । इसमें कुछ भी संशय मत करना ।८७। इस प्रकार के सम्पद्देवी के वचन का श्रवण कर उस शुचिस्मिता ने कुरुन्ड के समक्ष में उठी हुई सेना को वापिस कर दिया था ।८८। इसके उपरान्त बालसूर्य की आभा वाली शक्तियों से समधिष्ठित हुई थी । वायु के समान वेग वाले इसके अश्व समुद्र की तरङ्गों के ही समान थे ।८९। वे अश्व परम प्रखर खुरों के पुटों से भूमि को बार-२ उल्लिखित कर रहे थे और एक ही प्रवाह से उस कुरुन्ड की सेना के सामने आकर उपस्थित हो गये थे ।९०। वल्गा (लगाम) के विभाग कृत्यों में-सम्वर्त्तन और निवर्त्तन में—गतिभेदों में—चारों में पाँच प्रकार का उनके खुरों का पातन था ।९१।

प्रोत्साहने च संज्ञाभिः करपादाग्रयोनिभिः ।
चतुराभिस्तुरंगस्य हृदयज्ञाभिराहवे ॥९२
अश्वारूढांबिकासैन्यशक्तिभिः सह दानवाः ।
प्रोत्साहिताः कुरण्डेन समयुध्यंत दुर्मदाः ॥९३
एवं प्रवृत्ते समरे शक्तीनां च सुरद्विषाम् ।
अपराजितनामानं हयमारुह्य वेगिनम् ।
अभ्यद्रवद्दुराचारमश्वारूढाः कुरण्डकम् ॥९४
प्रचलद्वेणिसुभगा शरच्चन्द्रकलोज्ज्वला ।
संध्यानुरक्तशीतांशुमंडलीसुन्दरानना ॥९५
स्मयमानेव समरे गृहीतमणिकार्मुका ।

अवाकिरच्छरासारैः कुरण्ड तुरगानना ॥९६
तुरगारूढयोत्क्षिप्ताः समाक्रामन्दिगंतरान् ।
दिशो दश व्यानशिरे रुक्मपुङ्खाः शिलीमुखाः ॥९७
दुर्मदस्याग्रजः क्रुद्धः कुरंडश्चण्डविक्रमः ।
विशिखैः शार्ङ्गनिष्ठ्यूतैरश्वारूढामवाकिरत् ॥९८

और नाम ले लेकर प्रोत्साहन देने में—कर पादाग्र योनियों से—चतुरा और अश्वों के हृदयों के ज्ञान रखने वाली उस युद्ध में विद्यमान थीं ।९२। अश्व पर स्थित अम्बिका की सैन्य शक्तियों के साथ दानव करन्ड के द्वारा प्रोत्साहित दुर्मद दानव युद्ध कर रहे थे ।९३। इस प्रकार से शक्तियों का और सुरद्विषों का युद्ध प्रवृत्त होने पर अपराजित नाम वाले तथा अत्यधिक वेग य युक्त अश्व पर समारूढ़ होकर उस दुष्ट आचार वाले कुरन्ड के ऊपर अश्वारूढ़ा ने आक्रमण किया था ।९४। उसकी चोटी हिलने से परम सुभगा थी तथा शरत्काल के चन्द्रमा की कला के समान ही अत्यन्त उज्ज्वल थी । सन्ध्या के समय में अनुरक्त चन्द्र के मंडल के समान सुन्दर मुख वाली थी ।९५। वह समर में भी स्मित से समन्वित थी तथा उसने मणियों से विनिर्मित धनुष को ग्रहण कर रक्खा था । उस तुरगानना ने उस कुरन्ड के ऊपर बाणों की धाराओं से उसे अवकीर्ण कर दिया था ।९६। तुरगारूढा के द्वारा प्रक्षिप्त बाणों ने दिशाओं के अन्तरों को भी समाक्रान्त कर दिया था । जिनमें सुवर्ण के पुङ्ख थे ऐसे शर दशों दिशाओं में फैल गये थे ।९७। परम प्रचन्ड विक्रम वाला वह कुरन्ड अपने छोटे भाई दुर्मद का जो अग्रज था उसने भी अपने शार्ङ्ग से फेंके हुए बाणों से उस अश्वारूढ़ा को ढक दिया था ।९८।

चण्डैः खुरपुटैः सैन्यं खडण्यन्नतिवेगतः ।
अश्वारूढातुरंगोऽपि मर्दयामास दानवान् ॥९९
तस्य ह्रेषारवाद्दूरमुत्पातांबुधिनिःस्वनः ।
अमूर्च्छयन्ननेकानि तस्यानीतानि वैरिणः ॥१००
इतस्ततः प्रचलितैर्दैत्यचक्रे हयासना ।
निजं पाशायुधं दिव्यं मुमोच ज्वलिताकृति ॥१०१
तस्मात्पाशात्कोटिशोऽन्ये पाशा भुजगभीषणाः ।

समस्तमपि तत्सैन्यं बद्धाबद्धा व्यमूर्छयन् ॥१०२

अथ सैनिकबन्धेन क्रुद्धः स च कुरंडकः ।
शरेणैकेन चिच्छेद तस्या मणिधनुर्गुणम् ॥१०३

छिन्नमौर्वि धनुस्त्यक्त्वा भृशं क्रुद्धा हयासना ।
अंकुशं पातयामास तस्य वक्षसि दुर्मतेः ॥१०४

तेनांकुशेन ज्वलता पीतजीवितशोणितः ।
कुरण्डो न्यपतद्भूमौ वज्ररुग्ण इव द्रुमः ॥१०५

उस अश्वारूढ़ा का जो अश्व था उसने भी अपने प्रचंड खुरों के पुटों के द्वारा अत्यन्त वेग से शत्रु की सेना का खंडन करते हुए दानवों का बहुत अधिक मर्दन किया था ।९९। उस अश्व की हिनहिनाहट की ध्वनि बहुत दूर तक उत्पात से समुद्र की ध्वनि के ही तुल्य थी । उस घोष ने भी वैरी के द्वारा लाये हुए सैन्यों को जो बहुत अधिक थे सबको मूर्च्छित कर दिया था ।१००। उस हयासना ने उस दैत्यों के चक्र में जो भी इधर-उधर प्रचलित थे उन पर अपना पाशायुध जो जाज्वल्यमान आकृति वाला तथा परम दिव्य था छोड़ दिया था ।१०१। उस पाश से करोड़ों अन्य भुजङ्गों के समान भीषण पाश निकले थे । जिन्होंने उस दैत्य की सम्पूर्ण सेना को बाँध-बाँध कर विशेष रूप से मूर्च्छित कर दिया था ।१०२। इसके अनन्तर सैनिकों के बन्धन से वह कुरण्ड बहुत ही अधिक क्रुद्ध हो गया था और उसने अपने एक बाण से उस अश्वारूढ़ा के मणियों के धनुष की मौर्वी को काट डाला था ।१०३। जिस धनुष की मौर्वी कट गयी थी उस धनुष को उसने त्याग दिया था और वह हयानना अत्यन्त ही क्रुद्ध हो गयी थी । फिर उसने उस दुष्ट मति वाले के वक्षःस्थल में अपना अंकुश डाला था ।१०४। जलते हुए उस अंकुश से जिसके जीवित रहते हुए ही रुधिर पी लिया गया था वह कुरण्ड वज्र से छिन्न द्रुम के ही समान भूमि पर गिर गया था ।१०५।

तदंकुशविनिष्ठ्यूताः पूतनाः काश्चिदुद्भटाः ।
तत्सैन्यं पाशनिष्पंदं भक्षयित्वा क्षयं गताः ॥१०६

इत्थं कुरण्डे निहते विंशत्यक्षौहिणीपतौ ।
हतावशिष्टास्ते दैत्याः प्रपलायंत वै द्रुतम् ॥१०७

कुरण्डं सानुजं युद्धे शक्तिसैन्यैर्निपातितम् ।
श्रुत्वा शून्यकनाथोऽपि निशश्वास भुजंगवत् ॥१०८

उस अंकुश से निकली हुईं कुछ परम उद्भट पूतनाएँ उसकी सेना के पाश से निस्यन्द भक्षण करके क्षय को प्राप्त हो गयीं थीं ।१०६। बीस अक्षौहिणी सेनाओं के स्वामी उस कुरण्ड के इस प्रकार से निहत हो जाने पर जो भी मरने से बचे हुए दैत्यगण थे वे शीघ्र ही वहाँ से भाग गये थे । उस युद्ध में छोटे भाई के साथ कुरण्ड को शक्ति की सेनाओं ने मार डाला था । जब यह वृत्तान्त शून्यक पुर के स्वामी ने सुना था तो वह भी भुजंग के ही तुल्य लम्बी श्वास लेने लगा था ।१०७-१०८।

———

करंकादि पंच सेनापति वध

अथाश्वारूढया क्षिप्ते कुरंडे भंडदानवः ।
कुटिलाक्षमिदं प्रोचे पुनरेव युयुत्सया ॥१
स्वप्नेऽपि यन्न संभाव्यं यन्न श्रुतमितः पुरा ।
यच्च नो शंकितं चित्ते तदेतत्कष्टमागतम् ॥२
कुरंडदुर्मदौ सत्त्वशालिनौ भ्रातरौ हितौ ।
दुष्टदास्याः प्रभावोऽयं मायाविन्या महत्तरः ॥३
इतः परं करंकादीन्पंचसेनाधिनायकान् ।
शतमक्षौहिणीनां च प्रस्थापय रणांगणे ॥४
ते युद्धदुर्मदाः शूराः संग्रामेषु तनुत्यजः ।
सर्वथैव विजेष्यंते दुर्विदग्धविलासिनीम् ॥५
इति भंडवचः श्रुत्वा भृशं च त्वरयान्वितः ।
कुटिलाक्षः करंकादीनाजुहाव चमूपतीन् ॥६
ते स्वामिनं नमस्कृत्य कुटिलाक्षेण देशिताः ।
अग्नौ प्रविष्णव इव क्रोधांधा निर्ययुः पुरात् ॥७

इसके अनन्तर जब अश्वारूढ़ा के द्वारा कुरण्ड हत हो गया था तो भंड दानव ने पुनः युद्ध करने की इच्छा से कुटिलाक्ष से यह वचन कहा था ।

।१। जिसकी कभी स्वप्न में भी सम्भावना नहीं की जा सकती है और पहिले इसके कभी जो सुना भी नहीं गया था और जिसकी चित्त में कभी शंका भी नहीं की गयी थी वही यह कष्ट इस समय में आ पड़ा है ।२। कुरन्ड और दुर्मद ये दोनों ही बहुत सत्व शाली भाई थे । इस मायाविनी दुष्ट दासी का कितना अधिक बड़ा प्रभाव है ।३। अब रणाङ्गन में यहाँ से आगे करंक प्रभृति पाँच सेनाधिनायकों को और अक्षौहिणी सेना को रवाना कर दो ।४। वे शूर बहुत ही युद्ध में दुर्मद हैं और संग्रामों में अपने शरीर का त्याग करने वाले हैं । ये लोग पूर्ण रूप से हो उस दुर्विदग्ध विलासिनी को अवश्य जीत लेंगे ।५। इस भंड के वचन को सुनकर अत्यन्त शीघ्रता से युक्त होकर कुटिलाक्ष ने करंक आदि सेनापतियों को वहाँ पर बुला लिया था ।६। कुटिलाक्ष के द्वारा देशित उन्होंने अपने स्वामी को प्रणाम किया था और फिर वे इतने अधिक क्रोधान्ध हो गये थे मानों अग्नि में ही से समुत्पन्न हुए होवें । वे सब फिर उस पुर से युद्ध के लिए निकल कर चले गये थे ।७।

तेषां प्रयाणनिःसाणरणितं भृशदुःसहम् ।
आकर्ण्य दिग्गजास्तूर्णं शीर्णकर्णा जुघूर्णिरे ।।८
शतमक्षौहिणीनां च प्राचलत्केतुमालकम् ।
उत्तरंगतुरंगादि बभौ मत्तमतंगजम् ।।९
ह्रेषमाणहयाकीर्णं क्रन्दद्भटकुलोद्भवम् ।
बृंहमाणगजं गर्जद्रथचक्रं चचाल तत् ।।१०
चक्रनेमिहतक्षोणीरेणुक्षपितरोचिषा ।
बभूव तुहिनासारच्छन्नेनेव विवस्वता ।।११
धूलीमयमिवाशेषमभवद्विश्वमंडलम् ।
क्वचिच्छब्दमयं चैव निःसाणकठिनस्वनैः ।।१२
उद्भूतैर्धूलिकाजालैराक्रांता दैत्यसैनिकाः ।
इयत्तयातः सेनायाः संख्यापि परिभाविता ।।१३
ध्वजा बहुविधाकारा मीनव्यालादिचित्रिताः ।
प्रचेलुर्धूलिकाजाले मत्स्या इव महोदधौ ।।१४

उनके प्रयाण का निःसाण रणित अत्यन्त ही दुस्सह था । दिग्गजों ने भी जब उसको सुना था वे भी शीर्ण कानों वाले होते हुए घूर्णित हो गये

थे ।८। सौ अक्षौहिणी सेनाओं के झण्डों की मालाएँ फहरा रही थीं और उस सेना में बड़े ऊँचे अश्व थे तथा मदमत्त हाथी भी उसमें थे ।९। वह सेना ऐसी थी कि उसमें हिनहिनाने वाले अश्वों की धूम थी तथा उसमें चीखते हुए भटों का समुदाय भी था—एवं बड़े-बड़े विशालकाय हाथी थे और गर्जना करते हुए रथों का समुदाय था ऐसी वह सेना वहाँ से रवाना हुई थी ।१०। रथों के पहियों से खुदी हुई पृथ्वी की रेणु से जिसकी कान्ति ढक गयी थी ऐसा सूर्य उस समय में ऐसा ही दिखलाई दे रहा था मानों तुहिनासार से ढक गया हो अर्थात् कुहरा में छिप गया होवे ।११। यह पूर्ण विश्व का मंडल ही धूलि से परिपूर्ण हो गया था । उस सेना के निर्गमन की कठोर ध्वनि से चारों ओर घोष ही घोष व्याप्त हो रहा था ।१२। उस समय में धूलि के ऐसे जाल छा गये थे कि समस्त दैत्यों के सैनिक इस धूलि से समाक्रान्त हो गये थे अर्थात् सभी धूलि से भर गये थे । अतएव इयत्ता से उसकी संख्या भी परिभावित थी ।१३। उस सेना में बहुत प्रकार की ध्वजायें थीं जो मीन तथा व्याल आदि से चित्रित हो रही थीं । वे सभी सेनाएँ उस धूलि से परिपूर्ण जाल में महोदधि में मत्स्यों के तुल्य चल रही थी ।१४।

तानापतत आलोक्य ललितासैनिकं प्रति ।
त्रित्रेसुरमराः सर्वे शक्तीनां भङ्गशङ्कया ।।१५
ते करङ्कमुखाः पञ्च सेनापतय उद्धताः ।
सर्पिणीं नाम समरे मायां चक्रु र्महीयसीम् ।।१६
तैः समुत्पतिता दृष्टा सर्पिणी रणशांबरी ।
धूम्रवर्णा च धूम्रोष्ठी धूम्रवर्णपयोधरा ।।१७
महोदधिरिवात्यंतं गंभीरकुहरोदरी ।
पुरश्चचाल शक्तीनां त्रायग्रंती मनो रणे ।।१८
कद्रूरिवापरा दृष्टा बहुसर्पविभूषणा ।
सर्पाणामुद्भवस्थानं मायामयशरीरिणाम् ।।१९
सेनापतीनां नासीरे वेल्लयंती महीतले ।
वेल्लितं बहुधा चक्रे घोरारावविराविणी ।।२०
तथैव मायया पूर्वं तेऽसुरेंद्रा व्यजीजयन् ।
करंकाद्या दुरात्मानः पञ्चपञ्चत्वकामुकाः ।।२१

जिस समय में इतनी विशाल सेनाएँ धावा करने के लिए ललिता देवी के सैनिक की ओर आ रही थीं तो सभी देवगण शक्तियों के भङ्ग की शंका से डर गये थे ।१५। वे करंक जिनमें प्रमुख था पाँचों सेनापति गण बहुत ही उद्धत थे । उन्होंने सर्पिणी नाम वाली एक महती माया को उस समर स्थल में किया था ।१६। उनके द्वारा उठी हुई वह दुष्टा रणशाम्बरी सर्पिणी धूम्र वर्ण की थी । उसके होठ भी धूम्र वर्ण के ही थे और धूम्र ही उसके पयोधर थे ।१७। वह महासागर के ही तुल्य अत्यन्त गम्भीर कुहर उदर वाली थी । वह रणस्थल में मन को भयभीत करती हुई ही शक्तियों के आगे चली थी ।१८। वह बहुत से सर्पों के भूषण वाली दूसरी कद्रू के ही समान थी और बहुत ही दुष्टा थी । वह माया से परिपूर्ण सर्पों के जनन का स्थान थी ।१९। सेनापतियों के नासीर में महीतल को वेल्लित करती हुई वह जा रही थी । उसका महान घोर शब्द था जिसको वह कर रही थी और प्रायः उसने उस चक्र को वेल्लित सा कर दिया था ।२०। वे पाँचों सेनापति भी पञ्चत्व (मृत्यु) के ही कामुक थे और वे करंक आदि सब बहुत ही दुरात्मा थे । उसी भाँति से माया के साथ पूर्व में सब असुरेन्द्र अजित हो रहे थे ।२१।

अथ प्रववृते युद्धं शक्तीनाममरद्रुहाम् ।
अन्योन्यवीरभाषाभिः प्रोत्साहितघनक्रुधाम् ॥२२

अत्यंतसंकुलतया न विज्ञातपरस्परा: ।
शक्तयो दानवश्चैव प्रजह्रुः शस्त्रपाणयः ॥२३

अन्योन्यशस्त्रसंघट्टसमुत्थितहुताशने ।
प्रवृत्तविशिखस्रोतः प्रच्छन्नहरिदन्तरे ॥२४

बहुरक्तनदीपूरह्रियमाणमतंगजे ।
मांसकर्दमनिर्मग्ननिष्पंदरथमंडले ॥२५

विकीर्णकेशशैवालविलसद्रक्तनिर्झरे ।
अतिनिष्ठुरविध्वंसि सिंहनादभयङ्करे ॥२६

रजोऽन्धकारतुमुले राक्षसीतृप्तिदायिनि ।
शस्त्रीशरीरविच्छिन्न दैत्यकंठोत्थितासृजि ॥२७

प्रवृत्ते घोरसंग्रामे शक्तीनां च सुरद्विषाम् ।
अथ स्वबलमादाय पञ्चभिः ेरिता सती ।
सर्पिणी बहुधा सर्पान्विससर्ज शरीरतः ॥२८

इसके उपरान्त उन शक्तियों का और देव द्रोहियों का युद्ध प्रवृत्त हुआ था । वे परस्पर में सभी वीरों की भाषा में घने क्रोध को प्रोत्साहन दे रहे थे ।२२। उस समय में अत्यधिक संकुलता थी और परस्पर में भी एक दूसरे का ज्ञान नहीं हो रहा था । दानव गण और शक्तियों ने अपने-अपने करों में हथियार ग्रहण करके मारकट की थी ।२३। परस्पर में जो आयुधों का संघट्टन हो रहा था उस रगड़ से आँच निकल रही थी । समस्त दिशाएँ उस आयुधों की टक्कर से समुत्पन्न अग्नि के स्रोत से प्रच्छन्न हो गयी थीं ।२४। उस युद्ध में इतना रुधिरपात हुआ था कि उसकी नदियाँ बह निकली थीं और उसमें हाथी भी छिप गये थे । माँस का तो इतना विशाल कीच हो गया था कि उसमें रथों का मंडल गतिहीन हो गया था ।२५। वह युद्ध स्थल रुधिर-स्राव से पूर्ण था तथा उसमें जो केशों का जाल था वह शैवाल के ही सदृश दिखाई दे रहा था । वह युद्धस्थल अतीव निष्ठुर एवं विध्वंस समन्वित था । वहाँ पर जो सैनिकों का सिंहनाद हो रहा था उससे वह बहुत ही भयावह हो रहा था ।२६। उस समय जबकि शक्तियों का और असुरों का घोर संग्राम प्रवृत्त हुआ था तो वह बहुत ही तुमुल था और राक्षसियों को तृप्ति प्रदान करने वाला था । उस समय घोर जब अन्धकार छाया हुआ था और शस्त्रधारियों के शरों से निरन्तर दैत्यों के कंठों से रुधिर निकल रहा था । इसके अनन्तर अपने दल को लेकर पाँचों सेनापतियों के द्वारा प्रेरित हुई सर्पिणी ने प्रायः शरीर से सर्पों का सृजन किया था ।२७-२८।

तक्षककर्कोटसमा वासुकिप्रमुखत्विषः ।
नानाविधवपुर्वर्णा नानादृष्टिभयङ्कराः ॥२९
नानाविधविषज्वालानिर्दग्धभुवनत्रयाः ।
दारदं वत्सनाभं च कालकूटमथापरम् ॥३०
सौराष्ट्रं च विषं घोरं ब्रह्मपुत्रमथापरम् ।
प्रतिपन्नं शौक्लिकेयमन्यान्यपि विषाणि च ॥३१
व्यालैः स्वकीयवदनैर्विलोलरसनाद्वयैः ।

विकिरंतः शक्तिसैन्ये विसस्रुः सर्पिणीतनोः ॥३२
धूम्रवर्णा द्विवदना सर्पा अतिभयंकराः ।
सर्पिण्या नयनद्वंद्वादुत्थिताः क्रोधदीपिताः ॥३३
पीतवर्णास्त्रिफणका दंष्ट्राभिर्विकटाननाः ।
सर्पिण्याः कर्णकुहरादुत्थिताः सर्पकोटयः ॥३४
अग्रे पुच्छे च वदनं धारयंतः फणान्वितम् ।
आस्यादा नीलवपुषः सर्पिण्याः फणिनोऽभवन् ॥३५

वे सब सर्प भी तक्षक और कर्कोटक के ही सदृश थे तथा वासुकि सर्प के समान कान्ति वाले थे। उनके वर्ण और शरीर भी अनेक वर्ण के थे तथा नाना भाँति की दृष्टि से भयानक थे।२६। अनेक प्रकार के विषों की ज्वाला से तीनों लोकों के निर्दग्ध करने वाले थे। वह विष भी कितने ही प्रकार का था—दारद-वत्सनाभ-कालकूट-सौराष्ट्र-घोर विष तथा ब्रह्म पुत्र विष था। शौक्लिकेय विष एवं अन्यान्य भी कई प्रकार के विष उनके प्रतिपन्न थे।३०-३१। ये सभी तरह के विष उस सर्पिणी के शरीर से निकल रहे थे जो कि सर्प उस समय में समुत्पन्न हुए थे। उन सर्पों के मुख ऐसे थे जिनमें बहुत ही चञ्चल दो जीभें लपलपा रहा थी और वे विषों को उस शक्तियों की सेना में फैला रहे थे।३२। उन सर्पों के दो-दो मुख धूम्रवर्ण के थे और वे सर्प बहुत ही अधिक भयंकर थे। उस सर्पिणी के दोनों नेत्रों से वे समुत्थित हुए थे और महान् क्रोध से दीपित थे।३३। उन सर्पों के पीतवर्ण थे तथा तीन-तीन फण थे। उनकी दाढ़ों से उनके मुख बहुत ही विकट थे। उस सर्पिजी के कानों के कुहरों से करोड़ों ही सर्प उत्थित हो गये थे।३४। वे आगे और पूछो में फणों से समन्वित मुखों को धारण करने वाले थे। आस्याद और नीले शरीरों वाले उस सर्पिणी के सर्प हुए थे।३५।

अन्यैश्च बलवर्णाश्च चतुर्वक्त्राश्चतुष्पदाः ।
नासिकाविवरात्तस्या उद्गता उग्ररोचिषः ॥३६
लम्बमानमहाचर्मावृत्तस्थूलपयोधरात् ।
नाभिकुण्डाच्च बहवो रक्तवर्णा भयानकाः ॥३७
हलाहलं वहंतश्च प्रोत्थिताः पन्नगाधिपाः ।

विदशंत: शक्तिसेनां दहंतो विषवह्निभिः ॥३८
बध्नंतो भोगपाशैश्च निघ्नंतः फणमण्डलैः ।
अत्यंतमाकुलां चक्रुर्ललितेशीचमूममी ॥३९
खड्यमाना अपि मुहुः शक्तीनां शस्त्रकोटिभिः ॥४०
उपर्युपरि वर्धंते सपिण्डप्रविसर्पिणः ।
नश्यन्ति बहवः सर्पा जायन्ते चापरे पुनः ॥४१
एकस्य नाशसमये बहवोऽन्ये समुत्थिताः ।
मूलभूता यतो दुष्टा सर्पिणी न विनश्यति ॥४२

और अन्य-अन्य वर्ण तथा बल से युक्त—चार मुखों वाले-चार पदों वाले उस सर्पिणी के नासिका के विवर से अत्यन्त उग्र कान्ति वाले उद्गत हो गये थे।३६। लम्बे महासर्प से समावृत स्थूल पयोधरों से और उसकी नाभि के कुण्ड से बहुत से रक्त वर्ण वाले तथा भयानक उत्पन्न हुए थे।३७। जो सर्प हालाहल को अपने मुखों से बहा रहे थे। ऐसे पन्नगाधिप समुत्थित हो गये थे। वे सब उस शक्तियों की सेना के सैनिकों का दर्शन कर रहे थे तथा विषों की अग्नियों से दहन कर रहे थे।३८। वे अपने भोग के पाशों से सैनिकों को बांध रहे थे और फणों के मण्डलों से निहनन भी कर रहे थे। ये ललिता की सेना को अत्यन्त ही समाकुल कर रहे थे।३९। यद्यपि वे शक्तियों के शस्त्रों के द्वारा जो करोड़ों ही थे बारम्बार काटे भी जा रहे थे तो भी काम कर रहे थे।४०। वे ऊपर-ऊपर में सपिण्ड प्रविसर्पी बढ़ रहे थ। उनमें बहुत से सर्प नष्ट हो जाया करते हैं तथापि वे पुनः समुत्पन्न हो जाते हैं और दूसरे भी पैदा हो जाया करते हैं।४१। जब एक का नाश का समय होता है तो अन्य बहुत से पैदा हो जाया करते हैं। कारण यही था कि जो मूल भूता सर्पिणी थी जिससे वे सब पैदा होते थे वह नष्ट नहीं होती है। अतः उससे बराबर सर्प समुत्पन्न होते चले जाते थे।४२।

अतस्तत्कृतसर्पाणां नाशे सर्पांतरोद्भवः ।
ततश्च शक्तिसैन्यानां शरीराणि विषानलैः ॥४३
दह्यमानानि दुःखेन विप्लुतान्यभवन्रणे ।
किंकर्तव्यविमूढेषु शक्तिचक्रेषु भोगिभिः ॥४४

पराक्रमं बहुविधं चक्रुस्ते पञ्च दानवाः ।
करीन्द्री गर्दभशतैर्युक्तं स्यन्दनमास्थितः ॥४५
चक्रेण तीक्ष्णधारेण शक्तिसेनाममर्दयत् ।
वज्रदंताभिधश्चान्यो भंडदैत्यचमूपतिः ॥४६
वज्रबाणाभिघातेन ह्युष्ट्रतो हि रणं व्यधात् ।
अथ वज्रमुखश्चैव चक्रिवंतं महत्तरम् ॥४७
आरुह्य कुन्धाराभिः शक्तिचक्रममर्दयत् ।
वज्रदंताभिधानोऽन्यश्चमूनामधिपो बली ॥४८
गृध्रयुग्मरथारूढः प्रजहार शिलीमुखैः ।
तैः सेनापतिभिर्दुष्टैः प्रोत्साहितमथाहवे ॥४९

इसीलिये उसके शरीर से समुत्पन्न सर्पों के नाश होने पर भी दूसरे अन्य सर्पों की समुत्पत्ति हो जाया करती थी । उनके विषाग्नि से शक्तियों की सेनाओं के शरीर दह्यमान हो रहे थे और रण में वे दुःख से विप्लुत थे । उन भोगियों के द्वारा शक्तियों के चक्र किंकर्त्तव्य विमूढ़ से हो गये थे ।४३-४४। उन पाँचों दानवों ने बहुत तरह का पराक्रम किया था । वह करीन्द्री सैकड़ों गर्दभों से युक्त एक रथ पर समास्थित था ।४५। उसने अपने चक्र के द्वारा जिसकी बहुत ही अधिक तीक्ष्णधार थी शक्ति सेना का मर्दन किया था । और एक अन्य वज्रदन्त नामक भण्डासुर का सेनापति था ।४६। वज्रवाण के अभिघात के द्वारा उष्ट्र से उसने रण किया था । इसके पश्चात् वज्रमुख एक अधिक बड़े चक्रिवान् पर समवस्थित था ।४७। वह समारोहण करके भाले की धाराओं से वह शक्तियों की सेना का मर्दन करता था । एक अन्य वज्रदन्त नामक सेनापति बहुत ही बलवान् था ।४८। दो गृध्रों के रथ पर वह समारूढ़ था और वाणों के द्वारा सेना का निहनन कर रहा था । वे सेनापति अत्यन्त दुष्ट थे और उनके द्वारा युद्ध में सेना को प्रोत्साहन दिया गया था ।४९।

शतमक्षौहिणीनां च निपपातैकहेलया ।
सर्पिणी च दुराचारा बहुमायापरिग्रहा ॥५०
क्षणे क्षणे कोटिसंख्यान्विससर्ज फणाधरान् ।

तथा विकलितं सैन्यमवलोक्य रुषाकुला ।।५१

नकुली गरुडारूढा सा पपात रणाजिरे ।

प्रतप्तकनकप्रख्या ललितातालुसम्भवा ।।५२

समस्तवाङ्मयाकारा दंतैर्वज्रमयैर्युता ।

सर्पिण्यभिमुखं तत्र विससर्ज निजं बलम् ।।५३

तयाधिष्ठिततुंगांसः पक्षविक्षिप्तभूधरः ।

गरुडः प्राचलद्युद्धे सुमेरुरिव जङ्गमः ।।५४

सर्पिणीमायया जातान्सर्पान्दृष्ट्वा भयानकान् ।

क्रोधरक्तेक्षणं व्यात्तं नकुली विदधे मुखम् ।।५५

अथ श्रीनकुलीदेव्या द्वात्रिंशद्दंतकोटयः ।

द्वात्रिंशत्कोटयो जाता नकुलाः कनकप्रभाः ।।५६

सौ अक्षौहिणी सेना का एक ही हेला से निपतन हो गया था। वह सर्पिणी बहुत ही दुष्ट आचार वाली थी और बहुत-सी मायाओं के परिग्रह वाली भी थी।५०। वह एक-एक क्षण में करोड़ों-करोड़ों सर्पों का सृजन कर रही थी। इसके पश्चात् वह सम्पूर्ण सेना बेचैन हो गयी थी। ऐसा देखकर वह—देवी बहुत ही रोष से युक्त हो गयी थी।५१। वह नकुली गरुड़ पर समारूढ़ा उस रणाङ्गन में आ गयी थी। वह ललिता देवी के तालु से उत्पन्न हुई थी और तपे हुए सुवर्ण के समान थी।५२। उसका समस्त वाङ्मय आकार था और उसके दाँत वज्रमय थे। उसने वहाँ पर अपना बल उस सर्पिणी के समक्ष में सृजन किया था।५३। वह गरुड़ भी ऐसा था जिसके बहुत उच्च अंश थे और वह अपने पंखों से पर्वतों को भी विक्षिप्त कर रहा था। वह गरुड़ उस युद्ध में चल दिया था जो साक्षात् जङ्गम सुमेरु के ही समान था।५४। सर्पिणी की माया से समुत्पन्न परमाधिक भयानक सर्पों को देखकर स नकुली ने क्रोध से लाल नेत्रों वाला अपना मुख खुला हुआ कर दिया था।५५। इसके पश्चात् श्री नकुली देवी की बत्तीस करोड़ सेना नकुलों की समुत्पन्न हो गयी थी और सुवर्ण की प्रभा वाले नकुल उत्पन्न हो गये थे।५६।

इतस्ततः खण्डयन्तः सर्पिणीसर्पमण्डलम् ।

निजदंष्ट्राविमर्देन नाशयन्तश्च तद्विषम् ।

व्यभ्रमन्समरे घोरे विषघ्नाः स्वर्णबभ्रवः ।।५७
उत्कर्णा क्रोधसम्पर्काद्धूनिताशेषलोमकाः ।
उत्फुल्ला नकुला व्यात्तवदना व्यदशन्नहीन् ।।५८
एकैकमायासर्पस्य बभ्रुरेकैक उद्गतः ।
तीक्ष्णदंतनिपातेन खण्डयामास विग्रहम् ।।५९
भोगिभोगसृतै रक्तैः सृक्किणी शोणतां गते ।
लिहंतो नकुला जिह्वापल्लवैः पुप्लुवुर्मृधे ।।६०
नकुलैर्दश्यमानानामत्यन्तचटुलं वपुः ।
मुहुः कुण्डलितैर्भोगैः पन्नगानां व्यचेष्टत ।।६१
नकुलावलिदष्टानां नष्टासूनां फणाभृताम् ।
फणाभरसमुत्कीर्णा मणयो व्यरुचन्रणे ।।६२
नकुलाघातसंशीर्णफणाचक्रविनिर्गतैः ।
फणयस्तन्महोद्रोहवह्निज्वाला इवाबभुः ६३

वे नकुल सर्पिणी के सर्पों के मण्डल को अपनी दाढ़ों के विमर्दन से उनके विषों का विनाश कर रहे थे तथा उस महान् घोर समर स्थल में इधर-उधर वे नकुल स्वर्ण के समान चमकते हुए विष का नाश करने वाले भ्रमण करने लगे थे ।५७। उन समस्त नकुलों के दोनों कान ऊपर की ओर उठे हुए थे और क्रोध के सम्पर्क से वे अपने लोमों को उद्धूलित कर रहे थे । इस तरह से फूले हुए अपने मुँहों को खोले हुए सर्पों का विनाश करने वाले हुए थे ।५८। एक-एक माया से निर्मित सर्प के लिये एक-एक ही नकुल उद्गत हो गया था और ये अपने परमाधिक तीक्ष्ण दाँतों के द्वारा सर्पों के शरीरों का खण्डन कर रहे थे ।५९। सर्पों के फणों से निकले हुए रुधिर से नकुलों की सृक्किणियाँ लाल हो गयी थीं और वे अपनी जिह्वा से उस रुधिर को चाटते हुए स्वयं भी उस युद्ध में प्लावित हो गये थे ।६०। उन नकुलों के द्वारा काटे गये उनके शरीर अत्यन्त चटुल हो गये थे और बारम्बार सर्पों के कुण्डलित भोगों के साथ वे विचेष्टा कर रहे थे ।६१। नकुलों के समुदाय के द्वारा काटे गये सर्पों के प्राण जा चुके थे और उनके फणों के भार से निकल कर गिरी हुई मणियाँ उस समराङ्गण में चमक

रहीं थीं ।६२। उन नकुलों के प्रहारों के द्वारा सर्पों के फणों के समुदाय से निर्गत मणियों के समूहों से वे समस्त सर्प उस समर स्थल में अग्नियों की ज्वालाओं के ही समान दिखलायी दे रहे थे ।६३।

एवं प्रकारतो बभ्रुमण्डलैरवखण्डिते ।
मायामये सर्पजाले सर्पिणीकोपमादधे ।।६४
तया सह महद्युद्धं कृत्वा सा नकुलेश्वरी ।
गारुडास्त्रमतिक्रूरं समाधत्त शिलीमुखे ।।६५
तद्गरुडास्त्रमुद्दामज्वालादीपितदिङ्मुखम् ।
प्रविश्य सर्पिणीदेहं सर्पमायां व्यशोषयत् ।।६६
मायाशक्तेर्विनाशेन सर्पिणी विलयं गता ।
क्रोधं च तद्विनाशेन प्राप्ताः पञ्च चमूवराः ।।६७
यद्बलेन सुरान्सर्वान्सेनान्यस्तेऽवमेनिरे ।
सा सर्पिणी कथाशेषं नीता नकुलवीर्यतः ।।६८
अतः स्वबलनाशेन भृशं क्रुद्धाश्चमूचराः ।
एकोद्यमेन शस्त्रौघैर्नकुलीं तामवाकिरन् ।।६९
एकैव सा तार्क्ष्यरथा पञ्चभिः पृतनेश्वरी ।
लघुहस्ततया युद्धं चक्रे वै शस्त्रवर्षिणी ।।७०

इस प्रकार से नकुलों के समुदाय के द्वारा जब सर्पों के मंडल अवखण्डित हो गये थे तो मायामय सर्पों का समूह नष्ट हो जाने पर सर्पिणी को बड़ा भारी क्रोध हो गया था ।६४। उस सर्पिणी के साथ उस नकुलीश्वरी ने महान् युद्ध करके उसने अपने शिलीमुख में अत्यधिक क्रूर गरुडास्त्र धारण किया था ।६५। उस गरुडास्त्र ने जिसमें अत्यधिक ज्वालाएँ निकल रहीं थीं और समस्त दिशाएँ जिनसे चमक रही थीं, सर्पिणी के देह में प्रवेश किया था और उस सर्पों की माया का शोषण कर दिया था ।६६। जब उसको उस माया की शक्ति का विनाश हो गया था तब वह सर्पिणी विलीन हो गयी थी और उसके विनाश हो जाने से वे जो पाँच सेनापति थे उनको बहुत अधिक क्रोध हो गया था ।६७। वे सेनानी जिसके बल से समस्त सुरों का भी अपमान कर देते थे वह सर्पिणी के पराक्रम से विनष्ट हो गयी थी

और उसकी केवल कथा ही शेष रह गयी थी ।६८। इसीलिए अपने बल के विनाश हो जाने से वे चमूवर बहुत क्रोधित हुए थे और उन्होंने सबने मिलकर अपने शस्त्रों के समूह से उस नकुली पर प्रबल प्रहार किये थे ।६९। उस सेना की स्वामिनी अकेली ही थी और तार्क्ष्य के रथ पर समारूढ़ थी । उस अकेली ही ने उन पाँचों सेनापतियों के साथ शस्त्रों की वर्षा करने वाली ने बहुत ही हल्के हाथ होने से युद्ध किया था ।७०।

पट्टिशैर्मुसलैश्चैव भिन्दिपालैः सहस्रशः ।
वज्रसारमयैर्दन्तैर्व्यदशन्मर्मसीमसु ।।७१
ततो हाहारुतं घोरं कुर्वाणा दैत्यकिङ्कराः ।
उदग्रदंशनकुलैर्नकुलैराकुलीकृता ।।७२
उत्पत्य गगनात्केचिद्घोरचीत्कारकारिणः ।
दंशंतस्तद्द्विषां सैन्यं सकुलाः प्रज्वलत्क्रुधः ।।७३
कर्णेषु दृष्ट्वा नासायामन्ये दष्टाः शिरस्तटे ।
पृष्ठतो व्यदशन्केचिदागत्य व्याकृतक्रियाः ।।७४
विकलाश्छिन्नवर्माणो भयविस्रस्तशस्त्रिकाः ।
नकुलैरभिभूतास्ते न्यपतन्नमरद्रुहः ।।७५
केचित्प्रविश्य नकुला व्यात्तान्यास्यानि वैरिणाम् ।
भोगिभोगानि वाकृष्य व्यदशन्रसनातलम् ।।७६
अन्ये कर्णेषु नकुलाः प्राविशन्देववैरिणाम् ।
सूक्ष्मरूपा विशंति स्म नानारन्ध्राणि बभ्रवः ।।७७

पट्टिश—मुसल और सहस्रों भिन्दिपालों से तथा वज्र की शक्ति से पूर्ण दाँतों से मर्मस्थलों में दंशन किया था प्रहार किया था ।७१। फिर तो समस्त दैत्यगण हाहाकार की ध्वनि करते हुए उन उदग्र दंशन करने वाले नकुलों के द्वारा बेचैन हो गये थे ।७२। उनमें कुछ तो आकाश से परम घोर चीत्कार करते हुए उत्पन्न कर रहे थे । अत्यन्त क्रोध से युक्त नकुल शत्रुओं की सेना का दंशन कर रहे थे ।७३। उन असुरों की उस समय में बहुत ही बुरी दशा हो गयी थी । कुछ तो कानों में काटे गये थे—कुछ नासिकाओं में और कुछ शिरों में दंशित किये गये थे एवं कुछ पीठ पर दंशन किये गये

थे—इस तरह से सब की क्रियाएँ विनष्ट हो गयी थीं ।७४। ऐसे सबके सब वे बेचैन हो गये थे और उनके कवच छिन्न हो गये थे। भय के कारण उन्होंने अपने शस्त्रों को छोड़ दिया था। वे समस्त असुर नकुलों से पराभव को प्राप्त होकर निमलित हो गये थे ।७५। कुछ नकुल तो शत्रुओं के खुले हुए मुखों में प्रवेश करके सर्पों के मुखों (फनों) को खींचकर उनके रसना के तलों को काट रहे थे ।७६। अन्य नकुल शत्रुओं के कानों के छिद्रों में प्रवेश करके उन्हें दंशित कर रहे थे तथा वे नकुल उनके अनेक छिद्रों में में सूक्ष्म रूपों वाले होकर प्रविष्ट हो रहे थे ।७७।

इति तैरभिभूतानि नकुलैरयलोकयन् ।
निजसैन्यानि दीनानि करङ्कः कोपमास्थितः ।।७८
अन्येऽपि च चमूनाथा लघुहस्ता महाबलाः ।।७६
प्रतिबभ्रु शरस्तोमान्ववृषुर्वारिदा इव ।
दैत्यसैन्यपतिप्रौढकोदंडोत्थाः शिलीमुखाः ।
बभ्रूणां दन्तकोटीषु कठोरघट्टनं व्यधुः ।।८०
चमूपतिशरव्यूहैराहतेभ्यः परःशतैः ।
बभ्रूणां वज्रदंतेभ्यो निश्चक्राम हुताशनः ।
पञ्चापि ते चमूनाथाविसृष्टैरेकहेलया ।।८१
स्फुरत्फलैः शरकुलैर्बभ्रुसेनां व्यमर्दयत् ।
इतस्ततश्चमूनाथविक्षिप्तशरकोटिभिः ।
विशीर्णगात्रा नकुला नकुलीं पर्यवारयन् ।।८२
अथ सा नकुली बाणी वाङ्मयस्यैकनायिका ।
नकुलानां परावृत्या महांतं रोषमाश्रिता ।।८३
अक्षीणनकुलं नाम महास्त्रं सर्वतोमुखम् ।
वह्निज्वालापरीताग्र संदधे शार्ंगधन्वनि ।।८४

इस प्रकार से अपनी सेनाओं को नकुलों के द्वारा अभिभूत हुई देख कर तथा अपने सैनिकों को दीन अवलोकन करके करङ्क को बहुत अधिक क्रोध हो गया था ।७८। अन्य भी जो सेनानी थे वे भी बहुत ही हल्के हाथों

वाले और महान बलवान थे ।७९। उनने प्रत्येक नकुल के ऊपर शरों के समूहों की मेघों की भाँति वर्षा की थी। दैत्यों के सेनापतियों के परम प्रौढ़ धनुषों से निकले हुए बाणों ने नकुलों के करोड़ों दाँतों पर अथवा दाँतों के कोनों पर अतीव कठोर घट्टन किया था। अर्थात् जोरदार प्रहार किये थे ।८०। सैकड़ों से भी अधिक सेनानियों के बाणों के समुदायों से आहत नकुलों के वज् के समान दाँतों से अग्नि की चिनगारियाँ निकल रही थीं। उन पाँचों सेनापतियों ने एक ही हल्ले में मिलकर सेना का विमर्दन कर दिया था। सेनानियों के द्वारा छोड़े हुए बाणों से जो करोड़ों की संख्या में थे विशीर्ण शरीरों वाले विचारे नकुल इधर-उधर घूमते गए नकुली के आस-पास घिरकर समागत हो गये थे ।८१-८२। इसके अनन्तर वाङ्मय की एक देवता वह नकुली नकुलों की परावृत्ति से बड़े भारी क्रोध में भर गयी थी। ।८३। उस नकुली ने अक्षीण नकुल नामक महास्त्र को जिसका सभी ओर मुख था और जो वह्नि की ज्वालाओं से घिरे हुए अग्रभाग वाला था उस को अपने धनुष पर चढ़ाया था ।८४।

तदस्त्रतो विनिष्ठ्यूता नकुलाः कोटिसंख्यकाः ।
वज्राङ्गा वज्रलोमानो वज्रदंष्ट्रा महाजवाः ।।८५
वज्रसाराश्च निबिडा वज्रजालभयंकराः ।
वज्राकारैर्नखैस्तूर्णं दारयन्तो महीतलम् ।।८६
वज्ररत्नप्रकाशेन लोचनेनापि शोभिताः ।
वज्रसंपातसदृशा नासाचीत्कारकारिणः ।।८७
मर्दयन्ति सुरारातिसैन्यं दशनकोटिभिः ।
पराक्रमं बहुविधं तेनिरे ते निरेनसः ।।८८
एव नकुलकोटीभिर्वज्रघोरैर्महाबलैः ।
विनष्टाः प्रत्यवयवं विनेशुर्दानवाधमाः ।।८९
एवं वज्रमयैर्वभ्रुमंडलैः खडिते बले ।।९०
शताक्षौहिणिके संख्ये ते स्वमात्रावशेषिताः ।
अतित्रासेन रोषेण गृहीताश्च चमूवराः ।
संग्राममधिकं तेनुः समाकृष्टशरासनाः ।।९१

उसके अस्त्र से निकले हुए करोड़ों नकुल बाहिर हुए थे जिनके वज्र के समान अङ्ग थे—वज्र जैसे ही लोम थे और वज्र के तुल्य दंष्टाएँ थीं तथा उनका महान् वेग था ।८५। वे सभी वज्र के समसार वाले—निविड़ और वज्र जाल के सदृश भयंकर थे । उनके नख भी वज्र जैसे आकार वाले थे उनसे वे इस महीतल को विदीर्ण कर रहे थे ।८५-८६। वे वज्र रत्न के समान प्रकाश वाले नेत्रों से भी शोभा वाले थे और जैसे वज्र का पात होता है वैसा ही उनका सम्पात भी था । वे अपनी नासिकाओं से चीखें मारने वाले थे ।८७। वे अपने दाँतों के कोनों से असुरों के सेनाओं का मर्दन करते हैं । निरपराधी उन्होंने अनेक प्रकार के पराक्रम को प्रदर्शित किया था ।८८। इस रीति से महान बल वाले तथा वज्र के तुल्य घोर नकुलों की कोटियों से वे अधम दानव अपने शरीरों के प्रत्येक अवयवों से विनष्ट हो गये थे ।८९। इस तरह वज्र पूर्ण नकुलों के मण्डलों से दैत्यों की सेनाएँ छिन्न-भिन्न हो गयो थीं ।९०। सौ अक्षौहिणी की संख्या में वे केवल स्वयं ही बचे थे तब तो उनने बड़े क्रोध से और अत्यधिक त्रास से उन चमूवरों को ग्रहण किया था । अपने धनुषों को खींच कर उन्होंने और अधिक संग्राम किया था ।९१।

तैः समं बहुधा युद्धं तन्वाना नकुलेश्वरी ।
पट्टिशेन करंकस्य चिच्छेद कठिनं शिरः ।।९२

काकवाशितमुख्यानां चतुर्णामपि वैरिणाम् ।
उत्पत्योत्पत्य तार्क्ष्येण व्यलुनादसिना शिरः ।।९३
तादृशं लाधवं दृष्ट्वा नकुल्या श्यामलांबिका ।।९४

बहु मेने महासत्त्वां दुष्टासुरविनाशिनाम् ।
निजांगदेवतत्त्वं च तस्यै श्यामांबिका ददौ ।।९५
लोकोत्तरे गुणे दृष्टे कस्य न प्रीतिसंभवः ।
हतशिष्टा भीतभीता नकुलीशरणं गताः ।।९६
सापि तान्वीक्ष्य कृपया मा भैष्टेति विहस्य च ।
भवद्राज्ञे रणोदंतमशेषं च निबोधत ।।९७
तयैवं प्रेषिताः शीघ्रं तदालोक्य रणक्षितिम् ।

मुदितास्ते पुनर्भीत्या शून्यकायां पलायिता: ।।६८
तदुदंत तत: श्रुत्वा भंडश्चंडो रुषाभवत् ।।६६

उस नकुलेश्वरी ने उनके साथ अनेक प्रकार से संग्राम करते हुए पट्टिश से करङ्क का शिर को काट दिया था जो महान कठिन था ।६२। वे चार शत्रु थे जिनमें काकवाशित प्रमुख था । ऊपर की ओर उछाल खा-खाकर तार्क्ष्य खड्ग से उनका शिर काट दिया था ।६३। श्यामलाम्बिका ने उस तरह की हाथ की सफाई नकुली की देखी थी और उसको महान सत्व वाली और दुष्ट असुरों के विनाश करने वाली को बहुत मान लिया था । फिर उस श्यामाम्बिका ने अपने अ ग का जो देव तत्त्व था वह उसको दे दिया था ।६४-६५। जब अलौकिक गुण दिखाई देता है तो किसके हृदय में प्रीति समुत्पन्न नहीं हुआ करती है । जो भी नकुल मरने से बचे हुए थे वे बहुत ही भयभीत होकर उन बकुली की शरण में गये थे ।६६। उसने भी उनको देखकर कि ये डरे हुए हैं कृपा करके कहा था—डरो मत—और वह हंस गयी थी । उसने कहा था कि आप अपने राजा को इस संग्राम का सब समाचार बतादो ।६७। इस रीति से बस देवी के द्वार भेजे गये उनने उस समय में युद्ध भूमि का अवलोकन किया था और वे भय से मुदित होकर फिर सब शून्य का नगरी में भाग कर चले गये थे ।६८। उस समा-चार को सुनकर वह प्रचण्ड भण्डासुर बड़ा क्रुद्ध हुआ था ।६६।

—×—

बलाहाकादि सप्त सेनापति वध वर्णन

हतेषु तेषु रोषांधो निश्वसञ्छून्यकेश्वर: ।
कुजलाशमिति प्रोचे युयुत्साव्याकुलाशय: ।।१
भद्र सेनापतेऽस्माकमभद्रं समुपागतम् ।
करंकाद्याश्चमूनाथा: कन्दलद्भुजविक्रमा: ।।२
सर्पिणीमायया सर्वगीर्वाणमदभंजना: ।
पापीयस्या तया गूढमायया विनिपातिता: ।।३
बलाहकप्रभृतय: सप्त ये सैनिकाधिपा: ।
तानुदग्रभुजासत्त्वान्प्राहिणु प्रधनं प्रति ।।४

त्रिशतं चाक्षौहिणीनां प्रस्थापय सहैव तैः ।
ते मर्दयित्वा ललितासैन्यं मायापरायणाः ॥५
अये विजयमाहार्य संप्राप्स्यंति ममांतिकम् ।
कीकसागर्भसंजातास्ते प्रचंडपराक्रमाः ॥६
बलाहकमुखाः सप्त भ्रातरो जयिनः सदा ।
तेषामवश्यं विजयो भविष्यति रणांगणे ॥७

उन सबके मर जाने पर वह शून्यक का स्वामी क्रोध से अन्धा हो गया था और लम्बी श्वास लेता हुआ युद्ध करने की इच्छा से पूर्ण अभिप्राय वाले ने कुजलाश से यह कहा था—।१। हे सेनापते ! आप तो परमभद्र हैं और हमारा इस समय अमंगल आकर उपस्थित हो गया है। देखो, बड़े भारी भुजाओं के विक्रम वाले करंक प्रभृति सेनापतिगण जो कि समस्त देवों के मद का भञ्जन करने वाले थे । सर्पिणी माया से पापिनी उसने परम गूढ़ माया के द्वारा सबको मार डाला है ।२-३। अब बलाहक आदि जो उदग्र भुजाओं के सत्व वाले भी हैं उनको युद्ध करने के लिए भेज दो ।४। उनके साथ तीन सौ अक्षौहिणी सेनाएँ भी भेज दो । वे माया में भी कुशल हैं । वे ललिता की सेनाओं का विमर्दन कर डालेंगे ।५। अये ! वे तो विजय करके ही मेरे समीप में वापिस प्राप्त होंगे । वे कीकसा के गर्भ से समुत्पन्न हुए हैं और अधिक प्रचण्ड पराक्रम से समन्वित हैं । जिनमें बलाहक प्रधान है वे सातों भाई हैं और हमेशा ही जयशील रहे हैं । मैं समझता हूँ कि इस युद्ध स्थल में उनकी तो अवश्य ही विजय होगी ।६-७।

इति भंडासुरेणोक्तः कुटिलाक्षः समाह्वयत् ।
बलाहकमुखान्सप्त सेनानाथान्मदोत्कटान् ॥८
बलाहकः प्रथमतस्तस्मात्सूचीमुखोऽपरः ।
अन्यः फालमुखश्चैव विकर्णो विकटाननः ॥९
करालायुः करटकः सप्तैते वीर्यशालिनः ।
भंडासुरं नमस्कृत्य युद्धकौतूहलोल्वणाः ॥१०
कीकसासूनवः सर्वे भ्रातरोऽन्योन्यमावृताः ।
अन्योन्यसुसहायाश्च निर्जग्मुर्नगरांतरात् ॥११

त्रिशताक्षौहिणीसेनासेनान्योऽन्वगमंस्तदा ।
उल्लिखन्ति केतुजालैरंबरे घनमण्डलम् ॥१२
घोरसंग्रामिणीपादाघातैर्मर्दितभूतला ।
पिबन्ति धूलिकाजालैरशेषानपि सागरान् ॥१३
भेरीनिःसाणतंपोट्टपणवानकनिस्वनैः ।
नभोगुणमयं विश्वमादधानाः पदे पदे ॥१४

इस रीति से भण्डासुर के द्वारा कहने पर उस कुटिलाक्ष ने परमाधिक मदोत्कट बलाहक प्रमुख सात सेनापतियों को बुलाया था ।८। प्रथम तो बलाहक था—दूसरा सूचीमुख था—अन्य कालमुख था—विकर्ण—विकटानन—करालायु और करकट—ये सात परमाधिक वीर्यशाली थे। उन्होंने भण्डासुर को प्रणाम किया था ये युद्ध के कौतूहल में बहुत उल्वण थे ।९-१०। ये सब कीकसा के पुत्र थे और सभी परस्पर में भाई थे। ये परस्पर में एक दूसरे के सहायक थे और फिर वे लड़ने के लिए नगर के अन्दर से निकलकर चले गये थे ।११। तीन सौ अक्षौहिणी सेनाओं के सेनानीगण भी उस समय में उनके पीछे गये थे। ये अपनी ध्वजाओं के जाल से घन मण्डल को उल्लिखित कर रहे थे ।१२। इन संग्रामिणियों के पैरों ने जो घात हो रहा था उससे भूतल विमर्दित हो रहा था। उस समय में इनकी सेनाओं के निर्गमन से इतनी धूलि उड़ रही थी कि सभी सागरों का जल सूख गया था। इनके कदम-कदम पर भेरी-निःसाण-तम्पोट-पणव-आनक का परम घोर घोष हो रहा था और सम्पूर्ण विश्व को शंकायमान करते हुए गमन कर रहे थे। नभ का गुण शब्द है वह पूरा विश्व शब्दमय हो रहा था ।१३-१४।

त्रिशताक्षौहिणीसेनां तां गृहीत्वा मदोद्धताः ।
प्रवेष्टुमिव विश्वस्मिन्कीकसेयाः प्रतस्थिरे ॥१५
धृतरोषारुणाः सूर्यमंडलोद्दीप्तकंकटाः ।
उद्दीप्तशस्त्रभरणाश्चेलुर्दीप्तोर्ध्वकेशिनः ॥१६
सप्त लोकान्प्रमथितुं दर्पिताः पूर्वमुद्धताः ।
भंडासुरेण महता जगद्विजयकारिणा ॥१७

सप्तलोकविमर्देन तेन दृष्ट्वा महाबलाः ।
प्रेषिता ललितासैन्यं जेतुकामेन दुर्धिया ॥१८

ते पतन्तो रणतलमुच्चलच्छत्रपाणयः ।
शक्तिसेनामभिमुखं सक्रोधमभिदुद्रुवुः ॥१९

मुहुः किलकिलारावैर्घोषयंतो दिशो दश ।
देव्यास्तु सैनिकं यत्र तत्र ते जग्मुरुद्धताः ॥२०

सैन्यं च ललितादेव्याः सन्नद्धं शस्त्रभीषणम् ।
अभ्यमित्रीणमभवद्वद्धभ्रुकुटिनिष्ठुरम् ॥२१

ये मद से उद्धत कैकसेय तीन सौ अक्षौहिणी उस सेना को लेकर इस सम्पूर्ण विश्व में प्रवेश मानों कर रहे थे वहाँ से रवाना हुए थे ।१५। ये धारण किए हुए क्रोध से लाल हो रहे थे और सूर्यमण्डल के समान उद्दीप्त कंकट थे । ये शस्त्रों के आभरणों से परम उद्दीप्त थे और इनके दीप्त एवं ऊर्ध्वकेश थे ऐसे परम घोर ये वहाँ से चल दिये थे ।१६। सम्पूर्ण जगत के विजय करने वाले महान भण्डासुर के द्वारा परम उद्धत इनको समस्त सात लोकों का प्रमथन करने के लिए ही भेजा गया था ।१७। जीतने की कामना वाले सातों लोकों को विमर्दित करने वाले उसने अपनी दुष्ट बुद्धि से ही महान बलवान इनको ललिता देवी की सेना में भेजा था ।१८। ये हाथों में छत्रों को ऊपर उठाते हुए रणस्थल में जा रहे थे और फिर शक्ति सेना से सामने बड़े ही क्रोध के साथ धावा बोल दिया था ।१९। बार-बार किल-कारियों की ध्वनियों से दशों दिशाओं को घोषित कर रहे थे तथा जहाँ पर देवी की सेना थी वहाँ पर उद्धत थे ।२०। ललिता देवी की सेना भी सन्नद्ध थी और शस्त्रास्त्रों से वह सेना परम भीषण थी । देवी की सेना भी अपनी भृकुटी तानकर कठोरता से शत्रु के समक्ष में हो गयी थी ।२१।

पाशिन्यो मुसलिन्यश्च चक्रिण्यश्चापरा मुने ।
मुद्गरिण्यः पट्टिशिन्यः कोदंडिन्यस्तथापराः ॥२२

अनेकाः शक्तयस्तीव्रा ललितासैन्यसंगताः ।
पिबंत्य इव दैत्याब्धि सन्निपेतुः सहस्रशः ॥२३

आयातायात हे दुष्टाः पापिन्यो वनिताधमाः ।

मायापरिग्रहैदूरं मोहयंत्यो जडाशयान् ॥२४
नेष्यामो भवतीरद्य प्रेतनाथनिकेतनम् ।
इति शक्तीर्भर्त्सयंतो दानवाश्चक्रुराहवम् ॥२५
काचिच्चिच्छेद दैत्येंद्रं कण्ठे पट्टिशपातनात् ।
तद्गलोद्गलितो रक्तपूर ऊर्ध्वमुखोऽभवत् ॥२६
तत्र लग्ना बहुतरा गृध्रा मंडलतां गताः ।
तैरेव प्रेतनाथस्य च्छत्रच्छविरुदंचिता ॥२७
काचिच्छक्तिः सुराराति मुक्तशक्त्यायुधं रणे ।
लूनतच्छक्तिरेकेन बाणेन व्यलुनीत च ॥२८

हे मुने ! उनमें कुछ तो पाशधारिणी थीं—कुछ मुसलों को ग्रहण किये थीं—दूसरी चक्र धारिणी थीं—कुछ के पास मुद्गर थे तो कुछ पट्टिश लिये थीं तथा कुछ धनुष ग्रहण किये थीं ।२२। ललिता की सेना में संगत अनेक प्रकार की शक्तियाँ थीं। वे सहस्रों की संख्या में वहाँ पर समापतित हो गयीं थीं मानो दैत्यों के सागरों का पान ही कर रही थी ।२३। दैत्यगण कह रहे थे—हे दुष्टाओ ! तुम नारियों में महान अधम हो—आओ ! तुम पापिनी हो। जो जड़ आशयों वाले हैं उनको ही तुम लोग अपनी माया के परिग्रहों से मोहित कर लिया करती हो ।२४। आज तो हम लोग तुम सबको यमराज के घर पर पहुँचा देंगे। हमारे पास ऐसे अत्यन्त भीषण बाण हैं जो फूत्कार मारते हुए भुजंगों के ही तुल्य हैं उन्हीं से तुम मृत्यु प्राप्त करोगी। इस तरह से शक्तियों को भर्त्सना देते हुए ही उन दानवों ने युद्ध किया था ।२५। किसी शक्ति ने दैत्येन्द्र के कण्ठ को पट्टिश के प्रहार से काट दिया था। काटने से जो उसके कण्ठ से रुधिर निकला था वह ऊपर की ओर गया था ।२६। वहाँ पर बहुत से गिद्ध लगे हुए थे जिन्होंने एक मण्डल सा बना लिया था। उन्हीं के द्वारा यमराज का एक छत्र सा बन गया था ।२७। किसी शक्ति ने रण में मुक्त शक्त्यायुध दैत्य को एक ही बाण के द्वारा काट दिया था ।२८।

एका तु गजमारूढा कस्यचिद्दैत्यदुर्मतेः ।
उरः स्थले स्वकरिणा वप्राघातमशिक्षयत् ॥२९

काचित्प्रतिभटारूढं दंतिनं कुम्भसीमनि ।
खड्गेन सहसा हत्वा गजस्य स्वप्रियं व्यधात् ॥३०
करमुक्तेन चक्रेण कस्यचिद्देववैरिणः ।
धनुर्दंडं द्विधा कृत्वा स्वभ्रुवोः प्रतिमां तनोत् ॥३१
शक्तिरन्या शरैः शातैः शातयित्वा विरोधिनः ।
कृपाणपद्मा रोमाल्यां स्वकीयायां मुदं व्यधात् ॥३२
काचिन्मुद्गरपातेन चूर्णयित्वा विरोधिनः ।
रथचक्रनितंबस्य स्वस्य तेनातनोन्मुदम् ॥३३
रथकूबरमुग्रेण कस्यचिद्दानवप्रभोः ।
खड्गेन छिन्दती स्वस्य प्रियमुव्यास्ततान ह ॥३४
अभ्यंतरं शक्तिसेना दैत्यानां प्रविवेश ह ।
प्रविवेश च दैत्यानां सेना शक्तिबलांतरम् ॥३५

एक शक्ति हाथी पर समारूढ़ होकर युद्ध कर रही थी और उसने दुष्ट बुद्धि वाले दैत्य के उरःस्थल में अपने हाथी के द्वारा वप्राघात की शिक्षा दी थी ।२९। किसी शक्ति ने उस हाथी के जिस पर प्रतिभट बैठा हुआ था, कुम्भ स्थल में खंग का प्रहार किया था और उस हाथी के स्वप्रिय को मार डाला था ।३०। अपने हाथ से छोड़े हुए चक्र के द्वारा किसी असुर के धनुष के दो टुकड़े करके स्वभ्रू की प्रतिमा बना दी थी ।३१। अन्य शक्ति के तीक्ष्ण शरों से विरोधियों का वध कर दिया था । कृपाण पद्मा ने अपनी रोमालि में मुद किया था ।३२। किसी शक्ति ने मुद्गर के प्रहार से विरोधियों का चूर्ण किया था । उस ने अपने रथ के पहिए के नितम्ब का उसके द्वारा मुद किया था अर्थात् आनन्द प्राप्त किया था ।३३। किसी दानवों के स्वामी के रथ के कूबर को अपने उग्र खग के द्वारा छेदन करती हुई अपनी प्रीति का विस्तार किया था ।३४। शक्ति की सेना दैत्यों के अन्दर प्रवेश कर गयी थी और दुर्धर दैत्यों की सेना भी शक्ति सेना के भीतर प्रवेश कर गयी थी ।३५।

नीरक्षीरवदत्यंताश्लेषं शक्तिसुरद्विषाम् ।
संकुलाकारतां प्राप्तो युद्धकालेऽभवत्तदा ॥३६

शक्तीनां खड्गपातेन लूनशुण्डारदद्वयाः ।
दैत्यानां करिणो मत्ता महाक्रोडा इवाभवन् ॥३७
एवं प्रवृत्ते समरे वीराणां च भयंकरे ।
अशक्ये स्मर्तु मप्येतं कातरत्ववतां नृणाम् ।
भीषणानां भीषणे च शस्त्रव्यापारदुर्गमे ॥३८
बलाहको महागृध्रं वज्रतीक्ष्णमुखादिकम् ।
कालदण्डोपमं जंघाकांडे चंडपराक्रमम् ॥३९
संहारगुप्तनामानं पूर्वमग्रे समुत्थितम् ।
धूमवद्धूसराकारं पक्षक्षेपभयंकरम् ॥४०
आरुह्य विविधं युद्धं कृतवान्युद्धदुर्मदः ।
पक्षौ वितत्य क्रोशार्धं स स्थितो भीमनिःस्वनैः ।
अंगारकुण्डवच्चञ्चुं विदार्याभक्षयच्चमूम् ॥४१
संहारगुप्तं स महागृध्रः क्रूरविलोचनः ।
बलाहकमुवाहोच्चैराकृष्टधनुषं रणे ॥४२

नीर और क्षीर के ही समान शक्ति सेना और असुरों की सेना एकदम मिल गयीं थीं। उस समय में युद्ध काल में संकुलाकारता को प्राप्त हो गया था ।३६। शक्तियों के खंगों के पात से दैत्यों के गज कटी हुई सूँड और दांतों वाले हो गये थे और वे मत्त महान् क्रीड़ों के तुल्य ही हो गये थे ।३७। इस प्रकार से वीरों का युद्ध प्रवृत्त हुआ था जो कि कातरता को प्राप्त होने वाले मनुष्य तो उसका स्मरण करने में भी सर्वथा असमर्थ हैं और भीषणों का वह शस्त्रों का व्यापार भी महान् भीषण तथा दुर्गम था ।३८। बलाहक महागृध्र—वज्रतीक्ष्ण मुख आदिक-कालदण्डोपम—जंघा काण्ड में प्रचण्ड पराक्रम—संसार गुप्त नाम वाला आगे पूर्व में समुत्थित हुआ था। उसका धूम की तरह धूसर आकार था और पंखों को जब क्षेपण करता था तब बहुत भयंकर हो जाता था ।३९-४०। वह युद्ध करने में दुर्मद अनेक प्रकार के वाहनों के ऊपर आरोहण करके उसने युद्ध किया था। वह दोनों पंखों को फैला कर भयानक घोषों के द्वारा आधे कोश तक स्थित हुआ था। अंगारों के कुण्ड की भाँति अपनी चोंच को फैलाकर सेना का विदा-

रण करके वह संहार गुप्त महागिद्ध था जिसके बहुत क्रूर नेत्र थे। रण में धनुष को खींचकर बलाहक को बहुत ऊँचा उठा लिया था।४१-४२।

बलाहको वपुर्धुन्वन्गृध्रपृष्ठकृतस्थितिः।
सपक्षकूटशैलस्थो बलाहक इवाभवत् ॥४३
सूचीमुखश्च दैत्येन्द्र सूचीनिष्ठुरपक्षतिम्।
काकवाहनमारुह्य कठिनं समरं व्यधात् ॥४४
मत्तः पर्वतशृङ्गाभश्चंचूदण्डं समुद्वहन्।
कालदण्ड प्रमाणेन जंघाकाण्डेन भीषणः ॥४५
पुष्करावर्तकसमा जंबालसदृशद्युतिः।
क्रोशगात्रायतौ पक्षावुभावपि समुद्वहन् ॥४६
सूचीमुखाधिष्ठितोऽसौ करटः कटुवासितः।
मर्दयञ्चञ्चुघातेन शक्तीनां मण्डलं महत् ॥४७
अथो फलमुखः फालं गृहीत्वा निजमायुधम्।
कंकमारुह्य समरे चकाशे गिरिसन्निभम् ॥४८
विकर्णाख्यश्च दैत्येद्रश्चमूभर्ता महाबलः।
भेरुंडपतनारूढः प्रचंडयुद्धमातनोत् ॥४९

एक गिद्ध की पीठ पर स्थिति करने वाला बलाहक शरीर को विधूनित करता हुआ सपक्ष कूट शैल पर स्थित बलाहक के ही समान हो गया था।४३। और सूची मुख दैत्येन्द्र सूची के तुल्य निष्ठुर पंखों वाले काक वाहन पर समारूढ़ हुआ था और उसने बड़ा ही कठोर युद्ध किया था।४४। वह मत्त था और पर्वत की चोटी की भाँति उसकी आभा थी—वह चञ्चु दंड का उद्वहन कर रहा था। वह कालदंड के प्रमाण वाले जंघा कांड से बहुत ही भीषण दिखाई दे रहा था।४५। जंबाल के सदृश द्युति वाला पुष्करवर्त्तक के समान था। उसके दोनों पंख एक कोश के बराबर आयत थे। ऐसे पंखों का उद्वहन कर रहा था।४६। सूची मुख पर अधिष्ठित कटुवासित करट शक्तियों के महान् मंडल को चोंच के आघात से विमर्दन कर रहा था।४७। इसके अनन्तर फलमुख अपने आयुध काल को ग्रहण करके कंक पर समारूढ़ हुआ था और पर्वत की भाँति प्रकाशित हो रहा था। विकर्ण

नामक दैत्येन्द्र सेनापति महान् बलवान् था। उसने भेरुण्ड पतन पर समारोहण करके बड़ा भारी युद्ध किया था।४८-४६।

विकटाननामानं विलसत्पट्टिशायुधम्।
उवाह समरे चण्ड: कुक्कुटोऽतिभयङ्कर: ॥५०
गर्जन्कण्ठस्थरोमाणि हर्षयञ्ज्वलदीक्षण:।
पश्यन्पुर: शक्तिसैन्यं चचाल चरणायुध: ॥५१
करालाक्षश्च भूभर्ता षष्ठोऽन्तन्तगरिष्ठद:।
वज्रनिष्ठुरघोषश्च प्राचलत्प्रेतवाहन: ॥५२
श्मशानमन्त्रशूरेण तेन संसाधित: पुरा।
प्रेतो भूतोसमाविष्टस्तमुवाह रणाजिरे ॥५३
अवाङ्मुखो दीर्घबाहु: प्रसारितपदद्वय:।
प्रेतो वापनतां प्राप्त: करालाक्षनथावहत् ॥५४
अन्य: करटको नाम दैत्यसेनाशिखामणि:।
मर्दयामासशक्तीनां सैन्यं वेतालवाहन: ॥५५
योजनायतमूर्ति: सन्वेताल: क्रूरलोचन:।
श्मशानभूमौ वेतालो मंत्रेणानेन साधित: ॥५६

अतीव भयङ्कर प्रचण्ड कुक्कुट ने पट्टिश नामक आयुध को ग्रहण करने वाले विकटानन नाम वाले का वहन किया था।५०। कंठ में रहने वाले रोमों को हर्षित करता हुआ और गर्जना करता हुआ वह शक्ति की सेना को देख रहा था तथा उसके नेत्र जाज्वल्यमान थे ऐसा चरणायुध वहाँ से चल दिया था।५१। करालाक्ष नामक राजा जो छठवां था वह अत्यधिक गरिष्ठद था। वज्र के समान ही उसका घोष निष्ठुर था और प्रेत के वाहन वाला था। वह भी चल दिया था।५२। उसने पहिले ही श्मशान मन्त्र शूर ने उसको संसाधित कर लिया था। ऐसे भूत समाविष्ट प्रेत ने रण में उसका वहन किया था। नीचे की ओर मुख वाले—लम्बी भुजा वाले—दोनों पैरों को फैलाये हुए प्रेत के वाहनता को प्राप्त करके कुटिलाक्ष रवाना हुआ था।५३-५४। अन्य जो करट नामक दैत्यों की सेना का स्वामी था वह वेताल के वाहन वाला था और शक्ति की सेना का मर्दन किया था।५५। वह एक

योजन तक आयत था वह बेताल क्रूर नेत्रों वाला था । इस वेताल की भी सिद्धि श्मशान की भूमि में समवस्थित होकर की थी और मन्त्र का जाप करके ही की थी ।५६।

मर्दयामास पृतनां शक्तीनां तेन देशितः ।
तस्य वेतालवर्यस्य वर्तमानोंससीमनि ।
बहुधायुध्यत तदा शक्तिभिः सह दानवः ।।५७
एवमेते खलात्मानः सप्तसप्तार्णवोपमाः ।
शक्तीनां सैनिकं तत्र व्याकुलीचक्रुरुद्धताः ।।५८
ते सप्त पूर्वं तपसा सवितारमतोषयन् ।
तेन दत्तो वरस्तेषां तपस्तुष्टेन भास्वता ।।५९
कैकसेया महाभागा भवतां तपसाधुना ।
परितुष्टोऽस्मि भद्रं वो भवन्तो वृणुतां वरम् ।।६०
इत्युक्ते दिननाथेन कैकसेयास्तपःकृशाः ।
प्रार्थयामासुरत्यर्थं दुर्दान्तं वरमीदृशम् ।।६१
रणेषु सन्निधातव्यमस्माकं नेत्रकुक्षिषु ।
भवता घोरतेजोभिर्दहता प्रतिरोधिनः ।।६२
त्वया यदा सन्निहितं तपनास्माकमक्षिषु ।
तदाक्षिविषयः सर्वो निश्चेष्टो भवतात्प्रभो ।।६३

उसके द्वारा आदेशित होकर उसने शक्ति की सेना का मर्दन किया था । उस वेताल की सीमा में वर्त्तमान दानव ने शक्ति की सेना के साथ अनेक प्रकार से युद्ध किया था ।५७। इस प्रकार से महान् खल सात सागरों के समान उन सातों ने जो बहुत ही उद्धत थे शक्ति की सेनाओं को व्याकुल कर दिया था ।५८। उन सातों ने पहिले तप के द्वारा सविता को प्रसन्न कर लिया था । तपस्या से प्रसन्न होकर सविता ने उनको वरदान दिया था ।५९। हे कैकसेयो ! आप महान् भाग वाले हैं अब मैं आपके तप से प्रसन्न हो गया हूँ । आपका कल्याण होगा । आप लोग कोई भी वरदान माँग लो ।६०। सूर्य देव के द्वारा इस भाँति कहने पर तप से अतिकृश हुए उन कैक-सेयों ने अत्यन्त दुर्दान्त ऐसा वरदान माँगा था ।६१। आप युद्ध स्थल में

हमारे नेत्रों में और कुक्षियों में आकर विराजमान होवें जिससे शत्रुओं को घोर तेजसे दाह होजावे। हे प्रभो ! जब आप तपते हुए हमारी आँखों में सन्निधान करेंगे तो उससे हम जिसको भी देखें वही निश्चेष्ट हो जावे ।६२-६३।

त्वत्सान्निध्यसमिद्धेन नेत्रेणास्माकमीक्षिताः ।
स्तब्धशस्त्रा भविष्यन्ति तिरोधकसैनिकाः ॥६३
ततः स्तब्धेषु शस्त्रेषु वीक्षणादेव नः प्रभो ।
निश्चेष्टा रिपवोऽस्माभिर्हतव्याः सुकरस्त्वतः ॥६५
इति पूर्वं वरः प्राप्तः कैकसेयैर्दिवाकरात् ।
वरदानेन ते तत्र युद्धे चेरुर्मदोद्धताः ॥६६
अथ सूर्यसमाविष्टनेत्रैस्तैस्तु निरीक्षिताः ।
शक्तयः स्तब्धशस्त्रौघा विफलोत्साहतां गताः ॥६७
कीकसातनयैस्तैस्तु सप्तभिः सत्वशालिभिः ।
विष्टंभितास्त्रशस्त्राणां शक्तीनां नोद्यमोऽभवत् ॥६८
उद्यमे क्रियमाणेऽपि शस्त्रस्तम्भेन भूयसा ।
अभिभूताः सनिश्वासं शक्तयो जोषमासत ॥६९
अथ ते वासरं प्राप्य नानाप्रहरणोद्यताः ।
व्यमर्दयञ्छक्तिसैन्यं दैत्याः स्वस्वामिदेशिताः ॥७०

विपक्ष के योधा आपके सन्निधान वाले हमारे नेत्रों से देखे गये होने पर स्तब्ध शस्त्रों वाले हो जायेंगे ।६४। हे प्रभो ! फिर जब सभी शस्त्र स्तब्ध होंगे और हमारे देखने मात्र से ही अवरुद्ध हो जायेंगे तो फिर निश्चेष्ट शत्रु हमारे द्वारा आसानी से मारे जाने के योग्य हो जायेंगे ।६५। यह पूर्व में ही वर प्राप्त किया था और कैकसेयों ने सूर्य देव से ही ऐसा वर-दान पा लिया था। इसी वरदान से मदोद्धत वे उस युद्ध में गये थे ।६६। इसके उपरान्त सभी शक्तियाँ सूर्य के समाविष्ट नेत्रों द्वारा देखी गयी थी और स्तब्ध शास्त्रों वाली होकर उत्साह हीन हो गयीं थीं ।६७। कीकसा के पुत्र सातों के द्वारा जो कि बड़े ही सत्व थे शक्तियों की सेनाओं के शस्त्रास्त्र विष्टम्भित कर दिये गये थे और उनका कुछ भी उद्यम नहीं हुआ था।

अर्थात् शक्तियाँ कुछ भी न कर सकीं थीं।६८। उद्यम किये जाने पर भी उसका कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ था। क्योंकि बड़ा भारी शस्त्रों का स्तम्भन था। इस विष्टम्भ से अभिभूत हुई शक्तियों को चुप ही रहना पड़ा था। ।६९। फिर दिवस के होने पर वे सब अनेक आयुधों से संयुत होकर अपने स्वामी की आज्ञा से समन्वित होते हुए दैत्यों ने शक्तियों की सेना का विमर्दन किया था।७०।

शक्तयस्तास्तु सैन्येन निर्व्यापारा निरायुधाः ।
अक्षुभ्यंत शरैस्तेषां वज्रकङ्कटभेदिभिः ॥७१
शक्तयो दैत्यशस्त्रौघैर्विद्धगात्राः सृतासृजः ।
सुपल्लवा रणे रेजुः कङ्कोललतिका इव ॥७२
हाहाकारं वितन्वत्यः प्रपन्ना ललितेश्वरीम् ।
चुक्रुशुः शक्तयः सर्वास्तैः स्तंभितनिजायुधाः ॥७३
अथ देव्याज्ञया दण्डनाथा प्रत्यङ्गरक्षिणी ।
तिरस्करणिका देवी समुत्तस्थौ रणाजिरे ॥७४
तमोलिप्ताह्वयं नाम विमानं सर्वतोमुखम् ।
महामाया समारुह्य शक्तीनामभयं व्यधात ॥७५
तमालश्यामलाकारा श्यामकंचुकधारिणी ।
श्यामच्छाये तमोलिप्ते श्यामयुक्ततुरङ्गमे ॥७६
वासन्ती मोहनाभिख्यं धनुरादाय सस्वनम् ।
सिंहनादं विनद्येषूनवर्षत्सर्पसन्निभान् ॥७७

वे शक्तियाँ तो उस समय में शत्रु की सेना के द्वारा निरायुध और निर्व्यापार वाली हो गयी थीं तथा उन दैत्यों के वज्र कङ्कट भेदी शरों के द्वारा क्षुब्ध हो गयी थीं।७१। दैत्यों के शस्त्रों के समुदायों से विद्ध शरीरों वाली हो गयी थीं और उनके शरीरों से रुधिर बह रहा था। वे रण में सुन्दर पत्तों वाली कङ्कोल लताओं की भाँति शोभित हो रही थीं।७२। वे समस्त शक्तियाँ हाहाकार करती हुई ललिता देवी की शरण में गयी थीं। ये सभी शक्तियाँ दैत्यों के द्वारा स्तम्भित शस्त्रों वाली होकर रोने लगीं थीं ।७३। इसके अनन्तर देवी की आज्ञा से प्रत्यङ्गरङ्गिणी दण्डनाथा तिरस्कर-

णिका देवी उस रण स्थल में समुत्थित हो गयी थी ।७४। तमोलिप्त नामक सर्वतोमुख विमान पर महामाया ने समारूढ़ होकर शक्तियों के भय को दूर किया था ।७५। वह रथ श्याम कान्ति वाला था-तम से लिप्त और श्याम तुरङ्गमों वाला था । उस पर तमाल के समान श्यामल आकार वाली तथा श्याम कञ्चु की को धारण करने वाली विराजमान थी ।७६। वासन्ती मोहन की अभिख्या वाले धनुष को ग्रहण करके ध्वनि के साथ सिंहनाद करके सर्पों के सदृश वाणों की वर्षा उस देवी ने की थी ।७७।

कृष्णरूपभुजङ्गभानधोमुसलसंनिभाम् ।
मोहनास्त्रविनिष्ठ्यूतान्बाणान्दैत्या न सेहिरे ॥७८
इतस्ततो मर्द्यमाना महामायाशिलीमुखैः ।
प्रकोपं परमं प्राप्ता बलाहकमुखाः खलाः ॥७९
अथो तिरस्करण्यंबा दण्डनाथानिदेशतः ।
अन्धाभिधं महास्त्रं सा मुमोच द्विषतां गणे ॥८०
बलाहकाद्यास्ते सप्त दिननाथवरोद्धताः ।
अन्धास्त्रेण निजं नेत्रं दधिरे च्छादितं यथा ॥८१
तिरस्करणिकादेव्या महामोहनधन्वनः ।
उद्गतेनांधबाणेन चक्षुस्तेषां व्यधीयतः ॥८२
अन्धीकृताश्च ते सप्त न तु प्रैक्षन्त किञ्चन ।
तद्वीक्षणस्य विरहाच्छस्तम्भः क्षयं गतः ॥८३
पुनः ससिंहनादं ताः प्रोद्यतायुधपाणयः ।
चक्रुः समरसन्नाहं दैत्यानां प्रजिघांसया ॥८४

वे दैत्यगण कृष्ण स्वरूप से संयुत भुजङ्गों के समान तथा मूसल के सदृश मोहनास्त्र से निकाले गये वाणों को सहन न कर सके थे ।७८। इधर-उधर महामाया के वाणों से मर्दित होते हुए वे खल जिनमें बलाहक प्रधान था परमाधिक प्रकोप को प्राप्त हो गये थे ।७९। अनन्तर में दण्डनाथा के आदेश से तिरस्करिणी अम्बा ने शत्रुओं के युद्ध में अन्धनामक महास्त्र को छोड़ा था ।८०। सूर्य देव के वर से बड़े ही उद्धत हुए वे बलाहक आदि सातों दैत्य उस अन्धास्त्र से अपने नेत्रों को छादित हुए ही धारण किये हुए थे ।

।८१। तिरस्करिणी अम्बा के मोहनास्त्र धनुष से निकले हुए बाण के द्वारा उनके नेत्र बन्द हो गये थे ।८२। अन्धे बनाये गये वे सातों वहाँ पर कुछ भी नहीं देख पाते थे। उनके न देखने से वह शस्त्र का स्तम्भन भी क्षीण हो गया था ।८३। करों में आयुध लिये हुए उन्होंने फिर सिंहनाद करके दैत्यों के हनन करने की इच्छा से युद्ध किया था ।८४।

तिरस्करणिकां देवीमग्रे कृत्वा महाबलाम् ।
सदुपायप्रसङ्गेन भृशं तुष्टा रणं व्यधुः ।।८५
साधुसाधु महाभागे तिरस्करणिकांबिके ।
स्थाने कृततिरस्कारा द्विषामेषां दुरात्मनाम् ।।८६
त्वं हि दुर्जननेत्राणां तिरस्कारमहौषधी ।
त्वया बद्धदृशानेन दैत्यचक्रेण भूयते ।।८७
देवकार्यमिदं देवि त्वया सम्यगनुष्ठितम् ।
अस्मादृशामजय्येषु यदेषु व्यसनं कृतम् ।।८८
तत्त्वयैव दुराचारानेतान्सप्त महासुरान् ।
निहतांल्ललिता श्रुत्वा सन्तोषं परमाप्स्यति ।।८९
एवं त्वया विरचिते दण्डिनीप्रीतिमाप्स्यति ।
मंत्रिण्यपि महाभागा यास्यत्येव परां मुदम् ।।९०
तस्मात्त्वमेव सप्तैतान्निगृहाण रणाजिरे ।
एषां सैन्यं तु निखिलं नाशयाम उदायुधाः ।।९१

उन शक्तियों ने महान् बल वाली उस तिरस्करणी देवी को अपने आगे करके उसके अन्धीकरण के उपाय के प्रसङ्ग से बहुत ही प्रसन्न होकर युद्ध किया था ।८५। वे सभी शक्तियाँ यह कह रही थीं—हे तिरस्कारिणि ! अम्बिके ! हे महाभागे ! बहुत हो अच्छा किया। दुरात्मा इन शत्रुओं को आपने जो तिरस्कार किया है वह बहुत हो उचित किया है ।८६। आप ही इन दुष्टों के नेत्रों के तिरस्कार करने की महौषध हैं। आपके द्वारा दृष्टि के बन्द होने ही से यह दैत्यों का चक्र पराभूत हो रहा है ।८७। हे देवि ! यह तो देवकार्य है जो आपने भलीभाँति किया है। हम जैसी शक्तियों के द्वारा अजेय इनमें जो आपने यह व्यसन उत्पन्न कर दिया है ।८८। अब आपके हो

द्वारा इन महान सात असुरों को निहत हुआ सुनकर ललिता देवी बहुत ही प्रसन्नता को प्राप्त होंगी ।८९। आपके द्वारा ऐसा करने पर दण्डिनी देवी भी प्रीति को प्राप्त हो जाँयगी और महाभागा मन्त्रिणी देवी भी बहुत अधिक सन्तोष को प्राप्त हो जाँयगी ।९०। इस कारण से अब आप ही इन सातों का युद्धाङ्गण में वध कीजिए। इनकी जो सम्पूर्ण सेना है उसको आयुध ग्रहण कर हम विनष्ट कर देती हैं ।९१।

इत्युक्त्वा प्रेरिता ताभिः शक्तिभिर्युद्धकौतुकात् ।
तमोलिप्तेन यानेन बलाहकबलं ययौ ॥९२
तामायांतीं समावेक्ष्य ते सप्ताथ सुराधमाः ।
पुनरेव च सावित्रं वरं सस्मरुरंजसा ॥९३
प्रविष्टमपि सावित्रं नाशकं तन्निरोधने ।
तिरस्कृतं तु नेत्रस्थं तिरस्करणितेजसा ॥९४
वरदानास्त्ररोषांधं महाबलपराक्रमम् ।
अस्त्रेण च रुषा चांधं बलाहकमहासुरम् ।
आकृष्य केशेष्वसिना चकर्तांतर्धिदेवता ॥९५
तस्य वाहनगृध्रस्य लुनाना पत्रिणा शिरः ।
सूचीमुखस्याभिमुखं तिरस्करणिकाव्रजत् ॥९६
तस्य पट्टिशपातेन विलूय कठिनं शिरः ।
अन्येषामपि पञ्चानां पञ्चत्वमकरोच्छनैः ॥९७
तैः सप्तदैत्यमुण्डैश्च ग्रथितान्योन्यकेशकैः ।
हारदाम गले कृत्वा ननादांतर्धिदेवता ॥९८

इस प्रकार से कहे जाने पर उन शक्तियों के द्वारा प्रेरित हुई उस तिरस्करिणी देवी ने युद्ध कौतुक से तमोलिप्त यान के द्वारा बलाहक की सेना में गमन किया था ।९२। उस देवी को आती हुई देखकर उन सातों अधम असुरों ने फिर भी उसी सूर्य देव के दिये हुए वरदान कर तुरन्त ही स्मरण किया था ।९३। वह सावित्र वरदान प्रविष्ट भी हुआ था जो कि उसके निरोध का विनाशक था किन्तु तिरस्करणी के तेज से वह भी तिरस्कृत हो गया था ।९४। वरदानास्त्र के रोष से अन्धा तथा महान बल और पराक्रम

वाला वह असुर था। अस्त्र से और रोष से अन्धे उस महासुर बलाहक के केशों को पकड़ कर उस देवी ने अपनी ओर खींच लिया था और अन्धे बना देने वाली देवी ने उसका शिर तलवार से काट डाला था।६५। उसका जो वाहन गिद्ध था उसका भी शिर पत्री के द्वारा काटकर वह तिरस्कारिणी देवी सूची मुख के सामने गयी थी।६६। उसके शिर को पट्टिश के प्रहार से काट डाला था और शेष जो पाँच रहे थे उनके भी सबके शिर धीरे-धीरे उस देवी ने काटकर मौत के घाट सबको उतार दिया था।६७। उन सातों असुरों के मुण्ड परस्पर में केशों के द्वारा बंधे हुए थे। उनका एक हार सा बनाकर गले में डालकर तिरस्करिणी देवी गर्जना कर रही थी।६८।

मस्तमपि तत्सैन्यं शक्तयः क्रोधमूच्छिताः।
हत्वा तद्रक्तसलिलैर्बह्वीः प्रावाहयन्नदीः ॥६६

तत्राश्चर्यमभूद्भूरि महामायांबिकाकृतम्।
बलाहकादिसेनान्यां दृष्टिरोधनवैभवात् ॥१००

हृतशिष्यः कतिपयाबहु वित्रासन्सऽकुलाः।
शरणं जग्मुरत्यार्त्ताः क्रन्दंत शून्यकेश्वरम् ॥१०१

दंडिनीं च महामायां प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः।
प्रसादमपरं चक्षुस्तस्या आदाय पिप्रियुः ॥१०२

साधुसाध्विति तत्रस्थाः शक्तयः कम्पमौलयः।
तिरस्करणिकां देवीमश्लाघंत पदे पदे ॥१०३

क्रोध से मूच्छित उन शक्तियों ने उन असुरों की सम्पूर्ण सेना का हनन कर दिया था तथा उनके रुधिर की बहुत से नदियों को प्रवाहित कर दिया था।६६। बलाहक आदि बड़े-बड़े सेनानियों की दृष्टि के रोधन करने के वैभव से जो कि महामाया अम्बिका के द्वारा किया गया था वहाँ पर उस समय में बड़ा आश्चर्य हो गया था।१००। मरने से जो भी कुछ बच गये थे वे सब बहुत ही भयभीत होकर असुर बहुत आर्त्त होकर शून्यकेश्वर की शरण में रुदन करते हुए पहुँच गये थे और वे महामाया दण्डिनी की बारम्बार प्रशंसा कर रहे थे और उसको दूसरी प्रसन्नता से चक्षु प्राप्त करके वे प्रसन्न भी हुए थे।१०१-१०२। वहाँ पर जो शक्तियाँ थीं उनने बहुत अच्छा हुआ—यह कहकर अपना शिर हिलाते हुए पद-पद पर तिरस्करिणी देवी की श्लाघा की थी।१०३।

———

विषंग पलायन वर्णन

ततः श्रुत्वा वधं तेषां तपोबलवतामपि ।
न्यश्वसत्कृष्णसर्पेन्द्र इव भंडो महासुरः ॥१
एकांते मंत्रयामास स आहूय महोदरौ ।
भण्डः प्रचंडशौंडीर्यः कांक्षमाणो रणे जयम् ॥२
युवराजोऽपि सक्रोधो विषंगेण यवीयसा ।
भंडासुरं नमस्कृत्य मंत्रस्थानमुपागमत् ॥३
अत्याप्तैर्मंत्रिभिर्युक्तः कुटिलाक्षपुरः सरैः ।
ललिताविजये मंत्रं चकार क्वथिताशयः ॥४
भंडउवाच—
अहो बत कुलभ्रंशः समायातः सुरद्विषाम् ।
उपेक्षामधुना कर्तुं प्रवृत्तो बलवान्विधिः ॥५
मद्भृत्यनाममात्रेण विद्रवंति दिवौकसः ।
तादृशानामिहास्माकमागतोऽयं विपर्ययः ॥६
करोति बलिनं क्लीवं धनिनं धनवर्जितम् ।
दीर्घायुषमनायुष्कं दुर्धाता भवितव्यता ॥७

इसके अनन्तर महासुर भंड ने जब महान बलवान और वरदानी उन सातों का वध सुना तो वह उस समय में काले सर्प के ही समान निश्वास लेने लगा था ।१। महान शौण्डीर्य वह रण में विजय की इच्छा वाला होकर एकान्त में महोदरों को बुलाते हुए उनके साथ भंडासुर ने मन्त्रणा की थी। ।२२। युवराज भी क्रोध युक्त हुआ था और छोटे भाई विषङ्ग के साथ वहाँ उपस्थित हुआ था । उसने भंडासुर को नमस्कार किया था और फिर वह भी मन्त्रणा के स्थान पर प्राप्त हो गया था ।३। वे उसके मन्त्री बहुत ही विश्वास पात्र थे जिनमें कुटिलाक्ष आदि अग्रणी थे । बिगड़े हुए विचार वाले उस भंड ने उनके साथ ललिता के विजय करने की मन्त्रणा की थी ।४। भंड ने कहा—अहो ! अब तो असुरों के कुल का विनाश ही प्राप्त हो गया है । यह विधि बड़ा बलवान् है इसने हम लोगों की ओर में उपेक्षा ही करने में अपनी प्रवृत्ति करती है ।५। मेरे भृत्यों के नाम से ही देवगण भाग जाया

करते हैं। ऐसे हमारा भी इस समय में विपरीत समय उपस्थित हो गया है।६। यह होनहार ऐसो बलवान है कि यह बलवान को क्लीव (नपुंसक) और धनवान को भी धनहीन कर दिया करती है। जो दीर्घ आयु वाला है उसको आयुहीन कर दिया करती है। इस होनी का प्रहार बड़ा ही कठिन है।७।

क्व सत्वमस्मद्‌बाहूनां क्वेयं दुर्ललिता वधूः ।
अकांड एव विधिना कृतोऽयं निष्ठुरो विधिः ॥८
सर्पिणीमाययोदग्रास्तया दुर्घटशौर्यया ।
अधिसंग्रामभूचक्रं सेनान्यो विनिपातिताः ॥६
एवमुद्दामदर्पाढ्या वनिता कापि मायिनी ।
यदि संप्रहरत्यस्मान्धिग्बलं नो भुजार्जितम् ॥१०
इमं प्रसंगं वक्तुं च जिह्वा जिह्वेति मामकी ।
वनिता किमु मत्सैन्यं मर्दयिष्यति दुर्मदा ॥११
तदत्र मूलच्छेदाय तस्या यत्नो विधीयताम् ।
मया चारमुखाज्ज्ञाता तस्या वृत्तिर्महाबला ॥१२
सर्वेषामपि सैन्यानां पश्चादेवावतिष्ठते ।
अग्रतश्चलितं सैन्यं पयहस्तिरथादिकम् ॥१३
अस्मिन्नेव ह्यवसरे पार्ष्णिग्राहो विधीयताम् ।
पार्ष्णिग्राहमिमं कर्तुं विषंगश्चतुरो भवेत् ॥१४

हमारी भुजाओं का बल तो कहाँ अर्थात् उस कितना विशाल है और यह दुर्ललिता वधू कहाँ है अर्थात् नारी की शक्ति हमारे सामने सर्वथा तुच्छ है। अनवसर में ही विधाता के ऐसा निष्ठुर विधान कर दिया है कि हमारा विनाश इन अबला नारियों द्वारा हो रहा है।८। दुर्घट शूरता वाली सर्पिणी माया के द्वारा बड़े-बड़े उदग्र सेनानी गण संग्राम भूमि में मारे गये हैं।६। इस रीति से उद्दाम दर्प से संयुत कोई माया वाली नारी यदि हमारा संहार कर देती है तो हमारी बाहुओं के द्वारा जो भी बल अर्जित किया गया है उसको धिक्कार ही है।१०। इस प्रसङ्ग को कहने में भी मेरी जिह्वा लज्जित होती है। क्या यह दुर्मदा स्त्री हमारी सेना का मर्दन कर देगी

।११। इसलिए उसके मूल का उच्छेदन करने के लिए कोई यत्न करना ही चाहिए। मैंने दूतों के मुख से सुना है कि उसकी वृत्ति महा बलवती है ।१२। वह सब सेना के वह पीछे ही रहती है और उसके आगे हाथी-घोड़े और सेनाएँ सब चला करती हैं ।१३। अब इसी अवसर पर उसका पार्ष्णिग्राह करो। इस पार्ष्णिग्राह में अर्थात् पीछे पहुँचकर उसको पकड़ने में विषङ्ग बहुत कुशल है ।१४।

तेन प्रौढमदोन्मत्ता बहुसंग्रामदुर्मदाः ।
दश पञ्च च सेनान्यः सह यांतु युयुत्सया ॥१५
पृष्ठतः परिवारास्तु न तथा सन्ति ते पुनः ।
अल्पैस्तु रक्षिता वै स्यात्तेनैवासौ सुनिग्रहा ॥१६
अतस्त्वं बहुसन्नाहमाविधाय मदोत्कटः ।
विषंग गुप्तरूपेण पार्ष्णिग्राहं समाचर ॥१७
अल्पीयसी त्वया सार्द्धं सेना गच्छतु विक्रमात् ।
सज्जाश्चलंतु सेनान्यो दिक्पालविजयोद्धताः ॥१८
अक्षौहिण्यश्च सेनानां दश पञ्च चलंतु ते ।
त्वं गुप्तवेषस्तां दुष्टां सन्निपत्य द्रुढं जहि ॥१९
सैव निःशेषशक्तीनां मूलभूता महीयसी ।
तस्याः समूलनाशेन शक्तिवृन्दं विनश्यति ॥२०
कंदच्छेदे सरोजिन्या दलजालमिवांभसि ।
सर्वेषामेव पश्चाद्यो रथश्चलति भासुरः ॥२१

उस विषंग के साथ युद्ध करने की इच्छा से बड़े प्रौढ़ और मदोन्मत्त दश पाँच सेनानी भी जावें ।१५। उनके पीछे की ओर कोई परिवार नहीं है। वह बहुत थोड़े से सैनिकों के द्वारा रक्षित है अतः सबका निग्रह आसान है ।१६। इसीलिए मदोत्कट तुम बहुत संग्राम न करके गुप्त रूप से विषंग को समाचरण करो ।१७। आपके साथ बहुत थोड़ी सेना जावे और सेनानी सज्जित होकर चलें जो विक्रम से दिक्पालों के भी विजय करने से उद्धत हैं ।१८। पन्द्रह अक्षौहिणी सेनाएं भी जावें और तुम गुप्त वेष वाले होकर दुष्टा उसको मार डालो ।१९। वह ही सम्पूर्ण शक्तियों की बहुत बड़ी मूल

स्वरूपा है। उसके समूल विनाश से ही सम्पूर्ण शक्तियों का समुदाय विनष्ट हो जायगा।२०। जिस प्रकार से सरोजिनी के कन्द के उच्छेदन करने पर जल में उसके दलों का विनाश हो जाया करता है। सबके पीछे ही जो एक बड़ा भासुर रथ चला करता है।२१।

दशयोजनसंपन्ननिजदेहसमुच्छ्रयः ।
महामुक्तातपत्रेण सर्वोद्ध्वं परिशोभितः ॥२२
वहन्मुहुर्वीज्यमानं चामराणां चतुष्टयम् ।
उत्तुंगकेतुसंघातलिखितांबुदमंडलः ॥२३
तस्मिनृथे समायाति सा दृष्टा हरिणेक्षणा ।
निभृतं संनिपत्य त्वं चिह्नेनानेन लक्षिताम् ॥२४
तां विजित्य दुराचारां केशेष्वाकृष्य मर्दय ।
पुरतश्चलिते सैन्ये सत्वशालिनि सा वधूः ॥२५
स्त्रीमात्ररक्षा भवतो वशमेष्यति सत्वरम् ।
भवत्सहायभूतायां सेनेन्द्राणामिहाभिधा ॥२६
शृणु यैर्भवतो युद्धे साह्यकार्यमतंद्रितैः ।
आद्यो मदनको नाम दीर्घजिह्वो द्वितीयकः ॥२७
हुबको हुलुमुलूश्च कक्लसः कल्किवाहनः ।
शुक्लसः पुण्ड्रकेतुश्च चंडबाहुश्च कुक्कुरः ॥२८

वह रथ दशयोजन से सम्पन्न अपने कलेवर की ऊँचाई वाला है। सबके ऊपर एक छत्र पर रहा करता है जो बड़े-बड़े मुक्ताओं से विनिर्मित है और परिशोभित है।२२। वह चार चमरों के द्वारा बार-बार बीज्यमान रहता है अर्थात् चार चमर उस पर ढुराये जाया करते हैं। उस पर एक बहुत ऊँची ध्वजा टँगी रहा करती है जो अम्बुदों के मंडल तक पहुँचती है।२३। ऐसे ही उस रथ पर वह हरिण के समान सुन्दर नेत्रों वाली आया करती है। तुम चुपचाप इसी चिह्न से उसको लक्षित कर लेना और उस पर धावा करके उस दुराचारिणी को जीतकर उसके केश खींचकर मर्दन करना। आगे सत्वशाली सेना चलने पर वह बधू स्त्रियों के ही द्वारा रक्षित है।२४-२५। अतः आपके वश में शीघ्र ही आ जायगी। आपकी सहायता

करने वाले सेनानियों के ये नाम हैं ।२६। सुनिए, आपकी सहायता के कार्य में जो भी हैं वे पूर्ण सावधान होंगे । पहिला मदनक नामक है—दूसरा दीर्घ जिह्व है ।२७। हुबक—हुलुमुलु—कक्लस—कल्कि वाहन—थुक्लस—पुण्ड्र-केतु चण्ड बाहु—कुक्कुर ये सब नामों वाले होंगे ।२८।

जम्बुकाक्षो जंभनश्च तीक्ष्णशृङ्गस्त्रिकंटकः ।
चन्द्रगुप्तश्च पंचैते दश चोक्ताश्चमूवराः ।।२६
एकैकाक्षौहिणीयुक्ताः प्रत्येकं भवता सह ।
आगमिष्यन्ति सेनान्यो दमनाद्या महाबलाः ।।३०
परस्य कटकं नैव यथा जानाति ते गतिम् ।
तथा गुप्तसमाचारः पार्ष्णिग्राहं समाचर ।।३१
अस्मिन्कार्ये सुमहतां प्रौढिमानं समुद्वहन् ।
विषंग त्वं हि लभसे जयसिद्धिमनुत्तमाम् ।।३२
इति मंत्रितमंत्रोऽयं दुर्मंत्री भंडदानवः ।
विषंगं प्रेषयामास रक्षितं सैन्यपालकैः ।।३३
अथ श्रीललितादेव्याः पार्ष्णिग्राहकृतोद्यमे ।
युवराजानुजे दैत्ये सूर्योऽस्तगिरिमाययौ ।।३४
प्रथमे युद्धदिवसे व्यतीते लोकभीषणे ।
अंधकारः समभवत्तस्य बाह्यं चिकीर्षया ।।३५

जम्बुकाक्ष—जंभन—तीक्ष्णभृंग—त्रिकण्टक—और चन्द्रगुप्त ये पन्द्रह श्रेष्ठ सेनानी हैं ।२६। ये सब एक-एक अक्षौहिणी सेना से समन्वित होकर आपके साथ रहेंगे। महान बल वाले दमन प्रभृति भी सेनानी गण आयेंगे ।३०। तुम्हारी गति को शत्रु की सेना जिस तरह से न जान पावे उसी भाँति परम गुप्त समाचरण वाला होकर पार्ष्णिग्राह का समाचरण करो ।३१। इस कार्य में महान पुरुषों की प्रौढ़ता का उद्वहन करते हुए ही हे विषंग ! परम उत्तम जय सिद्धि को प्राप्त करोगे ।३२। दुर्मन्त्रणा वाले उस भंड ने इस तरह से ऐसी मन्त्रणा करते हुए सैन्य पालकों के द्वारा रक्षित करके विषंग को भेजा था ।३३। इसके अनन्तर श्री ललिता देवी के पार्ष्णिग्राह के उद्योग

में युवराजानुज दैत्य के होने पर सूर्य अस्ताचल पर चला गया था।३४। लोक भीषण प्रथम युद्ध के दिवस में पार्ष्णिग्राह के करने की इच्छा से उसको अन्धकार हो गया था।३५।

महिषस्कंधधूम्राभं वनक्रोडवपुद्युति ।
नीलकण्ठनिभच्छायं निबिडं पप्रथे तमः ॥३६
कुंजेषु पिंडितमिव प्रधावदिव सन्धिषु ।
उज्जिहानमिव क्षोणीविवरेभ्यः सहस्रशः ॥३७
निर्गच्छदिव शैलानां भूरि कन्दरमंदिरान् ।
क्वचिद्दीपप्रभा जाले कृतकातरचेष्टितम् ॥३८
दत्तावलंबनमिव स्त्रीणां कर्णोत्पलत्विषि ।
एकीभूतमिव प्रौढदिङ्नागमिव कज्जले ।
आबद्ध मैत्रकमिव स्फुरच्छाद्वलमंडले ॥३९
कृतप्रियाश्लेषमिव स्फुरंतीष्वसियष्टिषु ।
गुप्तप्रविष्टमिव च श्यामासु वनपंक्तिषु ॥४०
क्रमेण बहुलीभूतं प्रससार महत्तमः ।
त्रियामावामनयना नीलकंचुकरोचिषा ॥४१
तिमिरेणावृतं विश्वं न किंचित्प्रत्यपद्यत ।
असुराणां प्रदुष्टानां रात्रिरेव बलावहा ॥४२

अब उस अन्धकार के स्वरूप का वर्णन किया जाता है जो उस समय में वहाँ छाया हुआ था—वह अन्धकार महिष के स्कन्ध के तुल्य धूम्र आभा वाला था। उसकी कान्ति वन क्रोड़ के वपु सदृश थी—नीलकण्ठ पक्षी के समान उसकी कान्ति थी—ऐसा बहुत ही घना अन्धकार छा गया था।३६। वह तम कुञ्जों में पिण्डित सा हो रहा था तथा सन्धियों में दौड़ सी लगा रहा था वह अन्धकार सहस्रों भूमि के विवरों से बाहिर की ओर निकल सा रहा था।३७। पर्वतों की कन्दराओं से मानों वह अन्धकार बाहिर निकलकर आ रहा था। कहीं पर वह दीपों की प्रभा के जाल में कातर चेष्टित कर रहा था।३८। स्त्रियों के कानों के उत्पल की कान्ति में मानों उस तम ने

समाश्रम ग्रहण किया था। प्रौढ़ दिङ्नाग की भाँति कज्जल में वह अन्धकार एकीभूत-सा हो रहा था और स्फुरित शाद्वल के मंडल में मित्रता सी आबद्ध कर रहा था।३९। स्फुरण करती हुई असियष्टियों में प्रिया के आश्लेष सा वह तम कर रहा था। श्याम बनों की पंक्तियों में गुप्त रूप से वह प्रविष्ट-सा हो रहा था। वह अन्धेरी रात्रि सुन्दर नेत्रों वाली रमणी है जो अपनी नीली कंचुकी की कान्ति से समन्वित है। ऐसे अन्धकार से सम्पूर्ण विश्व समावृत हो गया था और कुछ भी सूझ नहीं रहा था। पूरे दुष्ट असुरों को तो रात्रि ही बल देने वाली हुआ करती है।४१-४२।

तेषां मायाविलासोऽयं तस्यामेव हि वर्धते ।
अथ प्रचलितं सैन्यं विषंगेण महौजसा ॥४३
धौतखड्गलताच्छायावर्धिष्णु तिमिरच्छटम् ।
दमनाद्याश्च सेनान्यः श्यामकंकटधारिणः ॥४४
श्यामोष्णीषधराः श्यामवर्णसर्वपरिच्छदाः ।
एकत्वमिव संप्राप्तास्तिमिरेणातिभूयसा ॥४५
विषंगमनुसंचेलुः कृताग्रजनमस्कृतिम् ।
कूटेन युद्धकृत्येन विजिगीषुर्महेश्वरीम् ॥४६
मेघडंबरकं नाम दधे वक्षसि कंकटम् ।
यथा तस्य निशायुद्धानुरूपो वेषसंग्रहः ॥४७
तथा कृतवती सेना श्यामलं कंचुकादिकम् ।
न च दुंदुभिनिस्वानो न च मर्द्दलगर्जितम् ॥४८
पणवानकभेरीणां न च घोषविजृंभणम् ।
गुप्ताचाराः प्रचलितास्तिमिरेण समावृताः ॥४९

उन असुरों का यह माया का विलास उस अँधेरी रात्रि में ही बढ़ा करता है। इसके उपरान्त महान् ओज वाले विषंग के साथ सेना रवाना हुई थी।४३। दमन प्रभृति सेनानीगण श्याम कङ्कट के धारण करने वाले हैं और अन्धकार की छटा धौत खड्ग की कान्ति को बढ़ाने वाला था।४४। वे सब श्याम पगड़ी के धारण करने वाले थे और उनके समस्त परिच्छद भी श्याम वर्ण के ही थे। अत्यधिक अन्धकार से आवृत हुए वे सब एकता को

प्राप्त जैसे हो गये थे।४५। अपने बड़े भाई को नमस्कार करने वाले विषंग के पीछे चल दिये थे। वह विषंग कूट युद्ध के द्वारा महेश्वरी के जीतने की इच्छा वाला था।४६। उसने मेघडम्बर नाम वाले कञ्चुक को वक्षः स्थल पर धारण किया था। उसके वेष का संग्रह भी निशा के युद्ध के ही अनुरूप था।४७। उसी भाँति से सेना ने भी श्याम वर्ण के कंचुक आदि धारण किये थे। उस समय में न तो किसी दुन्दुभि का घोष था और न कोई मर्द्दल की ही गर्जना थी।४८। प्रणव-आनक और भेरियों की भी उस समय में ध्वनि नहीं हुई थी। वे सबके सब गुप्त समाचरण वाले आकार से समावृत होते हुए रवाना हुए थे।४६।

परैरदृश्यगतयो विष्कोशीकृतरिष्टय: ।
पश्चिमाभिमुखं यांति ललितायाः पताकिनीम् ।।५०
आवृतोत्तरमार्गेण पूर्वभागमशिश्रियन् ।
निश्वासमपि सस्वानमकुर्वंत: पदे पदे ।।५१
सावधानाः प्रचलिताः पार्ष्णिग्राहाय दानवाः ।
भूयः पुरस्य दिग्भागं गत्वा मन्दपराक्रमाः ।।५२
ललितासैन्यमेव स्वान्सूचयंत प्रपृच्छतः ।
आगत्य निभृतं पृष्ठे कवचच्छन्नविग्रहाः ।।५३
चक्रराजरथं तुंगं मेरुमंदरसंनिभम् ।
अपश्यन्नतिदीप्ताभिः शक्तिभिः परिवारितम् ।।५४
तत्र मुक्तातपत्रस्य वर्त्तमानामधः स्थले ।
सहस्रादित्यसंकाशां पश्चिमामुखीं स्थिताम् ।।५५
कामेश्वर्यादिनित्याभिः स्वसमानसमृद्धिभिः ।
नर्मालापविनोदेन सेव्यमानां रथोत्तमे ।।५६

ये सब ऐसे वहाँ से चले थे कि दूसरों के द्वारा न देखे जावें। इन्होंने रिष्टियों को म्यानों से निकाल लिया था। ललिता की सेना के पश्चिम की ओर मुह करके ही ये गमन कर रहे थे।५०। आवृत उत्तर मार्ग से इन्होंने पूर्व भाग का समाश्रय ग्रहण किया था। ये पद-पद पर अपने निःश्वासों की ध्वनि को भी चलने में नहीं कर रहे थे।५१। दानवगण बहुत

ही सावधान होकर पार्ष्णिग्राह के लिए चल दिये थे। फिर पुर के दिग्भाग में जाकर मन्द पराक्रम वाले हो गये थे।५२। ललिता देवी की सेना भी अपने लोगों को सूचना दे रही थी। वे कवचों से ढके हुए शरीरों वाले पीछे की ओर चुपचाप आ गये थे।५३। और उन्होंने ऊँचे तथा मेरु गिरि के समान चक्रराज रथ को देखा था जो अत्यधिक प्रदीप्त शक्तियों से परि-वारित था।५४। वहाँ पर मुक्ता निर्मित्त आतपत्र (छत्र) के नीचे वह देवी विराजमान थी। सहस्रों सूर्यों के सदृश कान्ति वाली और पश्चिम को मुख किये हुए स्थित थीं।५५। उस उत्तम रथ में अपने ही समान समृद्धि से संयुत कामेश्वरी आदि नित्याओं के साथ नर्म आलाप के विनोद से सेव्यमान हो रहीं थी।५६।

तां तथाभूतवृत्तांतामतादृशरणोद्यमाम।
पुरोगतं महत्सैन्यं वीक्षमाणं सकौतुकम् ॥५७

मन्वानश्च हि तामेव विषंगः सुदुराशयः।
पृष्ठवंशे रथेंद्रस्य घट्टयामास सैनिकैः ॥५८

तत्राणिमादिशक्तीनां परिवारवरूथिनी।
महाकलकलं चक्रुरणिमाद्याः परः शतम् ॥५९

पट्टिशैर्दुघणैश्चैव भिंदिपालैर्भुशुण्डिभिः।
कठोरवज्रनिर्घातनिष्ठुरैः शक्तिमंडलैः ॥६०

मर्दयंतो महासत्त्वाः समरं बहुमेनिरे।
आकस्मिकरणोत्साहविपर्याविष्टविग्रहम् ॥६१

अकांडक्षुभितं चासीद्रथस्थं शक्तिमंडलम्।
विपाटैः पाटयामासुरदृश्यैरंध्रकारिणः ॥६२

ततश्चक्ररथेंद्रस्य नवमे पर्वणि स्थिताः।
अदृश्यमानशस्त्राणामदृश्यनिजवर्मणाम् ॥६३
तिमिरच्छन्नरूपाणां दानवानां शिलीमुखैः।
इतस्ततो बहु क्लिष्टं छन्नवर्मितमर्मवत् ॥६४

उस प्रकार से वर्त्तमान तथा अताद्दशों की शरणागति के उद्यम वाली को देखा था। उसके सामने महान् सेना कौतुक पूर्वक देख रही थी ।५७। बुरे आशय वाले विषंग ने उसी को मान लिया था कि यही वह देवी है। उस रथेन्द्र के पीछे की ओर में सैनिकों द्वारा घट्टन किया था ।५८। वहाँ पर अणिमा आदि शक्तियों के परिवार की सेनाओं ने महान् कलकल किया था अणिमा आदिक सैकड़ों से भी अधिक थीं ।५६। पट्टिश—द्रुघण—भिन्दि-पाल—भुशुण्डी—कठोर वज्र के समान निर्घात से निष्ठुर शक्तियों के मण्डलों से युद्ध हुआ था ।६०। महान् सत्त्व वाले असुर मर्दन करते हुए उस समर को बहुत मानने लगे थे। उस रथ में संस्थित शक्तियों का मण्डल अचानक रणोत्साह के विपर्य से आविष्ट विग्रहों वाला हो गया था और अनवसर में क्षोभयुत हुआ था। अन्धकारों ने अदृश्य विपाटों से पाटित कर दिया था ।६१-६२। इसके अनन्तर वे नवम चक्र रथेन्द्र के पर्व पर संस्थित थे। अदृश्यमान निजवर्मों वाले—अदृश्य शस्त्रों वाले तथा अन्धकार से छन्न स्वरूपों वाले दानवों के बाणों से शक्तियों का मण्डल छन्नवर्मित की भाँति इधर-उधर बहुत कष्टित हुआ था ।६३-६४।

शक्तीनां मंडलं तेने क्रन्दनं ललितां प्रति ।
पूर्वानुक्रमतस्तत्र संप्राप्तं सुमहद्भयम् ।।६६
कर्णाकर्णिकयाकर्ण्य ललिता कोपमादधे ।
एतस्मिन्नंतरे मंडश्चडदुर्मंत्रिपंडित: ।।६६
दशाऽक्षौहिणिकायुक्तं कुटिलाक्षं महौजसम् ।
ललितासैन्यनाशाय युद्धाय प्रजिघाय स: ।।६७
यथा पश्चात्कलकलं श्रुत्वाग्रे वर्तिनी चमू: ।
नागच्छति तथा चक्रे कुटिलाक्षो महारणम् ।।६८
एवं चोभयतो युद्धं पश्चादग्रे तथाऽभवत् ।
अत्यन्ततुमुलं चासीच्छक्तीनां सैनिके महत् ।।६६
नक्तसत्त्वाश्च दैत्येन्द्रास्तिमिरेण समावृता: ।
इतस्तत: शिथिलता कंटके निन्युरुद्धता: ।।७०

और उसने ललिता देवी के पास क्रन्दन किया था। वहाँ पर पूर्व अनुक्रम से महान् भय प्राप्त हो गया था ।६५। कानों-कानों से ललिता देवी

ने सुना तो बड़ा ही अधिक कोप किया था। इसी बीच में दुष्ट मन्त्रियों से मन्त्रणा करके चण्ड मण्ड ने दश अक्षौहिणी से संयुत—महस् ओज वाले कुटिलाक्ष को ललिता की सेना के विनाश करने के लिये भेजा था।६६-६७। जिस रीति से पीछे की ओर कल-कल ध्वनि को सुनकर आगे वाली सेना न आ सके इसी प्रकार से कुटिलाक्ष ने महान् संग्राम किया था।६८। इसी तरह से पीछे और आगे दोनों ओर था वह युद्ध हुआ था और वह युद्ध शक्तियों के सैन्य में महान् तुमुल हुआ था।६९। रात्रि में सत्त्व वाले दैत्येन्द्र थे जो तिमित से समावृत थे और उद्धतों ने कण्टक में शिथिलता को प्राप्त कर दिया था।७०।

विषंगेण दुराशेन धमनाद्यैश्चमूवरैः।
चमूभिश्च प्रणहिता न्यपतञ्छत्रुकोटयः ॥७१
ताभिर्दैत्यास्त्रमालाभिश्चक्रराजरथो वृतः।
बकावलीनिबिडितः शैलराज इवाबभौ ॥७२
आक्रांतपर्वणाधस्ताद्विषंगेण दुरात्मना।
मुक्त एकः शरो देव्यास्तालवृंतमचूर्णयत् ॥७३
अथ तेनाव्याहितेन संभ्रान्ते शक्तिमण्डले।
कामेश्वरीमुखा नित्या महांतं क्रोधमाययुः ॥७४
ईषद्भृकुटिसंसक्तं श्रीदेव्या वदनांबुजम्।
अवलोक्य भृशोद्विग्ना नित्या दधुरतिश्रमम् ॥७५
नित्या कालस्वरूपिण्यः प्रत्येकं तिथिविग्रहाः।
क्रोधमुद्वीक्ष्य सम्राज्ञ्या युद्धाय दधुरुद्यमम् ॥७६
प्रणिपत्य च तां देवीं महाराज्ञीं महोदयाम्।
ऊचुर्वाचमकांडोत्थां युद्धकौतुकगद्गदाम् ॥७७

बुरे आशय वाले विषंग ने धमनादि श्रेष्ठ सेनापतियों के और सेनाओं के द्वारा प्रणहित शत्रु की कोटियाँ निपतित कर दी थीं।७१। उन दैत्यों के अस्त्रों की मालाओं से वह चक्रराज रथ ढक गया था और वह बकों की पंक्तियों से ढके हुए शैल राज की ही भाँति शोभित हो गया था।७२। आक्रान्त पर्व के नीचे दुरात्मा विषंग के द्वारा छोड़े हुए एक बाण ने देवी के तालवृन्त का चूर्ण कर दिया था।७३। इसके पश्चात् अव्याहत उसके द्वारा

शक्तियों का मण्डल हो गया तो ऐसा होने पर कामेश्वरी प्रमुख जो नित्याएँ थीं उनको बड़ा भारी क्रोध हो गया था ।७४। थोड़ा-सा भृकुटियों से संसक्त श्री देवी के मुख कमल को देखकर नित्याओं को बहुत ही उद्वेग हो गया था और उन्होंने अत्यधिक श्रम किया था ।७५। नित्याएं काल के ही स्वरूप वाली थीं और प्रत्येक तिथि के विग्रह वाली थीं । उन्होंने साम्राज्ञी के क्रोध को देखकर युद्ध करने का विशेष उद्यम किया था ।७६। उनने महान् उद्यम से समन्विता उस महाराज्ञी को प्रणिपात करके उस समय अनवसर में उत्थित और युद्ध के कौतुक से गद्‌गद वाणी कही थी ।७७।

तिथिनित्या ऊचुः—

देवदेवी महाराज्ञी तवाग्रे प्रेक्षितां चमूम् ।
दंडिनीमन्त्रनाथादिमहाशक्तचभिपालिताम् ॥७८
धर्षितुं कातरा दुष्टा मायाच्छद्मपरायणाः ।
पार्ष्णिग्राहेण युद्धेन वाधंते रथपुङ्गवम् ॥७९
तस्मात्तिमिरसंछन्नमूर्तीनां विबुधद्रुहाम् ।
शमयामो वयं दर्पं क्षणमात्रं विलोकय ॥८०
या वह्निवासिनी नित्या या ज्वालामालिनी परा ।
ताभ्यां प्रदीपिते युद्धे द्रष्टुं शक्ताः सुरद्विषः ॥८१
प्रशमय्य महादर्पं पार्ष्णिग्राहप्रवर्तिनाम् ।
सहसैवागमिष्यामः सेवितुं श्रीपदांबुजम् ।
आज्ञां देहि महाराज्ञि मर्दनार्थं दुरात्मनाम् ॥८२
इत्युक्ते सति नित्याभिस्तथास्त्विति जगाद सा ।
अथ कामेश्वरी नित्या प्रणम्य ललितेश्वरीम् ।
तया संप्रेषिता ताभिः कुण्डलीकृतकार्मुका ॥८३
सा हन्तुं तान्दुराचारान्कूटयुद्धकृतक्षणान् ।
बालारुणमिव क्रोधारुणं वक्त्रं वितन्वती ॥८४

तिथि नित्याओं ने कहा था—हे देवदेवि ! आप तो महाराज्ञी हैं । आपके आगे प्रेक्षित सेना है जो दण्डिनी और मन्त्रनाथा आदि महान्

शक्तियों से अभिपालित हैं ।७८। ये माया के कपट में परायण दुष्ट और कातर दैत्यगण पार्णिग्राह युद्ध के द्वारा इस श्रेष्ठ रथ को धर्षित करने के लिए बाधा पहुँचा रहे हैं ।७९। इस कारण से अन्धकार से संच्छन्न कलेवरों वाले असुरों के घमण्ड को हम एक ही क्षण में शमन करती हैं—आप देखिये ।८०। जो वह्निवासिनी देवी है और दूसरी जो ज्वालामालिनी है, उन दोनों के द्वारा प्रदीपित युद्ध में ये असुर देखे जा सकते हैं ।८१। पार्ष्णिग्राह में अर्थात् पीछे से घेरा डालकर युद्ध करने में प्रवृत्त हुए दैत्यों के महान् दर्प को प्रशान्त कर हम लोग तुरन्त ही आपके श्री चरण कमलों की सेवा करने के लिए वापिस आ जायेंगी। हे महाराज्ञि ! आप हमको आज्ञा दीजिए कि हम उन दुरात्माओं का मर्दन कर डालें ।८२। नित्याओं के द्वारा इस प्रकार से कहने पर उस महादेवी ने कहा था—ऐसा ही करो। इसके पश्चात् नित्या कामेश्वरी ने ललितेश्वरी को प्रणाम किया था और उसके द्वारा भेजी हुई शक्तियों ने धनुष को खींचकर कुण्डलीकृत बना दिया था ।८३। उसने बाल सूर्य के समान क्रोध से लाल अपने मुख करके क्रूर युद्ध करने वाले उन दुष्टात्माओं का हनन करने के लिए धावा बोल दिया था और उनसे कहा था ।८४।

रे रे तिष्ठत पापिष्ठा मायानिष्ठाश्छिनद्मि वः ।
अन्धकारमनुप्राप्य कूटयुद्धपरायणाः ।।८५
इति तान्भर्त्सयंती सा तूणीरोत्खातसायकात् ।
पर्वावरोहणं चक्रे क्रोधेन प्रस्खलद्गतिः ।।८६
सज्जकार्मुकहस्ताश्च भगमालापुरः सराः ।
अन्याश्च चलिता नित्याः कृतपर्वावरोहणाः ।।८७
ज्वालामालिनि नित्या च या नित्या वह्निवासिनी ।
सज्जे युद्धे स्वतेजोभिः समदीपयतां रणे ।।८८
अथ ते दुष्टदनुजाः प्रदीप्ते युद्धमण्डले ।
प्रकाशवपुषस्तत्र महांतं क्रोधमाययुः ।।८९
कामेश्वर्यादिका नित्यास्ताः पञ्चदश सायुधाः ।
ससिंहनादास्तान्दैत्यानमृद्नन्नेव हेलया ।।९०

महाकलकलस्तत्र समभूद्युद्धसीमनि ।
मन्दरक्षोभितांभोधिवेल्लत्कल्लोलमण्डल: ।।९१

हे पापियो ! ठहरो, माया में संस्थित तुमको मैं कभी छिन्न-भिन्न करे देती तुम लोग अन्धकार को प्राप्त करके इस क्रूर युद्ध में तत्पर हो रहे हो ।८५। इस रीति से उनको फटकारती हुई उससे अपने तूणीर से उत्खात सायक से पर्वावरोहण किया था और क्रोधावेश से उसकी गति प्रस्खलित हो रही थी ।८६। वे कार्मुकों को हाथों में सजाये हुई थीं और उनके आगे भगमालायें थीं और अन्य नित्याएं पर्वारोहण करके चल दी थीं ।८७। ज्वाला मालिनी नित्या और वह्निवासिनी नित्या ये दोनों ही युद्ध में सज्जित हुईं थो और इन्होंने अपने तेजों से रण में प्रदीपन कर दिया था । ।८८। इसके अनन्तर युद्ध मण्डल के प्रदीप्त होने पर वे दुष्ट दनुज प्रकाशित कलेवरों वाले हो गये थे और उनको बड़ा क्रोध हो गया था ।८९। कामेश्वरी प्रभृति नित्याएं आयुधों से सयुत पन्द्रह थीं । वे सिंहनादों से ही उन दैत्यों का मर्दन सा हो कर रही थीं । इस समय में यहाँ युद्ध में महान् कल-कल हो गया था । वह कलकल ऐसा ही था मानों मन्दराचल से क्षोभित्त सागर के बिलोडन से तरंगों के मण्डल का हो रहा होवे ।९०-९१।

ताश्च नित्यावलत्क्वाणकंकणैर्युधि पाणिभिः ।
आकृष्य प्राणकोदंडास्तेनिरे युद्धमुद्धतम ।।९२
यामत्रितयपर्यंतमेवं युद्धमवर्त्तत ।
नित्यानां निशितैर्बाणैरक्षौहिण्यश्च संहृता ।।९३
जघान दमनं दुष्टं कामेशी प्रथमं शरैः ।
दीर्घजिह्वं चमूनाथं भगमाला व्यदारत् ।।९४
नित्यक्लिन्ना च भेरुण्डा हुम्बेकं हुलुमल्लकम् ।
कक्लसं वह्निवासा च निजघान शरैः शतैः ।।९५
महावज्रेश्वरी बाणैरभिनत्केकिवाहनम् ।
पुक्लसं शिवदूती च प्राहिणोद्यमसादनम् ।।९६
पुण्ड्रकेतुं भुजोद्दंडं त्वरिता समदारयत् ।
कुलसुन्दरिका नित्या चंडबाहुं च कुक्कुरम् ।।९७

अथ नीलपताका च विजया च जयोद्धते ।
जम्बुकाक्षं जृंभणं च व्यतन्वातां रणे बलिम् ।
सर्वमंगलिका नित्या तीक्ष्णशृङ्गमखंडयत् ।
ज्वालामालिनिका नित्या जघानोग्रं त्रिकर्णकम् ॥९८

उन नित्याओं ने बड़ा ही उद्धत युद्ध किया था। उन्होंने प्राण को दंड को आकर्षित किया था। प्रहार करने के समय में नित्याओं के करों के वलयों और कङ्कड़ों का क्वणन हो रहा था।९२। तीन प्रहर तक ऐसा घोर युद्ध हुआ था। नित्याओं के तीक्ष्ण बाणों से अक्षौहिणियों का संहार हो गया था।९३। सर्व प्रथम कामेशी ने शरों से दुष्ट दमन को निहत किया था भग-माला ने सेनापति दीर्घ जिह्व को मार डाला था।९४। नित्य क्लिन्ना और भेरुण्डा ने हुम्बेक और हुल्लुमल्लक को वह्निवासा ने कलस को तीक्ष्ण शरों से निहत कर दिया था।९५। महा वज्रेश्वरी ने बाणों से केकि वाहन को मार डाला था और शिव दूती ने पुल्कस को यमपुर भेज दिया था।९४। त्वरिता ने पुण्ड्रकेतु को पैने बाणों से मार डाला था। कुल सुन्दरिका नित्या ने चंड बाहु और कुक्कुर को मार दिया था।९७। इसके अनन्तर नील पताका और विजया दोनों ही जय करने में उद्धत थीं इन्होंने जम्बुकाक्ष और जृम्भण को मार दिया था। सर्वमङ्गलिका नित्या ने तीक्ष्ण भृङ्ग का हनन किया था। ज्वाला मालिनिका नित्या ने उग्र त्रिकर्णक का हनन कर दिया था।९८।

चन्द्रगुप्तं च दुःशीलं चित्रं चित्रा व्यदारत् ।
सेनानाथेषु सर्वेषु निहतेषु दुरात्मसु ॥९९
विषंगः परमः क्रुद्धश्चचाल पुरतो बली ।
अथ यामाव शेषायां यामिन्यां घटिकाद्वयम् ॥१००
नित्याभिः सह संग्रामं विधाय स दुराशयः ।
अशक्यत्वं समुद्दिश्य चक्राम प्रपलायितुम् ॥१०१
कामेश्वरीकराकृष्टचापोत्थैर्निशितैः शरैः ।
भिन्नवर्मा दृढतरं विषंगो विह्वलाशयः ।
हतावशिष्टैर्योधैश्च सार्धमेव पलायितः ॥१०२

ताभिर्न निहतो दुष्टो यस्माद्वध्यः स दानवः ।
दण्डनाथाशरेणैव कालदण्डसमत्विषा ॥१०३
तस्मिन्पलायिते दुष्टे विषंगे भंडसोदरे ।
स विभाता च रजनी प्रसन्नाश्चाभवन्दिशः ॥१०४
पलायितं रणे वीरमनुसर्त्तु मनौचिती ।
इति ताः समरान्नित्यास्तस्मिन्काले व्यरंसिषुः ॥१०५

चित्रा ने चन्द्रगुप्त को और दुश्शील चित्र का विमर्दन किया था। सभी दुरात्मा सेनापतियों के निहत हो जाने पर विषङ्ग युद्ध के लिये चल दिया था।९९। विषम बड़ा बलवान् था और बहुत क्रुद्ध होकर आगे गया था। इसके बाद रात्रि में एक प्रहर शेष रह गया था जो केवल दो घड़ी का समय था।१००। उस दुष्ट आशय वाले ने नित्याओं के साथ संग्राम किया था किन्तु जब उसने यह देखा था जीत नहीं हो सकती है तो उसने वहाँ से भाग जाने की ही इच्छा की थी।१०१। कामेश्वरी के हाथों से खींचे हुए धनुष से निकले हुए पैने बाणों से विषङ्ग का कवच छिन्न हो गया था और वह बहुत अधिक विह्वल हो गया था। वहाँ पर जो भी मरने से बचे थे उन सभी सैनिकों के ही साथ में भाग खड़ा हुआ था।१०२। उन्होंने उस दुष्ट का वध नहीं किया था क्योंकि वह दानव तो कालदण्ड की कान्ति वाले दण्डनाथा के ही शर से मारे जाने योग्य था।१०३। भण्ड के सहोदर उस दुष्ट विषंग के भाग जाने पर वह रात्रि विभात हो गयी थी और सब दिशाएँ प्रसन्न हो गयी थीं।१०४। रण में भागे हुए के पीछे गमन करना उचित नहीं था अतएव वे नित्याएँ उस संग्राम से उस समय विरत हो गयी थीं।१०५।

दैत्यशस्त्रव्रणस्यंदिशोणितप्लुतविग्रहाः ।
नित्याः श्रीललितां देवीं प्रणिपेतुर्जयोद्धताः ॥१०६
इत्थं रात्रौ महद्युद्धं तत्र जातं भयंकरम् ।
नित्यानां रूपजालं च शस्त्रक्षतमलोकयत् ॥१०७
श्रुत्वोदन्तं महाराज्ञी कृपापांगेन सैक्षत ।
तदालोकनमात्रेण व्रणो निर्व्रणतामगात् ॥१०८
नित्यानां विक्रमैश्चापि ललिता प्रीतिमासदत् ॥१०९

दैत्यों के शस्त्रों से व्रणों से निकलते हुए रुधिर से उन नित्याओं का कलेवर रक्त से समाप्लुत था और उसी दशा में वे जयोद्धत होती हुईं श्री ललिता देवी को आकर प्रणाम करने लगी थीं ।१०६। इस प्रकार से वहाँ पर रात्रि में भयकर महान युद्ध हुआ था । श्री ललिता देवी ने नित्याओं के उस स्वरूप को जो शस्त्रों से विक्षत था, देखा था । सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर महाराज्ञी ने कृपा दृष्टि से उनको देखा था । उनके देखने मात्र से ही समस्त व्रण भरकर ठीक हो गये थे ।१०७-१०८। नित्याओं के उस विक्रम से भी ललिता देवी को बड़ी प्रसन्नता हुई थी ।१०९।

भंडपुत्र वध वर्णन

दशाक्षौहिणिकायुक्तः कुटिलाक्षोऽपि वीर्यवान् ।
दण्डनाथाशरैस्तीक्ष्णै रणे भग्नः पलायितः ।
दशाक्षौहिणिकं सैन्यं तया रात्रौ विनाशितम् ।।१
इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भण्डः क्षोभमथाययौ ।
रात्रौ कपटसंग्रामं दुष्टानां निर्जरद्रुहाम् ।
मंत्रिणी दण्डनाथा च श्रुत्वा निर्वेदमापतुः ।।२
अहो बत महत्कष्टं दैत्यैर्देव्याः समागतम् ।
उत्तानबुद्धिभिर्दूरमस्माभिश्चलितं पुरः ।।३
महाचक्ररथेंद्रस्य न जातं रक्षणं बलैः ।
एतं त्ववसरं प्राप्य रात्रौ दुष्टैः पराकृतम् ।।४
को वृत्तांतोऽभवत्तत्र स्वामिन्या किं रणः कृतः ।
अन्या वा शक्तयस्तत्र चक्रुर्युद्धं महासुरैः ।।५
विम्रष्टव्यमिदं कार्यं प्रवृत्तिस्तत्र कीदृशी ।
महादेव्याश्च हृदये कः प्रसंगः प्रवर्तते ।।६
इति शंकाकुलास्तत्र दण्डनाथापुरोगमाः ।
मंत्रिणीं पुरतः कृत्वा प्रचेलुर्ललितां प्रति ।।७

अथ प्रथम युद्ध दिवसः—दश अक्षौहिणियों से युक्त वीर्यशाली भी दण्डनाथा के तीक्ष्ण शरों से रण में भग्न होकर भाग गया था। उस देवी ने दश अक्षौहिणी सेना नष्ट कर दी थी।१। भण्डासुर इस वृत्तान्त को सुनकर बड़ा क्षुब्ध हो गया था। रात्रि में कपटयुक्त संग्राम जो दुष्ट असुरों ने किया था, इसको सुनकर मन्त्रिणी और दण्डनाथा दोनों को बड़ा निर्वेद हुआ था।२। दैत्यों के द्वारा देवी का समागमन का होना बहुत ही कष्ट का विषय है। उत्तान बुद्धि वाली हम आगे दूर चल दी थीं।३। महाचक्र रथेन्द्र की रक्षा सैनिकों द्वारा नहीं हुई है। रात्रि में इसी अवसर को पाकर दुष्टों ने पराकरण किया था।४। वहाँ पर क्या वृत्तान्त हुआ था? क्या स्वामिनी ने युद्ध किया था? अथवा अन्य शक्तियों ने असुरों के साथ युद्ध किया?।५। यह कार्य विभ्रष्ट हो गया-वहाँ पर कैसी प्रवृत्ति है और महादेवी के हृदय में कौन सा प्रसंग प्रवृत्त हो रहा है।६। इस रीति से उन शक्तियों ने जिनमें दण्डनाथा अग्रणी थी शंका से बेचैन होकर मन्त्रिणी को अपना अगुआ बनाकर ललिता के समीप में गमन किया था।७।

शक्तिचक्रचमूनाथाः सर्वास्ताः पूजिता द्रुतम् ।
व्यतीतायां विभावर्यां रथेंद्रं पर्यवारयन् ॥८
अवरुह्य स्वयानाभ्यां मंत्रिणीदण्डनायिके ।
अधस्तात्सैन्यमावेश्य तदारुरुहतू रथम् ॥९
क्रमेण नव पर्वाणि व्यतीत्य त्वरितक्रमैः ।
तत्तत्सर्वगतैः शक्तिचक्रैः सम्यङ् निवेदितैः ॥१०
अभजेतां महाराज्ञीं मंत्रिणीदण्डनायिके ।
ते व्यजिज्ञपतां देव्या अष्टांगस्पृष्टभूतले ॥११
महाप्रमादः समभूदिति नः श्रुतमंबिके ।
कूटयुद्धप्रकारेण दैत्यैरपकृतं खलैः ॥१२
स दुरात्मा दुराचारः प्रकाशसमरात्त्रसन् ।
कुहकव्यवहारेण जयसिद्धिं तु कांक्षति ॥१३
दैवान्नः स्वामिनीगात्रे दुष्टानाममरद्रुहाम् ।
शरादिकपरामर्शो न जातस्तेन जीवति ॥१४

शक्तिचक्र की सेना की सब स्वामिनी शीघ्र ही पूजित हुईं और विभावरी रात्रि के व्यतीत होने पर उन्होंने रथेन्द्र को चारों ओर से परिवारित कर लिया था ।८। मन्त्रिणी और दण्ड नायिका दोनों अपने यानों से नीचे उतरी थीं और नीचे की ओर सेना को आवेशित करके तब रथ पर समारूढ़ हुई थीं ।९। क्रम से नौ पर्वों को व्यतीत करके शीघ्र क्रमों वे चलीं थीं । उन-उनके सर्वगत शक्ति चक्र जो सम्यक् रीति से निवेदित थे वे युक्त थीं ।१०। मन्त्रिणी और दण्ड नायिका दोनों ने महाराज्ञी का सेवन किया था । उन्होंने देवी के आगे भूमि में साष्टाङ्ग प्रणाम किया था और निवेदित किया था ।११। हे अम्बिके ! महान प्रमाद हो गया है ऐसा हमने श्रवण किया है । उन खल दैत्यों ने कूट युद्ध के प्रकार से आपका अपकार किया है ।१२। वह दुष्ट बुरे आचार वाला प्रकाश में युद्ध से डरकर कुहक व्यवहार से जय की सिद्धि चाहता है ।१३। यह तो दैव की गति है कि उन सुरों के द्रोही दुष्टों का हमारी स्वामिनी के शरीर में शर आदि का स्पर्श नहीं हुआ और उसी से जीवित विद्यमान हैं ।१४।

एकावलंबनं कृत्वा महाराज्ञि भवत्पदम् ।
वयं सर्वा हि जीवामः साधयामः समीहितम् ॥१५
अतोऽस्माभिः प्रकर्तव्यं श्रीमत्यंगस्य रक्षणम् ।
मायाविनश्च दैत्येन्द्रास्तत्र मन्त्रो विधीयताम् ॥१६
आपत्कालेषु जेतव्या भंडाद्या दानवाधमाः ।
कूटयुद्धं न कुर्वन्ति न विशंति चमूमिमाम् ॥१७
प्रथमयुद्धदिवसः—
तथा महेंद्रशैलस्य कार्यं दक्षिणदेशतः ।
शिबिरं बहुविस्तारं योजनानां शतावधि ॥१८
वह्निप्राकारवलयं रक्षणार्थं विधीयताम् ।
अस्मत्सेनानिवेशस्य द्विषां दर्पशमाय च ॥१९
शतयोजनमात्रस्तु मध्यदेशः प्रकल्प्यताम् ।
वह्निप्राकारचक्रस्य द्वारं दक्षिणतो भवेत् ॥२०
यतो दक्षिणदेशस्थं शून्यकं विद्विषां पुरम् ।
द्वारे च बहवः कल्प्याः परिवारा उदायुधाः ॥२१

हे महाराज्ञि ! हम तो सब एक मात्र आपका ही चरण का अवलम्बन ग्रहण करके जीवित हैं और आपके समीहित का साधन करती हैं। ।१५। इसलिए हमको श्रीमती के अङ्ग की रक्षा करनी चाहिए ।१६। भंड आदि महान अधम दानव आपत्ति के समय में ही जीतने के योग्य हैं। ये कूट युद्ध नहीं करते हैं और इस सेना में भी प्रवेश नहीं करते हैं ।१७। उसी भाँति से महेन्द्र पर्वत के दक्षिण भाग में एक बहुत विस्तार वाला जिसकी सीमा सौ योजन की होवे शिविर बनाना चाहिए ।१८। उसकी रक्षा के लिए चारों ओर अग्नि का प्राकार बनाना चाहिए। उसमें हमारी सेना का निवेश होगा और यह द्वेषियों के दर्प का शमन करने के लिए भी होगा ।१९। सौ योजन मात्र इसका मध्य भाग प्रकल्पित किया जावे। वह्नि प्राकार चक्र का द्वार दक्षिण की ओर होना चाहिए ।२०। विद्वेषियों के पुर की स्थिति दक्षिण भाग में है जिसका नाम शून्यक है। उसके द्वार पर आयुध लिए हुए बहुत से परिवार कल्पित रहने चाहिए ।२१।

निर्गच्छतां प्रविशतां जनानामुपरोधकाः ।
अनालस्या अनिद्राश्च विधेयाः सततोद्यताः ॥२२
एवं च सति दुष्टानां कूटयुद्धं चिकीर्षितम् ।
अवेलासु च संध्यासु मध्यरात्रिषु च द्विषाम् ।
अशक्यमेव भवति प्रौढमाक्रमणं हठात् ॥२३
नो चेद्दुराशया दैत्या बहुमायापरिग्रहाः ।
पश्यतोहरवत्सर्वं विलुठंति महद्बलम् ॥२४
मंत्रिण्या दंडनाथाया इति श्रुत्वा वचस्तदा ।
शुचिदन्तरुचा मुक्ता वहन्ती ललिताब्रवीत् ॥२५
भवतीनामयं मन्त्रश्चारुबुद्ध्या विचारितः ।
अयं कुशलधीमार्गो नीतिरेषा सनातना ॥२६
स्वचक्रस्य पुरो रक्षां विधाय दृढसाधनः ।
परचक्राक्रमः कार्यो जिगीषद्भिर्महाजनैः ॥२७
इत्युक्त्वा मन्त्रिणीदंडनाथे सा ललितेश्वरी ।
ज्वालामालिनिकां नित्यामाहूयेदमुवाच ह ॥२८

जनों के उपरोधक निर्गमन करें और प्रवेश करे। ये सब बिना आलस्य वाले अनिद्र और निरन्तर उद्यत रखने चाहिए।२२। ऐसा होने पर दुष्टों का अभीष्ट कूट युद्ध नहीं होगा। और शत्रुओं का असमयों में—सन्ध्याओं में और मध्य रात्रियों में हठ से प्रौढ़ आक्रमण नहीं हो सकने के योग्य होता है।२३। यदि ऐसा नहीं किया जावे तो ये दैत्य बहुत बुरे अभिप्राय वाले तथा बहुत-सी माया के परिग्रह वाले हैं और ये स्वर्णकार के ही समान महान बल का विलुण्ठन कर लिया करते हैं।२४। उस समय में मन्त्रिणी और दण्डनाथा के इस वचन का श्रवण करके शुद्ध दांतों की कान्ति से मुक्ताओं का वहन करती हुई श्री ललिता देवी ने कहा—।२५। आप सबका यह मन्त्र बहुत ही सुन्दर बुद्धि से विचारा हुआ है। यह कुशल बुद्धि का मार्ग है और यह सनातन नीति है।२६। जीत की इच्छा वाले महान जनों को चाहिए कि अपने चक्र के आगे रक्षा करके सुदृढ़ साधन वाला होवे। फिर दूसरे शत्रु के चक्र पर आक्रमण करना चाहिए।२७। उस ललितेश्वरी ने मन्त्रिणी और दण्डनाथा से कहा और ज्वाला मालिनिका को जो नित्या थी बुलाकर यह कहा था।२८।

वत्से त्वं वह्निरूपासि ज्वालामालामयाकृतिः।
त्वया विधीयतां रक्षा बलस्यास्य महीयसः ॥२९

शतयोजनविस्तारं परिवृत्य महीतलम्।
त्रिंशद्योजनमुन्नद्धं ज्वालाकारत्वमाव्रज ॥३०

द्वारयोजनमात्रं तु मुक्त्वान्यत्र ज्वलत्तनुः।
वह्निज्वालात्वमापन्ना संरक्ष सकलं बलम् ॥३१

ज्वालामालिनिकां नित्यामित्युक्त्वा ललितेश्वरी।
महेन्द्रोत्तरभूभागं चलितुं चक्र उद्यमम् ॥३२

सा च नित्यानित्यमयी ज्वलज्ज्वालामयाकृतिः।
चतुर्दशीतिथिमयी तथेति प्रणनाम ताम् ॥३३

तथैव पूर्वनिर्दिष्टं महेन्द्रोत्तरभूतलम्।
कुण्डलीकृत्य जज्वाल शालरूपेण सा पुनः ॥३४

नभोवलयजंबालज्वालामालामयाकृतिः।
बभासे दंडनाथाया मंत्रिनाथचमूरपि ॥३५

हे वत्से ! आप तो ज्वाला मालाओं से परिपूर्ण आकृति वाली वह्नि-रूपा हैं। इस महान बल की रक्षा आपको ही करनी चाहिए।२९। इस महीतल को सौ योजन के विस्तार वाला परिवृत करो और तीस योजन ऊँचा बनाओ जो ज्वालाकार वाला हो।३०। एक योजन मात्र द्वार को छोड़कर अन्यत्र जाज्वल्यमान कलेवर वाला होवे। वह्नि की ज्वाला को प्राप्त होकर सम्पूर्ण सेना की रक्षा करो।३१। उस ललितेश्वरी ने ज्वाला मालिनिका से इतना ही कहा था और फिर महेन्द्र गिरि के उत्तर की भूमि के भाग में चलने का उद्यम किया था।३२। और फिर वह नित्यानित्यमयी थी तथा जलती हुई ज्वालाओं से पूर्ण आकृति वाली थी। वह चतुर्दशी तिथि मयी थी। उसने ऐसा ही होगा—यह कहकर ललितादेवी को प्रणाम किया था।३३। उसी भाँति से पूर्व में निर्दिष्ट महेन्द्र के उत्तर भूतल को कुण्डली कृत बनाकर उसने फिर शाल रूप से ज्वलित कर दिया था।३४। दंडनाथा और मन्त्रिणी की चमू भी ऐसी शोभित हुई थी मानो नभोवलय के जम्बाल से ज्वालाओं की माला से पूर्ण आकृति होवे।३५।

अन्यासामपि शक्तीनां महतीनां महद्बलम् ।
विशंकटोदरं सालं प्रविवेश गतबलमा ॥३६

राजचक्ररथेन्द्रं तु मध्ये संस्थाप्य दंडिनी ।
वामपक्षे रथं स्वीयं दक्षिणे श्यामलारथम् ॥३७

पश्चाद्भागे सम्पदेशीं पुरस्ताच्च हयासनाम् ।
एवं संवेश्य परितश्चक्रराजरथस्य च ॥३८

द्वारे निवेशयामास विंशत्यक्षौहिणीयुताम् ।
ज्वलद्दंडायुधोदग्रां स्तम्भिनीं नाम देवताम् ॥३९

या देवी दंडनाथाया विघ्नदेवीति विश्रुता ।
एवं सुरक्षितं कृत्वा शिबिरं योत्रिणी तथा ।
पूषण्युदितभूयिष्ठे पुनर्युद्धमुपाश्रयत् ॥४०

कृत्वा किलकिलारावं ततः शक्तिमहाचमूः ।
अग्निप्राकारकद्वारान्निर्जगाम महारवा ॥४१

इत्थं सुरक्षितं श्रुत्वा ललिताशिबिरोदरम् ।
भूयः संज्वरमापन्नः प्रचण्डो भंडदानवः ।।४२

अन्य शक्तियों का भी महान बल जो कि शक्तियाँ बहुत महान थीं गत बलम होकर विशंकदोदर शाल में प्रविष्ट हुआ था ।३६। दण्डिनी ने राजचक्र रथेन्द्र को मध्य में स्थापित कर दिया था और उसकी बाँई ओर अपना रथ रक्खा था तथा दाहिनी ओर श्यामला का रथ स्थापित किया था ।३७। पीछे के भाग में सम्पदेशी और आगे हयासना को नियुक्त किया था । इस रीति से सब ओर में चक्रराज रथ को संवेशित किया था ।३८। द्वार भाग में स्तम्भिनी नाम वाली देवी को नियोजित किया था जो बीस अक्षौहिणी सेना से समन्वित थी और जलते हुए दण्डायुधों से बहुत ही उदग्र थी ।३९। जो दण्डनाथा की देवी विघ्न देवी—इस नाम से प्रसिद्ध थी उसने इस प्रकार से शिविर को सुरक्षित बना दिया था तथा योत्रिणी-पूषणी और उदित भूयिष्ठा ने फिर युद्ध का उपाश्रय लिया था ।४०। किलकिल की ध्वनि करके वह शक्ति की विशाल सेना अग्नि के प्राकार वाले द्वार बड़ा घोष करती हुई बाहिर निकली थी ।४१। ललिता देवी के शिविर के मध्यभाग को इस प्रकार से सुरक्षित हुआ श्रवण करके वह परम प्रचण्ड भंड दानव पुनः बड़े ही सन्ताप को प्राप्त हो गया था ।४२।

मन्त्रयित्वा पुनस्तत्र कुटिलाक्षपुरोगमैः ।
विषंगेण विशुक्रेणासममात्मसुतैरपि ।।४३
एकौघस्य प्रसारेण युद्धं कर्तुं महाबलः ।
चतुर्बाहुमुखान्पुत्रांश्चतुर्जलधिसन्निभान् ।।४४
चतुरान्युद्धकृत्येषु समाहूय स दानवः ।
प्रेषयामास युद्धाय भण्डश्चण्डक्रुधा ज्वलन् ।।४५
त्रिंशत्संख्याश्च तत्पुत्रा महाकाया महाबलाः ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि समाकर्णय कुम्भज ।।४६
चतुर्बाहुश्चकोराक्षस्तृतीयस्तु चतुःशिरा ।
वज्रघोषश्चोर्ध्वकेशो महाकायो महाहनुः ।।४७
मखशत्रुर्मखस्कन्दी सिंहघोषः सिरालकः ।
लड्डुनः पट्टसेनश्च पुराजित्पूर्वमारकः ।।४८

स्वर्गशत्रुः स्वर्गबलो दुर्गाख्यः स्वर्गकण्टकः ।
अतिमाया बृहन्माय उपमावश्च वीर्यवान् ॥४९

फिर उसने वहाँ पर कुटिलाक्ष जिनमें प्रमुख था उन सबके साथ मन्त्रणा करके तथा विषङ्ग-विशुक्र और अपने पुत्रों के साथ भी मंत्रणा की थी ।४३। उस महान बलवान ने एक ही साथ सामूहिक प्रसार से युद्ध करने के लिए निश्चय किया था और चार समुद्रों के तुल्य जो चतुर्बाहु प्रमुख चार पुत्र ये उनको नियुक्त किया था ।४४। उस दानव ने चारों को बुलाया था और युद्ध के कृत्यों में नियुक्त किया था । भंडासुर बड़े ही प्रचण्ड क्रोध से जलता हुआ होकर उसने हमको युद्ध के लिए भेज दिया था ।४५। उसके पुत्र संख्या में तीस थे । इनके विशाल शरीर थे और इनमें महान बल विद्यमान था । हे कुम्भज ! उनके सबके नाम भी मैं बतलाऊँगा आप सुनिए ।४६। चतुर्बाहु–चकोराक्ष–चतुःशिरा––वज्रघोष–ऊर्ध्वकेश–महाकाय–महाहनु–मखशत्रु–मखस्कन्दी–सिंहघोष–शिरालक–लड्डुन–पट्टसेन–पुराजित–पूर्वमारक–स्वर्ग–शत्रु–स्वर्गबल––दुर्गाख्य–स्वर्ग–कण्टक–अतिमाय–बृहन्माय–उपमाय–वीर्यवान ।४७-४९।

इत्येते दुर्मदाः पुत्रा भण्डदैत्यस्य दुर्धियः ।
पितुः सदृशदोर्वीर्याः पितुः सदृशविग्रहाः ॥५०
आगत्य भण्डचरणावभ्यवंदत भक्तितः ।
तानुद्वीक्ष्य प्रसन्नाभ्यां लोचनाभ्यां स दानवः ।
सगौरवमिदं वाक्यं बभाषे कुलघातकः ॥५१
भो भो मदीयास्तनया भवतां कः समो भुवि ।
भवतामेव सत्येन जितं विश्वं मया पुरा ॥५२
शक्रस्याग्नेर्यमस्यापि निर्ऋतेः पाशिनस्तथा ।
कचेषु कर्षणं कोपात्कृतं युष्माभिराहवे ॥५३
अस्त्राण्यपि च शस्त्राणि जानीथ निखिलान्यपि ।
जाग्रत्स्वेव हि युष्मासु कुलभ्रंशोऽयमागतः ॥५४
मायाविनी दुर्ललिता काचित्स्त्री युद्धदुर्मदा ।
बहुभिः स्वसमानाभिः स्त्रीभिर्युक्ता हिनस्ति नः ॥५५

तदेनां समरेऽवश्यमात्मवश्यां विधास्यथ ।
जीवग्राहं च सा ग्राह्या भवद्भिर्ज्वलदायुधैः ॥५६

ये इतने भंडासुर के दुष्ट बुद्धि वाले और दुर्मद पुत्र थे। ये सभी अपने पिता के ही समान तो बाहुबल वाले थे और पिता के तुल्य ही इनका कलेवर था ।५०। उन सबने भक्ति की भावना से भण्डासुर के चरणों में प्रणाम किया था । उस दानव ने प्रसन्न लोचनों से उनको देखा था और बड़े गौरव के साथ उनसे यह वाक्य बोला था और यह अपने समस्त कुल का घातक था ।५१। हे मेरे पुत्रो ! इस भूमण्डल में आपके समान कोई भी नहीं हैं । आप लोगों के ही बल-विक्रम से मैंने पहिले यह समस्त विश्व को जीत लिया था ।५२। तुम सबने युद्धस्थल में कोप से इन्द्र का—अग्नि का—यम का—निर्ऋति का और पाशी के कवचों का कर्षण किया था ।५३। आप लोग सब अस्त्रों को भी जानते हैं । अब आप सबके जाग्रत रहते हुए भी यह हमारे कुल का भ्रंश आ गया है ।५४। कोई दुष्टा—मायाविनी और युद्ध करने में दुर्मदा है जो कि अपने ही सदृश स्त्रियों से संयुत होकर हमको मार रही है ।५५। सो अब इसको युद्ध में अपने वश में अवश्य ही तुम कर लोगे । आप सब जलते हुए आयुधों को लेकर उसको जीवित ही पकड़ लेना ।५६।

अप्रमेयप्रकोपांधान्युष्मानेकां स्त्रियं प्रति ।
सम्प्रेषणमनौचित्यं तथाप्येष विधेः क्रमः ॥५७
इममेकं सहध्वं च शौर्यकीर्तिविपर्ययम् ।
इत्युक्त्वा भण्डदैत्येन्द्रस्तान्प्रहैषीद्रणं प्रति ।
द्विशतं चाक्षौहिणीनां तत्सहायतयाऽहिनोत् ॥५८
द्विशत्यक्षौहिणीसेना मुख्यस्य तिलकायिता ।
बद्धभ्रुकुटयः शस्त्रपाणयो निर्ययुर्गृहात् ॥५९
निर्गमे भण्डपुत्राणां भू प्रकम्पमलम्बत ।
उत्पाता विविधा जाता वित्रस्तं चाभवज्जगत् ॥६०
तान्कुमारान्महासत्त्वांल्लाजवर्षैरवाकिरन् ।
वीथीषु यानैश्चलितान्पौरवृद्धपुरंध्रयः ॥६१

वंदिनो मागधाश्चैव कुमाराणां स्तुति व्यधुः ।
मंगलारार्तिकं चक्रुर्द्वारि द्वारे पुरांगनाः ॥६२
भिद्यमानेव वसुधा कृष्यमाणमिवांबरम् ।
आसीत्तेषां विनिर्याणे घूर्णमान इवार्णवः ॥६३

आप सबका प्रकोप तो अप्रमेय है । आप सब ऐसे वीरों को केवल एक नारी की ओर भेजना उचित नहीं है तथापि यह विधाता का ही ऐसा क्रम है ।५७। यह एक आपकी कीर्त्ति का बड़ा भारी विपर्यय है उसको आप लोग सहन कर लीजिए क्योंकि आपकी बहुत बड़ी शूरता है और एक साधारण नारी पर आक्रमण करना है । यह कह कर उस भण्डासुर ने उन सबको युद्ध में भेजा था । तथा उनकी सहायता के लिए दो सौ अक्षौहिणी सेनाएँ भी भेज दी थीं ।५८। वह दो सौ अक्षौहिणी सेना भी सबमें शिरोमणि थी । वे सभी सैनिक क्रोध से अपनी भृकुटियों को ताने हुए थे और हाथों में हथियार लेकर वहाँ से निकले थे ।५९। जब भण्ड के पुत्रों ने निर्गमन किया था उस समय भूमण्डल काँप उठा था । अनेक उत्पात उत्पन्न हुए थे और सम्पूर्ण जगत् भयभीत हो गया था ।६०। उस पुर की प्रौढ़ स्त्रियों ने वीथियों में यानों के द्वारा चलते हुए महान उलवान उन कुमारों के ऊपर लाजाओं की वर्षा की थी ।६१। वन्दीगण और मागधों ने उन कुमारों का स्तवन किया था और पुरकी अंगनाओं ने द्वारों पर उनकी मंगल कामना से आरती की थी ।६२। उस समय में यह भूमि विद्यमान सी हो रही थी और आकाश आकृष्यमाण-सा हो रहा था । उनके निकलने के समय सागर घूर्णमान सा हो गया था ।६३।

द्विशत्यक्षौहिणीसेनां गृहीत्वा भण्डसूनवः ।
क्रोधोद्यद्भ्रुकुटीक्रूरवदना निर्ययुः पुरात् ॥६४
शक्तिसैन्यानि सर्वाणि भक्षयामः क्षणाद्रणे ।
तेषामायुधचक्राणि चूर्णयामः शितैः शरैः ॥६५
अग्निप्रकारावलयं शमयामश्च रंहसा ।
दुर्विदग्धां तां ललितां वन्दीकुर्मश्च सत्वरम् ॥६६
इत्यन्योन्यं प्रवल्गन्तो वीरभाषणघोषणैः ।
आसेदुरग्निप्राकारसमीपं भण्डसूनवः ॥६७

यौवनेन मदेनान्धा भूयसा रुद्धदृष्टयः ।
भ्रुकुटीकुटिलाश्चक्रुः सिंहनादं महत्तरम् ॥६८
विदीर्णमिव तेनासीद्ब्रह्मांडं चंडिमस्पृशा ।
उत्पातवारिदोत्सृष्टघोरनिर्घातरंहसा ॥६९
एतस्याननुभूतस्य महाशब्दस्य डम्बरः ।
क्षोभयामास शक्तीनां श्रवांसि च मनांसि च ॥७०

दो सौ अक्षौहिणी सेना को साथ में लेकर उस भण्ड के पुत्र नगर से भृकुटियाँ तानकर क्रूर मुखों वाले होते हुए ही निकल कर चल दिये थे ।६४। वे यही कहते हुए चल रहे थे कि हम समस्त शक्तियों की सेनाओं को खा जायेंगे और रण में एक ही क्षण में अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके सभी आयुधों का चूर्ण कर देंगे ।६५। उस अग्नि की चहार दीवारी के वलय को भी वेग से शान्त कर देंगे। उस दुर्विदग्धा ललिता को शीघ्र बन्दी बना डालेंगे ।६६। वे भण्डासुर के पुत्र परस्पर में वीर भाषणों के उद्घोषों से बातचीत करते हुए उस अग्नि के प्राकार के समीप में प्राप्त हो गये थे ।६७। यौवन से और बड़े बढ़े हुए मद से अन्धे हो रहे थे और उनकी दृष्टि रुद्ध हो गयी थी। उन्होंने अपनी भौहों को तिरछी करके बड़ा भारी सिंहनाद किया था ।६८। प्रचण्ड स्पर्श वाले उस सैन्य समुदाय से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विदीर्ण-सा हो गया था। वह सैन्य समुदाय उत्पातजनक मेघों से उत्कृष्ट घोर निर्घात के वेग वाला था ।६९। इस अनुभूत महान् घोष का डम्बर ऐसा था कि उसने शक्तियों के कानों को और मनों को क्षुब्ध कर दिया था ।७०।

आगत्य ते कलकलं चक्रुः सार्धं स्वसैनिकैः ।
विविधायुधसम्पातमूर्च्छद्वैमानिकच्छटम् ॥७१
चतुर्बाहुमुखान्भूत्वा भण्डदैत्यकुमारकान् ।
आगतान्युद्धकृत्याय बाला कौतूहलं दधे ॥७२
कुमारी ललितादेव्यास्तस्या निकटवासिनी ।
समस्तशक्तिचक्राणां पूज्या विक्रमशालिनी ॥७३
ललितासदृशाकारा कुमारी कोपमादधे ।
या सदा नववर्षेव सर्वविद्यामहाखनिः ॥७४

बालारुणतनुः श्रोणीशोणवर्णवपुर्लता ।
महाराज्ञी पादपीठे नित्यमाहितसंनिधिः ॥७५
तस्या बहिश्चराः प्राणा या चतुर्थं विलोचनम् ।
तानागतान्भण्डसुतान्संहरिष्यामि सत्वरम् ॥७६
इति निश्चित्य बालांबा महाराज्ञयै व्यजिज्ञपत् ।
मातर्भंडमहादैत्यसूनवो योद्धुमागताः ॥७७

अनेक प्रकार के आयुधों के गिराने से विमानों की छटा को मूच्छित करते हुए उन्होंने वहाँ आकर अपने सैनिकों के साथ कलकल ध्वनि कर दी थी ।७१। चतुर्बाहु जिनमें प्रमुख था ऐसे उन भण्डासुर के कुमारों को आये हुए जानकर जो कि युद्ध के ही लिए समागत हुए थे बाला ने अपने मन में कौतूहल किया था ।७२। उस ललिता देवी के निकट में वास करने वाली कुमारी समस्त शक्तियों के चक्रों की पूज्य और विक्रम वाली थी ।७३। कुमारी ललिता के ही तुल्य आकार वाली थी। उसने कोप किया था जो सदा नूतन वर्षा के ही समान समस्त विद्याओं की बड़ी खान थी ।७४। उसकी श्रोणी बालसूर्य के तुल्य लाल वर्ण की थी तथा उसका शरीर भी शोण (रक्त) था। वह महाराज्ञी के पाद पीठ पर ही नित्य सन्निधान करने वाली थी ।७५। उसके बाहिर सञ्चरण करने वाले प्राण जो चौथा नेत्र ही था। उसने कहा था उन समागत भंड के पुत्रों को मैं शीघ्र मार डालूँगी ।७६। उस बालाम्बा ने यह निश्चय करके महारानी से कहा था—हे माता ! भंडासुर के पुत्र युद्ध करने को आ गये हैं ।७७।

तैः समं योद्धुमिच्छामि कुमारित्वात्सकौतुका ।
स्फुरन्ताविव मे बाहू युद्धकण्डूययानया ॥७८
क्रीडा ममैषा हन्तव्या न भवत्या निवारणैः ।
अहं हि बालिका नित्यं क्रीडनेष्वनुरागिणी ॥७९
क्षणं रणक्रीडया च प्रीतिं यास्यामि चेतसा ।
इति विज्ञापिता देवी प्रत्युवाच कुमारिकाम् ॥८०
वत्से त्वमतिमृद्वंगी नववर्षा नवक्रमा ।
नवीनयुद्धशिक्षा च कुमारी त्वं ममैकिका ॥८१

त्वां विना क्षणमात्रं मे न निश्वासः प्रवर्तते ।
ममोच्छ्वसितमेवासि न त्वं याहि महाहवम् ।।८२
दण्डिनी मन्त्रिणी चैव शक्तयोऽन्याश्च कोटिशः ।
संत्येव समरे कर्तुं वत्से त्वं किं प्रमाद्यसि ।।८३
इति श्रीललितादेव्या निरुद्धापि कुमारिका ।
कौमारकौतुकाविष्टा पुनर्युद्धमयाचत ।।८४

मैं कुमारी होने से बड़े कौतुक के साथ उनके साथ युद्ध करना चाहती हूँ। इस युद्ध करने की खुजली से मेरी बाहुएँ फड़क रही हैं ।७८। आप मुझे इसके लिए निवारित न करें क्योंकि इस निषेध करने से तो मेरी यह क्रीड़ा का हनन ही हो जायगा। मैं तो छोटी बच्ची हूँ सर्वदा ही क्रीड़ाओं में मेरा अनुराग रहा करता है ।७९। क्षणभर रण करने की क्रीड़ा से मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी और चित्त में आनन्द होगा। जब इस तरह से देवी से कहा गया था तो ललिता देवी ने उस कुमारिका से कहा था ।८०। हे वत्से ! तुम तो बहुत ही कोमल अङ्ग वाली हो—नौ ही वर्ष की हो और नूतन क्रम वाली हो और तुमको नये युद्ध की ही शिक्षा मिली है ऐसी कुमारी तुम मेरी एक ही सैनिका हो ।८१। तुम्हारे बिना मुझे एक क्षण भी निश्वास नहीं होता है। तुम तो मेरे श्वास ही हो अतः तुम इस महान संग्राम में मत जाओ ।८२। दडिनी और मन्त्रिणी ऐसी अन्य करोड़ों ही शक्तियाँ हैं, हे वत्से ! जो इस संग्राम में उपस्थित ही रहती हैं। तुम ऐसा प्रमाद क्यों कर रही हो ? ।८३। इस रीति से ललिता देवी के द्वारा उस कुमारी को रोका भी गया था तो भी कुमारावस्था के कौतुक से समाविष्ट होकर पुनः युद्ध करने की प्रार्थना उसने की थी ।८४।

सुदृढ निश्चयं दृष्ट्वा तस्याः श्रीललितांबिका ।
अनुज्ञां कृतवत्येव गाढमाश्लिष्य बाहुभिः ।।८५
स्वकीयकवचादेकमाच्छिद्य कवचं ददौ ।
स्वायुधेभ्यश्चायुधानि वितीर्य विससर्ज ताम् ।।८६
कर्णीरथं महाराज्ञ्या चापदण्डात्समुद्धृतम् ।
हंसयुग्मशतैर्युक्तमारुरोह कुमारिका ।।८७

तस्यां रणे प्रवृत्तायां सर्वपर्वस्थदेवताः ।
बद्धांजलिपुटा नेमुः प्रधृतासिपरम्पराः ॥८८

ताभिः प्रणम्यमाना सा चक्रराजरथोत्तमात् ।
अवरुह्य तले सैन्यं वर्तमानमगाहत ॥८९

तामायांतीमथो दृष्ट्वा कुमारीं कोपपाटलाम् ।
मंत्रिणीदण्डनाथे च सभये वाचमूचतुः ॥९०

किं भर्तृदारिके युद्धे व्यवसायः कृतस्त्वया ।
अकांडे किं महाराज्ञया प्रेषितासि रणं प्रति ॥९१

श्री ललिता अम्बा से उस कुमारी का परम दृढ़ निश्चय समझकर अपनी बाहुओं से खूब अच्छी तरह समालिङ्गन करके उसको युद्ध करने की आज्ञा दी थी ।८५। ललिता देवी ने अपने कवच से एक कवच निकाल कर उसको दिया था और अपने आयुधों से आयुध देकर उसको विदा किया था ।८६। चाप और दंड से समुद्धृत महाराज्ञी का कर्णी रथ था जो सैकड़ों हंसों से युक्त था उस पर कुमारिका ने समारोहण किया था ।८७। उसके रण में प्रवृत्त हो जाने पर सभी पर्वों पर स्थित देवता हाथों को जोड़े हुए असियों को प्रधृत करके प्रणाम करने लगे थे ।८८। उनके द्वारा प्रणाम किये जाने पर वह देवी चक्रराज रथोत्तम से नीचे उतर गयी और वहाँ पर जो सेना थी उसका अवगाहन किया था ।८९। इसके अनन्तर उस कुमारी को कोप से पाटल और आती हुई देखा तो मन्त्रिणी और दंडनाथा ने भययुक्त होकर यह वचन कहे थे ।९०। हे भर्तृदारिके ! क्या आपने युद्ध में व्यवसाय किया है ? महाराज्ञी ने अकाण्ड में यह क्या रण की ओर आपको भेज दिया है ? ।९१।

तदेतदुचितं नैव वर्तमानेऽपि सैनिके ।
त्वं मूर्तं जीवितमसि श्रीदेव्या बालिके यतः ॥९२

निवर्तस्व रणोत्साहात्प्रणामस्ते विधीयते ।
इति ताभ्यां प्रार्थितापि प्राचलद्दृढनिश्चया ॥९३

अत्यन्तं विस्मयाविष्टे मंत्रिणीदण्डनायिके ।
सहैव तस्या रक्षार्थं चेलतुः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥९४

अथाग्निवरणद्वारा ताभ्यामनुगता सती ।
प्रभूतसेनायुक्ताभ्यां निर्जगाम कुमारिका ॥९५
सनाथशक्तिसेनानां सर्वासामनुगृह्णती ।
प्रणामांजलिजालानि कर्णीरथकृतासना ॥९६
भंडस्य तनयान्दुष्टानभ्यद्रवदरिंदमा ।
तस्याः प्रादेशिकं सैन्यं कुमार्या न हि विद्यते ॥९७
सर्वं हि ललितासैन्यं तत्सैन्यं समजायत ।
ततः प्रववृते युद्धमत्युद्धतपराक्रमम् ॥९८

हे बालिके ! क्योंकि आप तो श्री देवी के मूर्त्तिमान् जीवन ही हैं अतएव यह उचित नहीं है जबकि सेनाएं विद्यमान हैं ।९२। आप तो इस समय इस रण करने के उत्साह को त्याग कर लौट जाइए । आपको हमारे प्रणाम किये जाते हैं । इस तरह से उन दोनों के द्वारा प्रार्थना भी की गयी थी तो भी दृढ़ निश्चय वाली वहाँ चल दी थी ।९३। मन्त्रिणी और दण्ड नायिका दोनों अत्यधिक विस्मय से समाविष्ट हो गईं थीं और उसके दोनों ओर उसी की रक्षा करने के लिए चल दी थीं ।९४। इसके अनन्तर अग्नि के वरण के द्वारा उन दोनों से अनुगता होती हुई जो बहुत सेना से युक्त थीं कुमारिका वह वहाँ से निर्गत हुई थी ।९५। कर्णीरथ पर विराजमान स्वामी के सहित समस्त शक्तियों की सेनाओं पर अनुग्रह करती हुई वह रवाना हुई थी । उसको मार्ग में सभी प्रणामाञ्जलियाँ कर रहे थे ।९६। शत्रुओं का दमन करने वाली ने भंडासुर के पुत्रों पर आक्रमण कर दिया था । उस कुमारी की प्रादेशिक सेना नहीं थी ।९७। समस्त ललिता की ही सेना ही उसकी सेना हो गयी थी । इसके अनन्तर अतीव उद्धत पराक्रम से संयुत महान् युद्ध प्रवृत्त हो गया था ।९८।

ववर्ष शरजालानि दैत्येन्द्रेषु कुमारिका ।
भण्डासुरकुमारैस्तैर्महाराज्ञो कुमारिका ।
यद्युद्धमतनोत्तत्तु स्पृहणीयं सुरासुरैः ॥९९
अत्यन्तविस्मिता दैत्यकुमारा नववर्षिणीम् ।
कर्णीरथस्थामालोक्य किरंतीं शरमंडलम् ॥१००

क्षणे क्षणे बालिकया क्रियमाणं महारणम् ।
व्यजिज्ञपन्महाराज्ञयै भ्रमंत्यः परिचारिकाः ॥१०१

मंत्रिणीदण्डनाथे च न तां विजहतू रणे ।
प्रेक्षकत्वमनुप्राप्ते तूष्णीमेव बभूवतुः ॥१०२

सर्वेषां दैत्यपुत्राणामेकरूपा कुमारिका ।
प्रत्येकभिन्ना दहशे बिंबमालेव भास्वतः ॥१०३

सायकैरग्निचूडालैस्तेषां मर्माणि भिंदती ।
रक्तोत्पलामिव क्रोधसंरक्तं बिभ्रती मुखम् ॥१०४

आश्चर्यं ब्रुवतो व्योम्नि पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ।
साधुवादैर्बहुविधैर्मन्त्रिणीदण्डनाथयोः ॥१०५

उस कुमारिका ने अपने बाणों के जालों को उन दैत्येन्द्रों पर वर्षा की थी। उन भंडासुर के पुत्रों के साथ उस महाराज्ञी की कुमारिका का जो युद्ध उस समय में हुआ था वह सभी सुरों और असुरों के द्वारा स्पृहा करने के ही योग्य था।९९। कर्णीरथ पर स्थित हुई बाणों के मण्डल की वर्षा करने वाली उस नौ वर्ष की कुमारिका को देखकर दैत्यराज के पुत्र अत्यन्त अधिक विस्मित हो गये थे।१००। प्रतिक्षण उस बालिका के द्वारा किये जाने वाले युद्ध का समाचार परिचारिकाएँ भ्रमण करती हुईं महाराज्ञी को बता रही थी।१०१। मन्त्रिणी और दण्डनाथाओं ने उस कुमारिका को कभी भी युद्ध में साथ नहीं छोड़ा था। ये दोनों प्रेक्षक थीं और चुप ही हो गयी थीं।१०२। सूर्य देव की बिम्बमाला के ही तुल्य वह एक ही स्वरूप वाली कुमारी समस्त दैत्य के पुत्रों को प्रत्येक को भिन्न दिखाई दे रही थी।१०३। अग्नि चूडाल बाणों से उनके कर्मों का भेदन करती हुई युद्ध कर रही थी और उसका मुख क्रोध से लाल रक्त कमल के ही समान शोभित हो रहा था।१०४। नभ में देवगण देखते हुए बड़ा ही आश्चर्य प्रकट कर रहे थे। तथा मन्त्रिणी और दण्डनाथा के अनेक प्रकार के साधु वाद भी कहे जा रहे थे।१०५।

अर्च्यमाना रणं चक्रे लघुहस्ता कुमारिका ।
द्वितीयं युद्धदिवसं समस्तमपि सा रणे ॥१०६

प्रकाशयामास बलं ललितादुहिता निजम् ।
अस्त्रप्रत्यस्त्रमोक्षेण तान्सर्वानपि भिंदती ॥१०७
नारायणास्त्रमोक्षेण महाराज्ञीकुमारिका ।
द्विशत्यक्षौहिणीसैन्यं भस्मसादकरोत्क्षणात् ॥१०८
अक्षौहिणीनां क्षयतः क्षणात्कोपमुपागताः ।
आकृष्टगुरुधन्वानस्तेऽपतन्नेकहेलया ॥१०९
ततः कलकले जाते शक्तीनां च दिवौकसाम् ।
युगपत्त्रिशतो बाणानसृजत्सा कुमारिका ॥११०
हस्तलाघवमाश्रित्य मुक्तैश्चंद्रार्धसायकैः ।
त्रिशता त्रिशतो भंडपुत्राणामाहृतं शिरः ॥१११
इति भंडस्य पुत्रेषु प्राप्तेषु यमसादनम् ।
अत्यन्तविस्मयाविष्टा ववृषुः पुष्पमभ्रगाः ॥११२

लघु हाथों वाली वह कुमारिका पूज्यमान होती हुई युद्ध कर रही थी । उसने युद्ध में दूसरा पूर्ण दिवस भी समाप्त किया था और उस ललिता देवी की पुत्री ने अपने बल को प्रकाशित किया था । वह उन सबको अपने अस्त्रों और प्रत्यस्त्रों से भेदन कर रही थी ।१०६-१०७। उस महाराज्ञी की कुमारिका ने नारायणास्त्र को छोड़कर दो सौ अक्षौहिणी सेनाओं को एक ही क्षण में भस्मसात् कर दिया था ।१०८। उन अक्षौहिणी सेनाओं के विनाश होने से एक ही क्षण में क्रोध को प्राप्त हुए वे दैत्यराज के पुत्रों ने अपने-अपने धनुषों को खींचा था और वे सब एक ही साथ गिर गये थे ।१०९। फिर शक्तियों का और देवगणों का कलकल उत्पन्न हो जाने पर उस कुमारिका ने एक ही साथ तीस बाण छोड़े थे ।११०। हाथ की कुशलता का आश्रय लेकर छोड़े हुए अर्ध चन्द्र बाणों से जो सङ्ख्या में तीस थे उन तीसों भण्डासुर के पुत्रों का उसने शरीर काट डाला था ।१११। इस तरह से भंड के समस्त पुत्रों के मर जाने पर अत्यधिक विस्मय से युक्त होकर देवों ने आकाश में स्थित होकर पुष्पों की वर्षा की थी ।११२।

सा च पुत्री महाराज्ञ्याः विध्वस्तासुरसैनिका ।
मन्त्रिणीदण्डनाथाभ्यामालिंग्यत भृशं मुदा ॥११३

तस्याः पराक्रमोन्मेषैर्नृत्यन्त्यो जयदायिभिः ।
शक्तयस्तुमुलं चक्रुः साधुवादैर्जगत्त्रयम् ॥११४

सर्वाश्च शक्तिसेनान्यो दण्डनाथापुरःसराः ।
तदाश्चर्यं महाराज्ञ्यै निवेदयितुमुद्गताः ॥११५

ताभिर्निवेद्यमानानि सा देवी ललितांबिका ।
पुत्रीभुजावदानानि श्रुत्वा प्रीतिं समाययौ ॥११६

समस्तमपि तच्चक्रं शक्तीनां तत्पराक्रमैः ।
अदृष्टपूर्वैर्देवेषु विस्मयस्य वशं गतम् ॥११७

और उस महाराज्ञी की पुत्री ने मंडासुर के सब पुत्रों को विध्वस्त कर दिया था और फिर मन्त्रिणी और दण्डनाथा के द्वारा बार-बार आलिंगन की गयी थी तथा इन दोनों को बड़ी ही प्रसन्नता हुई थी ।११३। उस कुमारिका के जो विजय देने वाले पराक्रमों के उन्मेषों से नृत्य करती हुई शक्तियों के साधुवादों के तुमुल घोष से तीनों लोकों को भर दिया था ।११४। समस्त शक्तियों के सेनानियों ने जिनमें दण्डनाथा भी थी उस महान आश्चर्य जनक युद्ध की विजय को महाराज्ञी को निवेदन करने के लिए तैयारी की थी ।११५। ललिता देवी ने अपनी पुत्री की भुजाओं के अवदानों को जो उन शक्तियों के द्वारा सुनाये गये थे श्रवण करके बहुत ही अधिक प्रसन्नता प्राप्त की थी ।११६। वह समस्त चक्र शक्तियों के अदृष्ट पूर्व पराक्रमों से देवों के भी विस्मय करने वाला हो गया था ।११७।

—×—

॥ गणनाथ पराक्रम वर्णन ॥

अथ नष्टेषु पुत्रेषु शोकानलपरिप्लुतः ।
विललाप स दैत्येन्द्रो मत्वा जातं कुलक्षयम् ॥१

हा पुत्रा हा गुणोदारा हा मदेकपरायणाः ।
हा मन्नेत्रसुधापूरा हा मत्कुलविवर्धनाः ॥२

हा समस्तसुरश्रेष्ठमदभंजनतत्पराः ।
हा समस्तसुरस्त्रीणामंतर्मोहनमन्मथाः ॥३

दिशत प्रीतिवाचं मे ममांके वल्गताधुना ।
किमिदानीमिमं तातमवमुच्य सुखं गताः ॥४
युष्मान्विना न शोभन्ते मम राज्यानि पुत्रकाः ।
रिक्तानि मम गेहानि रिक्ता राजसभापि मे ॥५
कथमेवं विनिःशेषं हता यूयं दुराशयाः ।
अप्रधृष्यभुजासत्वान्भवतो मत्कुलांकुरान् ।
कथमेकपदे दुष्टा वनिता संगरेऽवधीत् ॥६
मम नष्टानि सौख्यानि मम नष्टाः कुलस्त्रियः ।
इतः परं कुले क्षीणे साहसानि सुखानि च ॥७

इसके अनन्तर अपने समस्त पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर महान शोक से परिप्लुत होकर भण्डासुर विलाप करने लगा था और उसने यह मान लिया था कि अब मेरे कुल का नाश हो गया है।१। वह इस रीति से क्रन्दन करने लगा था—हा ! मेरे पुत्रो ! तुम सब तो बहुत ही उदार गुणों वाले थे—तुम सभी मेरी आज्ञा में तत्पर रहे थे—हा ! आप तो मेरे नेत्रों को सुधा के सूर के ही समान थे और मेरे कुल को बढ़ाने वाले थे।२। हा ! आप लोग तो सभी देवों के मद का भंजन करने वाले थे—हा ! आप लोग देवाङ्गनाओं के हृदयों को मोहित करने में कामदेव के ही तुल्य थे।३। मुझे अपनी प्रीति युक्त वाणी सुनाओ—अब मेरी गोद में आकर बैठो—इस समय यह घटना हो गयी है कि आप लोग अपने पिता का त्याग करके सुखी हो गये हो।४। हे पुत्रो ! आप सबके बिना यह मेरे राज्य शोभित नहीं हो रहे हैं। मेरे घर सब अब सुने हैं और मेरी राज्य सभा भी सूनी हो गयी है। यह क्या हुआ और आप सभी कैसे दुराशयों वाले एक ही साथ निहत हो गये हैं। जिनकी भुजाओं का बल कोई भी दबा नहीं सकता था ऐसे जो मेरे कुल के अंकुर आप सब थे उन सबको एक ही बार में उस दुष्टा नारी ने युद्ध में कैसे मार डाला था।५-६। मेरी सब सेनाएँ नष्ट हो गयीं और मेरी कुल स्त्रियाँ भी विनष्ट हो गयी हैं। इससे आगे कुल के क्षीण हो जाने पर सब साहस और सुख भी विनष्ट हो गये हैं।७।

भवतः सुकृतैर्लब्ध्वा मम पूर्वजनुः कृतैः ।
नाशोऽयं भवतामद्य जातो नष्टस्ततोऽस्म्यहम् ॥८

हा हतोऽस्मि विपन्नोऽस्मि मन्दभाग्योऽस्मि पुत्रकाः ।
इति शोकात्स पर्यस्यन्प्रलपन्मुक्तमूर्धजः ।
मूर्च्छया लुप्तहृदयो निष्पपात नृपासनात् ॥६
विशुक्रश्च विषंगश्च कुटिलाक्षश्च संसदि ।
भंडमाश्वासयामासुर्दैवस्य कुटिलकर्मैः ॥१०
विशुक्र उवाच–
देव किं प्राकृत इव प्राप्तः शोकस्य वश्यताम् ।
लपसि त्वं प्रति सुतान्प्राप्तमृत्यून्महाहवे ॥११
धर्मवान्विहितः पंथा वीराणामेष शाश्वतः ।
अशोच्यमाहवे मृत्युं प्राप्नुवंति यदर्हितम् ॥१२
एतदेव विनाशाय शल्यवद्बाधते मनः ।
यत्स्त्री समागत्य हठान्निहंति सुभटान्रणे ॥१३
इत्युक्ते तेन दैत्येन पुत्रशोको व्यमुच्यत ।
भंडेन चंडकालाग्निसदृशः क्रोध आदधे ॥१४

आप लोगों के जन्म मैंने पूर्व पुण्यों के द्वारा ही प्राप्त किये थे आज आप सबका विनाश हो गया है अब तो मैं भी विनष्ट ही हो गया हूँ ।८। हे पुत्रो ! हा ! अब तो मैं मर ही गया हूँ—विपत्ति ग्रस्त हो गया हूँ और खोटी तकदीर वाला हो गया हूँ । इस तरह से वह शोक से ग्रस्त हो गया था और माथे के बालों को खोलकर प्रलाप कर रहा था । उसको मूर्च्छा हो गयी थी और उसकी हृदयगति लुप्त हो गयी थी—वह फिर नृपासन से नीचे गिर पड़ा था ।६। फिर विशुक्र-विषङ्ग और कुटिलकर्मों ने उस संसद में भाग्य के कुटिलाओं को कहते हुए भण्डासुर को आश्वासन दिया था ।१०। विशुक्र ने कहा—हे स्वामिन् ! आप सामान्य मानव के ही समान शोक के वश में क्यों प्राप्त हो गये हैं । महान संग्राम में मरे हुए पुत्रों की ओर क्या बात कर रहे हैं ।११। वीरों का तो यह युद्ध करते हुए मर जाना धार्मिक मार्ग ही है और यह निरन्तर होने वाला है । जो युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होते हैं वह तो उनकी मृत्यु शोच करने के योग्य नहीं हुआ करती है प्रत्युत पूजित ही हुआ करती है ।१२। केवल यही बात शल्य के समान मन को

पीड़ा दे रही है कि स्त्री ने आकर युद्ध में बड़े-बड़े योधाओं का हनन किया है ।१३। उस दैत्य के द्वारा ऐसा कहने पर भण्ड ने पुत्रों के शोक का त्याग कर दिया था और फिर भण्ड ने प्रचण्ड कालाग्नि के समान क्रोध किया था ।१४।

स कोशात्क्षिप्रमुद्धृत्य खड्गमुग्रं यमोपमम् ।
विस्फारिताक्षियुगलो भृशं जज्वाल तेजसा ॥१५
इदानीमेव तां दुष्टां खड्गेनानेन खंडशः ।
शकलीकृत्य समरे श्रमं प्राप्स्यामि बंधुभिः ॥१६
इति रोषस्खलद्वर्णः श्वसन्निव भुजंगमः ।
खड्गं विधुन्वन्नुत्थायः प्रचचालातिमत्तवत् ॥१७
तं निरुध्य च संभ्रांताः सर्वे दानवपुङ्गवाः ।
वाचमूचुरतिक्रोधाज्ज्वलंतो ललितां प्रति ॥१८
न तदर्थे कार्यः स्वामिन्संभ्रम ईदृशः ।
अस्माभिः स्वबलैर्युक्तैः रणोत्साहो विधीयते ॥१९
भवदाज्ञालवं प्राप्य समस्तभुवनं हठात् ।
विमर्द्दयितुमीशाः स्मः किमु तां मुग्धभामिनीम् ॥२०
किं चूषयामः सप्ताब्धीन्क्षोदयामोऽथ वा गिरीन् ।
अधरोत्तरमेवैतत्त्रैलोक्यं करवाम वा ॥२१

उसने यमराज के तुल्य अपने खड्ग को म्यान से निकाल लिया था जो बड़ा ही उग्र था । उसने अपने नेत्रों को फलाया था और वह तेज से ज्वलित हो गया था ।१५। युद्ध में बन्धुओं के सहित इसी समय में इस खड्ग से उस दुष्टा के खण्ड-२ करके युद्ध में श्रम को प्राप्त करूँगा ।१६। इस तरह से रोष से उसका वर्ण स्खलित हो गया था और वह सर्प के ही तुल्य निःश्वास ले रहा था । वह एक मत्त पुरुष के ही समान अपने खड्ग को हिलाता हुआ वहाँ से चल दिया था ।१७। सभी सम्भ्रान्त दानवों ने उसको रोक दिया था और अत्यधिक क्रोध से जलते हुए उन्होंने ललिता के प्रति वचन कहने का आरम्भ कर दिया था ।१८। हे स्वामिन् ! उसके लिए आपको ऐसा सम्भ्रम नहीं करना चाहिए । हम लोग अपने बलों से समन्वित

होकर रण करने का उत्साह करते हैं ।१९। आपकी सामान्य भी आज्ञा पाकर हम लोग सम्पूर्ण भुवन का मर्दन करने में हठ से समर्थ हैं । उस मुग्ध भामिनी की तो बात ही क्या है । अर्थात वह बिचारी नारी हमारे सामने बहुत ही तुच्छ है ।२०। क्या हम सातों सागरों का चूष डालें अथवा समस्त पर्वतों को खोदकर चूर्ण कर देवें और इन तीनों भुवनों को उठाकर अधर देवें । तात्पर्य यह है कि हम असम्भव कार्य को भी आपके आदेश से कर सकने की शक्ति रखते हैं ।२१।

छिनदाम सुरान्सर्वान्भिनदाम तदालयान् ।
पिनषाम हरित्पालानाज्ञां देहि महामते ।।२२
इत्युदीरितमाकर्ण्य महाहंकारगर्वितम् ।
उवाच वचनं क्रुद्धः प्रतिघारुणलोचनः ।।२३
विशुक्र भवता गत्वा मायांतर्हितवर्ष्मणा ।
जयविघ्नं महायन्त्रं कर्त्तव्यं कटके द्विषाम् ।।२४
इति तस्य वचः श्रुत्वा विशुक्रो रोषरूषितः ।
मायातिरोहितवपुर्जगाम ललिताबलम् ।।२५
तस्मिन्प्रयातुमुद्युक्ते सूर्योऽस्तं समुपागतः ।
पर्यस्तकिरणस्तोमपाटलीकृतदिङ्मुखः ।।२६
अनुरागवती संध्या प्रयांतं भानुमालिनम् ।
अनुवव्राज पातालकुञ्जे रंतुमिवोत्सुका ।।२७
वेगात्प्रपततो भानोर्देहसंगात्समुत्थिताः ।
चरमाब्धेरिव पयः कणास्तारा विरेजिरे ।।२८

हम समस्त सुरों को छेद डालेंगे और उनके आलयों को तोड़-फोड़ डालेंगे । हम दिक्पालों को पीस डालेंगे । हे महामते ! आप हमको अपनी आज्ञा भर दे दीजिए ।२२। इस महान अहंकार से युक्त बचन को सुनकर लाल नेत्रों वाला भण्ड क्रुद्ध होकर बोला था ।२३। हे विशुक्र ! माया से अपने बर्ष्म को छिपाकर आप वहाँ जाकर कटक में शत्रुओं के जय के विघ्न वाले महामन्त्र को करो ।२४। उसके इस बचन को श्रवण करके विशुक्र रोष से भर गया था और माया से अपने शरीर को छिपाकर ललिता की सेना

में गया था ।२५। जब प्रमाण करने को वह उद्यत हुआ था तो सूर्य अस्त हो गया था । पर्यस्त किरणों के समुदाय से दिशाएँ सब पारस वर्ण की हो गयीं थीं ।२६। अनुराग वाली सन्ध्या गमन करते हुए भानुमाली पीछे ही चली गयी मानो पाताल की कुञ्ज में वह सूर्य के साथ रमण करने को उत्सुक हो गयी थी । चरमाब्धि के पय के ही समान तारे शोभित हो रहे थे । बड़े वेग से प्रयाण करने वाले सूर्य के देह के सङ्ग से ही वे कण समुत्थित हुए थे ।२७-२८।

अथाससाद बहुलं तमः कज्जलमेचकम् ।
सार्थं कर्त्तुमिवोद्युक्तं सवर्णस्यासिदुर्धिया ॥२९
मायारथं समारूढो गूढशार्वरसंवृतः ।
अदृश्यवपुरापेदे ललिताकटकं खलः ॥३०
तत्र गत्वा ज्वलज्ज्वालं वह्निप्राकारमंडलम् ।
शतयोजनविस्तारमालोकयत दुर्मतिः ॥३१
परितो विभ्रमञ्शालमवकाशमवाप्नुवन् ।
दक्षिणं द्वारमासाद्य निदध्यौ क्षणमुद्धतः ॥३२
तत्रापश्यन्महासत्त्वास्सावधाना धृतायुधाः ।
आरूढयानाः संनद्धवर्माणो द्वारदेशतः ॥३३
स्तंभिनीप्रमुखाः शक्तीर्विशत्यक्षौहिणीयुताः ।
सर्वदा द्वाररक्षार्थं निर्दिष्टा दंडनाथया ॥३४
विलोक्य विस्मयाविष्टो विचार्य च चिरं तदा ।
शालस्य बहिरेवासौ स्थित्वा यन्त्रं समातनोत् ॥३५

इसके अनन्तर काजल के तुल्य एक दम काला बड़ा भारी अन्धकार प्राप्त हो गया था । असिकी दुर्धी से मानों सवर्ण का साथ करने को ही वह उद्युक्त हो गया था ।२९। गूढ शार्वर से संवृत वह दैत्य माया के रथ पर सवार हुआ था और उसने अपना शरीर अदृश्य कर लिया था । फिर वह खल ललिता की सेना में प्राप्त हुआ था ।३०। वहाँ जाकर उस दुष्ट बुद्धि वाले ने अग्नि का प्राकार मण्डल देखा था जो जलती हुई ज्वालाओं वाला था और सौ योजन के विस्तार से समन्वित था ।३१। उसके सब ओर भ्रमण

करते हुए उसने शाल को अवकाश न पाया था । फिर दक्षिण में द्वार पर पहुँचकर क्षण भर उस उद्धत ने सोचा था ।३२। वहाँ पर सावधान-महान बली-हाथों में हथियार उडाये हुए—यानों पर समारूढ़ और संनद्ध वर्मों वाले जो द्वार देश पर स्थित थे, देखे थे ।३३। सर्वदा द्वार की रक्षा के लिए दण्डनाथा के द्वारा निर्दिष्ट विंशति अक्षौहिणी सेना से संयुत स्तम्भिनी प्रमुख शक्तियाँ थीं ।३४। उनको देखकर वह विस्मय से समाविष्ट हो गया था और उस समय में उसने विचार बहुत देर तक किया था । शाल के बाहिर ही स्थित होकर उसने यन्त्र को फैलाया था ।३५।

गव्यूतिमात्रकायामे तत्समानप्रविस्तरे ।
शिलापट्टे सुमहति प्रालिखद्यन्त्रमुत्तमम् ।।३६
अष्टदिक्ष्वष्टशूलेन संहाराक्षरमौलिना ।
अष्टभिर्दैवतैश्चैव युक्तं यन्त्रं समालिखत् ।।३७
अलसा कृपणा दीना नितन्द्रा च प्रमीलिका ।
क्लीबा च निरहंकारा चेत्यष्टौ देवताः स्मृताः ।।३८
देवताष्टकमेतच्च शूलाष्टकपुटोपरि ।
नियोज्य लिखितं यन्त्रं मायावी सममन्त्रयत् ।।३९
पूजां विधाय मन्त्रस्य बलिभिश्छागलादिभिः ।
तद्यन्त्रं चारिकटके प्राक्षिपत्समरेऽसुरः ।।४०
प्राकारस्य बहिर्भागे वर्तिना तेन दुर्धिया ।
क्षिप्तमुल्लंघ्य च रणे पपात कटकांतरे ।।४१
तद्यन्त्रस्य विकारेण कटकस्थास्तु शक्तयः ।
विमुक्तशस्त्रसंन्यासमास्थिता दीनमानसाः ।।४२

उसने आठ देवताओं से युक्त यन्त्र को लिखा था । दो कोश की चौड़ाई में और उतने ही निस्तार में एक शिला पट्ट पर जो महान था उस उत्तम यन्त्र को लिखा था । वह यन्त्र आठ दिशाओं में आठ शूल संहाराक्षर मौलि से ही लिखा गया था ।३६-३७। उन आठ देवताओं के नाम हैं—अलसा-कृपणा-दीना-नितन्द्रा-प्रमीलिका-क्लीबा-निरहंकारा—ये आठ देवता कहे गये हैं ।३८। इन देवताओं के अष्टक को शूलाष्टक पुट के ऊपर नियोजित

कर लिखा गया मन्त्र था उसको उस मायावी ने भली-भाँति मन्त्रित किया था।३६। यन्त्र की पूजा करके छागल आदि की बलि दी थी। उस असुर ने समर में चारिकटक में उसका क्षेप किया था।४०। उस प्राकार के बाहिर के भाग में रहने वाले उस दुष्ट धी ने प्रक्षिप्त किया था और उल्लंघन कर कटक के मध्य के रण में गिरा था।४१। उस यन्त्र के विकार से कटक में स्थित शक्तियाँ शस्त्रों को छोड़कर दीन मानसों वाली हो गयी थीं।४२।

किं हतैरसुरैः कार्यं शस्त्राशस्त्रिक्रमैरलम् ।
जयसिद्धफलं किं वा प्राणिहिंसा च पापदा ।।४३

अमराणां कृते कोऽयं किमस्माकं भविष्यति ।
वृथा कलकलं कृत्वा न फलं युद्धकर्मणा ।।४४

का स्वामिनी महाराज्ञी का वासौ दण्डनायिका ।
का वा सा मन्त्रिणी श्यामा भृत्यत्वं नोऽथ कीदृशम् ।।४५

इह सर्वाभिरस्माभिभृत्यभूताभिरेकिका ।
वनिता स्वाजिनीकृत्ये किं फलं मोक्ष्यते परम् ।।४६

परेषां मर्मभिदुरैरायुधैर्न प्रयोजनम् ।
युद्धं शाम्यतु चास्माकं देहशस्त्रक्षतिप्रदम् ।।४७

युद्धे च मरणं भावि वृथा स्युर्जीवितानि नः ।
युद्धे मृत्युर्भवेदेव इति तत्र प्रमैव का ।।४८

उत्साहेन फलं नास्ति निद्रैवैका सुखावहा ।
आलस्यसदृशं नास्ति चित्तविश्रांतिदायकम् ।।४९

उनको ऐसा सन्यास हो गया था कि उनके मनों में ये भाव उत्पन्न हो गये थे कि इन असुरों के मारने से क्या कार्य होगा—यह शस्त्रास्त्रों का क्रम भी व्यर्थ है—जय की सिद्धि से भी क्या फल है। युद्ध में प्राणियों की हिंसा से पाप होगा।४३। यह देवों के लिए क्या है इससे हमारा भी क्या होगा। कल-२ करना व्यर्थ है और युद्ध के कर्म से क्या फल होगा।४४। कौन तो महाराज्ञी स्वामिनी है और यह दण्ड नायिका क्या है। वह मन्त्रिणी श्यामा क्या है और हमारा उनका कैसा भृत्य होना है।४५। यहाँ पर हम सबने जो भृत्य भूता है एक वनिता को स्वामिनी बना रक्खा है। इससे क्या परम मोक्ष होगा।४६। दूसरों के मर्मों के भेदन करने वाले आयुधों की क्या

आवश्यकता है। यह युद्ध जो देश और शस्त्रों की क्षति करने वाला है अब शान्त हो जाना चाहिए।४७। और युद्ध में मरण होने वाला है तो हमारा जीवन भी वृथा ही है। युद्ध में तो मौत हो होगी वहाँ पर प्रमा ही क्या है।४८। इस उत्साह से कोई भी फल नहीं है अत-निद्रा ही सुख देने वाली है। आलस्य के तुल्य चित्त को विश्रान्ति देने वाला अन्य कोई भी नहीं है।४९।

एतादृशीश्च नो ज्ञात्वा सा राज्ञी किं करिष्यति।
तस्या राज्ञीत्वमपि नः समवायेन कल्पितम् ॥५०
एवं चोपेक्षितास्माभिः सा विनष्टबला भवेत्।
नष्टसत्त्वा च सा राज्ञी कान्नः शिक्षां करिष्यति ॥५१
एवमेव रणारंभं विमुच्य विधुतायुधाः।
शक्तयो निद्रया द्वारे घूर्णमाना इवाभवन् ॥५२
सर्वत्र मांद्यं कार्येषु महदालस्यमागतम्।
शिथिलं चाभवत्सर्वं शक्तीनां कटकं महत् ॥५३
जयविघ्नं महायन्त्रमिति कृत्वा स दानवः ॥५४
निर्विद्य तत्प्रभावेण कटकं प्रमिमंथिषुः।
द्वितीययुद्धदिवसस्यार्धरात्रे गते सति ॥५५
निस्सृत्य नगराद्भूयस्त्रिंशदक्षौहिणीवृतः।
आजगाम पुनर्दैत्यो विशुक्रः कटकं द्विषाम् ॥५६
अश्रूयंत ततस्तस्य रणनिःसाणनिस्वनाः।
तथापि ता निरुद्योगाः शक्तयः कटकेऽभवन् ॥५७

हमको ऐसी जानकर वह राज्ञी क्या करेगी। उसको राज्ञी बना देना भी तो हम ही सबने कल्पित किया है।५०। इस रीति से हमारे द्वारा जब वह उपेक्षित होगी तो वह भी नष्ट बल वाली ही हो जायगी। जब नष्ट बल वाली राज्ञी होगी तो फिर वह हमको क्या शिक्षा देगी।५१। इसी प्रकार से उन शक्तियों ने रणारम्भ को त्याग दिया था और सब हथियार छोड़ दिये थे। वे निद्रा से घूर्णित होती हुई द्वार पर ही रह गयी थी।५२। सर्वत्र कार्यों में मन्दता आ गयी और मदालस्य छा गया था। वह महान शक्तियों का कटक उस समय में शिथिल हो गया था।५३। यह महायन्त्र

जय विघ्न था जिसको उस दानव ने किया था ।५४। कटक का प्रमन्थन करने की इच्छा वाला वह उसके प्रभाव से निर्विघ्न हो गया था उस समय में फिर नगर से निकलकर फिर तीस अक्षौहिणी सेना से युत होकर विशुक्र दैत्य शत्रुओं के कटक में आ गया था ।५५-५६। फिर रण के निःशाणों के शब्द सुने गये थे तो भी वे शक्तियाँ कटक में उद्योग ही नहीं हो गयी थीं। ।५७।

तदा महानुभावत्वाद्विकारैर्विघ्नयंत्रजैः ।
अस्पृष्टे मंत्रिणीदण्डनाथे चिंतामवापतुः ।।५८
अहो बत महत्कष्टमिदमापतितं भयम् ।
कस्य वाथ विकारेण सैनिका निर्गतोद्यमाः ।।५६
निरस्तायुधसंरंभा निद्रातन्द्राविघूर्णिताः ।
न मानयंति वाक्यानि नार्चयंति महेश्वरीम् ।
औदासीन्यं वितन्वंति शक्तयो निस्पृहा इमाः ।।६०
इति ते मंत्रिणींदण्डनाथे चिंतापरायणे ।
चक्रस्यन्दनमारूढे महाराज्ञीं समूचतुः ।।६१
मंत्रिण्युवाच—
देवि कस्य विकारोऽयं शक्तयो विगतोद्यमाः ।
न शृण्वंति महाराज्ञि तवाज्ञां विश्वपालिताम् ।।६२
अन्योन्यं च विरक्तास्ताः पराच्यः सर्वकर्मसु ।
निद्रातन्द्रामुकुलिता दुर्वाक्यानि वितन्वते ।।६३
का दंडिनी मंत्रिणी का महाराज्ञीति का पुनः ।
युद्धं च कीदृशमिति क्षेपं भूरिवतन्वते ।।६४

उस समय में विघ्नयन्त्र से समुत्पन्न विकारों से महानुभाव होने के कारण से मन्त्रिणी और दण्डनाथा अस्पृष्ट थीं। और उनको बड़ी चिन्ता प्राप्त हो गयी थीं ।५८। अहो ! बड़े खेद का विषय है और महान कष्ट तथा भय आ पड़ा है। अथवा यह किसका विकार है जिसके प्रभाव से समस्त सैनिक उद्योग हीन हो गये हैं ।५६। आयुधों का सरम्भ निरस्त कर दिया है और सब निद्रा तथा तन्द्रा से विघूर्णित हैं। न तो ये वाक्यों को मानतेहैं और

न महेश्वरी का ही अर्चन करते हैं। ये सब शक्तियाँ उदासीनता कर रही हैं और निःस्पृह हो गयी हैं।६०। वे मन्त्रिणी और दण्डनाथा इस प्रकार से चिन्ता मग्न हो गयी थीं और चक्र स्यन्दन पर समारूढ़ होकर उन्होंने महाराज्ञी से कहा था।६१। मन्त्रिणी ने कहा—हे देवि ! यह किसका विकार है कि सब शक्तियों ने उद्यम त्याग दिया है। हे महाराज्ञि ! विश्वपालिता आपकी आज्ञा को भी वे अब नहीं सुनती हैं।६२। वे परस्पर में सब कर्मों को छोड़ कर विरक्त हो गयीं हैं। वे निद्रा और तन्द्रा से मुकुलित हो रही हैं और दुर्वाक्यों को कहती हैं।६३। वे कहती हैं यह दण्डिनी और मन्त्रिणी कौन और क्या हैं तथा यह महाराज्ञी क्या कौन है और यह युद्ध भी कैसा है—ऐसा ही बहुत क्षेप कर रही हैं।६४।

अस्मिन्नेवांतरे शत्रुरागच्छति महाबलः।
उद्दंडभेरीनिस्वानैर्विभिदन्निव रोदसी ॥६५

अत्र यत्प्राप्तं रूपं तन्महाराज्ञि प्रपद्यताम्।
इत्युक्त्वा सह दंडिन्या मंत्रिणीं प्रणतिं व्यधात् ॥६६

ततः सा ललिता देवी कामेश्वरमुखं प्रति।
दत्तदृष्टिः समहसदतिरक्तरदावलिः ॥६७

तस्याः स्मितप्रभापुञ्जे कुंजराकृतिमान्मुखे।
कटक्रोडगलद्दानः कश्चिदेव व्यजृम्भत ॥६८

जपापटलपाटल्यो बालचन्द्रवपुर्धरः।
बीजपूरगदामिक्षुचापं शूलं सुदर्शनम् ॥६९

अब्जपाशोत्पलव्रीहिमंजरीवरदांकुशान्।
रत्नकुम्भं च दशभिः स्वकैर्हस्तैः समुद्वहन् ॥७०

इसी बीच में महान बल वाला शत्रु आ जाता है जो उद्दण्ड भेरियों के घोषों से रोदसी (भूमि और आकाश को) का भेदन सा कर रहा है।६५। यहाँ पर जो भी रूप प्राप्त हुआ है हे महाराज्ञि ! उसको बतलाइए। इतना कहकर वे दोनों दण्डिनी और मन्त्रिणी ने स्वामिनी को प्रणाम किया था।६६। इसके अनन्तर इस ललिता देवी ने कामेश्वर के मुख की ओर अपनी दृष्टि डाली थी और बहुत हँसी थीं उनके अतीव रक्त रदावलि थी।६७। उनके स्मित की प्रभा के पुञ्ज वाले मुख में कुञ्जर की आकृति वाला कोई

दिखाई दिया था जिसके कुम्भस्थल से मद चू रहा था ।६८। वह जपा पुष्प के समान पाटल था—शिर पर बालचन्द्र को धारण किये था और बीज-पूर-गदा–इक्षुचाप—शूल–सुदर्शन–अब्ज–पाश–उत्पल–व्रीहि मंजरी-वरदां-कुश और रत्नकुम्भ—इनको दश करों में उद्वहन कर रहे थे ।६९-७०।

तुन्दिलश्चन्द्रचूडालो मन्द्रबृंहितनिस्वनः ।
सिद्धिलक्ष्मीसमाश्लिष्टः प्रणनाम महेश्वरीम् ।।७१
तया कृताशीः स महान्गणनाथो गजाननः ।
जयविघ्नमहायन्त्रं भेत्तुं वेगाद्विनिर्ययौ ।।७२
अंतरेव हि शालस्य भ्रमद्दन्तावलाननः ।
निभृतं कुत्रचिल्लग्नं जयविघ्नं व्यलोकयत् ।।७३
स देवो घोरनिर्घातैर्दुःसहैर्दंतपातनैः ।
क्षणाच्चूर्णीकरोति स्म जयविघ्नमहाशिलाम् ।।७४
तत्र स्थिताभिर्दुष्टाभिर्देवताभिः सहैव सः ।
परागशेषतां नीत्वा तद्यन्त्रं प्राक्षिपद्दिवि ।।७५
ततः किलकिलारावं कृत्वाऽऽलस्यविवर्जिताः ।
उद्यताः समरं कर्तुं शक्तयः शस्त्रपाणयः ।।७६
स दंतिवदनः कण्ठकलिताकुण्ठनिस्वनः ।
जययन्त्रं हि तत्सृष्टं तथा रात्रौ व्यनाशयत् ।।७७

उनका पेट बड़ा था—चन्द्र चूड़ा में था और वे मन्द्र तथा बृंहित ध्वनि वाले थे । वे सिद्धि लक्ष्मी से समाश्लिष्ट थे । उनने आकर महेश्वरी को प्रणाम किया था ।७१। देवी ने उनको आशीर्वाद दिया था, वह महान गणनाथ गजानन थे और वे जयविघ्न महा यन्त्र का भेदन करने के लिए वेग के साथ निकलकर चले गये थे ।७२। शाल के अन्दर ही भ्रमद्दन्ता बलानन ने चुपचाप कहीं पर लगा हुआ जयविघ्न यन्त्र को देखा था ।७३। उस देव ने घोर निर्घातों वाले और दुस्सह दाँतों के पातनों से एक ही क्षण में उस जयविघ्न महाशिला का चूर्ण कर दिया था ।७४। उन्होंने उसमें स्थित देव-ताओं के साथ ही जो बड़े दुष्ट थे सबका चूरा करके उस यन्त्र को दिवलोक में फेंक दिया था ।७५। इसके अनन्तर किलकिल की ध्वनि करके सब शक्ति

आलस्य रहित होगयीं थीं और शस्त्र हाथों में लेकर युद्ध करने के लिए उद्यत हो गयी थीं ।७६। उस दन्ति वदन ने जिनके कलित कण्ठ की ध्वनि हो रही थी एक जप यन्त्र का सृजन किया था और रात्रि में विनाश कर दिया था जो बाधक था ।७७।

इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भंडः स क्षोभमाययौ ।
ससर्ज च बहुनात्मरूपान्दंतावलाननान् ।।७८
ते कटक्रोडविगलन्मदसौरभचञ्चलैः ।
चञ्चरीककुलैरग्रे गीयमानमहोदयाः ।।७९
स्फुरद्दाडिमकिंजल्कविक्षेपकररोचिषः ।
सदा रत्नाकरानेकहेलया पातुमुद्यताः ।।८०
आमोदप्रमुखा ऋद्धिमुख्यशक्तिनिषेविताः ।
आमोदश्च प्रमोदश्च सुमुखो दुर्मुखस्तथा ।।८१
अरिघ्नो विघ्नकर्त्ता च षडेते विघ्ननायकाः ।
ते सप्तकोटिसंख्यानां हेरंबाणामधीश्वराः ।।८२
ते पुरश्चलितास्तस्य महागणपते रणे ।
अग्निप्राकारवलयाद्विनिर्गत्य गजाननाः ।।८३
क्रोधहुंकारतुमुलाः प्रत्यपद्यंत दानवान् ।
पुनः प्रचण्डफूत्कारबधिरीकृतविष्टपाः ।।८४

इस वृत्तान्त को श्रवण करके भण्ड को बड़ा भारी क्षोभ हुआ था कि जिसने (गणपति ने) अपने ही समान बहुत से दन्तावलाननों का सृजन किया था ।७८। उनके कटस्थल से मद निकल रहा था और उसकी गन्ध से चञ्चल भ्रमरों के समूह आगे मंडरा रहे थे जो गान सा हो रहा था ।७९। उनकी कान्ति स्फुरित दड़िम के किंजल्क के विक्षेपकर रोचि वाले थे जो सदा ही अनेक सागरों को एक ही बार में पान करने के लिए उद्यत थे ।८०। उनमें आमोद प्रमुख था और ऋद्धि जिनमें मुख्य थी ऐसी शक्तियों के द्वारा सेवित थे। ये छै विघ्न नायक हैं और सात करोड़ संख्या वाले हेरम्बों के अधीश्वर थे। इनके नाम—आमोद—प्रमोद—सुमुख—दुर्मुख—अरिघ्न और विघ्न कर्त्ता ये थे ।८१-८२। ये सब उन महा गणपति के युद्ध में आगे चल दिये थे।

उस अग्नि प्राकार के वलय से गजानन निकलकर चले थे ।८३। उनके क्रोध पूर्ण हुङ्कार से वे परम तुमुल थे और ये सब दानवों के समीप में प्राप्त हो गये थे । फिर इनकी बड़ी प्रचण्ड फूत्कार थी जिससे विष्टपों को भी बहिराकर दिया था ।८४।

पपात दैत्यसैन्येषु गणचक्रचमूगणः ।
अच्छिदन्निशितैर्बाणैर्गणनाथः स दानवान् ।।८५
गणनाथेन तस्याभूद्विशुक्रस्य महौजसः ।
युद्धमुद्धतहुंकारभिन्नकार्मुकनिःस्वनम् ।।८६
भ्रुकुटी कुटिले चक्रे दष्टोष्ठमतिपाटलम् ।
विशुक्रो युधि विभ्राणः समयुध्यत तेन सः ।।८७
शस्त्राघट्टननिस्वानैर्हुंकारैश्च सुरद्विषाम् ।
दैत्यसप्तिखुरक्रीडत्कुट्टालीकूटनिस्वनैः ।।८८
फेत्कारैश्च गजेंद्राणां भयेनाक्रन्दनैरपि ।
ह्रेषया च हयश्रेण्या रथचक्रस्वनैरपि ।।८९
धनुषां गुणनिस्स्वानैश्चक्रचीत्करणैरपि ।।९०
शरसात्कारघोषैश्च वीरभाषाकदंबकैः ।
अट्टहासैर्महेंद्राणां सिंहनादैश्च भूरिशः ।।९१

गण चक्र की सेना का समुदाय दैत्यों की सेना में कूद पड़ा था । उन गणनाथ ने अपने तीक्ष्ण बाणों से दानवों को छेद दिया था ।८५। उस गणनाथ का महान ओज वाले विशुक्र के साथ बड़ा भीषण युद्ध हुआ था जिसमें बहुत उद्धत हुङ्कारें हो रही थीं और धनुषों की टंकार की ध्वनि भी थी। ।८६। विशुक्र ने भौंहें टेढ़ी कर ली थीं और उसके दांत और होठ पाटल वर्ण के थे । ऐसे उसने गणनाथ के साथ युद्ध किया था ।८७। शस्त्रों के घट्टन के शब्दों से और असुरों की हुङ्कारों से तथा दैत्यों की सप्तति की खुरों की क्रीड़ा से कुट्टालियों के कूट घोषों से दिशाएँ क्षुब्ध हो रही थीं। ।८८। गजेन्द्रों के फेत्कारों से तथा भय से आक्रन्दनों से—घोड़ों के हिनहिनाने से और रथों के पहियों की ध्वनियों से भी सब दिशाएँ कांपने लगी थीं ।८९। धनुषों की डोरी की ध्वनियां तथा चक्र के चीत्कारें भी उस समय

में हो रही थीं ।९०। वीरों के वचन समूहों से तथा शरों के सात्कारों के घोष एवं महेन्द्रों के अट्टहास और अधिकांश मे सिंहनाद भी हो रहे थे ।९१।

क्षुभ्यद्दिगंतरं तत्र ववृधे युद्धमुद्धतम् ।
त्रिशदक्षौहिणी सेना विशुकस्य दुरात्मनः ॥९२
प्रत्येकं योधयामासुर्गणनाथा महरथाः ।
दन्तैर्मर्म विभिदंतो वेष्टयंतश्च शुण्डया ॥९३
क्रोधयन्तः कर्णतालैः पुष्करावर्त्तकोपमैः ।
नासाश्वासैश्च परुषैर्विक्षिपंतः पताकिनीम् ॥९४
उरोभिर्मर्दयंतश्च शैलवप्रसमप्रभैः ।
पिषंतश्च पदाघातैः पीनैर्घ्नंतस्तथोदरैः ॥९५
विभिदन्तश्च शूलेन कृत्तंतश्चक्रपातनैः ।
शङ्खस्वनेन महता त्रासयन्तो वरूथिनीम् ॥९६
गणनाथमुखोद्भूता गजवक्त्राः सहस्रशः ।
धूलीशेषं समस्तं तत्सैन्यं चक्रुर्महोद्धताः ॥९७
अथ क्रोधसमाविष्टो निसैन्यपुरोगमः ।
प्रेषयामास देवस्य गजासुरमसौ पुनः ॥९८

उस समय में सब दिशाओं में बड़ा क्षोभ छागया था ऐसा वह उद्धत युद्ध हुआ था। उस दुरात्मा की जो तीस अक्षौहिणी सेना थी। उसमें प्रत्येक से महारथी गणनाथों ने युद्ध किया था। वे दाँतों से मर्मों का भेदन कर रहे थे और सूँड़ से उनका वेष्टन कर रहे थे ।९२-९३। पुष्करावर्त्तक के समान कानों के तालों से क्रोध करते हुए और पुरुष नाक के श्वासों से पताकिनी के अन्दर विक्षेप डालते हुए—पर्वत के वप्रके तुल्य उरः स्थलों से मर्दन करते हुए—पैरों के घात से पीसते हुए—तथा पीन (स्थूल) उदरों से हनन करते हुए—शूल से विभेदन करते हुए और चक्रों के पातन से काटते हुए और महान शंखों की ध्वनि से सेना को त्रास देते हुए ऐसे गणनाथ के मुख से उत्पन्न सहस्रों ही गजवदन वहाँ पर विद्यमान थे। मद से उद्धत उन गजों के समान मुख वालों ने उस सेना को सम्पूर्ण को धूल में मिला दिया था ।९४-९७। इसके अनन्तर अपनी सेना के अग्रणी ने क्रोध में समाविष्ट होकर फिर इसने देव के गजासुर को भेजा था ।९८।

प्रचंचसिंहनादेन गजदैत्येन दुर्धिया ।
सप्ताक्षौहिणियुक्तेन युयुधे स गणेश्वरः ।।९९

हीयमानं समालोक्य गजासुरभुजाबलम् ।
वर्धमानं च तद्वीर्यं विशुक्रः प्रपलायितः ।।१००

स एक एव वीरेंद्रः प्रचलन्नाखुवाहनः ।
सप्ताक्षौहिणिकायुक्तं गजासुरममर्दयत् ।।१०१

गजासुरे च निहते विशुक्रे प्रपलायिते ।
ललितांतिकमापेदे महागणपतिर्मृधात् ।।१०२

कालरात्रिश्च दैत्यानां सा रात्रिर्विरतिं गता ।
ललिता चाति मुदिता बभूवास्य पराक्रमैः ।।१०३

विततार महाराज्ञी प्रीयमाणा गणेशितुः ।
सर्वदेवपूजायाः पूर्वपूज्यत्वमुत्तमम् ।।१०४

उस गणेश्वर ने प्रचण्ड सिंहनाद वाले दुष्टमति सात अक्षौहिणियों से संयुत गजदैत्य के साथ युद्ध किया था ।९९। उस गजासुर की भुजाओं के बल को क्षीण होता हुआ देखकर और उसके बलवीर्य को बढ़ा हुआ देखकर वहाँ से विशुक्र भाग गया था ।१००। मूषक का वाहन वाला वह एक ही वीरेन्द्र प्रचलन करता हुआ सातों अक्षौहिणी सेनाओं से युक्त उस गजासुर को मर्दन करने वाला होगया था ।१०१। उस गजासुर के मरने पर और विशुक्र के भाग जाने पर वह महा गणपति युद्ध स्थल से ललिता देवी के समीप में उपस्थित हो गये थे ।१०२। और दैत्यों की कालरात्रि वह रात समाप्त हो गयी थी । ललिता इस महा गणपति के पराकृम से बहुत ही प्रसन्न होगयी थी ।१०३। परम प्रसन्न उस महाराज्ञी ने गणेशजी की अर्चना समस्त देवों से पूर्व में होकर उनको पूर्व पूज्यत्व प्रदान किया था जो अतीव उत्तम वरदान था ।१०४।

—×—

विशुक्र विषंग वध वर्णन

समाप्तश्च द्वितीययुद्धदिवसः–

रणे भग्नं महादैत्यं भण्डदैत्यः सहोदरम् ।
सेनानां कदनं श्रुत्वा सन्तप्तो बहुचिन्तया ॥१

उभावपि समेतौ तौ युक्तौ सर्वैश्च सैनिकैः ।
प्रेषयामास युद्धाय भण्डदैत्यः सहोदरौ ॥२

तावुभौ परमक्रुद्धौ भण्डदैत्येन देशितौ ।
विषंगश्च विशुकश्च महोद्यममवापतुः ॥३

कनिष्ठसहितं तत्र युवराजं महाबलम् ।
विशुकमनुवव्राज सेना त्रैलोक्यकम्पिनी ॥४

अक्षौहिणीचतुः शत्या सेनानामावृतश्च सः ।
युवराजः प्रववृधे प्रतापेन महीयसा ॥५

उलूकजित्प्रभृतयो भागिनेया दशोद्धताः ।
भंडस्य च भगिन्यां तु धूमिन्यां जातयोनयः ॥६

कृतास्त्रशिक्षा भंडेन मातुलेन महीयसा ।
विक्रमेण वलन्तस्ते सेनानाथाः प्रतस्थिरे ॥७

रण में अपने सहोदर महादैत्य को भग्न हुआ देखकर और सेनाओं का रुदन सुनकर भंड दैत्य अधिक चिन्ता से सन्तप्त हो गया था ।१। फिर भंड दैत्य ने दो सहोदरों को जो सब सैनिकों से संयुत थे युद्ध करने के लिए वहाँ पर भेजा था ।२। वे दोनों भाई परमाधिक क्रुद्ध हो रहे थे और भंड दैत्य के द्वारा उन्हें आज्ञा दी गयी थी । फिर विशुक् और विषंग ने महान उद्यम को प्राप्त किया था ।३। वहाँ पर छोटे भाई के सहित महान बल वाले युवराज को भी पीछे भेजा था । उसकी सेना तीनों लोकों को कम्पन देने वाली थी ।४। वह चार सौ अक्षौहिणी सेनाओं से आवृत था । युवराज महान प्रताप से बढ़ गया था ।५। उलूकजित् प्रभृति उसके दश भानजे थे जो बहुत ही उद्धत थे और भंड की धूमिनी भगिनी में समुत्पन्न हुए थे ।६। महान मातुल भंड के द्वारा ही उनको अस्त्रों की शिक्षा दी गयी थीं । वे विक्रम से बलन करते हुए सेनापति भी रवाना हुए थे ।७।

प्रोद्गतैश्चापनिर्घोषैर्घोषयतो दिशो दश ।
द्वयोर्मातुलयोः प्रीतिं भागिनेया वितेनिरे ॥८
आरूढयानाः प्रत्येकगाढाहंकारशालिनः ।
आकृष्टगुरुधन्वानो विशुक्रमनुवव्रजुः ॥९
यौवराज्यप्रभाचिह्नच्छत्रचामरशोभितः ।
आरूढवारणः प्राप विशुक्रो युद्धमेदिनीम् ॥१०
ततः कलकलारावकारिण्या सेनया वृतः ।
विशुक्रः पटु दध्वान सिंहनादं भयंकरम् ॥११
तत्क्षोभात्क्षुभितस्वान्ताः शक्तयः संभ्रमोद्धताः ।
अग्निप्राकारवलयान्निर्जग्मुर्बद्धपङ्क्तयः ॥१२
तडिन्मयमिवाकाशं कुर्वत्यः स्वस्वरोचिषा ।
रक्ताम्बुजावृतमिव व्योमचक्रं रणोन्मुखाः ॥१३
अथ भंडकनीयांसावागतौ युद्धदुर्मदौ ।
निशम्य युगपद्योद्धुं मंत्रिणीदंडनायके ॥१४

वे प्रोद्गत धनुषों की ध्वनियों से दश दिशाओं को भर रहे थे। उन दोनों मातुलों की प्रीति को उन भानजों ने विस्तृत किया था।८। प्रत्येक गहरे अहंकार वाले यानों पर समारूढ़ हुए थे। उन्होंने धनुषों को चढ़ाकर विशुक्र के पीछे अनुगमन किया था।९। यौवराज्य की प्रभा के चिह्न छत्र और चामरों से शोभित वारण पर समारूढ़ होकर विशुक्र युद्ध भूमि में प्राप्त हुआ था।१०। इसके पश्चात् कलकल के घोष को करने वाली सेना से समावृत विशुक्र ने महान भयंकर सिंहनाद किया था।११। उसके क्षोभ से क्षुब्ध हृदयों वाली शक्तियाँ संभ्रम से उद्धत हो गई थीं और पंक्तियाँ बाँधकर वे उस अग्नि के प्राकार के वलय से निकली थी।१२। अपनी कान्ति से आकाश को विद्युत से परिपूर्ण कर रही थीं। रण को उन्मुख उन्होंने व्योम चक्र को रक्त कमल के सदृश बना दिया था।१३। इसके बाद भंड के दोनों छोटे भाई वहाँ पर समागत हो गये थे जो युद्ध दुर्मद थे। एक ही साथ युद्ध करने के लिए आये हुए उनको मन्त्रिणी और दण्डनायिका ने सुना था।१४।

किरिचक्रं जेयचक्रमारूढे रथशेखरम् ।
धृतातपत्रवलये चामराभ्यां च वीजिते ॥१५
अप्सरोभिः प्रनृत्ताभिर्गीयमानमहोदये ।
निर्जग्मतू रणं कर्तुमुभाभ्यां ललिताज्ञया ॥१६
श्रीचक्ररथराजस्य रक्षणार्थं निवेशिते ।
शताक्षौहिणिका सेना वर्जयित्वास्त्रभीषणम् ॥१७
अन्यत्सर्वं चमूजालं निर्जगाम रणोन्मुखी ।
पुरतः प्राचलद्दण्डनाथा रथनिषेदुषी ॥१८
एकयैव कराङ्गुल्या घूर्णयन्ती हलायुधम् ।
मुसलं चान्यहस्तेन भ्रामयन्ती मुहुर्मुहुः ॥१९
तरलेन्दुकलाचूडास्फुरत्पोत्रमुखाम्बुजा ।
पुरः प्रहर्त्री समरे सर्वदा विक्रमोद्धता ।
अस्या अनुप्रचलिता गेयचक्रथस्थिता ॥२०
धनुषो ध्वनिना विश्वं पूरयन्ती महोद्धता ।
वेणीकृतकचन्यस्तविलसच्चन्द्रपल्लवा ॥२१

उन दोनों ने रथों में शिरोमणि किरिचक्र और ज्ञेय चक्र रथों पर समारोहण किया था । उन दोनों ने छत्रों को धारण किया था और चमर उन पर ढुराये जा रहे थे । वे दोनों ही प्रवृत्त अप्सराओं के द्वारा ले जायी जा रही थीं । वे दोनों ही ललिता देवी की आज्ञा पाकर युद्ध करने के लिए वहाँ से निकल कर चली थीं ।१५-१६। श्री चक्रराज रथ की रक्षा के लिए ये निवेशित थीं । इन्होंने सौ अक्षौहिणी सेना और भीषण अस्त्रों को वर्जित कर दिया था ।१७। अन्य समस्त चमू का जाल के साथ रण को उन्मुखी वह निकल कर चली थी । आगे रथ पर बैठी हुई दंडनाथा रवाना हुई थी ।१८। वह एक ही की अँगुली से हलायुध को घुमाती हुई और दूसरे हाथ से मुसल को बार-२ घुमा रही थी ।१९। तरल चन्द्र की कला से स्फुरण करते हुए पोत्र मुखकमल वाली वह युद्धमें सबसे आगे सदा वह विक्रम से उद्धत रहती थी । इसके पीछे गेय चक्र रथ में विराजमान अनुगमन कर रही थी ।२०। यह मद से उद्धत धनुष की ध्वनि से सम्पूर्ण विश्व को भर रही थी । उसने अपने

जूड़े की चोटी बनी रक्खी थी। जिसमें चन्द्र की कला शोभित हो रही थी।२१।

स्फुरत्त्रितनेत्रेण सिन्दूरतिलकत्विषा ।
पाणिना पद्मरम्येण मणिकंकणचारुणा ।।२२
तूणीरमुखतः कृष्टं भ्रामयन्ती शिलीमुखम् ।
जय वर्धस्ववर्धस्वेत्यतिहर्षसमाकुले ।२३
नृत्यद्भिर्दिव्यमुनिभिर्वर्द्धिताशीर्वचोऽमृतैः ।
गेयचक्ररथेन्द्रस्य चक्रनेमिविघट्टनैः ।।२४
दारयन्ती क्षितितलं दैत्यानां हृदयैः सह ।
लोकातिशायिता विश्वमनोमोहनकारिणा ।
गीतिबन्धेनामरीभिर्बह्वीभिर्गीतवैभवा ।।२५
अक्षौहिणीसहस्राणामष्टकं समरोद्धतम् ।
कर्षती कल्पविश्लेषनिर्मर्यादाब्धिसंनिभम् ।।२६
तस्याः शक्तिचमूचक्रे काश्चित्कनकरोचिषः ।
काश्चिद्दाडिमसंकाशाः काश्चिज्जीमूतरोचिषः ।।२७
अन्याः सिंदूररुचयः पराः पाटलपाटलाः ।
काचाद्रिकाम्बराः काश्चित्पराः श्यामलकोमलाः ।।२८

स्फुरित तीन नेत्रों वाली और सिन्दूर के तिलक की कान्ति वाली देवी ने पद्म के तुल्य सुन्दर और मणियों के कंकण की कान्ति से सम्पन्न कर से तूणीर के मुख से खींचे हुए बाण को घुमा रही थी। वहाँ पर वर्धन हो—वर्धन हो—इसकी ध्वनि चारों ओर हो रही थी।२२-२३। दिव्य मुनि-गण प्रसन्नता से नृत्य करते हुए वचनामृतों से आशीर्वाद दे रहे थे। गेय चक्र रथेन्द्र के पहियों का विघटन हो रहा था। इससे दैत्यों के हृदय के साथ ही भूमि को विदीर्ण कर रही थी। उस समय में गीतों का भी बन्ध चल रहा था जो अलौकिक और विश्व के मन को मोहन करने वाला था। बहुत-सी मरीचियाँ गीत का गान कर रही थी।२४-२५। आठ हजार अक्षौ-हिणी सेना समर की उद्धत थी। कल्पान्त में मर्यादा से रहित सागर के

समान ही वह कर्षण कर रही थी।२६। उसकी शक्तियों की सेना के चक्र में विविध वेषभूषा वाली शक्तियाँ विद्यमान थीं। कुछ की कांति तो सुवर्ण के समान थी—कुछ दाड़िम के तुल्य थीं और कुछ मेघों के तुल्य थीं।२७। अन्य सिन्दूर जैसी कान्ति वाली थीं—कुछ पाटल वर्ण की थीं—कुछ कांच के अम्बरों की महाद्रि के सदृश थीं और दूसरी श्यामल एवं कोमल थीं।२८।

अन्यास्तु हीरकप्रख्याः परा गारुत्मतोपमाः।
विरुद्धैः पञ्चभिर्बाणैर्मिश्रितैः शतकोटिभिः ॥२९
व्यञ्जयंत्यो देहरुचं कतिचिद्विविधायुधाः।
असंख्याः शक्तयश्चेलुर्दंडिन्यास्सैनिकैस्तथा ॥३०
तथैव सैन्यसन्नाहो मंत्रिण्याः कुम्भसम्भव।
यथा भूषणवेषादि यथा प्रभावलक्षणम् ॥३१
यथा सद्गुणशालित्वं यथा चाश्रितलक्षणम्।
यथा दैत्यौघसंहारो यथा सर्वैश्च पूजिता ॥३२
यथा शक्तिर्महाराज्ञया दण्डिन्याश्च तथाखिलम्।
विशेषस्तु परं तस्याः साचिव्ये तत्करे स्थितम्।
महाराज्ञीवितीर्णं तदाज्ञामुद्रांगुलीयकम् ॥३३
इत्थं प्रचलिते सैन्ये मंत्रिणीदण्डनाथयोः।
तद्भारभंगुरा भूमिर्दोलालीलामलंबत ॥३४
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्।
उद्धूतधूलिजंबालीभूतसप्तार्णवीजलम् ॥३५

अन्य हीरे के सदृश थीं और कुछ गारुत्मत मणि के समान थीं। विरुद्ध पाँच बाणों से मिश्रित शत कोटियों से कुछ अनेक आयुधों वाली अपनी शारीरिक कान्ति को प्रकाशित कर रही थीं। ऐसी अगणित शक्तियाँ दण्डिनी के सैनिकों के साथ वहाँ पर युद्ध के लिए चली थीं।२९-३०। हे कुम्भसम्भव! जैसा उनका भूषण-वेषादि था और प्रभाव का लक्षण था वैसा ही मन्त्रिणी की सेना का भी सन्नाह भी था।३१। जैसी सद्गुण शालिता थी और जो भी आश्रितों का लक्षण था तथा जैसा भी दैत्यों के

समुदाय का संहार था वैसी ही वे सबके द्वारा पूजित भी हुई थीं ।३२। महाराज्ञी की जैसी शक्ति थी वैसी ही सम्पूर्ण दंडिनी की भी थी किन्तु विशेषता यही थी कि उसके हाथ में साचिव्य था। महाराज्ञी ने उसकी आज्ञा की मुद्रांगुलीयक वितीर्ण कर दी थी ।३३। मन्त्रिणी और दण्डनाथा की सेना इस प्रकार से चली थी। उस सेना के भार से यह भूमि भगुर हो गयी थी और वह झूला की तरह ही हिलने लग गयी थी ।३४। इसके अनन्तर महान तुमुल और रोमहर्षण युद्ध प्रवृत्त हो गया था। उस युद्ध में उठी हुई धूलि में जो जम्बाल के ही समान हो गयी थी सातों सागरों के जल को छा लिया था ।३५।

हयस्थैर्हयसादिन्यो रथस्थं रथसंस्थिता: ।
आधोरणैर्हस्तिपका: खड्गै: पद्‌गाश्च सङ्गता: ।।३६
दण्डनाथाविषंगेण समयुध्यंत सङ्गरे ।
विशुक्रेण समं श्यामा त्रिकृष्टमणिकार्मुका ।।३७
अश्वारूढा चकारोच्चै: सहोलूकजिता रणम् ।
सम्पदीशा च जग्राह पुरुषेण युयुत्सया ।।३८
विषेण नकुली देवी समाह्वास्त युयुत्सया ।
कुन्तिषेणेन समरं महामाया तदाकरोत् ।।३९
मलदेन समं चक्रे युद्धमुन्मत्तभैरवी ।
लघुश्यामा चकारोच्चै: कुशूरेण समं रणम् ।।४०
स्वप्नेशी मंगलाख्येन दैत्येन्द्रेण रणं व्यधात् ।
वाग्वादिनी तु जघटे द्रुघणेन समं रणे ।।४१
कोलाटेन च दुष्टेन चण्डकाल्यकरोद्रणम् ।
अक्षौहिणीभिर्दैत्यानां शताक्षौहिणिकास्तथा ।
महांतं समरे चक्रु रन्योन्यं क्रोधमूर्छिता: ।।४२

जो अश्वों पर सवार थे उन्होंने घुड़ सवारों के साथ—एवं हस्तिपकों ने आधोरणों के साथ और पदातियों ने पैदल सैनिकों से सङ्गत होकर खड्गों से युद्ध किया था ।३६। संग्राम में दण्डनाथा ने विषङ्ग के साथ युद्ध था। अपने मणियों के कार्मुक को खींचकर श्यामा ने विशुक्र के साथ युद्ध

किया था ।३७। अश्वारूढ़ा ने बहुत भारी उलूक जित् के साथ रण किया था सम्पदीक्षा ने युद्ध की इच्छा से पुरुष के साथ युद्ध ग्रहण किया था ।३८। नकुली देवी ने युद्ध करने की इच्छा से निष को बुलाया था। माहमाया ने कुंतिषेण के साथ युद्ध किया था ।३६। उन्मत्त भैरवी ने मलद के साथ संग्राम किया था और लघुश्यामा ने कुशूर के साथ रण किया था ।४०। स्वप्नेशी ने मङ्गल के साथ युद्ध किया था। वाग्वादिनी ने दुवण के साथ रण में भिड़न्त की थी ।४१। चण्डकाली ने कोलाट के साथ रण किया था। दैत्यों की अक्षौहिणियों के साथ सौ अक्षौहिणी सेनाओं ने परस्पर में बड़ा भारी युद्ध क्रोध में मूर्च्छित होकर किया था ।४२।

प्रवर्तमाने समरे विशुक्रो दुष्टदानवः ।
वर्धमानां शक्तिचमूं हीयमानां निजां चमूम् ॥४३

अवलोक्य रुषाविष्टः स कृष्टगुरुकार्मुकः ।
शक्तिसैन्ये समस्तेऽपि तृषास्त्रं प्रमुमोच ह ॥४४
तेन दावानलज्वालादीप्तेन मथितं बलम् ।
तृतीये युद्धदिवसे याममात्रं गते रवौ ।
विशुक्रमुक्तवर्षास्त्रव्याकुलाः शक्तयोऽभवन् ॥४५
क्षोभयन्निन्द्रियग्रामं तालुमूलं विशोषयन् ।
रूक्षयन्कर्णकुहरमंगदौर्बल्यमाहवन् ॥४६
पातयन्पृथिवीपृष्ठे देहं विस्रंसितायुधम् ।
आविर्बभूव शक्तीनामतितीव्रस्तृषाज्वरः ॥४७
युद्धेष्वनुद्यमकृता सर्वोत्साहविरोधिना ।
तर्षेण तेन क्वथितं शक्तिसैन्यं विलोक्य सा ।
मन्त्रिणी सह पोत्रिण्या भृशं चिंतामवाप ह ॥४८
उवाच तां दण्डनाथामत्याहितविशंकिनीम् ।
रथस्थिता रथगता तत्प्रतीकारकर्मणे ।
सखि पोत्रिणि दुष्टस्य तर्षास्त्रमिदमागतम् ॥४६

उस युद्ध के प्रवृत्त होने पर दुष्ट दानव विशुक्र ने जब यह देखा था कि शक्तियों की सेना बढ़ रही है और अपनी क्षीण हो रही है तो क्रोध में भरकर उसने एक बड़ा धनुष खींचा था और उस समस्त शक्तियों की सेना में तृषास्त्र छोड़ दिया था ।४३-४४। उसने जो दावानल की ज्वाला के समान दीप्त था उस बड़ी सेना को मथ दिया था । तीसरे युद्ध के दिन में एक प्रहर मात्र रवि के गत होने पर विशुक्र के द्वारा छोड़े हुए तृषास्त्र से शक्तियां व्याकुल हो उठी थीं ।४५। उन तालु के मूल का शोषण कर रहा था । कानों के छिद्र भी रूक्ष हो रहे थे और अङ्गों में दुर्बलता हो रही थी तथा आयुधों को छोड़कर देहों को भूमि पर गिरा रहा था ।४६-४७। युद्ध में अनुद्यम करने वाले तथा समस्त उत्साह के विरोधी उस तर्ष के द्वारा क्वथित शक्तियों की सेना को देखकर वह मन्त्रिणी पोत्रिणी के साथ बहुत ही चिन्तित हो गयी थी ।४८। अतीव अहित विशंका वाली उस दण्डनाथा से बोली रथ में स्थित और रथगता होकर उसके प्रतिकार कर्म के लिए कहा था हे सखि ! पोत्रिणि ! यह दुष्ट का तृषास्त्र आ गया है । इसका हमारी सेना पर बहुत ही बुरा प्रभाव हो गया है ।४९।

शिथिलीकुरुते सैन्यमस्माकं हा विधेः क्रमः ।
विशुष्कतालुमूलानां विभ्रष्टायुधतेजसाम् ।
शक्तीनां मंडलेनात्र समरे समुपेक्षितम् ॥५०
न कापि कुरुते युद्धं न धारयति चायुधम् ।
विशुष्कतालुमूलत्वादवक्तुमप्यालि न क्षमाः ॥५१
ईदृशीन्नो गतिं श्रुत्वा किं वक्ष्यति महेश्वरी ।
कृता चापकृतिर्दैत्यैरुपायः प्रविचिंत्यताम् ॥५२
सर्वत्र द्व्यष्टसाहस्राक्षौहिण्यामत्र पोत्रिणि ।
एकापि शक्तिर्नैवास्ति या तर्षेण न पीडिता ॥५३
अत्रैवावसरे दृष्ट्वा मुक्तशस्त्रां पताकिनीम् ।
रंध्रप्रहारिणो हंत बाणैर्निघ्नंति दानवाः ॥५४
अत्रोपायस्त्वया कार्यो मया च समरोद्यमे ।
त्वदीयरथपर्वस्थो योऽस्ति शीतमहार्णवः ॥५५

तमादिश समस्तानां शक्तीनां तर्षनुत्तये ।
नाल्पैः पानीयपानाद्यैरेतासां तर्षसंक्षयः ॥५६

हा ! विधाता का क्या क्रम है । यह अस्त्र तो हमारी सेना को शिथिल कर रहा है । सबके तालुमूल सूख गये हैं और सबके आयुध भ्रष्ट हो गये हैं । इस युद्ध में शक्तियों का मण्डल उपेक्षित हो गया है ।५०। न तो कोई भी युद्ध करती है और न कोई आयुध ही ग्रहण कर रही है । हे आलि ! तालुमूलों के शुष्क हो जाने से ये तो बोलने में भी असमर्थ हो गयी हैं ।५१। हमारी ऐसी दशा को सुनकर महेश्वरी क्या कहेगी । दैत्यों ने तो हमारा बड़ा ही अपकार किया है । इसका कोई उपाय सोचना चाहिए ।५२। हे पोत्रिणि ! सोलह हजार सर्वत्र यहाँ पर अक्षौहिणी हैं । ऐसी एक भी शक्ति नहीं है जो तर्ष से पीड़ित न होवे ।५३। इसी अवसर सेना को हथियारों को छोड़ने वाली देखकर ये दानव छिद्रों में प्रहार करने वाले हैं और बाणों से निहनन कर रहे हैं । यह बड़े ही खेद की बात है ।५४। यहाँ पर तुमको और मुझको कोई उपाय करना चाहिए । उस समरोद्यम में कुछ करना ही है । तुम्हारे रथ के पर्व में स्थित जो शीत का महार्णव है ।५५। उसको ही शक्तियों की तृषा के छेदन के लिए आदेश दो क्योंकि अल्प पानीय के पानों से उनकी तृषा का क्षय नहीं होगा ।५६।

स एव मदिरासिंधुः शक्त्यौघं तर्पयिष्यति ।
तमादिश महात्मानं समरोत्साहकारिणम् ।
सर्वतर्षप्रशमनं महाबलविवर्धनम् ॥५७
इत्युक्ते दण्डनाथा सा सदुपायेन हर्षिता ।
आजुहाव सुधासिंधुमाज्ञां चक्रेश्वरी रणे ॥५८
स मदालसरक्ताक्षो हेमाभः स्रग्विभूषितः ॥५९
प्रणम्य दण्डनाथां तां तदाज्ञापरिपालकः ॥६०
आत्मानं बहुधा कृत्वा तरुणादित्यपाटलम् ।
क्वचित्तापिच्छवच्छ्यामं क्वचिच्च धवलद्युतिम् ॥६१
कोटिशो मधुराधारा करिहस्तसमाकृतीः ।
ववर्ष सिंधुराजोऽय वायुना बहुलीकृतः ॥६२

गुष्करावर्तकाद्यैस्तु कल्पक्षयबलाहकैः ।
निषिच्यमानो मध्येऽब्धिः शक्तिसैन्ये पपात ह ॥६३

वही मदिरा का सिन्धु शक्तियों के समूहों को तृप्त करेगा। समर के उत्साह करने वाले महान आत्मा वाले उसी को आदेश दो। वह समस्त तर्ष का प्रशमन करने वाला है और महान बल के बढ़ानेवाला है ।५७। ऐसा कहने पर वह दण्डनाथा इस समुदाय से परम हर्षित हुई थी चक्रेश्वरी ने रथ में सुधा के सिन्धु को आज्ञा देकर बुलाया था ।५८। वह मद से अलस और रक्त नेत्रों वाला था—हेम के समान उसकी आभा थी माजाओं से वह भूषित था ।५९। उसकी आज्ञा के पालक उसने दण्डनाथा को प्रणाम किया था ।६०। उसने अनेक प्रकार का अपना स्वरूप बना लिया था—कहीं तो तरुण सूर्य के समान वह पाटल था और कहीं पर तापिच्छ के तुल्य श्यामल था और कहीं पर धवल कान्ति वाला था ।६१। इस सिन्धुराज ने वायु के द्वारा अधिक होकर हाथी के सूँड के समान आकार वाली करोड़ों धाराएँ वर्षायी थीं ।६२। कल्प के क्षय के समय पुष्कलावर्त्तक आदि बलाहकों से निषिच्यमान शक्तियों के मध्य में वह सागर गिरा था ।६३।

यद्गन्धाघ्राणमात्रेण मृत उत्तिष्ठते स्फुटम् ।
दुर्बलः प्रबलश्च स्यात्तद्ववर्ष सुरांबुधिः ॥६४
परार्द्धसंख्यातीतास्ता मधुधारापरम्पराः ।
प्रपिबन्त्यः पिपासार्तैर्मुखैः शक्तय उत्थिताः ॥६५
यथा सा मदिरासिंधुवृष्टिर्दैत्येषु नो पतेत् ।
तथा सैन्यस्य परितो महाप्राकारमण्डलम् ॥६६
लघुहस्ततया मुक्तैः शरजातैः सहस्रशः ।
चकार विस्मयकरी कदम्बवनवासिनी ॥६७
मर्मणा तेन सर्वेऽपि विस्मिता मरुतोऽभवन् ।
अथ ताः शक्तयो भूरि पिबन्ति स्म रणांतरे ॥६८
विविधा मदिराधारा बलोत्साहविवर्धनीः ।
यस्या यस्या मनः प्रीती रुचिः स्वादो यथा यथा ॥६९

तृतीये युद्धदिवसे प्रहरद्वितयावधि ।
संततं मद्यधाराभिः प्रववर्ष सुरांबुधिः ॥७०

जिसकी गन्ध मात्र से ही मृत प्राणी स्पष्ट उठकर खड़ा हो जाया करता है और जो दुर्बल होता है वह प्रबल हो जाया करता है वह सुराम्बुधि वर्षा था ।६४। परार्ध संख्या से अतीत मधु धाराओं की परम्पराएँ थीं उनका पान करती हुई पिपासा से आर्त्तमुखों से उनने पान किया था और वे शक्तियाँ उठकर खड़ी हो गयी थीं ।६५। उस सेना के चारों ओर ऐसा एक प्रकार का मण्डल था कि जिससे वह मदिरा सिन्धु की वृष्टि दैत्यों पर न जाकर पड़ जावे ।६६। कदम्ब वन वासिनी ने लघु हस्तता से छोड़े गये सहस्रों शरों से विस्मयकरी किया था ।६७। उस कर्म से सभी मरुत विस्मित हो गये थे । इसके अनन्तर उन शक्तियों ने रण के मध्य में पान बहुत किया था ।६८। अनेक मदिरा की धाराएँ बल और उत्साह के बर्धन करने वाली थीं । जिस-जिस के मन की जो-जो भी प्रीति थी वैसो-वैसी ही पी थी ।६९। तीसरे युद्ध के दिन में दो प्रहर की अवधि तक सुराम्बुधि ने निरन्तर मद्य की धाराओं ने वर्षा की थी ।७०।

गौडी पैष्टी च माध्वी च वरा कादम्बरी तथा ।
हैताली लांगलेया च तालजातास्तथा सुराः ॥७१
कल्पवृक्षोद्भवा दिव्या नानादेशसमुद्भवाः ।
सुस्वादुसौरभाढ्याश्च शुभगंधसुखप्रदाः ॥७२
बकुलप्रसवामोदा ध्वनंत्यो बुदबुदोज्ज्वलाः ।
कटुकाश्च कषायाश्च मधुरास्तिक्ततास्पृशः ॥७३
बहुवर्णसमाविष्टाश्छेदिनीः पिच्छलास्तथा ।
ईषदम्लाश्च कट्वम्ला मधुराम्लास्तथा पराः ॥७४
शस्त्रक्षतरुगाहंत्री चास्थिसंधानदायिनी ।
रणश्रमहरा शीता लघ्व्यस्तद्वत्कबोष्णकाः ॥७५
संतापहारिणीश्चैव वारुणीस्ता जयप्रदाः ।
नानाविधाः सुराधारा ववर्ष मदिरार्णवः ॥७६
अविच्छिन्नं याममात्रमेकैका तत्र योगिनी ।
ऐरावतकरप्रख्यां सुराधारां मुदा पपौ ॥७७

सुराएँ कितनी ही प्रकार की थीं। अब उनके प्रकारों को बताया जाता है—गौड़ी-पैष्टी-माध्वी-वरा-कादम्बरी-हैताली-लाङ्गलेया—और ताल जाता सुराएँ थी।७१। कल्प वृक्ष से समुत्पन्न-दिव्या-अनेक देशों में उत्पन्ना थी। ये सुन्दर स्वाद वाली और सौरभ वाली थीं और इनसे शुभ गन्ध निकलती थी।७२। बकुल के प्रसवा-आमोदा-ध्वनन्ती-बुद्बुदा—उज्ज्वला थी। कटुका-कषाया-मधुरा-तिक्तता के स्पर्श वाली थी।७३। बहुत वर्णों से समाविष्टा-छेदिनी-पिच्छला-ईषद् अम्ला-कट्वम्ला—तथा मधुराम्ला थी।७४। शस्त्र से होने वाले क्षत के रोग का हनन करने वाली—अस्थियों के सन्धान को देने वाली-लघ्वी और कवोष्टका थी।७५। सन्ताप का हरण करने वाली तथा वारुणी-जय प्रदान करने वाली—इस तरह से उस सुधार्णव ने अनेक प्रकार की सुराओं की धाराओं की वर्षा की थी।७६। वहाँ पर एक-एक योगिनी ने एक प्रहर तक अविच्छिन्न रूप से ऐरावत करप्रख्या सुरा की धारा को आनन्द के साथ पान किया था।

उत्तानं वदनं कृत्वा विलोलरसनाञ्चलम्।
शक्तयः प्रपपुः सीधु मुदा मीलितलोचनाः ॥७८

इत्थं बहुविधं माध्वीधारापातैः सुधांबुधिः।
आगतस्तर्पयित्वा तु दिव्यरूपं समास्थितः ॥७९

पुनर्गत्वा दण्डनाथां प्रणम्य स सुरांबुधिः।
स्निग्धगंभीरघोषेण वाक्यं चेदमुवाच ताम् ॥८०

देवि पश्य महाराज्ञि दण्डमण्डलनायिके।
मया संतर्पिता मुग्धरूपा शक्तिवरूथिनी ॥८१

काश्चिन्नृत्यंति गायंत्यो कलक्वणितमेखलाः।
नृत्यंतीनां पुरः काश्चित्करतालं वितन्वने ॥८२

काश्चिद्धसंति व्यावल्गद्वल्गुवक्षोजमण्डलाः।
पतंत्यन्योन्यमङ्गेषु काश्चिदानन्दमन्थराः ॥८३

काश्चिद्वल्गंति च श्रोणिविगलन्मेखलांबराः।
काश्चिदुत्थाय नंनद्धा घूर्णयन्ति निरायुधाः ॥८४

शक्तियों ने अपने मुख को ऊपर की ओर उठाकर चञ्चल रसना वाली होते हुए अपनी आँखों को मूँदकर आनन्द से उस चल सुरा का पान किया था ।७८। इस रीति से उस सुधाम्बुद्धि ने बहुत तरह के माध्वी की धाराओं के पातों से तृप्त करके दिव्य रूप में समास्थित हो गया था ।७९। फिर वह सुराम्बुधि दण्डनाथा को प्रणाम करके परम स्निग्ध और गम्भीर ध्वनि से उस देवी से यह वाक्य बोला था ।८०। हे महाराज्ञि ! हे देवि ! हे दण्ड मण्डलनायिके ! आप देख लीजिए । मैंने मुग्धरूप वाली शक्तियों की सेना को भली-भाँति तृप्त कर दिया है ।८१। उनमें कुछ तो नृत्य कर रही हैं कुछ कल क्वणित मेखलाओं वाली गान कर रहीं हैं। नृत्य करने वाली शक्तियों के आगे कुछ करों से ताल दे रही हैं ।८२। कुछ ब्यावल्गवल्गु उरोजमण्डलों वाली हँस रही है। कुछ आनन्द्रोद्रेक में मन्थर होती हुई परस्पर में अंगों में पतन कर रही हैं ।८३। कुछ अपनी श्रोणियों पर से गिरते हुए मेखलाम्बरों वाली वल्ग कर रही है। कुछ उठाकर सन्नद्ध हो रही हैं और बिना ही आयुधों के घूर्णन कर रही हैं ।८४।

इत्थं निर्दिश्यमानास्ताः भवती मैरेय सिंधुना ।
अवलोक्य भृशं तुष्टा दण्डिनी तमुवाच ह ॥८५

परितुष्टास्मि मद्याब्धे त्वया साह्यमनुष्ठितम् ।
देवकार्यमिदं किं च निर्विघ्नितमिदं कृतम् ॥८६

अतः परं मत्प्रसादाद्द्वापरे याज्ञिकैर्मखे ।
सोमपानवदत्यंतमुपयोज्यो भविष्यसि ॥८७

मन्त्रेण पूतं त्वां यागे पास्यंत्यखिलदेवताः ।
यागेषु मन्त्रपूतेन पीतेन भवता जनाः ॥८८

सिद्धिमृद्धिं वलं स्वर्गमपवर्गं च बिभ्रतु ।
महेश्वरी महादेवो बलदेवश्च भार्गवः ।
दत्तात्रेयो विधिर्विष्णुस्त्वां पास्यंति महाजनाः ॥८९
यागे समर्चितस्त्वं तु सर्वसिद्धिं प्रदास्यसि ॥९०
इत्थं वरप्रदानेन तोषयित्वा सुरांबुधिम् ॥९१

इस तरह से दिखाई गयीं उन शक्तियों को देखकर जो मैरेय सीधु से आनन्दित हो रही थीं दण्डिनी अत्यन्त प्रसन्न हुई थी और उससे कहा था ।८५। हे मद्याब्धे ! मैं बहुत ही यदि तुष्ट हुई हूँ । आपने हमारी सहायता की है । यह देव कार्य है इसको आपने विघ्न रहित कर दिया है ।८६। अब इससे आगे द्वापर युग में मेरे प्रसाद से मख में याज्ञिकों के द्वारा सोम के पान के ही समान आप अत्यन्त उपयोग के योग्य होंगे ।८७। समस्त देवगण याग में मन्त्र से पूत करके इसका पान किया करेंगे । यागों में मन्त्र से पवित्र का पान भक्तजन करेंगे ।८८। इसके प्रभाव से सिद्धि-ऋद्धि—स्वर्ग—अपवर्ग को प्राप्त करेंगे । महेश्वरो—महादेव—बलदेव—भार्गव—दत्तात्रेय—विधि-विष्णु—ऐसे महान सिद्ध जन भी तुम्हारा पान करेंगे ।८९। याग में समर्चित तू सब प्रकार की प्रदान करोगी ।९०। इस प्रकार से वरदान के द्वारा सुराम्बुधि को तुष्ट किया था ।९१।

मंत्रिणी त्वरयामास पुनर्युद्धाय दण्डिनी ।
पुनः प्रववृते युद्धं शक्तीनां दानवैः सह ।।९२

मुदाट्टहासनिर्भिन्नदिगष्टकधरा धरम् ।
प्रत्यग्रमदिरामत्ताः पाटलीकृतलोचनाः ।
शक्तयो दैत्यचक्रेषु न्यपतन्नेकहेलया ।।९३

द्वयेन द्वयमारेजे शक्तीनां समदश्रियाम् ।
मदरागेण चक्षूंषि दैत्यरक्तेन शस्त्रिका ।।९४

तथा बभूव तुमुलं युद्धं शक्तिसुरद्विषाम् ।
यथा मृत्युरवित्रस्तः प्रजाः संहरते स्वयम् ।।९५
संस्खलत्पदविन्यासामदेनारक्तदृष्टयः ।
स्खलदक्षरसंदर्भवीरभाषा रणोद्धताः ।।९६
कदम्बगोलकाकारा हृष्टसर्वांगदृष्टयः ।
युवराजस्य सैन्यानि शक्तयः समनाशयन् ।।९७
अक्षौहिणीशतं तत्र दण्डिनी सा व्यदारयत् ।
अक्षौहिणीसार्द्धशतं नाशयामास मन्त्रिणी ।।९८

मन्त्रिणी और दण्डिनी दोनों ने पुनः युद्ध करने के लिए शीघ्रता की थी और फिर शक्तियों का दानवों के साथ युद्ध प्रवृत्त हो गया था ।९२। प्रसन्नता से अट्टहास जो उन्होंने किया था तो आठों दिशाओं को और धरा को हिला दिया था। नवीन मदिरा से मत्त हो गयी थीं और उनके लोचन पाटल वर्ण के थे। वे शक्तियाँ दैत्यों के चक्र में एक ही हल्ला के साथ निपतित हो गयी थीं ।९३। मद की श्री से सम्पन्न शक्तियों का युद्ध ऐसा हुआ था कि दो से दो ही भिड़ गयी थीं और शोभित हुई थीं। मद के राग से तो नेत्र लाल हो गयी थीं और दैत्यों के रक्त से शस्त्र रक्त हो गये थे ।९४। शक्ति और असुरों का बड़ा तुमुल युद्ध हुआ था जैसे अवित्रस्त मृत्यु स्वयं ही प्रजाओं का संहार करता हो ।९५। उनके चरणों के न्यास स्खलित हो रहे थे तथा मद से कुछ रक्त वर्ण के नेत्र हो रहे थे। वीरभाषा भी ऐसी थी कि उनमें अक्षरों का सन्दर्भ स्खलित हो रहा था। ऐसी वे रण में उद्धत हो गयी थीं ।९६। कदम्ब गोलक के आकार से युक्त और हृष्ट सर्वाङ्ग दृष्टि वाली शक्तियों ने युवराज की सेनाओं का विनाश कर दिया था ।९७। उस दण्डिनी ने वहाँ पर सौ अक्षौहिणियों को विदीर्ण कर दिया था और डेढ़ सौ अक्षौहिणी का विनाश मन्त्रिणी ने कर दिया था ।९८।

अश्वारूढप्रभृतयो मदारुणविलोचनाः ।
अक्षौहिणीसार्धशतं निन्युरंतकमन्दिरम् ॥९९
अंकुशेनातितीक्ष्णेन तुरगा रोहिणी रणे ।
उलूकजितमुन्मथ्य परलोकातिथिं व्यधात् ॥१००
सम्पत्करीप्रभृतयः शक्तिदण्डाधिनायिकाः ।
परुषेण मुखान्यन्यान्यवरुद्धा व्यदारयन् ॥१०१
अस्तं गते सवितरि ध्वस्तसर्वबलं ततः ।
विशुक्रं योधयामास श्यामला कोपशालिनी ॥१०२
अस्त्रप्रत्यस्त्रमोक्षेण भीषणेन दिवौकसाम् ।
महता रणकृत्येन योधयामास मन्त्रिणी ॥१०३
आयुधानि सुतीक्ष्णानि विशुक्रस्य महौजसः ।
क्रमशः खंडयंती सा केतनं रथसारथिम् ॥१०४

धनुर्गुणं धनुर्दंडं खंडयंती शिलीमुखैः ।
अस्त्रेण ब्रह्मशिरसा ज्वलत्पावकरोचिषा ॥१०५

मद से अरुण लोचनों वाली अश्वारूढ़ा आदि ने डेढ़ सौ अक्षौहिणी को यमराज के पुर में भेज दिया था ।९९। अत्यन्त तीक्ष्ण अंकुश से अश्वारोहिणी ने युद्ध में उलूक जित् का उन्मथन करके उसे परलोक भेज दिया था ।१००। सम्पत्करी प्रभृति शक्ति दण्डाधिनायिओं ने अपने कठोर प्रहार से परस्पर में अवरुद्धों को विदीर्ण कर दिया था ।१०१। सूर्य के अस्ताचलगामी होने पर समस्त सेना के ध्वस्त होने वाले विशुक्र के साथ कोपशालिनी श्यामा ने युद्ध किया था ।१०२। मन्त्रिणी ने अस्त्र प्रत्यस्त्रों के छोड़ने के द्वारा देवों को भी भीषण महान रण कृत्य से युद्ध किया था ।१०३। महान ओज वाले विशुक्र के परम तीक्ष्ण आयुधों का क्रम से खण्डन करती हुई उसने बाणों के द्वारा ध्वजा रथ के सारथि–धनुष की प्रत्यञ्चा–धनुष का खण्डन करती हुई जलती हुई अग्नि की कान्ति वाले ब्रह्मशिर अस्त्र से विशुक्र का मर्दन किया था ।१०४-१०५।

विशुक्रं मर्दयामास सोऽपतच्चूर्णविग्रहः ।
विषंगं च महादैत्यं दण्डनाथा मदोद्धता ॥१०६
योधयामास चंडेन मुसलेन विनिघ्नती ।
स चापि दुष्टो दनुजः कालदंडनिभां गदाम् ।
उद्यम्य बाहुना युद्धं चकाराशेषभीषणम् ॥१०७
अन्योन्यमंगं मृद्नंतौ गदायुद्धप्रवर्तिनौ ।
चण्डाट्टहासमुखरौ परिभ्रमणकारिणौ ॥१०८
कुर्वाणौ विविधांश्चारान्घूर्णंतौ तूर्णवेष्टिनौ ।
अन्योन्यदंडहननैर्मोहयंतौ मुहुर्मुहुः ॥१०९
अन्योन्यप्रहृतौ रंध्रमीक्षमाणौ महोद्धतौ ।
महामुसलदंडाग्रघट्टनक्षोभितांबरौ ।
अयुध्येतां दुराधर्षौ दंडिनीदैत्यशेखरौ ॥११०
अथार्द्धरात्रिसमयपर्यंतं कृतसंगरा ।

संक्रुद्धा हन्तुमारेभे विषंगं दंडनायिका ॥१११

तं मूर्द्धनि निमग्नेन हलेनाकृष्य वैरिणम् ।
कठोरं ताडनं चक्रे मुसलेनाथ पोत्रिणी ॥११२

ततो मुसलघातेन त्यक्तप्राणो महासुरः ।
चूर्णितेन शतांगेन समं भूतलमाश्रयत् ॥११३

इति कृत्वा महत्कर्म मंत्रिणीदंडनायिके ।
तत्रैव तं निशाशेषं निन्यतु शिविरं प्रति ॥११४

विशुक्र का ऐसा विमर्दन किया था कि वह चूर-चूर होकर भूमि पर गिर गया था । मदोद्धता दण्डनाथा ने महान् दैत्य विषंग के साथ युद्ध किया था और अपने प्रचण्ड मुसल से उस पर प्रहार किया था और वह दुष्ट दानव भी कालदण्ड के समान गदा को लेकर प्रस्तुत हो गया था और उसने बाहु से महान् भीषण युद्ध किया था ।१०६-१०७। परस्पर में एक दूसरे का मर्दन करते हुए महान् गदा युद्ध में प्रवृत्त हुए थे । चण्ड चट्टहास से दोनों शब्दायमान हो रहे थे और उधर-उधर परिभ्रमण करने वाले थे ।१०८। अनेक चारों को करते हुए घूर्णन करते थे और तूर्ण वेष्टी हो रहे थे। परस्पर में प्रहारों से एक दूसरे को बार-बार मूर्च्छित करते हुए दोनों मदोद्धत छिद्रों को देख रहे थे । मूसल के दण्ड के प्रघट्टन से अम्बर को क्षुब्ध करते हुए वे दुराधर्ष दंडिनी और वह दैत्य शिरोमणि युद्ध कर रहे थे ।१०९-११०। आधी रात तक युद्ध करने वाली दण्डनायिका ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर विषंग को मारना आरम्भ कर दिया था ।१११। इसके शिर में गढ़े हुए हल से उस शत्रु को खींचकर पोत्रिणी ने मुसल ने खूब ताड़न किया था ।११२। फिर मुसल की चोट से महान् असुर गत प्राण वाला हुआ था और चूर्ण होकर भूमि पर गिर पड़ा था ।११३। उन मन्त्रिणी और दण्डनायिका ने यह महान् कर्म करके वहाँ पर ही शिविर में उस रात्रि को व्यतीत किया था ।११४।

—×—

।। भंडासुर वध वर्णन ।।

अगस्त्य उवाच–

अश्वानन महाप्राज्ञ वर्णितं मंत्रिणीबलम् ।
विषंगस्य वधो युद्धे वर्णितो दण्डनाथया ।।१
श्रीदेव्याः श्रोतुमिच्छामि रणचक्रे पराक्रमम् ।
सोदरस्यापदं दृष्ट्वा भण्डः किमकरोच्छुचा ।।२
कथं तस्य रणोत्साहः कैः समं समयुध्यत ।
सहायाः केऽभवंस्तस्य हतभ्रातृतनूभुवः ।।३

हयग्रीव उवाच–

इदं शृणु महाप्राज्ञ सर्वपापनिकृन्तनम् ।
ललिताचरितं पुण्यमणिमादिगुणप्रदम् ।।४
वैषुवायनकालेषु पुण्येषु समयेषु च ।
सिद्धिदं सर्वपापघ्नं कीर्तिदं पञ्चपर्वसु ।।५
तदा हतौ रणे तत्र श्रुत्वा निजसहोदरौ ।
शोकेन महताविष्टो भण्डः प्रविललाप सः ।।६
विकीर्णकेशो धरणौ मूर्छितः पतितस्तदा ।
न लेभे किंचिदाश्वासं भ्रातृव्यसनकर्शितः ।।७

अगस्त्यजी ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! हे अश्वानन ! आपने मन्त्रिणी के बल का वर्णन कर दिया है और दण्डनाथा ने युद्ध में विषंग वध किया था वह भी वर्णन कर दिया है ।१। अब मैं युद्ध में श्रीदेवी के पराक्रम के श्रवण करने की इच्छा करता हूँ और भण्ड ने भाई के हनन को सुनकर शोक से क्या किया था ? फिर उसका रण में उत्साह कैसे हुआ था और उसने किनके साथ युद्ध किया था । जब उसके भाई पुत्र मर गये तो फिर उसके सहायक कौन हुए थे ।२-३। हयग्रीवजी ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! अब यह भी आप सुनिए जो कि सब पापों का छेदन करने वाला है । यह श्री ललिता देवी का चरित परम पुण्यमय है और अणिमादिक आठों महा-

सिद्धियों के प्रदान करने वाला है ।४। वैषुवायन कालों में और पुण्य समयों में यह सिद्धि के देने वाला—सब पापों का विनाशक और पञ्च पर्वों में कीर्त्ति का दाता है ।५। उस समय में रण में अपने सहोदरों को मरे हुए सुनकर भंड महान् शोक से समाविष्ट हो गया था और उस भंडासुर ने बड़ा भारी विलाप किया था ।६। विकीर्ण केशों वाला वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गया था और भाइयों के दुःख से कर्शित होकर कुछ भी आश्वासन उसने प्राप्त नहीं किया था ।७।

पुनः पुनः प्रविलपन्कुटिलाक्षेण भूरिशः ।
आश्वास्यमानः शोकेन युक्तः कोपमवाप सः ।।८
फालं बहन्नतिक्रूरं भ्रमद्भ्रुकुटिभीषणम् ।
अंगारपाटलाक्षश्च निःश्वसन्कृष्णसर्पवत् ।।९
उवाच कुटिलाक्षं द्राक्समस्तपृतनापतिम् ।
क्षिप्रं मुहुर्मुहुः स्पृष्ट्वा धुन्वानः करवालिकाम् ।।१०
क्रोधहुंकारमातन्वन्गर्जन्नुत्पातमेघवत् ।।११
ययैव दुष्टया मायाबलाद्युद्धे विनाशिताः ।
भ्रातरो मम पुत्राश्च सेनानाथाः सहस्रशः ।।१२
तस्याः स्त्रियाः प्रमत्तायाः कण्ठोत्थैः शोणितद्रवैः ।
भ्रातृपुत्रमहाशोकवह्निं निर्वापयाम्यहम् ।।१३
गच्छ रे कुटिलाक्ष त्वं सज्जीकुरु पताकिनीम् ।
इत्युक्त्वा कठिनं वर्म वज्रपातसहं महत् ।।१४

वह बार-बार प्रलविलाप कर रहा था तब कुटिलाक्ष ने उसको आश्वासन दिया था । जब बहुत कुछ समझाया तो शोक से युक्त उसने क्रोध किया था ।८। उसने अत्यन्त क्रूर फाल को ग्रहण किया था और अपनी भृकुटियों को तिरछी करके बहुत ही भीषण हो गया था । उसकी आँखें अङ्गारों के समान रक्त हो गयी थीं और वह काले सर्प की तरह फुङ्कारें मार रहा था ।९। फिर सब सेनाओं के स्वामी कुटिलाक्ष से शीघ्र ही बोला था और बार-बार खड्ग को छूकर उसे घुमाता जा रहा था ।१०। वह क्रोध से हुङ्कार-कर रहा था और उत्पात के समय में होने वाले मेघों के समान

गर्ज रहा था ।११। जिस दुष्टा ने माया के बल से युद्ध में मेरे भाइयों और पुत्रों को मार दिया है और सहस्रों सेना पतियों का विनाश कर दिया है उसी स्त्री के जब वह युद्ध में प्रवृत्त होगी तो उसके कण्ठ से निकले हुए रुधिर से भाई और पुत्रों के शोक की अग्नि को मैं शान्त करूँगा ।१२-१३। रे कुटिलाक्ष ! चले जाओ और सेना को तैयार करो। इतना ही कहकर उसने वज्रपात को भी सहन करने वाले कठिन कवच को धारण किया था ।१४।

दधानो भुजमध्येन बध्नन्पृष्ठे तथेषुधी ।
उद्दाममौर्विनिः श्वासकठोरं भ्रामयन्धनुः ॥१५
कालाग्निरिव संक्रुद्धो निर्जगाम निजात्पुरात् ।
तालजंघादिकैः सार्द्धं पूर्वद्वारे निवेशिते ॥१६
चतुर्भिर्धृतशस्त्रौघैर्धृतवर्मभिरुद्धतैः ।
पञ्चत्रिंशच्चमूनाथैः कुटिलाक्षपुरः सरैः ॥१७
सर्वसेनापतींद्रेण कुटिलाक्षेण स क्रुधा ।
मिलितेन च भण्डेन चत्वारिंशच्चमूवराः ॥१८
दीप्तायुधा दीप्तकेशा निर्जग्मुर्दीप्तकंकटाः ।
द्विसहस्राक्षौहिणीनां पञ्चाशीतिः पराधिका ॥१९
तदेनमन्वगादेकहेलया मथितुं द्विषः ।
भण्डासुरे विनिर्याते सर्वसैनिकसंकुले ॥२०
शून्यके नगरे तत्र स्त्रीमात्रमवशेषितम् ।
आभिलो नाम दैत्येंद्रो रथवर्यो महारथः ।
सहस्रयुग्यसिंहाढ्यमारुरोह रणोद्धतः ॥२१

वर्म को भुजाओं के मध्यभाग से धारण करके उसने पृष्ठ में तूणीर कहा था । उद्दाम मौर्वी के निःश्वास से कठोर धनुष को घुमाते हुए कालाग्नि के समान से क्रुध होकर वह अपने नगर से निकलकर चल दिया था और तालजंघादिक उसके साथ थे तथा पूर्व द्वार पर सुरक्षा के लिए भी सेनाओं को निवेशित किया था ।१५-१६। चार शस्त्रों के समूहों को धारण करने वाले—कवचों को पहिन हुए और उद्धत वीर वहाँ पर थे । पैंतीस सेना-

पतियों के सहित जिनमें कुटिलाक्ष भी आगे थे वह चला था ।१७। सब सेना-पतियों का स्वामी कुटिलाक्ष के साथ वह क्रोध से युक्त हुआ था भंड को भी मिलाकर चालीस चमूवर थे ।१८। इनके आयुध परम दीप्त थे और इनके केश भी दीप्त थी ऐसे दीप्त ककट वाले निकल गये थे दो सहस्र अक्षौहिणी सेना थी और परार्धिक पिचाली थीं ।१९। शत्रु का मंथन करने को एक ही साथ उसके पीछे गये थे । भंडासुर के निकल कर जाने पर जो सभी सेनाओं से संकुल थी ।२०। उस शून्यक नगर में केवल स्त्रियाँ ही रह गयी थीं । आभिल नामक दैत्येन्द्र जो रथवर्य और महारथी था एक सहस्र युग्य सिंहों से युक्त रथ पर रणोद्धत होकर सवार हुआ था ।२१।

तत्वरे विज्वलज्ज्वालाकालाग्निरिव दीप्तिमान् ।
घातको नाम वै खड्गश्चन्द्रहाससमाकृतिः ॥२२
इतस्ततश्चलंतीनां सेनानां धूलिरुत्थिता ।
बोढु तासां भरं भूमिरक्षमेव दिवं ययौ ॥२३
केचिद्भूमेरपर्याप्तां प्रलेलुर्व्योमवर्त्मना ।
केषांचित्स्कन्धमारूढाः केचिच्चेलुर्महारथाः ॥२४
न दिक्षु न च भूचक्रे न व्योमनि च ते ममुः ।
दुःखदुखेन ते चेलुरन्योन्याश्लेषपीडिताः ॥२५
अत्यन्त सेनासंमर्दाद्रथचक्रं विचूर्णिताः ।
केचित्पादेन नागानां मर्दिता न्यपतन्भुवि ॥२६
इत्थं प्रचलिता तेन समं सर्वैश्च सैनिकैः ।
वज्रनिष्पेषसदृशो मेघनादो व्यधीयत ॥२७
तेनातीव कठोरेण सिंहनादेन भूयसा ।
भंडदैत्यमुखोत्थेन विदीर्णमभवज्जगत् ॥२८

वह जलती हुई ज्वाला वाले कालाग्नि के तुल्य ही दीप्ति वाला था । उसके खड्ग का नाम घातक था जो चन्द्रहास खड्ग के ही समान आकृति वाला था ।२२। इधर-उधर चलने वाली सेनाओं से धूलि उड़कर ऊपर उठ गयी थी । मानों भूमि उन सेनाओं के भार को सम्हालने में असमर्थ होकर ही आकाश में जा रही थी ।२३। उनमें कुछ तो भूमि पर स्थान न पाकर

व्योम के ही मार्ग से चल दिये थे। कुछ महारथी कुछ लोगों के स्कन्ध पर समारूढ़ होकर चले थे।२४। जब उस भंडासुर की सेनाएँ चली थीं तो कहीं पर भी स्थान नहीं रहा था। एक दूसरे से रगड़ खाकर पीड़ित से होते हुए जा रहे थे। न तो दिशाओं में न भूमि में और न नभ में वे समाये थे। बड़े ही दुःख से चल रहे थे।२५। अत्यन्त सेना के संमर्द से और रथों के पहियों से चूर्ण होते हुए जा रहे थे। कुछ हाथियों के पैरों से मर्दित होकर भूमि पर गिर गये थे।२६। इस रीति से उसके साथ सभी सैनिक गमन कर रहे थे और वज्रपात के समान उनने सिंहनाद किया था। उस प्रबल और बड़े भारी सिंहनाद से एवं कठोर से जो भंड के मुख से किया गया था सम्पूर्ण जगत विदीर्ण हो गया था।२७-२८।

सागराः शोषमापन्नाश्चन्द्रार्कौ प्रपलायितौ।
उडूनि न्यपतन्व्योम्नो भूमिर्दोलायिताभवत् ॥२९
दिङ्नागाश्चाभवस्त्रस्ता मूर्च्छिताश्च दिवौकसः।
शक्तीनां कटकं चासीदकांडत्रासविह्वलम् ॥३०
प्राणान्संधारयामासुः कथंचिन्मध्य आहवे।
शक्तयो भयविभ्रष्टान्यायुधानि पुनर्दधुः ॥३१
वह्निप्राकारवलयं प्रशांतं पुनरुत्थितम्।
दैत्येन्द्रसिंहनादेन चमूनाथधनुः स्वनैः ॥३२
क्रन्दनैश्चापि योद्धॄणामभूच्छब्दमयं जगत्।
तेन नादेन महता भंडदैत्यविनिर्गमम्।
निश्चित्य ललिता देवी स्वयं योद्धुं प्रचक्रमे ॥३३
अशक्यमन्यशक्तीनामाकलय्य महाहवम्।
भंडदैत्येन दुष्टेन स्वयमुद्योगमास्थिता ॥३४
चक्रराजरथस्तस्याः प्रचचाल महोदयः।
चतुर्वेदमहाचक्रपुरुषार्थमहाभयः ॥३५

समस्त सागर सूख गये थे। चन्द्र और सूर्य भी भाग गये थे। तारागण आकाश से गिर रहे थे और समस्त पृथ्वी काँप रही थी।२९। दिक्पाल भयभीत हो गये थे और देवगण मूर्च्छित हो गये थे उस समय में शक्तियों

की सेना अकाण्डत्रास से विह्वल हो गयी थीं।३०। उस युद्ध में मध्य में किसी प्रकार से प्राणों को धारण किया था। शक्तियों ने भय से विभ्रष्ट आयुधों को पुनः धारण किया था।३१। वह्नि प्राकार वलय प्रशान्त फिर उत्थित हो गया था। उस दैत्येन्द्र के सिंहनाद से और सेना पतियों के धनुषों को टङ्कारों से तथा योद्धाओं के क्रन्दनों से समस्त जगत ही शाकायमान हो गया था। उस महान् नाद से भण्डासुर के समागमन का निश्चय करके ललिता देवी ने स्वयं ही युद्ध करने की इच्छा की थो।३२-३३। यह महान संग्राम शक्तियों के द्वारा नहीं किया जा सकता है ऐसा विचार करके दुष्ट भण्ड दैत्य के साथ स्वयं ही युद्ध करने के लिए उद्योग में समास्थित हुई थी।३४। उसका चक्रराज रथ जो महान हृदय वाला था वहाँ से चल दिया था। चारों वेद उसके चक्र थे और पुरुषार्थ महान भय वाला था।३५।

आनन्दध्वजसंयुक्तो नवभिः पर्वभिर्युतः।
नवपर्वस्थदेवीभिराकृष्टगुरुधन्विभिः ॥३६
परार्धाधिकसंख्यातपरिवारसमृद्धिभिः।
पर्वस्थानेषु सर्वेषु पालितः सर्वतो दिशम् ॥३७
दशयोजनमुन्नद्धश्चतुर्योजनविस्तृतः।
महाराज्ञीचक्रराजो रथेंद्रः प्रचलन्बभौ ॥३८
तस्मिन्प्रचलिते जुष्टे श्यामया दंडनाथया।
गेयचक्रं तु बालाग्रे किरिचक्रं तु पृष्ठतः ॥३९
अन्यासामपि शक्तीनां वाहनानि परार्द्धशः।
न सिंहोष्ट्रनरव्यालमृगपक्षिहयास्तथा ॥४०
गजभेरुण्डशरभव्याघ्रवातमृगास्तथा।
एतादृशश्च तिर्यंचोऽप्यन्ये वाहनतां गताः ॥४१
मुहुरुच्चावचाः शक्तीर्भंडासुरवधोद्यताः।
योजनायामविस्तारमपि तद्द्वारमंडलम्।
वह्निप्राकारचक्रस्य न पर्याप्तं चमूपतेः ॥४२

वह रथ आनन्द की ध्वजा से युक्त था और उसमें नौ पर्व थे। नौ पर्वों पर देवियाँ स्थित थीं जिन्होंने बड़े-बड़े धनुषों को चढ़ा रक्खा था।३६।

परार्ध से अधिक संख्या वाले परिवारों की समृद्धियों से समस्त पर्व स्थानों में सब दिशाओं में उसकी सुरक्षा भी थी ।३७। वह रथ दश योजन ऊँचा और चार योजन चौड़ा था। ऐसा वह महाराज्ञी का चक्रराज रथेन्द्र गमन करता हुआ शोभित हुआ था ।३८। श्यामा और दण्डनाथा के द्वारा सेवित वह रथ रवाना हुआ था। उस बाला के आगे गेय चक्र था ।३६। अन्य शक्तियों के भी वाहन परार्द्ध के नृसिंह—उष्ट्र—नर—व्याल—मृग—पक्षी और हय थे ।४०। हाथी–भेरुण्ड—व्याघ्र—वात—मृग ऐसे और तिर्यक योनि वाले भी उनके वाहन थे ।४१। बार-बार उच्चावच शक्तियाँ भंडासुर के वध करने के लिए उद्यत हुई थीं। उसका द्वारमंडल भी योजन आयाम विस्तार वाला था जो वह्निप्राकार चक्र के सेनापति को पर्याप्त नहीं था। ।४२।

ज्वालामालिनिका नित्या द्वारस्यात्यंतविस्तुतिम् ।
विततान समस्तानां सैन्यानां निर्गमैषिणी ॥४३
अथ सा जगतां माता महाराज्ञी महोदया ।
निर्जगामाग्निपुरतो वरद्वारात्प्रतापिनी ॥४४
देवदुन्दुभयो नेदुः पतिताः पुष्पवृष्टयः ।
महामुक्तातपत्रं तद्दिवि दीप्तमदृश्यत ॥४५
निमित्तानि प्रसन्नानि शंसकानि जयश्रियाः ।
अभवंल्ललितासैन्ये उत्पातास्तु द्विषां बले ॥४६
ततः प्रववृते युद्धं सेनयोरुभयोरपि ।
प्रसर्पद्भिशिखैः स्तोमवद्धान्धतमसच्छटम् ॥४७
हन्यमानगजस्तोमसृतशोणितबिंदुभिः ।
ह्रीयमाणशिरश्छन्नदं त्यश्वेतातपत्रकम् ॥४८
न दिशो न नभो नागा न भूमिर्न च किंचन ।
दृश्यते केवलं दृष्टं रजोमात्रं च मूर्च्छितम् ॥४६

ज्वाला मालिनिका नित्या ने द्वारकी अत्यन्त विस्तुति को विस्तृत किया था। यह समस्त सेनाओं की निर्गम की चाहने वाली थी ।४३। इसके उपरान्त जगतों की माता महोदया महाराज्ञी प्रतापिनी वरद्वार से अग्निपुर

उस नदी में थे। चक्र से कटे हुए करियों के समुदाय ही उसमें कूर्मों की परम्परा थीं ।५१। शक्तियों के द्वारा ध्वस्त महान दैत्यों के गलगण्ड ही उस नदी में शिलोच्चय थे। जिनके काण्ड विलून होगये हैं ऐथ चमर जो उसमें थे वे ही फेन थे ।५२। तीक्ष्ण जो असियाँ थीं वे ही बल्लरी थीं जिनके कारण उस नदी की तटभूमि निविड़ हो रही थी। दैत्यों के नेत्रों के श्रेणियाँ ही मुक्ति सम्पुट थे जिससे वह नदी भासुर थी ।५३। दैत्य वाहनों के समुदाय ही उस शोणित की नदी में सैकड़ों नक्र और मछलियाँ थीं जिनसे वह घिरी हुई थी। दोनों सेनाओं का युद्ध होने पर वहाँ रुधिर की नदी प्रवाहित हो रही थी ।५४। इसके अनन्तर श्री ललिता देवी और भण्ड का युद्ध हुआ था। उसमें अस्त्रों और प्रत्यस्त्र का ऐसा संक्षोभ हुआ था कि समस्त दिशायें तुमुली कृत हो गयी थीं ।५६।

धनुर्ज्यातलटंकारहुंकारैरतिभीषणः ।
तूणीरवदनात्कृष्टधनुर्वरविनिः सृतैः ।
विमुक्तैर्विशिखैर्भीमैराहवे प्राणहारिभिः ॥५७
हस्तलाघववेगेन न प्राज्ञायत किंचन ।
महाराज्ञीकरांभोजव्यापारं शरमोक्षणे ।
शृणु सर्वं प्रवक्ष्यामि कुम्भसंभव सङ्गरे ॥५८
संधाने त्वेकधा तस्य दशधा चापनिर्गमे ।
शतधा गगने दैत्यसैन्यप्राप्तौ सहस्रधा ।
दैत्यांगसंगे संप्राप्ताः कोटिसंख्याः शिलीमुखाः ॥५९
परांधकारं सृजती भिंदती रोदसी शरैः ।
मर्माभिनत्प्रचंडस्य महाराज्ञी महेषुभिः ॥६०
वहत्कोपारुणं नेत्रं ततो भंडः स दानवः ।
ववर्ष शरजालेन महता ललितेश्वरीम् ॥६१
अन्धतामिस्रकं नाम महास्त्रं प्रमुमोच सः ।
महातरणिबाणेन तन्नुनोद महेश्वरी ॥६२
पाखंडास्त्रं महावीरो भंडः प्रमुमुचे रणे ।
गायत्र्यस्त्रं तस्य नुत्यै ससर्ज जगदम्बिका ॥६३

वह युद्ध धनुष की डोरी की टंकारों और हुङ्कारों से अत्यन्त भीषण हो गया था। तूणीर से निकालकर खीचे हुए धनुषों से छोड़े गये महान् भयंकर बाणों से जो युद्ध में प्राणों के हरण करने वाले थे वह रण बहुत ही भयानक था।५७। शरों के छोड़ने में महाराज्ञी के कर कमलों का व्यापार हाथ की सफाई के वेग से कुछ भी नहीं जाना गया था। हे कुम्भ सम्भव ! संग्राम में जो हुआ था उस सबको मैं बतलाऊँगा—आप श्रवण कीजिए।५८। वे बाण ऐसे थे कि सन्धान के समय में एक ही प्रकार का था-वही चाप से निकलने पर दश प्रकार का हो जाता था—गगन में सौ प्रकार का-दैत्यों की सेना में प्राप्त होने पर सहस्र प्रकार का होना था और दैत्यों के अङ्गों के संगम में सम्प्राप्त होकर करोड़ों प्रकार का हो जाता था।५९। परान्धकार का सृजन करती हुई और रोदसी को शरों से भेदन करती हुई महाराज्ञी ने विशाल बाणों से प्रचण्ड के मर्मों का भेदन कर दिया था।६०। भंड ने क्रोध से लाल नेत्रों को वहन करते हुए उस दैत्य ने बड़े पारीशरों के जालों की ललितेश्वरी के ऊपर वर्षा की थी।६१। उसने अन्ध तामिस्र नाम वाले महास्त्र को छोड़ा था। महेश्वरी ने महातरणि बाण से उसको काट दिया था।६२। महावीर भंड ने रण में पाखण्डास्त्र को छोड़ा था उसके निवारण के लिए जगदम्बा ने गायत्र्यस्त्र को छोड़ दिया था।६३।

अन्धास्त्रमसृजद्भंडः शक्तिदृष्टिविनाशनम् ।
चाक्षुष्मतमहास्त्रेण शमयायास तत्प्रसः ॥६४
शक्तिनाशाभिधं भंडो मुमोचास्त्रं महारणे ।
विश्वावसोरथास्त्रेण तस्य दर्पमपाकरोत् ॥६५
अन्तकास्त्रं ससर्जोच्चैः संक्रुद्धो भंडदानवः ।
महामृत्युञ्जयास्त्रेण नाशयामास तद्बलम् ॥६६
सर्वास्वस्मृतिनाशाख्यमस्त्रं भंडो व्यमुञ्चत ।
धारणास्त्रेण चक्रेशी तद्बलं समनाशयत् ॥६७
भयास्त्रमसृजद्भंडः शक्तीनां भीतिदायकम् ।
अभयंकरमैंद्रास्त्रं मुमुचे जगदम्बिका ॥६८
महारोगास्त्रमसृजच्चवितसेनासु दानवः ।
राजयक्ष्मादयो रोगास्ततोऽभूवन्सहस्रशः ॥६९

तन्निवारणसिद्ध्यर्थं ललिता परमेश्वरी ।
नामत्रयमहामन्त्रमहास्त्रं सा मुमोच ह ॥७०

भंड ने दृष्टि के विनाशक अन्धास्त्र का प्रहार किया था । देवी ने चाक्षुष्मन्महास्त्र के द्वारा उसका शमन कर दिया था ।६४। उस महारण में भंड ने शक्ति नाशक नाम वाले अस्त्र को छोड़ा था उसका दर्प विश्वावसु अस्त्र के प्रयोग से दूर कर दिया था ।६५। भंड दानव ने अन्तकास्त्र को छोड़ा था और बहुत क्रोधित हुआ था । उसके बल को देवी ने महामृत्युञ्जयास्त्र से दूर कर दिया था ।६६। फिर भंड ने सब अस्त्रों की स्मृति के विनाश करने वाले अस्त्र को छोड़ा था, चक्रेशी ने धारणास्त्र के द्वारा उसका विनाश कर दिया था ।६७। शक्तियों को भय देने वाले भयास्त्र का प्रयोग भंड ने किया था और जगदम्बिका ने अभयंकर ऐन्द्रास्त्र को छोड़ दिया था ।६८। दानव ने शक्ति सेनाओं में महारोगास्त्र छोड़ दिया था जिससे राजयक्ष्मा आदि सहस्रों रोग होते थे । उसके निवारण की सिद्धि के लिए परमेश्वरी ललितादेवी ने नाम त्रय महामन्त्र महास्त्र का प्रयोग किया था । ।६९-७०।

अच्युतश्चाप्यनंतश्च गोविन्दस्तु शरोत्थिताः ।
हुंकारमात्रतो दग्ध्वा रोगांस्तानानयन्मुदम् ॥७१

नत्वा च तां महेशानीं तद्भक्तव्याधिमर्दनम् ।
विधातुं त्रिषु लोकेषु नियुक्ताः स्वपदं ययुः ॥७२

आयुर्नाशनमस्त्रं तु मुक्तवान्भंडदानवः ।
कालसंकर्षणीरूपमस्त्रं राज्ञी व्यमुञ्चत ॥७३

महासुरास्त्रमुद्दामं व्यसृजद्भंडदानवः ।
ततः सहस्रशो जाता महाकाया महाबलाः ॥७४

मधुश्च कैटभश्चैव महिषासुर एव च ।
धूम्रलोचनदैत्यश्च चंडमुण्डादयोऽसुराः ॥७५
चिक्षुभश्चामरश्चैव रक्तबीजोऽसुरस्तथा ।
शुम्भश्चैव निशुम्भश्च कालकेया महाबलाः ॥७६

धूम्राभिधानाश्च परे तस्मादस्त्रात्समुत्थिताः ।
ते सर्वे दानवश्रेष्ठाः कठोरैः शस्त्रमण्डलैः ॥७७

उस महेशानी को नमस्कार करके उसके भक्तों ने व्याधि मर्दन को करने के लिए तीनों लोकों में नियुक्त अपने स्थान को चले गये थे। शरों से उत्थित अच्युत-अनन्तर और गोविन्द हुङ्कार मात्र से ही रोगों को दग्ध करके उनको प्रसन्न किया था ।७१-७२। इसके उपरान्त उस महान् भीषण युद्ध स्थल में पराक्रमी फिर भण्ड ने आयुर्नाशन अस्त्र छोड़ा था और राज्ञी ने काल संकर्षणी रूप अस्त्र को प्रयुक्त किया था ।७३। भंड दानव ने उद्दाम महासुरास्त्र को छोड़ दिया था। उससे सहस्रों ही महाकाय और महाबली उत्पन्न हो गये थे । मधु-कंटभ- महिषासुर—धूम्रलोचन और चंड-मुंड प्रभृति असुर थे ।७४-७५। चिक्षुभ—चामर—रक्तबीज—निशुम्भ और महान् बलवान कालकेय थे ।७६। दूसरे धूमाभिधान वाले उस अस्त्र से उत्थित हो गये थे। वे सभी श्रेष्ठ दानव कठोर शस्त्रों के मंडलों से प्रहार कर रहे थे ।७७।

शक्तीसेना मर्दयन्तो नर्दन्तश्च भयंकरम् ।
हाहेति क्रन्दमानाश्च शक्तयो दैत्यमर्दिताः ॥७८
ललितां शरणं प्राप्ताः पाहि पाहीति सत्वरम् ।
अथ देवी भृशं क्रुद्धा रुषाट्टहासमातनोत् ॥७९
ततः समुत्थिता काचिद्दुर्गा नाम यशस्विनी ।
समस्तदेवतेजोभिर्निर्मिता विश्वरूपिणी ॥८०
शूलं च शूलिना दत्तं चक्रं चक्रिसमर्पितम् ।
शंखं वरुणदत्तश्च शक्ति दत्तां हविर्भुजा ॥८१
चापमक्षयतूणीरौ मरुद्दत्तौ महामृधे ।
वज्रिदत्तं च कुलिशं चषकं धनदार्पितम् ॥८२
कालदंडं महादंडं पाशं पाशधरार्पितम् ।
ब्रह्मदत्तां कुण्डिकां च घण्टामैरावतार्पिताम् ॥८३
मृत्युदत्तौ खड्गखेटौ हारं जलधिनार्पितम् ।
विश्वकर्मप्रदत्तानि भूषणानि च बिभ्रती ॥८४

वे सब शक्ति सेना का मर्दन कर रहे थे और भयानक नर्दन कर रहे थे। हा-हा-कहकर क्रन्दन करती हुई शक्तियाँ दैत्यों से मर्दित हो रही थीं ।७८। वे सभी शक्तियाँ ललिता देवी की शरण में शीघ्रता से प्राप्त हुई थीं और रक्षा करो-रक्षा करो ऐसा कह रही थीं। इसके पश्चात् वह देवी क्रोध से रुष्ट हो गई थी और उसने अट्टहास किया था ।७९। फिर कोई दुर्गा नाम वाली उत्पन्न हुई थी जो बहुत यशस्विनी थी। यह विश्व रूपिणी सब देवों के तेजों से निर्मित हुई थी ।८०। उसको शूली ने शूल दिया था और विष्णु ने चक्र समर्पित किया था। वरुण ने शंख दिया था और अग्नि ने शक्ति दी थी ।८१। उस युद्ध में मरुत् ने अक्षय चाप और तूणीर किया था। वज्री ने कुलिश दिया था और धनद ने चषक दिया था। पाशधर ने काल-दंड-महादंड और पाश दिया था। ब्रह्मा ने कुण्डिका दी थी और ऐरावत ने घण्टा दिया था ।८२।८३। मृत्यु ने खड्ग और खेट दिया था तथा जलविधि ने हार अर्पित किया था। विश्वकर्मा ने भूषण दिये थे जिनको वह धारण कर रही थी ।८४।

अङ्गैः सहस्रकिरणश्रेणिभासुररश्मिभिः ।
आयुधानि समस्तानि दीपयंति महोदयैः ॥८५
अन्यदत्तैरथान्यैश्च शोभमाना परिच्छदैः ।
सिंहवाहनमारुह्य युद्धं नारायणी व्यधात् ॥८६
तया ते महिषप्रख्या दानवा विनिपातिताः ।
चण्डिकासप्तशत्यां तु यथा कर्म पुराकरोत् ॥८७
तथैव समरं चक्रे महिषादिमदापहम् ।
तत्कृत्वा दुष्करं कर्म ललितां प्रणनाम सा ॥८८
मूकास्त्रमसृजद्दुष्टः शक्तिसेनासु दानवः ।
महावाग्वादिनी नाम ससर्जास्त्रं जगत्प्रसूः ॥८९
विद्यारूपस्य वेदस्य तस्करानसुराधमान् ।
ससर्ज तत्र समरे दुर्मदो भण्डदानवः ॥९०
दक्षहस्ताङ्गुष्ठनखान्महाराज्ञ्या तिरस्कृतः ।
अर्णवास्त्रं महावीरो भण्डदैत्यो रणेऽसृजत् ॥९१

सहस्रों किरणों की श्रेणियाँ सैनापुर अङ्गों से सहस्रों आयुधों आयुधों को दीप्त कर रही थीं। अन्यों के द्वारा दिये हुए परिच्छदों से यह शोभमान थी और सिंह के वाहन पर आरूढ़ होकर उस नारायणी ने युद्ध किया था। उसने वे महिष मुख्य जो दानव थे वे सब मार गिराये थे। चण्डिका ने सप्तशती में पहिले जो कर्म किया था।८५-८७। उसी भाँति से महिष प्रभृति के मद का अपहारक युद्ध किया था। उस महान दुष्कर कर्म को करके उसने ललिता देवी को प्रणाम किया था।८८। उस दुष्ट दानव ने शक्तियों की सेना में मूकास्त्र छोड़ा था। उसके प्रतिकार के लिए जगदम्बाने महा वाग्वादिनी नामक अस्त्र का प्रयोग किया था।८९। उस दुष्ट दानव ने तस्कर अधम असुरों के ऊपर विद्या रूप वेद का सृजन किया था।९०। महाराज्ञी ने दाहिने हाथ के अँगूठे के नख से उसका तिरस्कार कर दिया था। भण्ड-दैत्य ने अणवास्त्र का रण में प्रयोग किया था।९१।

तत्रोद्दामपयः पूरे शक्तिसैन्यं ममज्ज च ।
अथ श्रीललितादक्षहस्ततर्जनिकानखात् ।
आदिकूर्मः समुत्पन्नो योजनायतविस्तरः ॥९२
धृतास्तेन महाभोगखर्परेण प्रथीयसा ।
शक्तयो हर्षमापन्नाः सागरास्त्रभयं जहुः ॥९३
तत्सामुद्रं च भगवान्सकलं सलिलं पपौ ।
हैरण्याक्षं महास्त्रं तु विजहौ दुष्टदानवः ॥९४
तस्मात्सहस्रशो जाता हिरण्याक्षा गदायुधाः ।
तैर्हन्यमाने शक्तीनां सैन्ये सन्त्रासविह्वले ।
इतस्ततः प्रचलिते शिथिले रणकर्मणि ॥९५
अथ श्रीललितादक्षहस्तमध्याङ्गुलीनखात् ।
महावराहः समभूच्छ्वेतः कैलाससंनिभः ॥९६
तेन वज्रसमानेन पोत्रिणाभिविदारिताः ।
कोटिशस्ते हिरण्याक्षा मर्द्यमानाः क्षयं गताः ॥९७
अथ भण्डस्त्वतिक्रोधाद्भ्रुकुटीं विततान ह ।
तस्य भ्रुकुटितो जाता हिरण्याः कोटिसंख्यकाः ॥९८

वहाँ पर उद्दाम पूर्ण जल के समुदाय में शक्ति सेना को डुबा दिया था इसके अनन्तर श्री ललिता के दाहिने हाथ की तर्जनी के नख से योजन पर्यन्त आयत विस्तार से युक्त आदि कूर्म समुत्पन्न हुआ था।९२। उस महान प्रधीयान भोग खर्पर से धारण किया था। शक्तियां बहुत हर्षित हुई थीं और उन्होंने सागरास्त्र का भय त्याग दिया था।९३। उस समुद्र जल को पूर्ण रूप से भगवान कूर्म ने जल का पान कर लिया था। दुष्ट दानव ने हैरण्याक्ष महान् अस्त्र को छोड़ा था।९४। उससे सहस्रों हिरण्याक्ष गदा लिये हुए थे। उनके द्वारा शक्तियों के हन्यमान होने पर शक्ति सेना में संत्रास से विह्वलता हो गयी और वे रण के कर्म से शिथिल होकर इधर-उधर चलने लग गयीं थीं।९५। इसके उपरान्त श्री ललितादेवी के दक्षिण हाथ की मध्यमा अंगुलि के नख से कैलास के समान श्वेत महान वराह उत्पन्न हुए थे।९६। उसने वज्र के समान पोत्रि से करोड़ों हिरण्याक्ष विदीर्ण कर दिये थे और मर्दित होते हुए वे सब क्षीण हो गये थे।९७। इसके पश्चात् भंडासुर ने महान क्रोध से भौंहें तान ली थीं। उसकी भृकुटी से करोड़ों हिरण्य समुत्पन्न हुए थे।९८।

ज्वलदादित्यवद्दीप्ता दीपप्रहरणाश्च ते ।
अमर्दयच्छक्तिसैन्यं प्रह्लादं चाप्यमर्दयन् ॥९९

यः प्रह्लादोऽस्ति शक्तीनां परमानन्दलक्षणः ।
स एव बालको भूत्वा हिरण्यपरिपीडितः ॥१००

ललितां शरणं प्राप्तस्तेन राज्ञी कृपामगात् ।
अथ शक्त्या नन्दरूपं प्रह्लादं परिरक्षितुम् ॥१०१

दक्षहस्तानामिकाग्रं धुनोति स्म महेश्वरी ।
तस्माद् धूतसटाजालः प्रज्वलल्लोचनत्रयः ॥१०२

सिंहास्यः तुरुषाकारः कंठस्याधो जनार्दनः ।
नखायुधः कालरुद्ररूपी घोराट्टहासवान् ॥१०३

सहस्रसंख्यदोर्दण्डो ललिताज्ञानुपालकः ।
हिरण्यकशिपून्सर्वान्भंडभ्रुकुटिसंभवान् ॥१०४

क्षणाद्विदारयामास नखैः कुलिशकर्कशैः ।
असृजच्चल्ललिता देवी प्रतिभंडमहासुरम् ॥१०५

वे जलते हुए आदित्य के समान दीप्त थे और दीपों के प्रहरणों से उद्धत थे। उसने शक्तियों की सेना का मर्दन किया था और प्रह्लाद का भी मर्दन किया था।६६। जो प्रह्लाद शक्तियों का था वह परमानन्द लक्षण वाला ही था। वह ही एक बालक होकर हिरण्याक्ष के द्वारा परिपीड़ित हुआ था।१००। वह ललिता के शरण में प्राप्त हो गया था। राज्ञी ने उस पर कृपा की थी। इसके पश्चात् शक्तियों के आनन्द स्वरूप प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए।१०१। ललिता देवी ने दाहिने हाथ की अनामिका को हिलाया था। उससे जटाओं के जाल को हिलाने वाले—तीन नेत्रों से युक्त जो जाज्वल्यमान थे—सिंह के मुख वाले—पुरुषाकार और कण्ठ के नीचे जनार्दन—कारुद्र के रूप वाले—नखों के आयुधों से संयुत घोर अट्टहास वाले उत्पन्न हुए थे।१०२-१०३। उनकी भुजाएँ सहस्रों की संख्या में थीं और वे ललिता की आज्ञा के पालक थे। जो भण्ड की भौंहों से समुत्पन्न हिरण्यकशिपु थे।१०४। उन सबको क्षणभर में कुलिश के समान कर्कश नखों से विदीर्ण कर दिया था। फिर ललिता देवी ने सब देवों के विनाशक एक महान् घोर बलीन्द्रास्त्र को प्रत्येक भंड महासुर के प्रति छोड़ा था।१०५।

तदस्त्रदर्पनाशाय वामनाः शतशोऽभवन् ।
महाराज्ञीदक्षहस्तकनिष्ठाग्रान्महौजसः ॥१०६

क्षणे क्षणे वर्धमानाः पाशहस्ता महाबलाः ।
बलींद्रानस्त्रसंभूतान्बध्नंतः पाशबन्धनैः ॥१०७

दक्षहस्तकनिष्ठाग्राज्जाताः कामेशयोषितः ।
महाकाया महोत्साहास्तदस्त्रं समनाशयन् ॥१०८

हैहयास्त्रं समसृजद्भंडदैत्यो रणाजिरे ।
तस्मात्सहस्रशो जाताः सहस्रार्जुनकोटयः ॥१०९

अथ श्रीललितावामहस्तांगुष्ठनखादितः ।
प्रज्वलन्भार्गवो रामः सक्रोधः सिंहनादवान् ॥११०

धारया दारयन्नेतान्कुठारस्य कठोरया ।
सहस्रार्जुनसंख्यातान्क्षणादेव व्यनाशयन् ॥१११

अथ क्रुद्धो भंडदैत्यः क्रोधाद्धुंकारमातनोत् ।
तस्माद्धुंकारतो जातश्चन्द्रहासकृपाणवान् ॥११२

फिर महादेवी के दाहिने हाथ की कनिष्ठिका के नख के अग्रभाग से महान् ओज वाले वामन सैकड़ों ही उसके दर्प के विनाश करने के लिए हुए थे जो छोड़े गये थे ।१०६। एक-एक क्षण में बढ़े हुए—हाथों में पाश लिये हुए महा बलवान् अस्त्र से समुत्पन्न वलीन्द्रों को पाशों बन्धनों से बाँधते हुए थे ।१०७। दाहिने हाथ की कनिष्ठा के अग्रभाग से कामेशयोषित उत्पन्न हुई थीं जिनके विशाल शरीर थे और महान उत्साह था अस्त्र का उन्होंने विनाश कर दिया था ।१०८। भंडदैत्य ने फिर उस संग्राम में हैहयास्त्र छोड़ा था । उससे सहस्रों ही सहस्रार्जुन समुत्पन्न हो गये थे ।१०९। इसके पश्चात् ललिता के अंगुष्ठ के अग्रभाग से क्रोधयुत प्रज्वलित सिंहनाद वाले भार्गव राम प्रकट हुए थे ।११०। उन्होंने कठोर परशु की धार से इन सब सहस्रों सहस्रार्जुनों को विदीर्ण करके एक ही क्षण में विनष्ट कर दिया था ।१११। इसके पश्चात् भंड दैत्य ने क्रोध से हुङ्कार की थी । उस हुङ्कार से चन्द्रहास कृपाणवान् उत्पन्न हो गया था ।११२।

सहस्राऽक्षौहिणीरक्षः सेनया परिवारितः ।
कनिष्ठं कुम्भकर्णं च मेघनादं च नन्दनम् ।
गृहीत्वा शक्तिसैन्यं तद्दतिदूरममर्दयत् ॥११३
अथ श्रीललितावामहस्ततर्जनिकानखात् ।
कोदण्डरामः समभूल्लक्ष्मणेन समन्वितः ॥११४
जटामुकुटवान्वल्लीबद्धतूणीरपृष्ठभूः ।
नीलोत्पलदलश्यामो धनुर्विस्फारयन्मुहुः ॥११५
नाशयामास दिव्यास्त्रैः क्षणाद्राक्षससैनिकम् ।
मर्दयामास पौलस्त्यं कुम्भकर्णं च सोदरम् ।
लक्ष्मणो मेघनादं च महावीरमनाशयत् ॥११६
द्विविदास्त्रं महाभीममसृजद्भंडदानवः ।
तस्मादनेकशो जाताः कपयः पिंगलोचनाः ॥११७
क्रोधेनारक्तताम्रास्याः प्रत्येकं हनुमत्समाः ।

व्यनाशयच्छक्तिसैन्यं क्रूरकेंकारकारिण: ।।११८
अथ श्रीललितावामहस्तमध्यांगुलीनखात् ।
आविर्बभूव तालांक: क्रोधमध्यारुणेक्षण: ।।११९

वह सहस्रों राक्षसों की सेना से घिरा हुआ था। छोटा भाई कुम्भ कर्ण और नन्दन मेघनाद को लेकर उसने शक्तियों की सेना को दूर तक मर्दित कर दिया था ।११३। इसके अनन्तर ललिता देवी के बाँये हाथ की कनिष्ठिका के अग्रभाग से लक्ष्मण के सहित कोदण्डराम उत्पन्न हुए थे ।११४। वह श्रीराम जटा और मुकुट धारी थे जिनके पृष्ठ पर तूणीर था—वे नीलकमल के समान श्याम वर्ण के थे और बार-बार धनुष को विस्फारित कर रहे थे ।११५। उन्होंने एक ही क्षण में दिव्यास्त्रों से राक्षसों की सेना का विनाश कर दिया। कुम्भकर्ण भाई को और पौलस्त्य को मर्दित कर दिया था। लक्ष्मण ने मेघनाद को जो महान वीर था विनष्ट कर दिया था ।११६। भंड ने फिर द्विविदास्त्र को उत्पन्न किया था। उससे अनेक कपिगण पिङ्गलोचनों वाले उत्पन्न हो गये थे ।११७। वे क्रोध से अत्यन्त ताम्रमुखों वाले थे और सभी हनुमान के तुल्य थे। वे क्रूर केङ्कारकारी थे और उन्होंने शक्तियों की सेना का विनाश किया था ।११८। इसके उपरान्त श्री ललिता के बाँये हाथ की मध्यमा के नख से तालाङ्क आविर्भूत हुआ था जो क्रोध से अरुण लोचनों वाला था ।११९।

नीलांबरपिनद्धांग: कैलासाचलनिर्मल: ।
द्विविदास्त्रसमुद्भूतान्कपीन्सर्वान्व्यनाशयत् ।।१२०
राजासुरं नाम महत्ससर्जास्त्रं महाबल: ।
तस्मादस्त्रात्समुद्भूता बहवो नृपदानवा: ।।१२१
शिशुपालो दन्तवक्त्र: शाल्व: काशीपतिस्तथा ।
पौड्रको वासुदेवश्च रुक्मी डिम्भकहंसकौ ।।१२२
शम्बरश्च प्रलंबश्च तथा बाणासुरोऽपि च ।
कंसश्चाणूरमल्लश्च मुष्टिकोत्पलशेखरौ ।।१२३
अरिष्टो धेनुक: केशी कालियो यमलार्जुनौ ।
पूतना शकटश्चैव तृणावर्तादयोऽसुरा: ।।१२४

नरकाख्यो महावीरो विष्णुरूपी मुरासुरः ।
अनेके सह सेनाभिरुत्थिताः शस्त्रपाणयः ।।१२५
तान्विनाशयितुं सर्वान्वासुदेवः सनातनः ।
श्रीदेवीवामहस्ताब्जानामिकानखसंभवः ।।१२६

नीले वस्त्रसे उसका अङ्गपिनद्ध था और कैलासके समज निर्मल था । द्विविदास्त्र से उत्पन्न समस्त कपियों का उसने विनाश कर दिया था ।१२०। उस महा बलवान ने राजासुर नामक महान अस्त्र को छोड़ा था । उस अस्त्र से बहुत से भूत दानव समुत्पन्न हुए थे ।१२१। उनमें शिशुपाल दन्त वक्त्र—शाल्व—काशीपति—पौण्ड्रक—बासुदेव—रुक्मीडिम्भक हंसक थे ।१२२। शम्बर—प्रलम्ब—बाणासुर भी था । कंस—चाणूर मल्ल—मुष्टिक—उत्पल शेखर थे ।१२३। अरिष्ठ—धेनु—ककेशी—कालिय—यमलार्जुन—पूतना—शकर—तृणावर्त्त आदि असुर सभी थे ।१२४। महावीर नरक और विष्णु-रूपी मुर असुर था । ऐसे वहुत से हथियारों को हाथों में लेकर सेनाओं के साथ आविर्भूत हो गये थे ।१२५। उन सबके विनाश करने के लिए श्री देवी के बाँये हाथ की अनामिका के नख से संभूत सनातन वासुदेव प्रकट हुए थे ।१२६।

चतुर्व्यूहं समातेने चत्वारस्ते ततोऽभवन् ।
वासुदेवो द्वितीयस्तु संकर्षण इति स्मृतः ।।१२७
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च ते सर्वे प्रोद्यतायुधाः ।
तानशेषान्दुराचारान्भूमेर्भारप्रवर्तकान् ।।१२८
नाशयामासुरुर्वीशवेषच्छन्नान्महासुरान् ।।१२९
अथ तेषु विनष्टेषु संक्रुद्धो भंडदानवः ।
धर्मविप्लावकं घोरं कल्यस्त्रं सममुञ्चत ।।१३०
ततः कल्यस्त्रतो जाता आंध्राः पुण्ड्राश्च भूमिपाः ।
किराताः शबरा हूणा यबनाः पापवृत्तयः ।।१३१
वेदविप्लावका धर्मद्रोहिणः प्राणिहिंसकाः ।
वर्णाश्रमेषु सांकर्यकारिणो मलिनांगकाः ।

ललिताशक्तिसैन्यानि भूयोभूयो व्यमर्दयन् ॥१३२

अथ श्रीललितावामहस्तपद्मस्य भास्वतः ।
कनिष्ठिकानखोद्भूतः कल्किर्नाम जनार्दनः ॥१३३

वे चारों ने चतुर्व्यूह बनाया था जो फिर हुए थे। उनमें वासुदेव—दूसरे संकर्षण थे ।१२७। तीसरे प्रद्युम्न और चौथे अनिरुद्ध थे। ये सभी आयुधों से समुद्यत थे। इन्होंने उन दुराचारियों को जो भूमि पर भार के प्रवर्त्तक थे ।१२८। वे राजा के रूप में छिपे हुए महासुर थे उन सबका विनाश कर दिया था ।१२९। इन सबके विनष्ट होने पर भण्डासुर बहुत क्रुद्ध हुआ था और फिर उसने धर्म के विप्लावक घोर कलि के अस्त्र को छोड़ा था ।१३०। उससे आन्ध्र और पुण्ड्र राजा उत्पन्न हुए थे। किरात-शवर-हूण और यवन पापवृत्ति वाले उत्पन्न हुए ।१३१। ये सब वेदों के विप्लावक—धर्मद्रोही और प्राणियों के हिंसक थे। इनके अङ्ग मलिन थे तथा वर्णाश्रमों में सांकर्य करने वाले थे। इन्होंने ललिता शक्ति की सेनाओं का बार-बार विमर्दन किया था ।१३२। इसके पश्चात् ललिता के वाम कर कमल से जो प्रज्वलित कनिष्ठका के नख से उत्पन्न कल्कि नामक जनार्दन प्रभु हुए थे ।१३३।

अश्वारूढः प्रदीप्तश्रीरट्टहासं चकार सः ।
तस्यैव ध्वनिना सर्वे वज्रनिष्पेषबन्धुना ॥१३४
किराता मूर्च्छिता नेशुः शक्तयश्चापि हर्षिताः ।
दशावतारनाथास्ते कृत्वेदं कर्म दुष्करम् ॥१३५
ललितां तां नमस्कृत्य बद्धांजलिपुटाः स्थिताः ।
प्रतिकल्पं धर्मरक्षां कर्तुं मत्स्यादिजन्मभिः ।
ललितांबानियुक्तास्ते वैकुण्ठाय प्रतस्थिरे ॥१३६
इत्थं समस्तेष्वस्त्रेषु नाशितेषु दुराशयः ।
महामोहास्त्रमसृजच्छक्तयस्तेन मूर्छिताः ॥१३७
शांभवास्त्रं विसृज्यांबा महामोहास्त्रमक्षिणोत् ।
अस्त्रप्रत्यस्त्रधाराभिरित्थं जाते महाहवे ।
अस्तशैलं गभस्तीशो गन्तुमारभतारुणः ॥१३८

अथ नारायणास्त्रेण सा देवी ललितांबिका ।
सर्वा अक्षौहिणीस्तस्य भस्मसादकरोद्रणे ॥१३६

अथ पाशुपतास्त्रेण दीप्तकालानलत्विषा ।
चत्वारिंशच्चमूनाथान्महाराज्ञी व्यमर्दयत् ॥१४०

यह अश्व पर आरूढ़ थे और इनकी श्री प्रदीप्त थी । इनने अट्टहास किया था । उसकी वज्र के समान ध्वनि से सभी किरात बेहोश हो गये थे ।१३४। सब मूच्छित होकर नष्ट हो गये थे और शक्तियाँ हर्षित हो गयी थीं । दशावतारों के नाथों ने इस दुष्कर कर्म को करके सम्पन्न किया था ।१३५। फिर उस ललिता देवी को नमस्कार करके हाथ जोड़कर उसके आगे स्थित हो गये थे । प्रत्येक कल्प में मत्स्य आदि धर्म की रक्षा करने के लिए ललिताम्बा के द्वारा नियुक्त थे वे फिर वैकुण्ठ को चले गये ।१३६। इस रीति से समस्त अस्त्रों के विनाशित होने पर उस दुराशय ने महामोहास्त्र को छोड़ दिया था जिससे समस्त शक्तियाँ मूच्छित हो गयी थीं ।१३७। जगदम्बा ने शाम्भक अस्त्र को छोड़कर उस महामोहास्त्र को नष्ट कर दिया था । इस तरह से अस्त्रों और प्रत्यस्त्रों की धाराओं से महान युद्ध हुआ था । गभस्तीश अरुण अस्ताचल को जा रहा था । उस समय में ललितादेवी ने अस्त्र का प्रहार किया था ।१३८। उस देवी ललिताम्बा ने नारायणास्त्र से युद्ध में उसकी समस्त अक्षौहिणी सेनाओं को भस्मीभूत कर दिया था ।१३९। इसके अनन्तर दीप्त कालाग्नि के समान कान्ति वाले पाशुपतास्त्र से चालीस सेनानियों को महाराज्ञी ने विमर्दित कर दिया था ।१४०।

अथैकशेषं तं दुष्टं निहताशेषबांधवम् ।
क्रोधेन प्रज्वलंतं च जगद्विप्लवकारिणम् ॥१४१

महासुरं महासत्त्वं भंडं चंडपराक्रमम् ।
महाकामेश्वरास्त्रेण सहस्रादित्यवर्चसा ।
गतासुमकरोन्माता ललिता परमेश्वरी ॥१४२

तदस्त्रज्वालयाक्रान्तं शून्यकं तस्य पट्टनम् ।
सस्त्रीकं च सबालं च सगोष्ठं धनधान्यकम् ॥१४३

निर्दग्धमासीत्सहसा स्थलमात्रमशिष्यत ।
भंडस्य संक्षयेणासीत्त्रैलोक्यं हर्षनर्तितम् ॥१४४
इत्थं विधाय सुरकार्यमनिंद्यशीला श्रीचक्रराज-
रथमंडलमंडनश्रीः ।
कामेश्वरी त्रिजगतां जननी बभासे विद्योतमान-
सैन्यं समस्तमपि सङ्गरकर्मखिन्नं
भंडासुरप्रबलबाणकृशानुतप्तम् ।
अस्तं गते सवितरि प्रथितप्रभावा श्रीदेवता
शिबिरमात्मन आनिनाय ॥१४६
यो भंडदानववधं ललितांबयेमं क्लृप्तं सकृत्पठति
तस्य तपोधनेन्द्र ।
नाशं प्रयांति कदनानि धृताष्टसिद्धेर्भुक्तिश्च
मुक्तिरपि वर्तत एव हस्ते ॥१४७
इमं पवित्रं ललितापराक्रमं समस्तपापघ्नमशेषसिद्धिदम् ।
पठन्ति पुण्येषु दिनेषु ये नरा भजंति ते
भाग्यसमृद्धिमुत्तमाम् ॥१४८

इसके उपरान्त वह दुष्ट एक ही शेष बच गया था और उसके सब बान्धव मर चुके थे। वह भी क्रोध से प्रज्वलित हो रहा था और इस जगत् के विप्लव को करने वाला था।१४१। महान् प्रचण्ड महान् सत्व युक्त उस महासुर को सहस्र सूर्यों के समान वर्चस् वाले महाकामेश्वरास्त्र से परमेश्वरी ललिता ने भंड को गत प्राण कर दिया था।१४२। उसके अस्त्र की ज्वाला से उसका शून्यक नगर भी स्त्रियों—बालों—गोष्ठों और धान्यों के सहित तुरन्त ही निर्दग्ध हो गया था। उस भंडासुर के विनाश से तीनों लोक हर्षित हुए थे।१४३-१४४। इस प्रकार से अनिन्द्यशील वाली देवी देवों के कार्य को करके श्रीचक्रराज रथ के मंडल की श्री वह तीनों जगतों की जननी वह कामेश्वरी विजय श्री से सुसम्पन्न विद्योतमान वैभव वाली शोभित हुई थी।१४५। समस्त सेना भी युद्ध कर्म में खिन्न हो गयी थी और

भंडासुर के प्रबल बाणों की अग्नि से संतप्त हो गयी थी। सूर्य के अस्त होने पर प्रथित प्रभाव वाली उसने जो श्री देवता थी अपने शिविर में बुला लिया था।१४६। हे तपोधनेन्द्र ! जो भी कोई पुरुष ललिताम्बा के द्वारा किये गये इस भंडासुर के वध को एक बार भी पढ़ता है उसके सब दुःख विनष्ट हो जाते हैं और उसको आठ सिद्धियों की प्राप्ति होती है तथा भुक्ति और मुक्ति दोनों ही उसके हाथ में होती है।१४७। यह पवित्र ललिता का पराक्रम समस्त पापों का नाशक और अशेष सिद्धियों का दाता है। जो मनुष्य पुण्य दिनों में इसको पढ़ते हैं वे उत्तम भाग्य की समृद्धि को प्राप्त किया करते हैं।१४८।

।। मदन पुनर्भव वर्णन ।।

अगस्त्य उवाच–

अश्वानन महाप्राज्ञ श्रुतमाख्यानमुत्तमम् ।
विक्रमो ललितादेव्या विशिष्टो वर्णितस्त्वया ।।१
चरितैरनघैर्देव्याः सुप्रीतोऽस्मि हयानन ।
श्रुता सा महती शक्तिर्मंत्रिणीदण्डनाथयोः ।।२
पश्चात्किमकरोत्तत्र युद्धानंतरमंबिका ।
चतुर्थदिनशर्वर्यां विभातायां हयानन ।।३

हयग्रीव उवाच–

शृणु कुम्भज तत्प्राज्ञ यत्तया जगदम्बया ।
पश्चादाचरितं कर्म निहते भंडदानवे ।।४
शक्तीनामखिलं सैन्यं दैत्यायुधशतार्दितम् ।
मुहुराह्लादयामास लोचनैरमृताप्लुतैः ।।५
ललितापरमेशान्याः कटाक्षामृतधारया ।
जुहुयुर्द्धपरिश्रांति शक्तयः प्रीतिमानसा ।।६
अस्मिन्नवसरे देवा भंडमर्दनतोषिताः ।
सर्वेऽपि सेवितुं प्राप्ता ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।।७

अगस्त्यजी ने कहा—हे महान् प्राज्ञ ! हे अश्वानन ! आपने यह उत्तम आख्यान सुन लिया है । आपने जो ललिता देवी के विक्रम को विशेषता से युक्त वर्णन किया है ।१। हे हयानन ! देवी के अनघ चरितों से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ और मैंने मन्त्रिणी और दंडिनी की भी बड़ी भारी शक्ति का श्रवण किया है ।२। उस युद्ध के अनन्तर उस अम्बिका ने क्या किया था । हे हयानन ! चौथे दिन की शर्वरी में विभात में क्या किया गया था ।३। हयग्रीव जी ने कहा—हे प्राज्ञ कुम्भज ! आप अब वही सुनिए जो भंडासुर के मरने पर जगदम्बा ने किया था ।४। शक्तियों की सम्पूर्ण सेना को जो दैत्यों के आयुधों से अर्दित हो गयी थी अपने अमृत से प्लुत लोचनों के द्वारा पुनः आह्लादित किया था ।५। परमेशानी ललिता देवी के कटाक्षों की अमृत धारा से शक्तियों ने युद्ध की श्रान्ति का त्याग कर दिया था और वे प्रसन्न मानस वाली हो गयी थीं ।६। इस अवसर में देवगण भंडासुर के मर्दन से प्रसन्न हुए थे । वे सभी जिनमें ब्रह्मा-विष्णु अगुआ थे उस देवी की सेवा करने के लिए समागत हो गये थे ।७।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्राद्यास्त्रिदशास्तथा ।
आदित्य वसवो रुद्रा मरुतः साध्यदेवताः ॥८
सिद्धाः किंपुरुषा यक्षा निर्ऋत्याद्या निशाचराः ।
प्रह्लादाद्या महादैत्याः सर्वेऽप्यंडनिवासिनः ॥९
आगत्य तुष्टुवुः प्रीत्या सिंहासनमहेश्वरीम् ॥१०

ब्रह्माद्या ऊचुः—

नमोनमस्ते जगदेकनाथे नमोनमः श्रीत्रिपुराभिधाने ।
नमोनमो भंडमहासुरघ्ने नमोऽस्तु कामेश्वरि वामकेशि ॥११
चिंतामणें चिंतितदानदक्षेऽचिन्त्ये चिराकारतरंगमाले ।
चित्राम्बरे चित्रजगत्प्रसूते चित्राख्यनित्ये सुखदे नमस्ते ॥१२
मोक्षप्रदे मुग्धशशांकचूडे मुग्धस्मिते मोहनभेददक्षे ।
मुद्रेश्वरीचर्चितराजतन्त्रे मुद्राप्रिये देवि नमोनमस्ते ॥१३

क्रूरांतकध्वंसिनि कोमलांगे कोपेषु कालीं तनुमादधाने ।
क्रोडानने पालितसैन्यचक्रे क्रोडीकृताशेषभये नमस्ते ॥१४

ब्रह्मा—विष्णु—रुद्र—शक्रादि सब देवगण—आदित्य—वसुगण—मरुद्गण—साध्य देवता—सिद्ध—किम्पुरुष—यक्ष—निर्ऋति आदि निशाचर—प्रह्लाद आदि महादैत्य—सभी अंड में निवास करने वाले वहाँ आकर उपस्थित हुए थे और उन्होंने प्रसन्नता से सिंहासनेश्वरी की स्तुति की थी ।८-१०। ब्रह्मादिक ने कहा—हे इस जगत की एक मात्र स्वामिनि ! आपको बारम्बार नमस्कार है । हे श्री त्रिपुराभिधाने ! आपको नमस्कार अनेक बार है । हे महान भंडासुर के हनन करने वाली ! हे कामेश्वरि ! हे वामकेशि ! आपकी सेवा में अनेकशः प्रणाम समर्पित हैं ।११। हे चिराकार तरङ्गमाले ! आप तो अचिन्तनीय हैं—आप चिन्तामणि के ही समान हैं तथा जो भी प्राणियों का चिन्तित होता है उसके प्रदान करने में दक्ष हैं । हे चित्राम्बदे ! हे चित्र जगत् प्रसूते ! हे चित्राख्य नित्ये ! आप सुखों के देने वाली है । आपको बारम्बार नमस्कार है ।१२। आप मोक्ष देने वाली हैं—मुग्धशशाङ्क चूडे ! आपका स्मित मोहन करने वाला है और आप मोहन करने वाला है और आप मोहन करने में परम दक्ष हैं । हे मुद्रेश्वरी निन्दित राजतन्त्रे ! आप मुद्राप्रिया हैं । हे देवि ! आपको अनेक बार प्रणाम हैं ।१३। हे कोमलाङ्गे ! आप तो क्रुर अन्तक के ध्वंस करने वाली हैं । आप कोप के अवसरों पर काली का विग्रह धारण कर लेती हैं । आप कोप के अवसरों पर कालो का पालन किया है । हे क्रोड़ी-कृताशेष भये । आपको मेरा नमस्कार है ।१४।

षडंगदेवीपरिवारकृष्णे षडंगयुक्तश्रुतिवाक्यमृग्ये ।
षट्चक्रसंस्थे च षडूर्मियुक्ते षड्भावरूपे ललिते नमस्ते ॥१५
कामे शिवे मुख्यसमस्तनित्ये कांतासनान्ते कमलायताक्षि ।
कामप्रदे कामिनि कामशंभोः काम्ये
कलानामधिपे नमस्ते ॥१६
दिव्यौषधाद्ये नगरौघरूपे दिव्ये दिनाधीशसहस्रकांते ।
देदीप्यमाने दयया सनाथे देवाधिदेवप्रमदे नमस्ते ॥१७
सदाणिमाद्यष्टकसेवनीये सदाशिवात्मोज्ज्वलमञ्चवासे ।

भव्ये सदेकालयपादपूज्ये सावित्रि लोकस्य नमोनमस्ते ॥१८
ब्राह्मीमुखैर्मातृगणैर्निषेव्ये ब्रह्मप्रिये ब्राह्मणबन्धभेत्रि ।
ब्रह्मामृतस्रोतसि राजहंसि ब्रह्मेश्वरि श्रीललिते नमस्ते ॥१६
संक्षोभिणीमुख्यसमस्तमुद्रासंसेविते संसरणप्रहंत्रि ।
संसारलीलाकृतिसारसाक्षि सदा नमस्ते ललितेऽधिनाथे ।
नित्य कलाषोडशकेन नामाकर्षिण्यधीशि प्रमथेन सेव्ये ॥२०
नित्ये निरातंकदयाप्रपंचे नीलालकश्रेणि नमोनमस्ते ।
अनंगपुष्पादिभिरुन्नदाभिरनंगदेवीभिरजस्रसेव्ये ।
अभव्यहंव्यक्षरराशिरूपे हतारिवर्गे ललिते नमस्ते ॥२१

हे ललिते ! आप षडंगदेवी परिवार कृष्णा है । हे षडंगयुक्त श्रुति वाक्यों के द्वारा आप षट्चक्र में विराजमाना हैं । हे षड्मियुक्ते ! आप षड्भाव रूपों वाली हैं । आपको हम सबका प्रणाम हैं ।१५। हे मुख्ये समस्त नित्ये ! हे कामे ! हे शिवे ! हे कान्तासनान्ते ! आपके नेत्र कमलों के समान हैं । आप कामनाओं के देने वाली हैं । हे कामिनि ! आप कामशम्भु की काम्य हैं । हे कलाओं की स्वामिनि ! आपको नमस्कार है ।१६। हे दिव्यौषधाद्ये ! आप नगरीष रूप वाली हैं । हे दिव्ये ! आप दिनाधीश सहस्रों के समान कान्ति वाली हैं । हे सनाथे ! आप दया से देदीप्यमाना है । हे देवाधिदेव शम्भु की प्रमदे ! आपको हम सबका प्रणाम निवेदित है ।१७। हे सावित्री ! आप सर्वदा अणिमादिक आठों सिद्धियों के द्वारा सेवा करने के योग्य हैं आप सदा शिव के आत्मोज्ज्वल मञ्च पर निवास किया करती है । हे सदेकालय पादपूज्ये ! हे भव्ये ! आप लोक को रक्षिका है । आप लोक की रक्षिका हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है ।१८। ब्राह्मी जिनमें प्रमुख हैं ऐसी मातृ गणों के द्वारा आप सेव्य हैं । आप ब्रह्म प्रिया हैं । हे ब्राह्मण बन्धभेत्रि ! आप तो ब्रह्मामृत की स्रोत हैं । हे राजहंसि ! आप ब्रह्मेश्वरी हैं । हे श्री ललिते ! आपको हमारा प्रणाम है ।१६। संक्षोभिणी जिनमें प्रधान है उन समस्त मुद्राओं के द्वारा संसेवित आप हैं और संसरण का प्रहनन करने वाली हैं । हे संसार लीला कृतिसार साक्षि ! हे संसार लीला कृतिसार साक्षि ! हे अधिनाथे ! ललिते ! आपको हमारा नमस्कार है । हे अधीशि ! आप नित्या हैं और षोडश कला से आकर्षण

करने वाली हैं तथा प्रमथ के द्वारा सेवन करने के योग्य हैं ।२०। हे नित्ये ! आपकी दया का प्रपञ्च निरांतक है । आपके नीले अलकों की श्रेणियाँ हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है । अनंग पुष्पादि एवं उन्नदा अनंग देवियों के द्वारा आप निरन्तर सेवन के योग्य रहती हैं । हे अभव हन्त्रि ! हे अक्षर-राशि रूपे ! आपने समस्त शत्रुओं को निहत कर दिया है । हे ललिते ! आपको हमारा नमस्कार है ।२१।

संक्षोभिणीमुख्यचतुर्दशार्चिर्मालावृतोदारमहाप्रदीप्ते ।
आत्मानमाबिभ्रति विभ्रमाढ्ये शुभ्राश्रये
शुभ्रपदे नमस्ते ।।२२
सशर्वसिद्धादिकशक्तिवन्द्ये सर्वज्ञविज्ञातपदारविंदे ।
सर्वाधिके सर्वगते समस्तसिद्धिप्रदे श्रीललिते नमस्ते ।।२३
सर्वज्ञजातप्रथमाभिरन्यदेवीभिरप्याश्रितचक्रभूमे ।
सर्वामराकांक्षितपूरयित्रि सर्वस्य लोकस्य सवित्रि पाहि ।।२४
वन्दे वशिन्यादिकवाग्विभूते वर्द्धिष्णुचक्रद्युतिवाहवाहे ।
बलाहकश्यामकचे वचोऽब्धे वरप्रदे सुन्दरि पाहि
विश्वम् ।।२५
बाणादिदिव्यायुधसार्वभौमे भंडासुरानीकवनांतदावे ।
अत्युग्रतेजोज्ज्वलितांबुराशे प्रसेव्यमाने परितो नमस्ते ।।२६
कामेशि वज्रेशि भगेश्य रूपे कन्ये कले कालविलोपदक्षे ।
कथाविशेषीकृतदैत्यसैन्ये कामेशयांते कमले नमस्ते ।।२७
बिन्दुस्थिते बिन्दुकलैकरूपे बिंद्वात्मिके बृंहितचित्प्रकाशे ।
बृहत्कुचांभोजबिलोलहारे बृहत्प्रभावे ललिते नमस्ते ।।२८

आप संक्षोभिणी प्रभृति जिनमें मुख्य हैं ऐसी अर्चि मालाओं से समावृत उदार महान प्रदीप्त वाली हैं हे विभ्रमाढ्ये ! आप आत्मा को आबिभरण करती हैं । आपका शुभ्र आश्रय है । हे शुभ्रपदे ! आपको नमस्कार है ।२२। शम्भु के सहित सिद्ध आदि शक्तियों से आप वन्द्यमान हैं । आपका चरण कमल सर्वज्ञ के द्वारा ही विज्ञात है । आप सबसे बड़ी हैं—आप सबमें विद्यमान हैं और आप सब सिद्धियों के प्रदान करने वाली हैं । हे श्री

ललिते ! आपको प्रणाम है ।२३। आप सर्वत्र से समुत्पन्न प्रथम देवियों के द्वारा आश्रित चक्रभूमि वाली हैं । और सब देवों के मनोरथों को पूर्ण करने वाली हैं । आप सम्पूर्ण लोक की माता हैं । हमारी रक्षा कीजिए ।२४। हे वाशिनी आदि वाग्विभूते ! आप वर्धिष्णु चक्र की वाह वाह हैं । आपके केश वलाहक की द्युति वाले हैं । आप वचनों की सागर हैं । आप वरदान देने वाली हैं । हे सुन्दरि ! आप इस विश्व की रक्षा करें ।२५। बाण के आदि विशेष आयुधों की साम्राज्ञी हैं । आप भंडासुर की सेना के वन लिये दावाग्नि हैं । आप अतीव उग्र तेज से अम्बुराभि को भी ज्वलित करने वाली हैं । आप प्रसंख्यमाना हैं । आपकी सभी ओर से प्रणाम है ।२६। हे कामेशि ! वज्रेशि ! हे भगेशि ! आप रूप रहित हैं । हे कन्ये ! हे कले ! आप काल के विलोप करने में परम दक्ष हैं । आपने दैत्यों की सेनाओं को पूर्णतया समाप्त कर दिया है और अब उनकी केवल कथा ही शेष है । कामेशयान्ते ! हे कमले ! आपको नमस्कार है ।२७। आप बिन्दु में ही संस्थित हैं और आपका रूप बिन्दु कला ही एक है । आप बिन्दु के स्वरूप वाली हैं और आपने ज्ञान के बड़े प्रकाश को किया है । आपके बड़े कुचों पर हार विलुलित हो रहा है । आपका प्रभाव बृहत् है । हे ललिते ! आपको हम सबका नमस्कार है ।२८।

कामेश्वरोत्संगसदानिवासे कालात्मिके देवि कृतानुकम्पे ।
कल्पावसानोत्थितकालिरूपे कामप्रदे कल्पलते नमस्ते ॥२६

सवारुणे सांद्रसुधांशुशीते सारंगशावाक्षि सरोजवक्त्रे ।
सारस्य सारस्य सदैकभूमे समस्तविद्येश्वरि संनतिस्ते ॥३०

तव प्रभावेण चिदग्निजायां श्रीशम्भुनाथप्रकटीकृतायाः ।
भंडासुराद्याः समरे प्रचंडा हता जगत्कंटकतां प्रयाताः ॥३१

नव्यानि सर्वाणि वपूंषि कृत्वा हि सांद्रकारुण्यसुधाप्लवैर्न्नः ।
त्वया समस्तं भुवनं सहर्षं सुजीवितं सुन्दरि सभ्यलभ्ये ॥३२

श्रीशम्भुनाथस्य महाशयस्य द्वितीयतेजः प्रसरात्मके यः ।
स्थाण्वाश्रमे क्लृप्ततया विरक्तः सतीवियोगेन
विरस्तभोगः ॥३३

तेनाद्रिवंशे धृतमन्मलाभां कन्यामुमां योजयितुं प्रवृत्ताः ।
एवं स्मरं प्रेरितवंत एव तस्यांतिकं घोरतपः स्थितस्य ॥३४

तेनाथ वैराग्यतपोविघातक्रोधेन लालाटकृशानुदग्धः ।
भस्मावशेषो मदनस्ततोऽभूत्तो हि भंडासुर एष जातः ॥३५

आप कामेश्वर की गोद में ही सदा निवास किया करती हैं और आपका काल ही स्वरूप है । हे देवि ! आपने बड़ी अनुकम्पा की है । आप कल्प के अन्त में उठी हुई काली के स्वरूप वाली हैं । आप कामनाओं के देने वाली हैं और आप साक्षात् कल्पलता हैं । आपको नमस्कार है । आप सवारुणा हैं और सान्द्रशीतांशु के समान शीतल हैं । आपके नेत्र हरिण के बच्चे के तुल्य हैं और आपका मुख कमल जैसा है । आप सार के भी सार की सदा एक भूमि है । आप समस्त विद्याओं की स्वामिनी हैं । आपको हमारा प्रणिपात है ।२९-३०। आपके प्रभाव से श्री शम्भुनाथ के द्वारा प्रकटित अग्निजा में चित् है । समर में महान प्रचण्ड भंडासुर प्रभृति सब जो जगत के कंटक थे, मारे गये हैं ।३१। सब शरीरों को नवीन करके हमको स्वस्थ बना दिया है और आपने सान्द्र करुणा की सुधा से ही कर दिया था । आपने समस्त भुवन को हर्ष के साथ जीवित कर दिया है । हे सभ्यलभ्ये ! आप तो परम सुन्दरी है ।३२। महान् आशय वाले श्री शम्भु के आप द्वितीय तेज के प्रसर के स्वरूप वाली हैं । जो स्थाणु के आश्रम से क्लृप्तता से विरक्त सती के वियोग से विरस्त भोग वाला है ।३३। इससे आद्रि के वंश में जन्म का लाभ प्राप्त करने वाली कन्या उमा को योजित करने के लिए सब प्रवृत्त हुए थे । घोर तपस्या में वर्त्तमान उनके समीप में कामदेव को भेजने की प्रेरणा की थी ।३४। उन्होंने वैराग्य से किये जाने वाले तप के विघात से जो क्रोध हुआ था उससे वह कामदेव ललाट की अग्नि से दग्ध कर दिया था । फिर मदन भस्म मात्र रह गया था । वही मदन फिर भंडासुर होकर उत्पन्न हुआ था ।३५।

ततो वधस्तस्य दुराशयस्य कृतो भवत्या रणदुर्मदस्य ।
अथास्मदर्थे त्वतनुस्समजातस्त्वं कामसंजीवनमाशु कुर्याः ॥३६

इयं रतिर्भर्तृवियोगखिन्ना वैधव्यमत्यंतमभव्यमाप ।
पुनस्त्वदुत्पादितकामसंगाद्भविष्यति श्रीललिते सनाथा ॥३७

तया तु दृष्टेन मनोभवेन संमोहितः पूर्ववदिंदुमौलिः ।
चिरं कृतात्यंतमहासपर्यां तां पार्वतीं द्राक्परिणेष्यतीशः ॥३८

तयोश्च संगाद्भविता कुमारः समस्तगीर्वाणचमूविनेता ।
तेनैव वीरेण रणे निरस्य स तारको नाम सुरारिराजः ॥३९

यो भंडदैत्यस्य दुराशयस्य मित्रं स लोकत्रयधूमकेतुः ।
श्रीकण्ठपुत्रेण रणे हतश्चेत्प्राणप्रष्ठिैव तदा भवेन्नः ॥४०

तस्मात्त्वमंब त्रिपुरे जनानां मानापहं मन्मथवीरवर्यम् ।
उत्पाद्य रत्या विधवात्वदुःखमपाकुरु व्याकुलकुन्तलायाः॥४१

एषा त्वनाथा भवतीं प्रपन्ना भर्तृप्रणाशेन कृशांगयष्टिः ।
नमस्करोति त्रिपुराभिधाने तदत्र कारुण्यकलां विधेहि ॥४२

इसके अनन्तर आपने दुराशय का जो रण में बहुत ही दुर्मद था वध किया था और हम लोगों के लिए वह बिना शरीर वाला हो गया है । उस कामदेव के संजीवन को आप शीघ्र ही कर दीजिए ।३६। यह रति बिचारी अपने स्वामी के वियोग से बहुत ही खिन्न है । उसको अत्यन्त बुरा वैधव्य प्राप्त हो गया है । हे श्रीललिते ! फिर आपके द्वारा उत्पन्न किये गये कामदेव के सङ्ग से वह सनाथा होगी ।३७। उसी भाँति उस दुष्ट कामदेव ने फिर इन्दुमौलि को पूर्व की ही भाँति संमोहित किया है वह ईश चिरकाल पर्यन्त अर्चना करने वाली उस पार्वती के साथ शीघ्र ही विवाह करेंगे ।३८। उन दोनों (पार्वती-शिव) के संयोग से कुमार उत्पन्न होगा जो समस्त देवगणों की सेना का सेनानी होगा । उस ही वीर के द्वारा रण में असुरों का राजा वह तारक पराजित किया गया ।३९। वह तीनों लोकों का धूमकेतु परम दुष्ट भंडासुर का मित्र था । वह रण में श्रीकण्ठ के पुत्र के द्वारा ही मारा गया था । उसी समय में हमारे प्राणों की प्रतिष्ठा हुई थी ।४०। इस कारण से हे अम्ब ! हे त्रिपुरे ! जनों के मान के अपहर्त्ता वीरवर कामदेव को उत्पन्न करके विचारी उस व्याकुल कुन्तला रति के विधवापने को आप दूर कर दीजिए ।४१। यह बिचारी अनाथ है और अपने भर्त्ता के प्रणाश होने से अत्यन्त कृश अङ्गों वाली आपकी शरणागति में प्राप्त हुई है । हे त्रिपुराभिधाने ! यह आपको नमस्कार करती है । अतएव इस बिचारी पर आप करुणा करिए ।४२।

हयग्रीव उवाच—

इति स्तुत्वा महेशानीं ब्रह्माद्या विबुधोत्तमाः ।
तां रतिं दर्शयमासुर्मलिनां शोककर्शिताम् ॥४३
सा पर्यश्रुमुखी कीर्णकुन्तला धूलिधूसरा ।
ननाम जगदम्बां वै वैधव्यत्यक्तभूषणा ॥४४
अथ तद्दर्शनोत्पन्नकारुण्या परमेश्वरी ।
ततः कटाक्षादुत्पन्नः स्मयमानमुखांबुजः ॥४५
पूर्वदेहाधिकरुचिर्मन्मथो मदमेदुरः ।
द्विभुजः सर्वभूषाढ्यः पुष्पेषुः पुष्पकार्मुकः ॥४६
आनन्दयन्कटाक्षेण पूर्वजन्मप्रियां रतिम् ।
अथ सापि रतिर्देवी महत्यानन्दसागरे ।
मज्जन्ती निजभर्तारमवलोक्य मुदं गता ॥४७
आनंदितांतरात्मानौ भक्तिनिर्भरमानसौ ।
ज्ञात्वाथ तौ महाराज्ञी मन्दस्मितमुखांबुजा ।
व्रीडानतां रतिं वीक्ष्य श्यामलामिदमब्रवीत् ॥४८
श्यामले स्नपयित्वैनां वस्त्रकांच्यादिभूषणैः ।
अलंकृत्य यथापूर्वं शीघ्रमानीयतामिह ॥४९

हयग्रीवजी ने कहा—उत्तम देव ब्रह्मा आदि ने इस रीति से उस ईशानी की स्तुति की थी और उस रति को बहुत ही मलिन और शोक से कर्शित थी दिखा दिया था ।४३। वह मुख पर आँसू फैलाती हुई बिखरे हुए केशों वाली और धूलि से धूसर और विधवा होने के कारण भूषणों को त्याग देने वाली उस रति ने उस जगदम्बा की सेवा में प्रणाम किया था ।४४। इसके अनन्तर उस बिचारी वैधव्य को प्राप्त हुई रति को ओर देखकर जगदम्बा के हृदय में करुणा उत्पन्न हो गयी थी और उस परमेश्वरी के कटाक्ष से मुस्कराते हुए मुख वाला कामदेव समुत्पन्न हो गया था ।४५। उसके देह की कान्ति पूर्व के देह से भी अधिक थी और वह मद से मेदुर हो गया था। उसकी दो बाहू थीं—वह समस्त भूषणों से सम्पन्न था और पुष्पों के बाणों वाला तथा कुसुमों के धनुष वाला था ।४६। पूर्वजन्म की प्रिया

रति को कटाक्ष के द्वारा आनन्दित कर रहा था। वह रति भी महान आनन्द के सागर में मग्न होकर अपने स्वामी को देखती हुई आनन्द को प्राप्त हुई थी।४७। महाराज्ञी उन दोनों रति और कामदेव को भक्ति से निर्भर मानस वाले तथा परम प्रसन्न अन्तरात्मा वाले देखकर मन्दस्मित मुखकमल वाली हुई थी और लज्जा से नम्रमुखी उस रति को देखकर श्यामला से यह बोली थी।४८। हे श्यामले! इसको स्नान कराकर वस्त्रों और कांची आदि भूषणों से भूषित करके पूर्व की ही भाँति शीघ्र यहाँ लाओ।४९।

तदाज्ञां शिरसा धृत्वा श्यामा सर्वं तथाकरोत्।
ब्रह्मर्षिभिर्वसिष्ठाद्यैर्वैवाहिकविधानतः ॥५०
कारयामास दम्पत्योः पाणिग्रहणमंगलम्।
अप्सरोभिश्च सर्वाभिर्नृत्यगीतादिसंयुतम् ॥५१
एतद्दृष्ट्वा महेन्द्राद्या ऋषयश्च तपोधनाः।
साधुसाध्विति शंसंतस्तुष्टुवुर्ललितांबिकाम् ॥५२
पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्तः सर्वे सन्तुष्टमानसाः।
बभूवुस्तौ महाभक्त्या प्रणम्य ललितेश्वरीम् ॥५३
तत्पार्श्वे तु समागत्य बद्धांजलिपुटौ स्थितौ।
अथ कंदर्पवीरोऽपि नमस्कृत्य महेश्वरीम्।
व्यज्ञापयदिदं वाक्यं भक्तिनिर्भरमानसः ॥५४
यद्दग्धमीशनेत्रेण वपुर्मे ललितांबिके।
तत्त्वदीयकटाक्षस्य प्रसादात्पुनरागतम् ॥५५
तव पुत्रोऽस्मि दासोऽस्मि क्वापि कृत्ये नियुंक्ष्व माम्।
इत्युक्ता परमेशानी तमाह मकरध्वजम् ॥५६

उस महाराज्ञी की आज्ञा को शिर पर धारण करके उस श्यामला ने सब कुछ वैसा ही कर दिया था। वसिष्ठ आदि ब्रह्मर्षियों के द्वारा वैवाहिक विधान किया गया था।५०। उन दम्पतियों का पाणिग्रहण का मङ्गल किया गया जो सभी अप्सराओं के द्वारा नृत्य और गीत आदि से समन्वित था।५१। यह सब कुछ देखकर महेन्द्र आदि देवगण तथा तपोधन ऋषियों ने

अच्छा हुआ–अच्छा हुआ --यह कहकर ललिताम्बा की स्तुति की थी ।५२। सबने परम सन्तुष्ट होते हुए नभो मंडल से पुष्पों की वर्षा थी । वे दोनों भी बहुत प्रसन्न हुए थे और उन्होंने महा भक्ति से ललितेश्वरी को प्रणाम किया था ।५३। वे दोनों-ललितेश्वरी के समीप में समागत होकर दोनों हाथों को जोड़कर समीप में स्थित हो गये थे ? इसके अनन्तर कामदेव भी महेश्वरी को प्रणाम करके भक्ति भाव से परिपूर्ण मन वाला होकर इस वाक्य को बोला था ।५४। हे ललिताम्बिके ! शम्भु के नेत्र से जो मेरा शरीर दग्ध हो गया था वह आपके कृपा कटाक्ष से पुनः प्राप्त हो गया है ।५५। मैं आपका ही पुत्र हूँ । किसी भी सेवा में मुझे नियुक्त कीजिए । इस प्रकार से जब परमेशानी से कहा गया था तो उस देवी ने कामदेव से कहा था ।५६।

श्रीदेव्युवाच--

वत्सागच्छ मनोजन्मन्न भयं तव विद्यते ।
मत्प्रसादाज्जगत्सर्वं मोहयाव्याहताशुग ॥५७
तद्बाणपातनाज्जातधैर्यविप्लव ईश्वरः ।
पर्वतस्य सुतां गौरीं परिणेष्यति सत्वरम् ॥५८
सहस्रकोटयः कामा मत्प्रसादात्त्वदुद्भवाः ।
सर्वेषां देहमाविश्य दास्यंति रतिमुत्तमाम् ॥५९
मत्प्रसादेन वैराग्यात्संक्रुद्धोऽपि स ईश्वरः ।
देहदाहं विधातुं ते न समर्थो भविष्यति ॥६०
अदृश्यमूर्तिः सर्वेषां प्राणिनां भवमोहनः ।
स्वभार्याविरह शंकी देहस्यार्द्धं प्रदास्यति ।
प्रयातोऽसौ कातरात्मा त्वद्बाणाहतमानसः ॥६१
अद्य प्रभृति कन्दर्प मत्प्रसादान्महीयसः ।
त्वन्निन्दां ये करिष्यन्ति त्वयि वा विमुखाशयाः ।
अवश्यं क्लीबतैव स्यात्तेषां जन्मनिजन्मनि ॥६२
ये पापिष्ठा दुरात्मानो मद्भक्तद्रोहिणश्च हि ।
तानगम्यासु नारीषु पाययित्वा विनाशय ॥६३

श्री देवी ने कहा—हे वत्स ! आओ, हे मनोजजन्मन् आपको अब कुछ भी कहीं पर भय नहीं है। हे अव्याहत बाणों वाले ! मेरे प्रसाद से आप सम्पूर्ण जगत को मोहित करो।५७। तुम्हारे बाणों के पातन से धैर्य के विप्लव होने से शम्भु पर्वत हिमवान् की सुता पार्वती को शीघ्र ही ब्याह लेंगे।५८। मेरे प्रसाद से तुमसे समुत्पन्न सहस्रों करोड़ कामदेव सबके देहों में प्रवेश करके उत्तम रति को देंगे।५९। मेरे प्रसाद से क्रुद्ध भी भगवान शम्भु जिनको कि वैराग्य हो गया है तुम्हारे देह को दग्ध करने में समर्थ नहीं होंगे।६०। भव को मोहित करने वाला कामदेव सब प्राणियों में अदृश्य मूर्त्ति वाला होकर रहेगा। अपनी भार्या के विरह की आशंका वाला देह के आधे भाग को दे देता। तुम्हारे बाण से आहत मानस वाले यह कातरात्मा होकर प्रयाण कर गये हैं।६१। आज से लेकर हे कन्दर्प ! महान् मेरे प्रसाद से जो तेरी निन्दा करेंगे अथवा तुझसे विमुख विचार वाले होंगे उनको अवश्य ही नपुंसकता जन्म-जन्मों में हो जायगी।६२। जो पापिष्ठ हैं और मेरे भक्तों के द्रोही हैं उनको अगम्या अर्थात् न गमन करने के योग्य नारियों में गिराकर विनाश करदो।६३।

येषां मदीयपूजासु मद्भक्तेष्वादृतं मनः।
तेषां कामसुखं सर्वं संपादय समीप्सितम् ॥६४

इति श्रीललितादेव्या कृताज्ञावचनं स्मरः।
तथेति शिरसा बिभ्रत्सांजलिर्निर्ययौ ततः ॥६५

तस्यानंगस्य सर्वेभ्यो रोमकूपेभ्य उत्थिताः।
बहवः शोभनाकारा मदना विश्वमोहनाः ॥६६

तैर्विमोह्य समस्तं च जगच्चक्रं मनोभवः।
पुनः स्थाण्वाश्रमं प्राप चन्द्रमौलेर्जिगीषया ॥६७

वसंतेन च मित्रेण सेनान्या शीतरोचिषा।
रागेण पीठमर्देन मन्दानिलरयेण च ॥६८

पुंस्कोकिलगलस्वानकाकलीभिश्च संयुतः।
शृङ्गारवीरसंपन्नो रत्यालिंगितविग्रहः ॥६९

जैत्रं शरासनं धुन्वन्प्रवीराणां पुरोगमः।
मदनारेरभिमुखं प्राप्य निर्भय आस्थितः ॥७०

जिनके हृदय मेरी पूजा में और मेरे भक्तों में आदर करने वाले हैं उनको समस्त कार्य का सुख दो और उनका अभीष्ट पूर्ण कर दो ।६४। कामदेव ने इस श्री ललितादेवी के आज्ञा वचन को शिर से ग्रहण करके फिर हाथों को जोड़े हुए वह कामदेव वहाँ से निकल कर चला गया था ।६५। उस कामदेव के समस्त रोमों के छिद्रों से उठे हुए बहुत से परम शोभन आकार वाले कामदेव सम्पूर्ण विश्व को मोहन करने वाले थे ।६६। कामदेव ने उन बहुत से अनङ्गों के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत के मंडल को मोहित कर दिया था और फिर भगवान् शम्भु पर विजय पाने की इच्छा से स्थाणु के आश्रय में प्राप्त हो गया था ।६७। अपने मित्र बसन्त के साथ तथा सेनानी शीतांशु के सहित पीठमर्द राग से संयुत एवं मन्द वायु के सहित और पुंस्कोकिल के निकले हुए शब्द की काकलियों से समन्वित-शृङ्गार वीर सम्पन्न रति से आलिङ्गित वपु वाला कामदेव जयशील धनुष को हिलाता हुआ प्रवीरों का अग्रगामी होकर मदन के अरि शिव के समक्ष में पहुँचकर निडर होकर समास्थित हो गया था ।६८-७०।

तपोनिष्ठं चन्द्रचूडं ताडयामास सायकैः ।
अथ कन्दर्पबाणौघैस्ताडितश्चन्द्रशेखरः ।
दूरीचकार वैराग्यं तपस्तत्त्याज दुष्करम् ॥७१
नियमानखिलांस्त्यक्त्वा त्यक्तधैर्यः शिवः कृतः ।
तामेव पार्वतीं ध्यात्वा भूयोभूयः स्मरातुरः ॥७२
निशश्वास बहुञ्शर्वः पांडुरं गण्डमंडलम् ।
बाष्पायमाणो विरही संतप्तो धैर्यविप्लवात् ।
भूयोभूयो गिरिसुतां पूर्वदृष्टामनुस्मरन् ॥७३
अनंगबाणदहनैस्तप्यमानस्य शूलिनः ।
न चन्द्ररेखा नो गङ्गा देहतापच्छिदेऽभवत् ॥७४
नन्दिभृंगिमहाकालप्रमुखैर्गणमंडलैः ।
आहूते पुष्पशयने विलुलोठ मुहुर्मुहुः ॥७५
नन्दिनो हस्तमालंब्य पुष्पतल्पान्तरात्पुनः ।
पुष्पतल्पान्तरं गत्वा व्यचेष्टत मुहुर्मुहुः ॥७६

न पुष्पशयनेनेन्दुखण्डनिर्गलितामृते ।
न हिमानोपयसि वा निवृत्तस्तद्वपुर्ज्वरः ।।७७

तपश्चर्या में स्थित भगवान् चन्द्रचूड़ को सायकों से तड़ित करने लगा था। इसके पश्चात् काम के बाणों से शम्भु ताड़ित हुए थे और उन्होंने वैराग्य को दूर कर दिया था तथा दुष्कर तप को त्याग दिया था।७१। समस्त नियमों को छोड़कर शम्भु धैर्य त्याग देने वाले कर दिये गये थे। अब तो उसी पार्वती का ध्यान करके बारम्बार काम से आतुर हो गये थे। ।७२। शिव निःश्वास ले रहे थे और उनका गंड मंडल पाण्डुर हो गया था। अश्रु निकल रहे थे तथा धैर्य के विप्लव होने से विरही बहुत ही संताप युक्त हो गये थे। बारम्बार पूर्व में देखी हुई गिरि की सुता का अनुस्मरण करने लगे थे।७३। कामदेव के बाणों की अग्नि से संतप्त होते हुए शिव के दाह को दूर करने में न तो चन्द्ररेखा और न गंगा समर्थ हुए थे।७४। नन्दी-भृङ्गी—और महाकाल आदि प्रमुखों के द्वारा लाई हुई पुष्पों की शय्या में शिव बार-बार लोट लगा रहे थे।७५। नन्दी के हाथ का सहारा ग्रहण करके फिर दूसरी पुष्पों की शय्या पर भी पहुँचे थे। दूसरी पुष्पों की शय्या पर पहुँचकर भी बार-बार विशेष चेष्टा शान्ति पाने के लिए की थी।७६। किन्तु उनके देह का काम ज्वरोत्पन्न सन्ताप पुष्पों की शय्या से—चन्द्रकला से निर्गत अमृत से और हिमानी के जल से भी शान्त नहीं हुआ था।७७।

स तनोरतनुज्वालां शमयिष्यन्मुहुर्मुहुः ।
शिलीभूतान्हिमपयः पट्टानध्यवसच्छिवः ।
भूयः शैलसुतारूपं चित्रपट्टे नखैर्लिखत् ।।७८

तदालोकनतोऽदूरमनंगार्तिमवर्धयत् ।
तामालिख्य ह्रिया नम्रां वीक्षमाणां कटाक्षतः ।।७९
तच्चित्रपट्टसंगेषु रोमहर्षेषु चाक्षिपत् ।
चिन्तासंगेन महता महत्या रतिसंपदा ।
भूयसा स्मरतापेन विव्यथे विषमेक्षण ।।८०
तामेव सर्वतः पश्यंस्तस्यामेव मनो दिशन् ।
तयैव संल्लपन्सार्धमुन्मादेनोपपन्नया ।।८१

तन्मात्रभूतहृदयस्तच्चित्तस्तत्परायणा ।
तत्कथासुधया नीतसमस्तरजनीदिनः ।।८२
तच्छीलवर्णनरतस्तद्रूपालोकनोत्सुकः ।
तच्चारुभोगसंकल्पमालाकरसुमालिकः ।
तन्मयत्वमनुप्राप्तस्ततापातितरां शिवः ।।८३
इमां मनोभवरुजमचिकित्स्या स धूर्जटिः ।
अवलोक्य विवाहाय भृशमुद्यमवानभूत् ।।८४

वे अपने शरीर की बढ़ी हुई ज्वाला को बार-बार शम भी कर रहे थे और शिला के रूप में जो हिम का जल के पट्ट थे उन पर भी शिव जाकर बैठे थे। वहाँ पर फिर वे शैल सुता के चित्र को नखों से लिखने लग गये थे ।।७८। उस चित्र के आलोकन से बहुत ही कामार्त्ति बढ़ गयी थी। उसका आलेखन ऐसा किया था जो लज्जा से नीचे की ओर मुख वाली थी और कटाक्ष से देख रही थी ।७९। उस चित्र के पट्ट को शिव ने रोमाञ्चित अङ्गों पर प्रक्षिप्त कर लिया था। उस समय बड़ा भारी चिन्ता का सङ्ग था और बहुत ही अधिक रति करने की सम्पत्ति थी। विषमेक्षण बहुत अधिक मदन के ताप से व्यथित हो गये थे ।८०। शिव पार्वती ही को सब ओर देख रहे थे और उसी में अपना मन लगा लिया था। उन्माद से उपपन्न उसी के साथ संलाप करते थे ।८१। उनके हृदय में केवल पार्वती ही थी और वे तच्चित्त और उसी में परायण हो गये थे। उस पार्वती की कथा रूपिणी सुधा से सब दिन और पूरी रात व्यतीत की थी ।८२। उसके ही शील स्वभाव के वर्णन में वे निरत थे और उसके ही रूप के अवलोकन में उत्सुक हो गये थे। उसके साथ भोग के संकल्पों की माला कर में लेकर सुमालिक हो गये थे। शिव तन्मयता को प्राप्त होकर बहुत ही अधिक संतप्त हुए थे ।८३। वह धूर्जटि इस कामदेव की बीमारी को जिसकी कोई भी चिकित्सा नहीं थी जब शिव ने देखा था तो फिर वे विवाह करने के लिए बहुत ही अधिक उद्यमवान हुए थे ।८४।

इत्थं विमोह्य तं देवं कन्दर्पो ललिताज्ञया ।
अथ तां पर्वतसुतामाशुगैरभ्यतापयत् ।।८५
प्रभूतविरहज्वालामलिनैः श्वसितानलैः ।
शुष्यमाणाधरदलो भृशं पांडुकपोलभूः ।।८६

नाहारे वा न शयने न स्नापे धृतिमिच्छति ।
सखीसहस्रैः सिषिचे नित्यं शीतोपचारकैः ॥८७
पुनः पुनस्तप्यमाना पुनरेव च विह्वला ।
न जगाम रुजा शांति मन्मथाग्नेर्महीयसः ॥८८
न निद्रां पार्वती भेजे विरहेणोपतापिता ।
स्वतनोस्तापनेनासौ पितुः खेदमवर्धयत् ॥८९
अप्रतीकारपुरुषं विरहं दुहितुः शिवे ।
अवलोक्य स शैलेन्द्रो महादुःखमवाप्तवान् ॥९०
भद्रे त्वं तपसा देवं तोषयित्वा महेश्वरम् ।
भर्तारं तं समृच्छेति पित्रा सम्प्रेरिताथ सा ॥९१
हिमवच्छैलशिखरे गौरीशिखरनामनि ।
चकार पतिलाभाय पार्वती दुष्करं तपः ॥९२
शिशिरेषु जलावासा ग्रीष्मे दहनमध्यगा ।
अर्के निविष्टदृष्टिश्च सुघोरं तप आस्थिता ॥९३

ललिता देवी की आज्ञा से उस कन्दर्प ने इस तरह से शिव को विमोहित करके फिर उसने पार्वती को अपने बाणों से अभितप्त कर दिया था ।८५। बढ़े हुए विरह की ज्वाला से मलिन श्वासों की वायुओं से उसके अधर दल सूख गये थे और उसके कपोल पाण्डु वर्ण के हो गये थे ।८६। पार्वती को आहार में—शयन में—स्नान में कहीं भी धैर्य नहीं होता था। सहस्रों सखियाँ नित्य ही शीतल उपचारों से उसका सेचन किया करती थीं ।८७। बार-बार तापमान होती हुई वह फिर-फिर कर बेचैन हो जाती थी। कामाग्नि से जो अधिक थी वह उस रोग की शान्ति नहीं प्राप्त कर सकी थी ।८८। विरह से उप तापित होकर पार्वती को निद्रा भी नहीं आती थी। अपने शरीर के सन्तापन से उसने पिता के भी खेद को बढ़ा दिया था ।८९। जिसका कुछ भी प्रतिकार नहीं था ऐसा शिव के विषय में दुहिता के विरह को देखकर शैलराज को महान दुःख प्राप्त हो गया था ।९०। पिता ने उसको प्रेरणा दी थी कि हे भद्रे ! तुम तप के द्वारा महेश्वर को प्रसन्न करो और उनको अपना भर्त्ता प्राप्त करो ।९१। हिमवान् पर्वत के शिखर पर एक गौरी

शिखर नाम वाली चोटी है उस पर पार्वती ने पति के लाभ प्राप्त करने के लिये बड़ा ही महान दुष्कर तप किया था। शीत में जल में निवास करती थी और ग्रीष्म में अग्नि के मध्य में रही थी। सूर्य में दृष्टि लगाकर उसने घोर तप किया।९२-९३।

तेनैव तपसा तुष्टः सान्निध्यं दत्तवाञ्छिवः।
अङ्गीचकार तां भार्यां वैवाहिकविधानतः ॥९४
अथाद्रिपतिना दत्तां तनयां नलिनेक्षणाम्।
सप्तर्षिद्वारतः पूर्वं प्रार्थितामुदवोढ सः ॥९५
तया च रममाणोऽसौ बहुकालं महेश्वरः।
ओषधीप्रस्थनगरे श्वशुरस्य गृहेऽवसत् ॥९६
पुनः कैलासमागत्य समस्तैः प्रमथैः सह।
पार्वतीमानिनायाद्रिनाथस्य प्रीतिमावहत् ॥९७
रममाणस्तया सार्धं कैलासे मन्दरे तथा।
विन्ध्याद्रौ हेमशैले च मलये पारियात्रके ॥९८
नानाविधेषु स्थानेषु रतिं प्राप महेश्वरः।
अथ तस्यां ससर्जोग्रं वीर्यं सा सोढुमक्षमा ॥९९
भुव्यत्यजत्सापि वह्नौ कृत्तिकासु स चाक्षिपत्।
ताश्च गङ्गाजलेऽमुञ्चन्सा चैव शरकानने ॥१००

उसी तप से तुष्ट होकर शिव ने उसका सान्निध्य किया था। उस पार्वती को शिव ने वैवाहिक विधि से अपनी भार्या बनाना स्वीकार कर लिया था।९४। इसके पश्चात् शिव ने सप्तर्षियों के द्वारा प्रार्थिता उस अद्रियति के द्वारा प्रदान की हुई नलिनेक्षण पुत्री का उद्वाह कर लिया था।९५। वह महेश्वर उसके साथ रमण बहुत समय पर्यन्त करते रहे थे और अपने श्वशुर के ही घर में औषधिप्रस्थ नगर में उन्होंने निवास किया था।९६। फिर कैलास पर आ गये थे और प्रमथों के साथ पार्वती को वहाँ ले आये थे तथा शैलराज की प्रीति भी प्राप्त कर ली थी।९७। कैलास में तथा मन्दर में उस पार्वती के साथ रमण करते रहे थे। तथा विन्ध्य में—हेमशैल में—मलयाचल में और पारियात्रिक में रमण किया था।९८। अनेक स्थानों

में महेश्वर ने रति प्राप्त की थी। इसके बाद उसमें अपना उग्रवीर्य छोड़ा था जिसके सहन करने में वह असमर्थ हो गयी थी।९९। इसने भी उस वीर्य को भूमि में—वह्नि में—कृतिकाओं में—क्षिप्त कर दिया था। उन्होंने गङ्गाजल में छोड़ दिया था और उसने शर कानन में छोड़ा था।१००।

तत्रोद्भूतो महावीरो महासेन: षडानन:।
गंगायाश्चांतिकं नीतो धूर्जटिर्वृद्धिमागमत् ॥१०१
स वर्धमानो दिवसे दिवसे तीव्रविक्रम:।
शिक्षितो निजतातेन सर्वा विद्या अवाप्तवान् ॥१०२
अथ तातकृतानुज्ञ: सुरसैन्यपतिर्भवन्।
तारकं मारयामास समस्तै: सह दानवै: ॥१०३
ततस्तारकदैत्येंद्रवधसन्तोषशालिना।
शक्रेण दत्तां स गुहो देवसेनामुपानयत् ॥१०४
सा शक्रतनया देवसेना नाम यशस्विनी।
आसाद्य रमणं स्कन्दमानन्दं भृशमादधौ ॥१०५
इत्थं समोहिताशेषविश्वचक्रो मनोभव:।
देवकार्यं सुसम्पाद्य जगाम श्रीपुरं पुन: ॥१०६
यत्र श्रीनगरे पुण्ये ललिता परमेश्वरी।
वर्तते जगतामृद्ध्यै तत्र तां सेवितुं ययौ ॥१०७

वहाँ पर महान् सेनानी महावीर षडानन समुत्पन्न हुए थे गङ्गा के समीप में पहुँचाया गया था और धूर्जटि वृद्धि को प्राप्त हुए थे।१०१। वह प्रतिदिन बढ़ने लगे थे और परम तीव्र विक्रम वाले हुए थे। अपने ही पिता के द्वारा उसको शिक्षा दी गयी थी और उसने समस्त विद्याएँ प्राप्त कर ली थीं।१०२। इसके पश्चात् पिता की आज्ञा प्राप्त करके देवों के सेनापति का पद ग्रहण कर लिया था। फिर उनने समस्त दानवों के साथ तारक को मार डाला था।१०३। फिर तारक दैत्य के वध से सन्तोष शाली इन्द्र ने देवों की सेना दी थी और गुह देव सेना को प्राप्त हो गये थे। फिर शुक्र की पुत्री देवसेना नाम वाली यशस्विनी ने स्कन्द को अपना स्वामी प्राप्त करने पर अधिक आनन्द प्राप्त किया था।१०४-१०५। इस रीति से कामदेव ने

सम्पूर्ण विश्व को संमोहित कर दिया था। वह देवों के इस कार्य को पूर्ण करके फिर श्रीपुर में चला गया था।१०६। जहाँ पर परम पुण्य श्री नगर में परमेश्वरी ललिता जगतों की समृद्धि के वर्त्तमान रहती है। उसी की सेवा करने के लिए वह चला गया था।१०७।

।। मतंग कन्या प्रादुर्भाव वर्णन ।।

अगस्त्य उवाच—

किमिदं श्रीपुरं नाम केन रूपेण वर्तते ।
केन वा निर्मितं पूर्वं तत्सर्वं मे निवेदय ।।१
कियत्प्रमाणं किं वर्णं कथयस्व मम प्रभो ।
त्वमेव सर्वसन्देहपङ्कशोषणभास्करः ।।

हयग्रीव उवाच—

यथा चक्ररथं प्राप्य पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतम् ।
महायागानलोत्पन्ना ललिता परमेश्वरी ।।३
कृत्वा वैवाहिकीं लीलां ब्रह्माद्यैः प्रार्थिता पुनः ।
व्यजेष्ट भण्डनामानमसुरं लोककण्टकम् ।।४
तदा देवा महेन्द्राद्याः सन्तोषं बहु भेजिरे ।
अथ कामेश्वरस्यापि ललितायाश्च शोभनम् ।
नित्योपभोगसर्वार्थि मन्दिरं कर्तुमुत्सुकाः ।।५
कुमारा ललितादेव्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
वर्धकिं विश्वकर्माणं सुराणां शिल्पकोविदम् ।।६
असुराणां शिल्पिनं च मयं मायाविचक्षणम् ।
आहूय कृतसत्कारानूचिरे ललिताज्ञया ।।७

अगस्त्यजी ने कहा—यह श्रीपुर नाम वाला क्या है और यह किस स्वरूप से होता है। पूर्व में इसका निर्माण किसने किया था—यह सब आप कृपया मुझको बतला दीजिए।१। यह श्रीपुर कितना बड़ा है और इसका क्या वर्ण है—हे प्रभो! यह सभी कुछ बतलाइए। आप ही एक ऐसे हैं जो

सभी प्रकार से सन्देह के पंक को सुखा देने वाले हैं ।२। श्री हयग्रीवजी ने कहा—जिस प्रकार से पूर्व में कहे हुए लक्षणों से युक्त चक्ररथ को प्राप्त करके महाभागानला परमेश्वरी ललिता समुत्पन्न हुई थी ।३। फिर ब्रह्मा आदि के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर वैवाहिकी लीला करके उसने लोकों के लिए कण्टक भंडासुर पर विजय प्राप्त की थी ।४। वहाँ पर महेन्द्र आदि देवगण बहुत ही अधिक सन्तुष्ट हुए थे। इसके उपरान्त कामेश्वर का और ललिता का परम शोभन नित्य उपभोग के समस्त अर्थों वाला एक मन्दिर का निर्माण करने के लिए सब देवगण उत्सुक हुए थे ।५। ललिता देवी के कुमार ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर थे। इन्होंने वर्धकि विश्वकर्मा को जो कि शिल्प विद्या का पण्डित था ।६। और असुरों का शिल्पी मय को जो माया में बड़ा कुशल था बुलाया था। इनका सत्कार करके ललिता की आज्ञा से उनसे सबने कहा था ।७।

अधिकारिपुरुषा ऊचुः—

भो विश्वकर्मञ्छिल्पज्ञ भोभो मय महोदय ।
भवन्तौ सर्वशास्त्रज्ञौ घटनामार्गकोविदौ ॥८
संकल्पमात्रेण महाशिल्पकल्पविशारदौ ।
युवाभ्यां ललितादेव्या नित्यज्ञानमहोदधेः ॥९
षोडशीक्षेत्रमध्येषु तत्क्षेत्रसमसंख्यया ।
कर्तव्या श्रीनगर्यो हि नानारत्नैरलङ्कृताः ॥१०
यत्र षोडशधा भिन्ना ललिता परमेश्वरी ।
विश्वत्राणाय सततं निवासं रचयिष्यति ॥११
अस्माकं हि प्रियमिदं मरुतामपि च प्रियम् ।
सर्वलोकप्रियं चैतत्तन्नाम्नैव विरच्यताम् ॥१२
इति कारणदेवानां वचनं सुनिशम्य तौ ।
विश्वकर्ममयौ नत्वा व्यभाषेतां तथास्त्विति ॥१३
पुनर्नत्वा पृष्ठवन्तौ तौ तान्कारणपूरुषान् ।
केषु क्षेत्रेषु कर्तव्याः श्रीनगर्यो महोदयाः ॥१४

अधिकारी पुरुषों ने कहा था—हे विश्वकर्मन् ! आप बहुत ही ऊँचे शिल्प कर्म के ज्ञाता हैं। हे महोदय मय ! आप दोनों ही घटना मार्ग के विद्वान् हैं और सभी शास्त्रों के भी ज्ञाता हैं ? ।८। आप लोग तो केवल संकल्प से ही महान् शिल्प कल्प के विशारद हैं। आप दोनों को ही नित्य ज्ञान की सागर ललितादेवी की श्री नगरियाँ बनानी चाहिए जो षोडशी क्षेत्र के मध्य में उसके क्षेत्र की समान संख्या से युक्त होंगी। वे श्री नगरी अनेक रत्नों से विभूषित भी बनानी चाहिए ।९-१०। जहाँ पर सोलह प्रकार से भिन्न परमेश्वरी ललिता इस विश्व की रक्षा के लिए अपना निवास बनायेगी ।११। यह हमारा भी प्रिय होवे और मरुतों का भी प्रिय हो और सर्वलोक का प्रिय होवे ऐसा यह नाम से ही विरचित करो ।१२। यह कारण देवों का वचन उन दोनों ने श्रवण करके दोनों विश्वकर्माओं ने ऐसा ही होगा—यह कहकर स्वीकार किया था ।१३। फिर उनने नमस्कार करके उन कारण देवताओं से पूछा था कि ये श्री नगरियाँ किन क्षेत्रों में बनानी चाहिए ।१४।

ब्रह्माद्याः परिपृष्टास्ते प्रोचुस्तौ शिल्पिनौ पुनः ।
क्षेत्राणां प्रविभागं तु कल्पयन्तौ यथोचितम् ॥१५
कारणपुरुषा ऊचुः—
प्रथमं मेरुपृष्ठे तु निषधे च महीधरे ।
हेमकूटे हिमगिरौ पञ्चमे गन्धमादने ॥१६
नीले मेषे च श्रृंगारे महेन्द्रे च महागिरौ ।
क्षेत्राणि हि नवैतानि भौमानि विदितान्यथ ॥१७
औदकानि तु सप्तैव प्रोक्तान्यखिलसिन्धुषु ।
लवणोऽब्धीक्षुसाराब्धिः सुराब्धिर्घृतसागरः ॥१८
दधिसिन्धुः क्षीरसिन्धुर्जलसिन्धुश्च सप्तमः ।
पूर्वोक्ता नव शैलेन्द्राः पश्चात्सप्त च सिन्धवः ॥१९
आहृत्य षोडश क्षेत्राण्यंबाश्रीपुरक्लृप्तये ।
येषु दिव्यानि वेश्मानि ललिताया महौजसः ।
सृजतं दिव्यघटनापण्डितौ शिल्पिनौ युवाम् ॥२०

येषु क्षेत्रेषु क्लृप्तानि घ्नन्त्या देव्या महासुरान् ।
नामानि नित्यानाम्नैव प्रथितानि न संशयः ॥२१

ब्रह्मादिक से परिपृष्ट हुए उन दोनों शिल्पियों ने कहा था कि क्षेत्रों का प्रविभाग यथोचित कल्पित कीजिए ।१५। कारण पुरुषों ने कहा—प्रथम तो मेरु के पृष्ठ पर और निषध महीधर पर—हेम गिरि पर—हिम कूट पर और पाँचवे गन्ध मादन पर—नील—मेष—शृंगार और महागिरि महेन्द्र पर ये नौ क्षेत्र भौम विदित हैं ।१६-१७। जलीय सात ही स्थान हैं जो समस्त सिन्धुओं में बताये गये हैं । लवण सागर—इक्षुसार सागर–सुरा सागर—घृत सागर ।१८। दधि सागर-क्षीर सिन्धु है । पूर्व में कहे हुए नौ शैलेन्द्र और पीछे बताये गये सात सिन्धु हैं ।१६। इन सोलह क्षेत्रों का आहरण करके श्री के पुरों की क्लृप्ति के लिए हैं । महान ओज वाली ललिता देवी के जिनमें दिव्य गृह होंगे । आप दोनों ही शिल्पी हैं और दिव्य घटना के महान् पण्डित हैं अतः ऐसा ही निर्माण कीजिए ।२०। जिन क्षेत्रों में असुरों का हनन करने वाली देवी के नाम क्लृप्त हैं वे सब नित्य नाम से ही प्रथित हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।२१।

सा हि नित्यास्वरूपेण कालव्याप्तिकरी परा ।
सर्वं कलयन्ते देवी कलनांकतया जगत् ॥२२
नित्यानां च महाराज्ञी नित्या यत्र न तद्विदा ।
अतस्तदीयनाम्ना तु सनामा प्रथिता पुरा ॥२३
कामेश्वरीपुरी चैव भगमालापुरी तथा ।
नित्यक्लिन्नापुरीत्यादिनामानि प्रथितान्यलम् ॥२४
अतो नामानि वर्णेन योग्ये पुण्यतमे दिने ।
महाशिल्पप्रकारेण पुरीं रचयतां शुभाम ॥२५
इति कारणकृत्येंद्रैर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ।
प्रोक्तौ तौ श्रीपुरीस्थेषु तेषु क्षेत्रेषु चक्रतुः ॥२६
अथ श्रीपुरविस्तारं पुराधिष्ठातृदेवताः ।
कथयाम्यहमाधार्य लोपामुद्रापते शृणु ॥२७

यो मेरुरखिलाधारस्तुंगश्चानंतयोजनः ।
चतुर्दशजगच्चक्रसंप्रोतनिजविग्रहः ।।२८

वह देवी परा नित्या के स्वरूप से काल की व्याप्ति करने वाली है। कलनान्तकता से देवी सम्पूर्ण जगत् का कलन करती है ।२२। महाराज्ञी नित्या नाम वाली है जिसमें तद्भिदा भी नित्या नाम ही है । अतएव उसके ही नाम से वह पुरी पहिले सनामा प्रथिता हुई है ।२३। कामेश्वरी पुरी तथा भगमाला पुरी तथा नित्य क्लिन्नापुरी—इत्यादि नाम ही प्रथिता है । वही पर्याप्त है ।२४। इसीलिए नाम वर्ण से योग्य पुण्य दिन में महान शिल्प के प्रकार से उस शुभा पुरी की रचना की थी ।२५। इसलिए कारण कुल्येन्द्र ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरों के द्वारा उन क्षेत्रों में श्री पुरीस्थों में कहे गये थे ।२६। हे लोपामुद्रापते ! आप श्रवण कीजिए—मैं अब उस श्री पुर का विस्तार और पुर के अधिष्ठातृ देवताओं को बतलाता हूँ ।२७। जो मेरु का अखिलाधार है और अनन्तयोजन ऊँचा है चौदह भुवनों के चक्र में संप्रोत विग्रह वाला है ।२८।

तस्य चत्वारि शृंगाणि शक्रनैर्ऋ तवायुषु ।
मध्यस्थलेषु जातानि प्रोच्छ्रायस्तेषु कथ्यते ।।२९
पूर्वोक्तशृंगत्रितयं शतयोजनमुन्नतम् ।
शतयोजनविस्तारं तेषु लोकास्त्रयो मताः ।।३०
ब्रह्मलोको विष्णुलोकः शिवलोकस्तथैव च ।
एतेषां गृहविन्यासान्वक्ष्याम्यवसरांतरे ।।३१
मध्ये स्थितस्य शृंगस्य विस्तारं चोच्छ्रयं शृणु ।
चतुःशतं योजनानामुच्छ्रितं विस्तृतं तथा ।।३२
तत्रैव शृगे महति शिल्पिभ्यां श्रीपुरं कृतम् ।
चतुःशतं योजनानां विस्तृतं कुम्भसंभव ।।३३
तत्रायं प्रविभागस्ते प्रविविच्य प्रदर्श्यते ।
प्राकारः प्रथमः प्रोक्तः कालायसविनिर्मितः ।।३४
षड्दशाधिकसाहस्रयोजनायतवेष्टनः ।
चतुर्दिक्षु द्वार्युतश्च चतुर्योजनमुच्छ्रितः ।।३५

उसके चार शिखर शक्र—नैऋ त्य—वायु—मध्यस्थलों में हुए हैं। जो ऊँचाई है वह बतलायी जाती है।२९। पूर्व में कहे हुए तीन श्रृंग शत योजन उन्नत हैं और उनका सौ योजन ही विस्तार है। उनमें तीनों लोक माने गये हैं।३०। ब्रह्मलोक-विष्णु लोक और शिव लोक हैं इनके महान विन्यासों का वर्णन अन्य अवसर में बताऊँगा।३१। मध्य में स्थित श्रृंग का विस्तार ओर ऊँचाई श्रवण कीजिए। चार सौ योजन उच्चता और विस्तार है ।३२। वहाँ पर ही महान शिखर पर शिल्पियों ने श्रीपुर बनाया था। हे कुम्भ सम्भव ! वह चार सौ योजन विस्तार और ऊँचाई वाला है ।३३। वहाँ पर यह प्रविभाग है जो आपको विवेचना करके दिखाया जाता है। उसका जो प्रथम प्राकार है कालायस से बनाया गया है।३४। सोलह सहस्र योजन आयत वेष्टन है। चारों दिशाओं में वह द्वारों से युक्त है और चार योजन ऊँचा है।३५।

शालमूलपरीणाहो योजनायुतमब्धिप ।
शालाग्रस्य तु गव्यूतेर्नद्धवातायनं पृथक् ॥३६
शालद्वारस्य चौन्नत्यमेकयोजनमाश्रितम् ।
द्वारे द्वारे कपाटे द्वे गव्यूत्यर्धप्रविस्तरे ॥३७
एकयोजनमुन्नद्धे कालायसविनिर्मिते ।
उभयोरर्गला चेत्थमर्धक्रोशसमायता ॥३८
एवं चतुर्षु द्वारेषु सदृशं परिकीर्तितम् ।
गोपुरस्य तु संस्थाने कथये कुम्भसंभव ॥३९
पूर्वोक्तस्य तु शालस्य मूले योजनसंमिते ।
पार्श्वद्वये योजने द्वे द्वे समादाय निर्मिते ॥४०
विस्तारमपि तावंतं संप्राप्तं द्वारगर्भितम् ।
पार्श्वद्वयं योजने द्वे मध्ये शालस्य योजनम् ॥४१
मेलयित्वा पञ्च मुने योजनानि प्रमाणतः ।
पार्श्वद्वयेन सार्धेन क्रोशयुग्मेन संयुतम् ॥४२

हे अब्धिप ! शाल वृक्ष के मूल के समान परिणाम वाला है और योजनायुत है। शालाग्र के गव्यूति का नद्धवायत पृथक् है।३६। शाल द्वार

की ऊँचाई एक योजन आश्रित है। आधी गव्यूति के विस्तार वाले प्रति द्वार में दो किवाड़ हैं।३७। वे एक योजन उन्नद्ध हैं तथा कृष्ण लौह के द्वारा बने हुए हैं। उन दोनों में एक अर्गला है जो आधे कोश के बराबर आयत है।३८। इस प्रकार से चारों द्वारों में समान ही कीर्त्तित है। हे कुम्भ सम्भव ! गोपुर का संस्थान मैं कहता हूँ।३९। पूर्व में कहे हुए शाल के मूल में जो योजन समित है। दोनों पार्श्वों में दो-दो योजन लाकर निर्मित किये गये हैं।४०। विस्तार भी द्वारों से युक्त उतना ही सम्प्राप्त है। दोनों पार्श्व मध्य में दो योजन हैं जो शाल का योजन है।४१। हे मुने ! प्रमाण से पाँच योजन मिलाकर दोनों पार्श्व ढाई कोश से संयुत हैं।४२।

मेलयित्वा पञ्चसंख्यायोजनान्यायतस्तथा ।
एवं प्राकारतस्तत्र गोपुरं रचितं मुने ।।४३
तस्माद्गोपुरमूलस्य वेष्टो विंशतियोजनः ।
उपर्युपरि वेष्टस्य ह्रास एव प्रकीर्त्यते ।।४४
गोपुरस्योन्नतिः प्रोक्ता पञ्चविंशतियोजना ।
योजने योजने द्वारं सकपाटं मनोहरम् ।।४५
भूमिकाश्चापि तावन्त्यो यथोर्ध्वं ह्राससंयुताः ।
गोपुराग्रस्य विस्तारो योजनं हि समाश्रितः ।।४६
आयामोऽपि च तावान्वै तत्र त्रिमुकुटं स्मृतम् ।
मुकुटस्य तु विस्तारः क्रोशमानो घटोद्भव ।।४७
क्रोशद्वयं समुन्नद्धं ह्रासं गोपुरवन्मुने ।
मुकुटस्यांतरे क्षोणी क्रोशार्धेन च संमिता ।।४८
मुकुटं पश्चिमे प्राच्यां दक्षिणे द्वारगोपुरे ।
दक्षोत्तरस्तु मुकुटाः पश्चिमद्वारगोपुरे ।।४९

मिलाकर पाँच योजन आयत है। इस प्रकार से वहाँ पर हे मुने ! गोपुर की रचना की गई।४३। इस कारण से गोपुर के मूल का वेष्ट बीस योजनों वाला है। उस वेष्ट के ऊपर-ऊपर में ह्रास बताया जाता है।४४। उस गोपुर की ऊँचाई पच्चीस योजन की है ऐसा कहा गया है। एक-एक

योजन पर द्वार हैं जिनमें बहुत सुन्दर किवाड़ लगे हुए हैं ।४५। और भूमिकायें भी उतनी ही हैं जैसी ऊर्ध्व में ह्रास में संयुत हैं । गोपुर के आगे का विस्तार एक योजन समाश्रित है ।४६। उसका आयाम भी वहाँ पर उतना ही है त्रिमुकुट कहा गया है । हे घटोद्भव ! मुकुट का विस्तार एक कोश के मान वाला है ।४७। हे मुने ! गोपुर के ही तुल्य दो कोश समुन्नद्ध ह्रास है । मुकुट के अन्दर की भूमि आधे के बराबर है ।४८। मुकुट पश्चिम—पूर्व—दक्षिण में द्वार गोपुर में है । दक्षोत्तर मुकुट पश्चिम द्वार गोपुर में है ।४९।

दक्षिणद्वारवत्प्रोक्ता उत्तरद्वाः किरीटिकाः ।
पश्चिमद्वारवत्पूर्वद्वारे मुकुटकल्पना ।।५०
कालायसाख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने ।
अंतरे कांस्यशालस्य पूर्ववद्गोपुरोऽन्वितः ।।५१
शालमूलप्रमाणं च पूर्ववत्परिकीर्तितम् ।
कांस्यशालोऽपि पूर्वादिदिक्षु द्वारसमन्वितः ।।५२
द्वारेद्वारे गोपुराणि पर्वलक्षणभांजि च ।
कालायसस्य कांस्यस्य योंऽतर्देशः समंततः ।।५३
नानावृक्षमहोद्यानं तत्प्रोक्तं कुम्भसंभव ।
उद्भिज्जाद्यं यावदस्ति तत्सर्वं तत्र वर्तते ।।५४
परसहस्रास्तरवः सदापुष्पाः सदाफलाः ।
सदापल्लवशोभाढ्याः सदा सौरभसंकुलाः ।।५५
चूताः कंकोलका लोध्रा बकुलाः कर्णिकारकाः ।
शिंशपाश्च शिरीषाश्च देवदारुनमेरवः ।।५६

दक्षिण द्वार के समान उत्तर द्वार किरीटिका कही गयी है । पश्चिम द्वार के तुल्य पूर्व द्वार में मुकुट की योजना है ।५०। कालायस शाल के अन्तर में मारुत योजन में कांस्यशाल के अन्तर में पूर्व की भाँति गोपुर अन्वित है ।५१। शाल के मूल का प्रमाण तो पूर्व के ही समान कीर्त्तित किया गया है । कांस्य शाल भी पूर्व आदि दिशाओं के द्वार से समन्वित है ।५२। प्रतिद्वार में पर्व लक्षण वाले गोपुर हैं । कालायस और कांस्य का जो अन्त-

देश है वह माना गया है जो चारों ओर है ।५३। हे कुम्भ सम्भव ! वह नाना वृक्षों का महान् उद्यान कहा गया है । उद्भिज्ज आदि जितने भी हैं वे सभी वहाँ पर विद्यमान हैं ।५४। सहस्रों से भी अधिक तरुगण जो सदा ही पुष्प और फल देने वाले हैं । वे सर्वदा पत्रों से शोभित हैं और सदा ही सौरभ से संकुल हैं ।५५। आम्र—कंकोल—लोह्य—वकुल—कणिकार—शिशप—शिरीष—देवदारु—नमेरु वृक्ष हैं ।५६।

पुन्नागा नागभद्राश्च मुचुकुन्दाश्च कट्फलाः ।
एलालवंगास्तक्कोलास्तथा कर्पूरशाखिनः ।।५७
पीलवः काकतुण्ड्यश्च शालकाश्चासनास्तथा ।
कांचनाराश्च लकुचाः पनसा हिंगुलास्तथा ।।५८
पाटलाश्च फलिन्यश्च जटिल्यो जघनेफलाः ।
गणिकाश्च कुरण्डाश्च बन्धुजीवाश्च दाडिमाः ।।५९
अश्वकर्णा हस्तिकर्णाश्चाम्पेयाः कनकद्रुमाः ।
यूथिकास्तालपर्ण्यश्च तुलस्यश्च सदाफलाः ।।६०
तालास्तमालहिंतालखर्जूराः शरबर्बुराः ।
इक्षवः क्षीरिणश्चैव श्लेष्मातकविभीतकाः ।।६१
हरीतक्यस्त्ववाक्पुष्प्यो घोण्टाल्यः स्वर्गपुष्पिकाः ।
भल्लातकाश्च खदिराः शाखोटाश्चन्दनद्रुमाः ।।६२
कालागुरुद्रुमाः कालस्कन्धाश्चिंचा वटास्तथा ।
उदुम्बरार्जुनाश्वत्थाः शमीवृक्षा ध्रुवाद्रुमाः ।।६३

पुन्नाग—नागभद्र—मुचुकुन्द—कट्फल—एलालवंग—तक्कोल—कर्पूरशाली हैं ।५७। पीलु—काकतुण्डी—शाल—आसनकांचनार—लकुच—पनस—हिंगुल हैं ।५८। पाटल—फलिनी जटिली—जघनेफल—गणिका कुरण्ड—बन्धुजीव—दाड़िम—अश्वकर्ण-हस्तिकर्ण—चाम्पेय—कनकद्रुम—यूथिका—तालपर्णी—तुलसी और सदा फल के वृक्ष हैं ।५९-६०। ताल—तमाल—हिन्ताल—खजूर—शरबुर—इक्षु—क्षीरी—श्लेष्मातक—विभीतक से वृक्ष हैं ।६१। हरीतकी—अवाक्पुष्पी—घोण्टाली—स्वर्ग पुष्पिका—भल्लातक—खदिर—शाखोट—चन्दन द्रुम हैं ।६२। कालागुरु द्रुम—काल-

स्कन्ध--चिचा--वट--उदुम्बर--अर्जुन--अश्वत्थ--शमी वृक्ष--ध्रुवाद्रुम हैं ।६३।

रुचकाः कुटजाः सप्तपर्णाश्च कृतमालकाः ।
कपित्थास्तितिणी चैवेत्येवमाद्याः सहस्रशः ॥६४

नानाऋतुसमाविष्टा देव्याः शृंगारहेतवः ।
नानावृक्षमहोत्सेधा वर्तंते वरशाखिनः ॥६५

कांस्यशालस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः ।
चतुरस्रस्ताम्रशालः सिंधुयोजनमुन्नतः ॥६६

अनयोरंतरक्षोणी प्रोक्ता कल्पकवाटिका ।
कर्पूरगन्धिभिश्चारुरत्नबीजसमन्वितैः ॥६७

कांचनत्वक्सुरुचिरैः फलैस्तैः फलिता द्रुमाः ।
पीतांबराणि दिव्यानि प्रवालान्येव शाखिषु ॥६८

अमृतं स्यान्मधुरसः पुष्पाणि च विभूषणम् ।
ईदृशा बहवस्तत्र कल्पवृक्षाः प्रकीर्तिताः ॥६९

एषा कक्षा द्वितीया स्यात्कल्पवापीति नामतः ।
ताम्रशालस्यांतराले नागशालः प्रकीर्तितः ॥७०

रुचक--कुटज--सप्तपर्ण--कृतमालक--कपित्थ--तिन्तिणी--इत्यादि सहस्रों प्रकार के वृक्ष हैं ।६४। ये सभी वृक्ष अनेक जीव-जन्तुओं से समन्वित हैं जो श्रीदेवी के श्रृंगार के कारण हैं। नाना भाँति के वृक्षों के महान् उत्सेध से युक्त हैं ऐसे श्रेष्ठशाखी हैं ।६५। कांस्यशाल के अन्तराल में सात-योजन दूर चौकोर ताम्र शाल है जो सिन्धु योजन अनुकूल है अर्थात् सात योजन तक पीछे लगा हुआ है ।६६। इन दोनों की भीतर की पृथ्वी है जो कल्पक वाटों वाली कही गयी है वे द्रुम ऐसे हैं जो ऐसे हैं जो ऐसे फलों वाले हैं जिनमें कपूर की गन्ध है और सुन्दर रत्नों के बीजो से संयुत हैं। उनकी छाल सुनहली है और परम सुन्दर हैं। इन वृक्षों में पीताम्बर दिव्य प्रवाल हैं ।६७-६८। अमृत इनका मधुरस है और पुष्प ही विभूषण हैं। इस प्रकार के वहाँ पर बहुत से कल्प वृक्ष कीत्तित किये गये हैं ।६९। यह दूसरी कक्षा है। जिसका नाम कल्पवापी है। फिर उस ताम्रशाल के अन्तराल में नाग शाल कहा गया है ।७०।

अनयोरुभयोस्तिर्यग्देश: स्यात्सप्तयोजन: ।
तत्र संतानवाटी स्यात्कल्पवापीसमाकृति: ।।७१
तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता हरिचन्दनवाटिका ।
कल्पवाटीसमाकारा फलपुष्पसमाकुला ।।७२
एषु सर्वेषु शालेषु पूर्ववद्द्वारकल्पनम् ।
पूर्ववद्गोपुराणां च मुकुटानां च कल्पनम् ।।७३
गोपुरद्वारक्लृप्तं च द्वारे द्वारे च संमितिः ।
आरकूटस्यांतराले सप्तयोजनदूरत: ।।७४
पञ्चलोहमय: शाल: पूर्वशालसमाकृति: ।
तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता मन्दारद्रुमवाटिका ।।७५
पञ्चलोहस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः ।
रौप्यशालस्तु संप्रोक्त: पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युत: ।।७६
तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता पारिजातद्रुवाटिका ।
दिव्यामोदसुसंपूर्णा फलपुष्पभरोज्ज्वला ।।७७

इन दोनों का एक तिर्यग् देश है जो सात योजन वाला है । वहाँ पर एक सन्तानवाटी है जो कल्प वापी के ही सदृश आकृति वाली होती है ।७१। उन दोनों के मध्य में यही बतायी गयी है । जिसका नाम हरि चन्दन वाटिका है । यह भी कल्पवाटी के तुल्य ही आकार वाली है और फलों तथा पुष्पों से घिरी हुई है ।७२। इन समस्त शालों में पूर्व की ही भाँति द्वारों की कल्पना है और पहिली भाँति ही गोपुरों का और मुकुटों का भी कल्पन है ।७३। प्रत्येक द्वार में गोपुर द्वार के ही समान संमिति है आरकूट के अन्तराल में सात योजनों की दूरी वाला एक प्राकार और है ।७४। पञ्च लौह से पूर्ण-शाल है जो पूर्व शाल के समान आकार वाला है । उन दोनों के मध्य में जो मही है वह मन्दार द्रुमों की वाटिका वाली है ।७५। पाँचों लौहों के अन्तराल में सात योजनों की दूरी वाला चाँदी का शाल है जो पूर्व के ही सदृश लक्षणों तथा आकृति वाला है ऐसा बताया गया है । सुवर्ण का शाल पूर्व के ही समान द्वारों से सुशोभित बताया गया है ।७६। उन दोनों के मध्य में जो मही है वह पारिजात के द्रुमों की ही वाटिका है । वह परम दिव्य गन्ध वाली तथा फल पुष्पों से समन्वित है ।७७।

रौप्यशालस्यांतराले सप्तयोजनविस्तरः ।
हेमशालः प्रकथितः पूर्ववद्द्वारशोभितः ॥७८

तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता कदम्बतरुवाटिका ।
तत्र दिव्या नीपवृक्षा योजनद्वयमुन्नताः ॥७६

सदैव मदिरास्पंदा मेदुरप्रसवोज्ज्वलाः ।
येभ्यः कादम्बरी नाम योगिनी भोगदायिनी ॥८०

विशिष्टा मदिरोद्याना मंत्रिण्याः सततं प्रिया ।
ते नीपवृक्षाः सुच्छायाः पत्रलाः पल्लवाकुलाः ।
आमोदलोलभृंगालीझंकारैः पूरितोदराः ॥८१

तत्रैव मंत्रिणीनाथामन्दिरं सुमनोहरम् ।
कदम्बवनवाटयास्तु विदिक्षु ज्वलनादितः ॥८२

चत्वारि मंदिराण्युच्चैः कल्पितान्यादिशिल्पिना ।
एकैकस्य तु गेहस्य विस्तारः पञ्चयोजनः ॥८३

पञ्चयोजनमायामः समावरणतः स्थिति ।
एवमन्यविदिक्षु स्युस्सर्वत्र प्रियकद्रुमाः ।
निवासनगरी सेयं श्यामायाः परिकीर्तिता ॥८४

रौप्य शाल के अन्तराल में सात योजनों के विस्तार वाला हेम शाल कहा गया है जो पूर्व की ही भाँति द्वारों से शोभित है ।७८। उन दोनों के मध्य में भूमि जो थी वह ऐसी बतलायी गयी है कि उसमें कदम्बों के द्रुमों की वाटिका बनी है । उसमें परम दिव्यनीपों के वृक्ष हैं जो दो योजन ऊँचाई वाले हैं ।७६। वे सदा ही मदिरा का स्पन्दन करने वाले हैं और मेदुर प्रसवों से परम उज्ज्वल हैं । जिनसे कादम्बरी नाम वाली योगिनी भोग देने वाली है ।८०। वह विशेषता से युक्त मदिरोद्याना वाटिका मन्त्रिणी देवी की निरन्तर प्रिया है । वे नीपों की वृक्षावलियाँ छाया वाली तथा सुरम्य पत्र और पल्लवों से समाकुल रहा करती हैं । उसकी सुरम्य सुगन्ध से परम चञ्चल भ्रमरों की झंकार हुआ करती है जिससे उसका मध्य भाग भरा हुआ रहता है ।८१। वहाँ पर ही मन्त्रिणीनाथा का एक बहुत मनोहर मन्दिर है । कदम्बों के वन को वाटिका के विदिशाओं में ज्वलनादि से युक्त है ।८२। उस जादि

शिल्पी ने चार परमोच्च मन्दिर बनाये थे। एक-एक के घर का विस्तार पाँच योजन का था।८३। पाँच योजनों का उनका आयाम था और समावरण से उनकी स्थिति थी। इसी रीति से अन्य विदिशाओं में सभी जगह प्रियक के द्रुम वहाँ पर थे। यह श्यामादेवी की परम प्रिय निवास की नगरी थी।८४।

सेनार्थं नगरी त्वन्या महापद्माटवीस्थले।
यदत्रैव गृहं तस्या बहुयोजनदूरतः ॥८५
श्रीदेव्या नित्यसेवा तु मंत्रिण्या न घटिष्यते।
अतश्चिंतामणिगृहोपांतेऽपि भवनं कृतम्।
तस्याः श्रीमन्त्रनाथायाः सुरत्वष्ट्रा मयेन च ॥८६
श्रीपुरे मन्त्रिणीदेव्या मन्दिरस्य गुणान्बहून्।
वर्णयिष्यति को नाम यो द्विजिह्वासहस्रवान् ॥८७
कादम्बरीमदाताम्रनयनाः कलवीणया।
गायन्त्यस्तत्र खेलंति मान्यमातंगकन्यकाः ॥८८
अगस्त्य उवाच—
मातङ्गो नाम कः प्रोक्तस्तस्य कन्याः कथं च ताः।
सेवंते मन्त्रिणीनाथां सदा मधुमदालसाः ॥८९
हयग्रीव उवाच—
मतंगो नाम तपसामेकराशिस्तपोधनः।
महाप्रभावसंपन्नो जगत्सर्जनलंपटः ॥९०
तपः शक्त्यात्तधिया च सर्वत्राज्ञाप्रवर्त्तकः।
तस्य पुत्रस्तु मातंगो मुद्रिणीं मन्त्रिनायिकाम् ॥९१

सेना के निवास करने की अन्य नगरी भी थी जो महा पद्माटवी के स्थल में थी और वहाँ पर ही इसका गृह था जो बहुत योजनों तक दूर था।८५। श्री देवी की नित्य सेवा मन्त्रिणी के द्वारा नहीं होगी। इसीलिए चिन्तामणि गृह के ही समीप में भी उसका भवन बनाया था। उस मन्त्रिणीनाथा का विश्वकर्मा और मय ने ही भवन का निर्माण कराया था।८६। श्री पुर

में मन्त्रिणी देवी के जो प्रचुर गुण थे उनका वर्णन ऐसा कौन है जो कर सकता है जिसके दो सहस्र जिह्वायें होवें ।८७। कादम्बरी के मद से लाल लोचनों वाली कल वीणा के द्वारा गायन करती हुई वहाँ पर क्रीड़ा किया करती है जो कि मान्य मातंगों की बालिकाएँ हैं ।८८। अगस्त्यजी ने कहा—मतंग नाम वाला यह कौन कहा गया है और उसकी कन्या कैसी थीं जो सर्वदा ही मधु से मदालसा होकर मन्त्रिणी नाथा की सेवा किया करती हैं। ।८९। श्री हयग्रीव ने कहा—मतंग नाम वाला एक तपों का समूह तपस्वी था और यह महान् प्रभाव से संयुत था । यह जगत का सृजन करने में बहुत ही लम्पट था ।९०। तप की शक्ति से इसमें ऐसी बुद्धि हो गयी थी कि सर्वत्र आज्ञा का यह प्रवर्त्तक था । उसका पुत्र मातंग हुआ था । इसकी घोर तपस्या से मन्त्र नायिका मुद्रिणी तुष्ट हो गयी थी ।९१।

घोरैस्तपोभिरत्यर्थं पूरयामास धीरधीः ।
मतंगमुनिपुत्रेण सुचिरं समुपासिता ।।९२
मन्त्रिणी कृतसान्निध्या वृणीष्व वरमित्यशात ।
सोऽपि सर्वमुनिश्रेष्ठो मातंगस्तपसां निधिः ।
उवाच तां पुरो दत्तसान्निध्यां श्यामलांबिकाम् ।।९३

मातंगमहामुनिरुवाच—

देवी त्वत्स्मृतिमात्रेण सर्वाश्च मम सिद्धयः ।
जाता एवाणिमाद्यास्ताः सर्वाश्चान्या विभूतयः ।।९४
प्रापणीयन्न मे किंचिदस्त्यंबभुवनत्रये ।
सर्वतः प्राप्तकालस्य भवत्याश्चरितस्मृतेः ।।९५
अथापि तव सांनिध्यमिदं नो निष्फलं भवेत् ।
एवं परं प्रार्थयेऽहं तं वरं पूरयांबिके ।।९६
पूर्वं हिमवता सार्धं सौहार्दं परिहासवान् ।
क्रीडामत्तेन चावाच्येस्तत्र तेन प्रगल्भितम् ।।९७
अहं गौरीगुरुरिति श्लाघामात्मनि तेनिवान् ।
तद्वाक्यं मम नैवाभूद्यतस्तत्राधिको गुणः ।।९८

धीरबुद्धि वाले उसने परमाति घोर तपों के द्वारा पूरित कर दिया था और मतंग मुनि के पुत्र ने उसकी उपासना भली-भाँति से की थी ।६२। मन्त्रिणी के समीप में उपस्थित हो गयी थी और उसने उससे वरदान का वरण करने के लिए कहा था। वह भी समस्त मुनियों में परम श्रेष्ठ था और मातंग तपों की खान था। उसने समीप में उपस्थित श्यामला देवी के आगे यही कहा था ।६३। मातंग महामुनि ने हे देवि मुझे आपकी केवल स्मृति ही से समस्त सिद्धियाँ अणिमा आदि हो जावें और अन्य भी सब विभूतियाँ भी हो जावें ।६४। हे अम्ब ! तीनों भुवनों में मुझे कुछ भी प्राप्त करने के योग्य न रहे। केवल आपके चरित की स्मृति से ही सभी ओर से मुझे सब कुछ की प्राप्ति का समय हो जावे ।६५। और आपका मेरे समीप में उपस्थित हो जाना भी निष्फल न होवे। इस रीति से मैं दूसरा वर माँगता हूँ उसको भी हे अम्बिके ! आप पूर्ण करिए ।६६। पूर्व में मेरा हिमवान् के साथ परिहास वाला सौहार्द था। क्रीड़ा में मत्त उसने कुछ अवाच्य वचन कह डाले थे ।६७। उसने कहा था कि मैं गौरी का गुरु हूँ—ऐसी बहुत आत्म प्रशंसा की थी। उसका वह वाक्य ऐसा था कि मेरे पास कुछ भी उत्तर नहीं था क्योंकि उसमें अधिक गुण था ।६८।

उभयोर्गुणसाम्ये तु मित्रयोरधिके गुणे ।
एकस्य कारणाज्जाते तत्रान्यस्य स्पृहा भवेत् ।।६६

गौरीगुरुत्वश्लाघार्थं प्राप्ताकामोऽप्यहं तपः ।
कृतवान्मंत्रिणीनाथे तत्त्वं मत्तनया भव ।।१००

यतो मन्नामविख्याता भविष्यसि न संशयः ।
इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा मातंगस्य महामुनेः ।
तथास्त्विति तिरोधत्त स च प्रीतोऽभवन्मुनिः ।।१०१

मातंगस्य महर्षेस्तु तस्य स्वप्ने तदा मुदा ।
तापिच्छमञ्जरीमेकां ददौ कर्णावतंसतः ।।१०२

तत्स्वप्नस्य प्रभावेण मातंगस्य सधर्मिणी ।
नाम्ना सिद्धिमती गर्भे लघुश्यामामधारयत् ।।१०३

तत एव समुत्पन्ना मातंगी तेन कीर्तिताः ।
लघुश्यामेति सा प्रोक्ता श्यामा यन्मूलकन्दभूः ।।१०४

मातंगकन्यका हृद्या: कोटीनामपि कोटिश: ।
लघुश्यामा महाश्यामामातंगी वृन्दसंयुता: ।
अङ्गशक्तित्वमापन्ना: सेवन्ते प्रियकप्रियाम् ।।१०५
इति मातंगकन्यानामुत्पत्ति: कुम्भसंभव ।
कथिता: सप्तकक्षाश्च शाला लोहादिनिर्मिता: ।।१०६

दोनों में गुणों की समता मित्रों में हो तो ठीक है यदि किसी में भी अधिक गुण होते हैं तो एक के कारण से दूसरे में भी स्पृहा हो जाया करती है ।९९। गौरो गुरुत्व की श्लाघा के लिए प्राप्ति कामना वाले मैंने तप किया था सो हे मन्त्रिणीनाथे ! अब आप मेरी पुत्री हो जावें ।१००। क्योंकि मेरे नाम से आप विख्यात होंगी—इसमें संशय नहीं है । मातंग महामुनि के इस वचन को सुनकर 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर वह तिरोहित हो गयी थीं और मुनि बहुत प्रसन्न हुए थे ।१०१। उस समय में मातग मुनि के स्वप्न के प्रसन्नता से कर्णावतंस से एक तापिच्छ की मंजरी प्रदान की थी। ।१०२। उस स्वप्न के प्रभाव से मातंग की सहधर्मिणी ने जिसका नाम सिद्धि मती था गर्भ में लघुश्यामा को धारण किया था ।१०३। उसी से जो समुत्पन्न हुई थी इसी कारण से मातंगी कही गयी है । वह लघुश्यामा भी कही गयी थी क्योंकि उसकी मूलकन्द भू श्यामा थी ।१०४। मातंग की कन्याएँ बड़ी सुन्दर थीं तथा करोड़ों थी । लघुश्यामा–महाश्यामा वृन्द संयुत मातंगी अङ्ग शक्तित्व को प्राप्त हुईं प्रियक प्रिया की सेवा किया करती हैं ।१०५। हे कुम्भसम्भव ! यही मातंग कन्याओं की उत्पत्ति है लोहादि से निर्मित सप्त कक्षा शालाएँ भी कह दी गयी हैं ।१०६।

श्रीनगर त्रिपुरा सप्त कक्षा वर्णन

अगस्त्य उवाच–
लोहादिसप्तशालानां रक्षका एव सन्ति वै ।
तन्नामकीर्तय प्राज्ञ येन मे संशयच्छिदा ।।१
हयग्रीव उवाच–
नानावृक्षमहोद्याने वर्तते कुम्भसंभव ।
महाकाल: सर्वलोकभक्षक: श्यामविग्रह: ।।२

श्यामकंचुकधारी च मदारुणविलोचनः ।
ब्रह्मांडचषके पूर्णं पिबन्विश्वरसायनम् ॥३
महाकालीं घनश्यामामनंगार्द्रामपाङ्गयन् ।
सिंहासने समासीनः कल्पांते कलनात्मके ॥४
ललिताध्यानसम्पन्नो ललितापूजनोत्सुकः ।
वितन्वँल्ललिताभक्तेः स्वायुषो दीर्घदीर्घताम् ।
कालमृत्युप्रमुख्यैश्च किंकरैरपि सेवितः ॥५
महाकालीमहाकालौ ललिताज्ञाप्रवर्त्तकौ ।
विश्वं कलयतः कृत्स्नं प्रथमेऽध्वनि वासिनौ ॥६
कालचक्रं मतङ्गस्य तस्यैवासननां गताम् ।
चतुरावरणोपेतं मध्ये बिन्दुमनोहरम् ॥७

श्री अगस्त्यजी ने कहा—लोहादि सात शालाओं के रक्षक भी होंगे ही। हे प्राज्ञ ! अब आप उनके नामों को भी बतला दीजिए जिससे मेरे मन में संशय का छेदन हो जावे ।१। श्री हयग्रीव जी ने कहा—हे कुम्भ सम्भव ! अनेक प्रकार के वृक्षों के महान उद्यान में समस्त लोकों के भक्षण करने वाला जिसका श्याम शरीर है वह महाकाल विद्यमान रहा करता है ।२। यह श्याम वर्ण की कञ्चुकी के धारण करने वाला था और मद से उसके लाल नेत्र थे। तथा ब्रह्माण्ड के प्याले में वह विश्व रसायन का पान किया करता है। ।३। घन के समान श्याम वर्ण वाली की ओर जो काम से आर्द्र थी कटाक्ष-पात कर रहा था। कलनात्मक कल्प के अन्त में वह सिंहासन पर विराज-मान रहा करता है ।४। यह सदा ललिता देवी के ध्यान में सम्पन्न रहता है और ललितादेवी के पूजन करने में इसकी उत्सुकता रहती है। जो भी ललितादेवी के भक्त हैं उनकी आयु की दीर्घता का विस्तार अधिक किया करता है। कालमृत्यु जिनमें प्रधान है ऐसे अनेक किङ्करों के द्वारा वह सेवित रहता है ।५। महाकाली और महाकाल ये दोनों ही ललितादेवी की आज्ञा के प्रवर्तक हैं ये प्रथम मार्ग में वास करने वाले सम्पूर्ण विश्व को कलित किया करते हैं ।६। उसी मतंग का यह काल चक्र आसनता को प्राप्त हुआ था। यह चार आवरणों से उपेत था और मध्य में मनोहर बिन्दु था ।७।

त्रिकोणं पञ्चकोणं च षोडशच्छदपंकजम् ।
अष्टारपंकजं चैवं महाकालस्तु मध्यगः ॥८

त्रिकोणे तु महाकाल्या महासंध्या महानिशा ।
एतास्तिस्रो महादेव्यो महाकालस्य शक्तयः ॥९

तत्रैव पञ्चकोणाग्रे प्रत्यूषश्च पितृप्रसूः ।
प्राह्णापराह्णमध्याह्ना: पञ्च कालस्य शक्तयः ॥१०

अथ षोडशपत्राब्जे स्थिता शक्तीर्मुने शृणु ।
दिनमिश्रा तमिस्रा च ज्योत्स्नी चैव तु पक्षिणी ॥११

प्रदोषा च निशीथा च प्रहरा पूर्णिमापि च ।
राका चानुमतिश्चैव तथैवामावस्यिका पुनः ॥१२

सिनीवाली कुहूर्भद्रा उपरागा च षोडशी ।
एता षोडशमात्रस्थाः शक्तयः षोडश स्मृताः ॥१३

कला काष्ठा निमेषाश्च क्षणाश्चैव लवास्त्रुटिः ।
मुहूर्ताः कुतपाहोरा शुक्लपक्षस्तथैव च ॥१४

एक त्रिकोण है—फिर पञ्च कोण हैं—फिर सोलह दलों वाला पङ्कज है—फिर आठ आरों काल पङ्कज है—और महाकाल मध्यगामी रहता है ।८। त्रिकोण में महाकाल्या–महासन्ध्या और महा निशा—ये तीन महा देवियाँ जो महाकाल की शक्तियाँ हैं विद्यमान हैं ।९। वहाँ पर ही पञ्चकोण के अग्रभाग से प्रत्यूष–पितृ प्रसू–प्राह्णपराह्ण–मध्याह्न ये पाँच काल की शक्तियाँ हैं ।१०। हे मुने ! अब आप सुनिए इसके पश्चात् सोलह दलों वाले कमल में जो शक्तियाँ स्थित रहा करती हैं । तमिस्रा–दिनमिश्रा–ज्योत्स्नी–पक्षिणी–प्रदोषा–निशीथा–प्रहरा–पूर्णिमा—राका–अनुमति और अमावस्यिका हैं ।११-१२। सिनीवाली—कुहू—भद्रा और सोलहवीं उपरागा है । ये सोलह मात्रस्थ षोडश शक्तियाँ कही गयी हैं ।१३। कला—काष्ठा—निमेषा—क्षणा—लवा–त्रुटि मुहूर्त तथा कुतपा होरा और शुक्ल पक्ष है ।१४।

कृष्णपक्षायनाश्चैव विषुवा च त्रयोदशी ।
संवत्सरा च परिवत्सरेडावत्सरापि च ॥१५

एताः षोडश पत्राब्जवासिन्यः शक्तयः स्मृताः ।
इद्वत्सरा ततश्चेन्दुवत्सरावत्सरेऽपि च ॥१६

तिथिर्वारांश्च नक्षत्रं योगाश्च करणानि च ।
एतास्तु शक्तयो नागपत्रांभोरुहसंस्थिताः ॥१७

कलिः कल्पा च कलना काली चेति चतुष्टयम् ।
द्वारपालकतां प्राप्तं कालचक्रस्य भास्वतः ॥१८

एता महाकालदेव्यो मदप्रहसिताननाः ।

मदिरापूर्णचषकमशेषं चारुणप्रभम् ।
दधाना: श्यामलाकारा: सर्वाः कालस्य योषितः ॥१९

ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणाः ।
निषेवन्ते महाकालं कालचक्रासनस्थितम् ॥२०

अथ कल्पकवट्यास्तु रक्षकः कुम्भसम्भव ।
वसन्ततुर्महातेजा ललिताप्रियकिङ्करः ॥२१

कृष्णपक्ष—अयन-विषुवा और—त्रयोदशी—सम्वत्सरा परि वत्सरा इडा वत्सरा ।१५। ये सोलह पत्राब्ज वासिनी शक्तियाँ कही गयी हैं। इद्वत्सरा—इन्दुवत्सरा—तिथि—वत्सरा—तिथि-वार—नक्षत्र—योग— करण ये शक्तियाँ नाग पत्राम्बु रुह में संस्थित रहती हैं।१६-१७। कलि—कल्प—कलना—काली—ये चार भास्वात काल चक्र के द्वार पालकता को प्राप्त होते हैं।१८। ये महाकाल देवियाँ मद से प्रहसित मुखों वाली हैं। उनका चषक अर्थात् प्याला मदिरा से परिपूर्ण रहा करता है और उसकी प्रभा अरुण होती है। ये सब काल की स्त्रियाँ श्यामल आकार वाली हैं।१९। ये कालचक्र के आसन पर स्थित होती हुई श्री ललितादेवी के ध्यान—पूजन जप और स्तोत्रों के पाठ में ही परायण रहती हैं और महाकाल की सेवा किया करती हैं।२०। हे कुम्भसम्भव! कल्पक वटी का रक्षक वसन्त ऋतु होता है जो महान् तेज से युक्त ललितादेवी का परम प्रिय किङ्कर है।२१।

पुष्पसिंहासनासीनः पुष्पमाध्वीमदारुणः ।
पुष्पायुधः पुष्पभूषः पुष्पच्छत्रेण शोभितः ॥२२

मधुश्रीर्माधवश्रीश्च द्वे देव्यौ तस्य दीव्यतः ।
प्रसूनमदिरामत्तो प्रसून शरलालसे ॥२३

सन्तानवाटिकापालो ग्रीष्मर्तुस्तीक्ष्णलोचनः ।
ललिताकिङ्करो नित्यं तस्यास्त्वाज्ञाप्रवर्तकः ।।२४
शुक्रश्रीश्च शुचिश्रीश्च तस्य भार्ये उभे स्मृते ।
हरिचन्दनवाटी तु मुने वर्षर्तुना स्थिता ।।२५
स वर्षर्तुर्महातेजा विद्युत्पिङ्गललोचनः ।
वज्राट्टहासमुखरो मत्तजीमूतवाहनः ।।२६
जीमूतकवचच्छन्नो मणिकार्मुकधारकः ।
ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणः ।।२७
वर्तते विन्ध्यमथन त्रैलोक्याह्लाददायकः ।
नभःश्रीश्च नभस्यश्रीः स्वरस्वारस्वमालिनी ।।२८

यह वसन्त ऋतु पुष्पों के आसन पर विराजमान और पुष्पों की माध्वी के मद से अरुण वर्ण वाला है । इसके आयुध भी कुसुमों के ही हैं तथा पुष्प ही भूषणों वाला और पुष्पों के छत की भूषा वाला है ।२२। मधु श्री और माधव श्री—ये दो देवियाँ उसकी दीप्त हैं । ये दोनों ही पुष्पों की मदिरा से मत्त हैं और प्रसून शर (कामदेव) की लालसा वाली हैं ।२३। सन्तान वाटिका का पालक ग्रीष्म ऋतु है जिसके लोचन बहुत तीक्ष्ण हैं । यह भी श्रीललिता देवी का सेवक नित्य ही रहता है तथा उसकी आज्ञा का प्रवर्तक है ।२४। शुक्र श्री और शुचि श्री—ये दो उसकी भार्याएँ हैं । हे मुने ! वर्षा ऋतु हरिचन्दन वाटिका में स्थित रहा करती है ।२५। वह वर्षा ऋतु महान् तेज से युक्त हैं और विद्युत् के सदृश उसके पिङ्गल लोचन हैं । यह वज्रपात के समान अट्टहास से शब्दायमान हैं तथा मेघ ही इसका वाहन होता है ।२६। मेघों के कवच से यह ढका हुआ रहता है और मणियों के कार्मुक वाला है । यह भी ललिता देवी के अर्चन ध्यान और स्तोत्र पाठ में तत्पर रहा करता है ।२७। यह विन्ध्य मथन त्रैलोक्य के आह्लाद का देने वाला है । नभः श्री—नभस्य श्री स्वर स्वार स्वरमालिनी उसकी शक्तियाँ हैं ।२८।

अम्बा दुला निरलिश्राभ्रयन्ती मेघयंत्रिका ।
वर्षयन्ती चिबुणिका वारिधारा च शक्तयः ।।२६

वर्षंत्यो द्वादश प्रोक्ता मदारुणविलोचनाः ।
ताभिः समं स वर्षर्तुः शक्तिभिः परमेश्वरीम् ॥३०

सदैव संजपन्नास्ते निजोत्थैः पुष्पमंडलैः ।
ललिताभक्तदेशांस्तु भूषयन्स्वस्य सम्पदा ॥३१

तद्वैरिणां तु वसुधामनावृष्ट्या निपीडयन् ।
वर्तते सततं देवकिङ्करो जलदागमः ॥३२

मन्दारवाटिकायां तु सदा शरदृतुर्वसन् ।
तां कक्षां रक्षति श्रीमाँल्लोकचित्तप्रसादनः ॥३३

इषश्रीश्च तथोर्जश्रीस्तस्यर्तोः प्राणनायिके ।
ताभ्यां संजहृतुस्तोयं निजोत्थैः पुष्पमंडलैः ।
अभ्यर्चयति साम्राज्ञीं श्रीकामेश्वरयोषितम् ॥३४

हेमन्तर्तुर्महातेजा हिमशीतलविग्रहः ।
सदा प्रसन्नवदनो ललिताप्रियकिङ्करः ॥३५

अम्बा—दुला—निरलि—अभ्रयन्ती—मेघयन्त्रिका—वर्षयन्ती–चिबुणिका और वारिधारा—वर्षन्ती ये बारह जो महान नेत्रों वाली हैं इसकी शक्तियां हैं ।२९। उस ऋतु की इष श्री और ऊर्ज श्री दो प्राण नायिकाएँ हैं। अपने उठाये हुए पुष्प मण्डलों से उन दोनों के द्वारा जल का भली-भाँति हरण किया जाया करता था। श्री कामेश्वर ही योषित का जो महा साम्रस्तो थी ये अभ्यर्चन करती हैं। उन सबके साथ जो वर्षा ऋतु की शक्तियां हैं वे श्रम से उत्थित पुष्पमण्डलों से सदा ही सम्पन्न हैं। जो ललिता के भक्तों के देश हैं उन पर कृपा से सम्पदा के द्वारा भूषित किया करती हैं ।३०-३१। उनके शत्रुओं की वसुधा को अनावृष्टि से पीड़ित करता हुआ देवी का किङ्कर जलदागम वर्तमान रहता है ।३२। मन्दारों की वाटिका में सदा ही शरद ऋतु निवास किया करता है। वह श्रीमान् लोगों के चित्त को प्रसन्न करने वाला उस कक्षा की रक्षा करता है ।३२-३३। हेमन्त ऋतु हिमसे शीतल विग्रह वाला होता है। यह सदा ही प्रसन्न मुख वाला है और ललिता देवी का बहुत ही प्रिय किंकर है ।३४-३५।

निजोत्थैः पुष्पसंभारैरर्चयन्परमेश्वरीम् ।
पारिजातस्य वाटीं तु रक्षति ज्वलनार्दनः ॥३६
सहःश्रीश्च सहस्यश्रीस्तस्य द्वे योषिते शुभे ।
कदम्बवनवाट्यास्तु रक्षकः शिशिराकृतिः ॥३७
शिशिरर्तुर्मुनिश्रेष्ठ वर्तते कुम्भसम्भव ।
सा कक्ष्या तेन सर्वत्र शिशिरीकृतभूतला ॥३८
तद्वासिनी ततः श्यामा देवता शिशिराकृतिः ।
तपःश्रीश्च तपस्यश्रीस्तस्य द्वे योषिदुत्तमे ।
ताभ्यां सहार्चयत्यंबां ललितां विश्वपावनीम् ॥३९
अगस्त्य उवाच–
गन्धर्ववदन श्रीमन्नानावृक्षादिसप्तकैः ।
प्रथमोद्यानपालस्तु महाकालो मया श्रितः ॥४०
चतुरावरणं चक्रं त्वया तस्य प्रकीर्तितम् ।
षण्णामृतूनामन्येषां कल्पकोद्यानवाटिषु ।
पालकत्वं श्रुतं त्वत्तश्चक्रदेव्यस्तु न श्रुताः ॥४१
अत एव वसन्तादिचक्रावरणदेवताः ।
क्रमेण ब्रूहि भगवन्सर्वज्ञोऽसि यतो महान् ॥४२

अपने में समुत्पन्न कुसुमों के संभारों से यह परमेश्वरी की अर्चना किया करता है। ज्वलनार्दन यह पारिजात की वाटिका की सर्वदा रक्षा किया करता है।३६। सहः श्री और सहस्य श्री—ये दो परम शुभ उसकी पत्नियाँ हैं। उन अपनी उत्तम नारियों को साथ में लेकर यह विश्व पावनी अम्बा ललिता का समर्चन किया करता है। कदम्ब वन की वाटिका की शिशिराकृति रक्षा करता था।३७। हे मुनिश्रेष्ठ ! हे कुम्भ सम्भव ! यह शिशिर ऋतु है। वह सभी जगह कक्ष्या उसी से शीतल भूतल वाली है।३८। उसमें निवास करने वाली शिशिराकृति श्यामा देवता है। तपः श्री और तपस्य श्री ये दो उसकी उत्तम स्त्रियाँ हैं। उन दोनों के ही साथ वह विश्व-पावती ललिता देवी का अर्चन करता है।३९। अगस्त्यजी ने कहा—हे

गन्धर्व वदन ! श्री सम्पन्न अनेक वृक्षों के सप्तक से प्रथमोद्यान का पालक महाकाल मयाश्रित है । चतुरधारण चक्र आपने उसका कीत्तित किया है । अन्यों का छै ऋतुएँ कल्पोद्यान वाटिकाओं में पाला है—यह भी सुना है और आप से चक्र की देवियाँ नही सुनी हैं ।४०-४१। अतएव वसन्त आदि चक्र के आवरण देवता आप क्रम से बताइए । क्योंकि आप तो महान सर्वज्ञ महापुरुष हैं ।४२।

हयग्रीव उवाच—

आकर्णय मुनिश्रेष्ठ तत्तच्चक्रस्थदेवता ।।४३

कालचक्रं पुरा प्रोक्तं वासन्तं चक्रमुच्यते ।

त्रिकोणं पञ्चकोणं च नागच्छदसरोरुहम् ।

षोडशारं सरोजं च दशारद्वितयं पुनः ।।४४

चतुरस्रं च विज्ञेयं सप्तावरणसंयुतम् ।

तन्मध्ये बिन्दुचक्रस्थो वसन्तर्तुर्महाद्युतिः ।।४५

तदेकद्वयसंलग्ने मधुश्रीमाधवश्रियौ ।

उभाभ्यां निजहस्ताभ्यामुभयोस्तनमेककम् ।।४६

निपीडयन्स्वहस्तस्य युगलेन ससौरभम् ।

सपुष्पमदिरापूर्णचषकं पिशितं वहन् ।।४७

एवमेव तु सर्वर्तुध्यानं विंध्यनिषूदन ।

वर्षर्तोस्तु पुनर्ध्याने शक्तिद्वितयमादिमम् ।

अंकस्थितं तु विज्ञेयं शक्तयोऽन्याः समीपगाः ।।४८

अथ वासन्तचक्रस्थदेवीः शृणु वदाम्यम् ।

मधुशुक्लप्रथमिका मधुशुक्लद्वितीयिका ।।४९

श्री हयग्रीवजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! आप उन-उन चक्रों में स्थित देवताओं को श्रवण कीजिए ।४३। पहिले हमने कालचक्र बता दिया है । अब वासन्त बताया जाता है । त्रिकोण पञ्चकोण नागच्छद सरोरुह है । सोलह आर हैं ऐसा सरोज है फिर चौबीस हैं ।४४। सात आवरणों से युक्त चतुरस्र जान लेना चाहिए । उसके मध्य में बिन्दुचक्र में स्थित महान् द्युति वाला

वसन्त ऋतु है।४५। उसके एक के साथ दो प्रियाएँ संलग्न रहती हैं जिनके नाम मधु श्री और माधव श्री हैं। दोनों के स्तनों को अपने एक-एक हाथ से ग्रहण किये हुए हैं।४६। उन उरोजों को अपने दोनों हाथों से निपीड़ित करता है और सौरभ से समन्वित है। वह सौरभ वाली मदिरा पुष्पों से संयुत है उसका चषक भरा हुआ है और पिशित भी है इनका वहन कर रहा है।४७। विन्ध्य निषूदन ! इस रीति से सब ऋतुओं का ध्यान करे। वर्षा ऋतु के ध्यान ये फिर दो शक्तियों आदि का ध्यान करे। जो उसके अङ्क में ही स्थित हैं तथा अन्य शक्तियाँ का उसके समीप में स्थित हैं।४८। उसके अनन्तर अब उस वासन्त चक्र में जो देवियाँ वर्तमान रहती हैं उनको भी मैं आपको अभी बतलाता हूँ—आप उनका श्रवण कीजिए। मधु शुक्ला पहली है और मधु शुक्ल द्वितीय हैं।४९।

मधुशुक्लतृतीया च मधुशुक्लचतुर्थिका ।
मधुशुक्ला पञ्चमी च मधुशुक्ला च षष्ठिका ।।५०
मधुशुक्ला सप्तमी च मधुशुक्लाष्टमी पुनः ।
नवमी मधुशुक्ला च दशमी मधुशुक्लिका ।।५१
मधुशुक्लैकादशी च द्वादशी मधुशुक्लतः ।
मधुशुक्लत्रयोदश्यां मधुशुक्ला चतुर्दशी ।।५२
मधुशुक्ला पौणमासी प्रथमा मधुकृष्णिका ।
मधुकृष्णा द्वितीया च तृतीया मधुकृष्णिका ।।५३
चतुर्थी मधुकृष्णा च मधुकृष्णा च पञ्चमी ।
षष्ठी तु मधुकृष्णा स्यात्सप्तमी मधुकृष्णतः ।।५४
मधुकृष्णाष्टमी चैव नवमी मधुकृष्णतः ।
दशमी मधुकृष्णा च विन्ध्यदर्पनिषूदन ।।५५
मधुकृष्णैकादशी तु द्वादशी मधुकृष्णतः ।
मधुकृष्णत्रयोदश्या मधुकृष्णचतुर्दशी ।।५६

मधुशुक्ल तृतीया है और मधुशुक्ल चतुर्थिका है। मधु शुक्ला पञ्चमी और मधुशुक्ल षष्ठिका है।५०। मधुशुक्ला सप्तमी और फिर मधुशुक्ला अष्टमी है 'नवमी मधुशुक्ला है।५१। मधुशुक्ला एकादशी और

द्वादशी मधुशुक्ल है मधु शुक्ल त्रयोदशीमें तथा मधुशुक्ला चतुर्दशी है।५२। मधुशुक्ला पौर्णमासी और मधुकृष्णा प्रथमा है। मधुकृष्णा द्वितीया और तृतीया मधुकृष्णिका है।५३। चतुर्थी मधुकृष्णा और मधुकृष्णा पञ्चमी। षष्ठी मधुकृष्णा और सप्तमी मधु कृष्ण से है।५४। मधुकृष्णा अष्टमी मधुकृष्ण से नवमी है। हे विन्ध्यदर्प निषूदन! दशमी मधुकृष्णा है।५५। मधुकृष्णा एकादशी है तथा द्वादशी मधु कृष्ण से है। मधु कृष्ण त्रयोदशी से है और मधु कृष्ण चतुर्दशी है।५६।

मध्वमा चेति विज्ञेयास्त्रिंशदेतास्तु शक्तय: ।
एवमेव प्रकारेण माधवाख्यो परिस्थिति: ।।५७
शुक्लप्रतिपदाद्यास्तु शक्तयस्त्रिंशदन्यका: ।
मिलित्वा षष्टिसंख्यास्तु ख्याता वासन्तशक्तय: ।।५८
स्वै:स्वैर्मंत्रैस्तत्र चक्रे पूजनीया विधानत: ।
वासन्तचक्रराजस्य सप्तावरणभूमय: ।।५६
षष्टि: स्युर्देवतास्तासु षष्टिभूमिषु संस्थिता: ।
विभज्य चार्चनीया: स्युस्तत्तन्मंत्रैस्तु साधकै: ।।६०
तथा वासन्तचक्रं स्यात्तथैवान्येषु च त्रिषु ।
देवतास्तु परं भिन्ना: शुक्रशुच्यादिभेदत: ।।६१
शक्तय: षष्टिसंख्याता ग्रीष्मचक्रे महोदया: ।
एवं वर्षादिके चक्रे भेदान्नभनभस्यजान् ।।६२
षष्टिषष्टिसु शक्तीना चक्रेचक्रे प्रतिष्ठिता: ।
ग्रन्थविस्तारभीत्या तु तत्संख्यानाद्विरम्यते ।।६३

मधु अमा है--ये तीस शक्तियाँ हैं। इसी प्रकार से माधवाख्य के ऊपर में स्थित हैं ।५७। शुक्ल प्रतिपदा आदिक अन्य तीस शक्तियाँ हैं। ये सब मिलकर वासन्त शक्तियाँ साठ विख्यात है।५८। अपने-अपने मन्त्रों के द्वारा वहाँ चक्र में वासन्त चक्रराज में वासन्त चक्रराज की सात आवरण भूमियाँ विधि से पूजन करने के योग्य हैं ।५६। साठ भूमियों में ये साठ देवता संस्थित हैं। साधकों के द्वारा विभाग करके उन-उन मन्त्रों से पूजन करने के योग्य हैं।६०। उसी भाँति से वासन्त चक्र तीन अन्यों में है और

शुक्र शुच्यादि के भेद से देवता भिन्न हैं ।६१। शक्तियाँ संख्या में साठ हैं जो महोदया ग्रीष्म चक्र में हैं। इसी तरह से वर्षादिक चक्र में भेद से नभन-भस्यज हैं ।६२। ये साठ-साठ शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। ग्रन्थ के विस्तार से भय से उनकी संख्या करने से विराम लिया जा रहा है ।६३।

आतंव्याः शक्तयस्त्वेता ललिताभक्त सौख्यदाः ।
ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणाः ॥६४
कल्पादिवाटिकाचक्रे सञ्चरंत्यो मदालसाः ।
स्वस्वपुष्पोत्थमधुभिस्तर्पयंत्यो महेश्वरीम् ॥६५
मिलित्वा चैव संख्याताः षट्युत्तरशतत्रयम् ।
एवं सप्तसु शालेषु पालिकाश्चक्रदेवताः ॥६६
नामकीर्तनपूर्वं तु प्रोक्तस्तुभ्यं प्रपृच्छते ।
अन्येषामपि शालानामुपादानं तु पूरकम् ।
विस्तारं तत्र शक्ति च कथयाम्यवधारय ॥६७

ये शक्तियाँ ललिता देवी के सौख्य के देने वाली हैं इनका आहरण करना चाहिए। जो भी ललिता के पूजन ध्यान जप और स्तोत्र में परायण हैं ।६४। कल्पादि वाटिका के चक्र में मदालसा ये सञ्चरण किया करती हैं। अपने-अपने पुष्पों के मधु से ये महेश्वरी का तर्पण किया करती हैं ।६५। सब मिलकर तीन सौ साठ होती हैं। इसी तरह से सात शालों में चक्र देवता पालिका हैं।६६। आपने पूछा है तो आपके सामने नामों का कीर्तन कर दिया है। अन्य शालाओं का उपादान पूरक है। उनका विस्तार और शक्ति कहता हूँ, आप अवधारण कीजिए ।६७।

॥ पुष्पराग प्रकारादि मुक्ताकार वर्णन ॥

हयग्रीव उवाच–

कथितं सप्तशालानां लक्षणं शिल्पिभिः कृतम् ।
अथ रत्नमयाः शालाः प्रकीर्त्यंतेऽवधारय ॥१
सुवर्णमयशालस्य पुष्परागमयस्य च ।
सप्तयोजनमात्रं स्यान्मध्येन्तरमुदाहृतम् ॥२

तत्र सिद्धाः सिद्धनार्यः खेलंति मदविह्वलाः ।
रसैः रसायनैश्चापि खड्गैः पादांजनैरपि ।।३
ललितायां भक्तियुक्तास्तर्पयन्तो महाजनान् ।
वसन्ति विविधास्तत्र पिबन्ति मदिरारसान् ।।४
पुष्परागादिशालानां पूर्ववद्द्वारक्लृप्तयः ।
पुष्परागादिशालेषु कवाटार्गलगोपुरम् ।
पुष्परागादिजं ज्ञेयमुच्चेन्द्वादित्यभास्वरम् ।।५
हेमप्राकारचक्रस्य पुष्परागमयस्य च ।
अन्तरे या स्थली सापि पुष्परागमयी स्मृता ।।६
वक्ष्यमाणमहाशालाकक्षासु निखिलास्वपि ।
तद्वर्णाः पक्षिणस्तत्र तद्वर्णानि सरांसि च ।।७

श्री हयग्रीवजी ने कहा—शिल्पियों के द्वारा निर्मित सप्त शालाओं का लक्षण बता दिया गया है। इसके अनन्तर रत्नों से परिपूर्ण शालायें अब कीर्त्तित की जाती है उनका आप अवधारण कीजिए ।१। सुवर्ण से परिपूर्ण शाल और पुष्प रागों से परिपूर्ण शाल का जो मध्य में अन्तर है वह सात योजन मात्र कहा गया है ।२। वहाँ पर सिद्ध और मद से विह्वल सिद्धों की नारियाँ खेला करती हैं। उनकी क्रीड़ा के साधन रस-रसायन-खड्ग और पादाञ्जन होते हैं ।३। ये ललिता देवी में भक्ति से युक्त हैं और महाजनों का तर्पण किया करती हैं। वहाँ पर अनेक प्रकार के वास करते हैं और मदिरारस का पान किया करते हैं ।३। पुष्पराज आदि की जो शालाएँ हैं उनके द्वारों की रचनाएँ पूर्व की ही भाँति हैं। पुष्प राग प्रभृति की शालों में कपाट अर्गला और गोपुर हैं। यह सभी पुष्प राग आदि से समुत्पन्न है तथा इन्दु और सूर्य के समान ही परम भास्वर हैं ।५। हेम के प्राकार वाले चक्र का और पुष्परागों से परिपूर्ण का जो अन्तर है उसमें जो स्थल है वह भी पुष्परागों से परिपूर्ण है ऐसा ही कहा गया है ।६। आगे कहे जाने वाली महा शालाओं की कक्षाओं में समस्तों में भी उनके ही वर्ण वाले सब पक्षी हैं और उनके ही वर्णों वाले सब सरोवर हैं ।७।

तद्वर्णसलिला नद्यस्तद्वर्णाश्च मणिद्रुमाः ।

सिद्धजातिषु ये देवीमुपास्य विविधैः क्रमैः ।
त्यक्तवन्तो वपुः पूर्वं ते सिद्धास्तत्र सांगनाः ॥८
ललितामन्त्रजप्तारो ललिताक्रमतत्पराः ।
ते सर्वे ललितादेव्या नामकीर्तनकारिणः ॥९
पुष्परागमहाशालांतरे मारुतयोजने ।
पद्मरागमयः शालश्चतुरस्रः समंततः ॥१०
स्थली च पद्मरागाढ्या गोपुराद्यं च तन्मयम् ।
तत्र चारणदेशस्थाः पूर्वदेहविनाशतः ।
सिद्धि प्राप्ता महाराज्ञीचरणाम्भोजसेवकाः ॥११
चारणीनां स्त्रियश्चापि चार्वंग्यो मदलालसाः ।
गायन्ति ललितादेव्या गीतिबन्धान्मुहुर्मुहुः ॥१२
तत्रैव कल्पवृक्षाणां मध्यस्थवेदिकास्थिताः ।
भर्तृभिः सहचारिण्यः पिबन्ति मधुरं मधु ॥१३
पद्मरागमहाशालान्तरे मरुतयोजने ।
गोमेदकमहाशालः पूर्वशालासमाकृतिः ।
अतितुङ्गो हीरशालस्तयोर्मध्ये च हीरभूः ॥१४

वहाँ की समस्त नदियाँ भी उसी के वर्ण वाली हैं तथा मणियों के वृक्ष भी उसी वर्णों वाले हैं। अनेक प्रकार के क्रमों से जो सिद्ध जातियों में देवी की उपासना करने वाले थे पूर्व शरीर को त्याग कर अङ्गनाओं के साथ ही थे ।८। वे सभी ललितादेवी के मन्त्र का जाप करने वाले और ललिता के ही क्रम में परायण थे। वे सभी ललितादेवी के नाम का कीर्त्तन करने वाले ही थे ।९। पुष्पराग के महाशाल के अन्तर में मारुत योजन में पद्मरागमय एक शाल है जो सभी ओर से चौकोर है ।१०। वहाँ की जो स्थली है वह भी पद्मरागों से संयुत है और गोपुर आदि भी उसी पद्मराग से परिपूर्ण है। वहाँ पर चारण देश में संस्थित होने वाले अपने देह के विनाश हो जाने से सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं क्योंकि वे सभी महाराज्ञी के चरण कमलों के सेवक थे ।११। चारणों की स्त्रियाँ भी परम सुन्दर अङ्गों

वाली हैं और मद से अलस । वे सभी ललितादेवी के गीत बन्धों को बार-बार गाया करती हैं ।१२। वहीं पर कल्प वृक्षों के मध्य में जो वेदिकाए थीं उनमें संस्थित होकर अपने भर्त्ताओं के साथ सहचरण करती हुए मधुर मधु का पान किया करती हैं ।१३। पद्मरागों के महाशाल के मध्य में मारुत योजन में गोमेद की महाशाल है और उसका आकार प्रकार भी के पूर्व के ही समान है । अत्यन्त ऊँचा हीरों का पाल है और उन दोनों के मध्य में ही रकों की ही भूमि भी है ।१४।

तत्र देवीं समभ्यर्च्य पूर्वजन्मनि कुम्भज ।
वसन्त्यप्सरसां वृन्दैः साकं गन्धर्वपुङ्गवाः ॥१५
महाराज्ञीगुणगणान्गायन्तो वल्लकीस्वनैः ।
कामभोगैकरसिकाः कामसन्निभविग्रहाः ।
सुकुमारप्रकृतयः श्रीदेवीभक्तिशालिनः ॥१६
गोमेदकस्य शालस्तु पूर्वशालसमाकृतिः ।
तदन्तरे योगिनीनां भैरवाणां च कोटयः ।
कालसंकर्षणीमंबां सेवन्ते तत्र भक्तितः ॥१७
गोमेदकमहाशालान्तरे मारुतयोजने ।
उर्वशी मेनका चैव रम्भा चालंबुषा तथा ॥१८
मन्जुघोषा सुकेशी च पूर्वचित्तिघृताचिका ।
कृतस्तला च विश्वाची पुञ्जिकस्थलया सह ॥१९
तिलोत्तमेति देवानां वेश्या एतादृशोऽपराः ।
गन्धर्वैः सह नव्यानि कल्पवृक्षमधूनि च ॥२०
पिबन्त्यो ललितादेवीं ध्यायंत्यश्च मुहुर्मुहुः ।
स्वसौभाग्यविवृद्ध्यर्थं गुणयंत्यश्च तन्मनुम् ॥२१

हे कुम्भज ! वहाँ पर देवी की भली भाँति अर्चना करके परम श्रेष्ठ गन्धर्वों का समूह अप्सराओं के समुदायों के ही साथ में निवास किया करते हैं ।१५। वे सब वल्लकी वाद्य के शब्दों से महाराज्ञी के गुणगणों का गायन किया करते हैं । ये काम भोग में बड़े रसिक हैं तथा कामदेव के ही समान

शरीरों वाले परमाधिक सुन्दर हैं। ये श्री देवी की भक्ति करने वाले हैं और इनकी प्रकृतियां भी परम सुकुमार होती हैं।१६। गोमेदों का जो शाल है वह भी पहिले शाल के ही सदृश आकार वाला है। उसके मध्य में करोड़ों योगिनियां और भैरवों की श्रेणियां विद्यमान हैं वहां पर वे भक्तिभाव से काल संकर्षिणी अम्बा की सेवा किया करते हैं।१७। गोमेदक शाल के मध्य में बहुत सी प्रमुख परम सुन्दरी अप्सराएं रहा करती हैं जो कि मारुत योजन में है। उर्वशी—मेनका—रम्भा—अलम्बुषा—मन्जुघोषा—सुकेशी—पूर्वचित्ति—घृताचिका—विश्वाची और पुञ्जिकास्थला—ये सभी वहीं पर रहती हैं।१८-१९। देवों की वेश्या तिलोत्तमा भी है और ऐसी अनेक दूसरी भी हैं। वे सब गन्धर्वों के साथ में रहकर कल्प वृक्षों के मधुओं का पान किया करती हैं।२०। तथा ललिता देवी का ध्यान बार-बार करती हैं। सौभाग्य की वृद्धि के लिए ही उस देवी के मन्त्र का गुणन किया करती हैं।२१।

चतुर्दशसु चोत्पन्ना स्थानेष्वप्सरसोऽखिला: ।
तत्रैव देवीमर्चंत्यो वसन्ति मुदिताशया: ।।२२

अगस्त्य उवाच—

चतुर्दशापि जन्मानि तासामप्सरसां विभो ।
कीर्तय त्वं महाप्राज्ञ सर्वविद्यामहानिधे ।।२३

हयग्रीव उवाच—

ब्राह्मणो हृदयं कामो मृत्युरुर्वी च मारुत: ।
तपनस्य कराश्चन्द्रकरो वेदाश्च पावक: ।।२४
सौदामिनी च पीयूषं दक्षकन्या जलं तथा ।
जन्मन: कारणान्येतान्यामनंति मनीषिण: ।।२५
गीर्वाणगण्यनारीणां स्फुरत्सौभाग्यसंपदाम् ।
एता: समस्ता गंधर्वै: सार्धमर्चंति चक्रिणीम् ।।२६
किन्नरा: सह नारीभिस्तथा किंपुरुषा मुने ।
स्त्रीभि: सह मदोन्मत्ता हीरकस्थलमाश्रिता: ।।२७

महाराज्ञीमन्त्रजापैर्विधूताशेषकल्मषाः ।
नृत्यंतश्चैव गायंतो वर्तंते कुम्भसम्भव ॥२८

चौदह स्थानों में समस्त अप्सराएं समुत्पन्न हुई हैं। वहीं पर परमानन्द से सुसम्पन्न होकर देवी का अर्चन करती हुई निवास किया करती हैं।२२। अगस्त्यजी ने कहा—हे विभो ! आप तो समस्त विद्याओं के निधि हैं। हे महाप्राज्ञ ! बन अप्सराओं के चौदहों जन्मों का आप वर्णन कीजिए।२३। श्री हयग्रीव ने कहा—ब्राह्मण—हृदय—काम—मृत्यु—उर्वी—मारुत—तपन के कर—चन्द्रकर—वेद—पावक—सौदामिनी—पीयूष—दक्ष कन्या—जल—ये ही मनीषी गण जन्म के कारण माना करते हैं।२४-२५। स्फुरित सौभाग्य की सम्पदा वाली देवगणों में मुख्यों की नारियों की ये समस्त गन्धर्वों के ही साथ में चक्रिणी की अर्चना किया करती हैं।२६। हे मुने ! अपनी नारियों के साथ किन्नर तथा किम्पुरुष अपनी स्त्रियों के सहित मद से उन्मत्त होते हुए उस हीरों के स्थल में आश्रम लिए हुए हैं।२७। हे कुम्भसम्भव ! महाराज्ञी के मन्त्र के जापों से समस्त कल्मषों को दूर कर देने वाले नृत्य करते हुए और गान करते हुए विद्यमान रहा करते हैं।२८।

तत्रैव हीरकक्षोण्यां वज्रा नाम नदी मुने ।
वज्राकारैर्निबिडिता भासमाना तटद्रुमैः ॥२९
वज्ररत्नैकसिकता वज्रद्रवमयोदका ।
सदा वहति सा सिंधुः परितस्तत्र पावनी ॥३०
ललितापरमेशान्यां भक्ता ये मानवोत्तमाः ।
ते तस्या उदकं पीत्वा वज्ररूपकलेवराः ।
दीर्घायुषश्च नीरोगा भवन्ति कलशोद्भव ॥३१
भंडासुरेण गलिते मुक्ते वज्रे शतक्रतुः ।
तस्यास्तीरे तपस्तेपे वज्रेशीं प्रति भक्तिमान् ॥३२
तज्जवलादुदिता देवी वज्रं दत्त्वा बलद्विषे ।
पुनरंतर्दधे सोऽपि कृतार्थः स्वर्गमेयिवान् ॥३३
अथ वज्राख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने ।
वैदूर्यशाल उत्तुंगः पूर्ववद्गोपुरान्वितः ।

स्थाली च तत्र वैदूर्यैर्निर्मिता भास्वराकृतिः ।।३४
पातालवासिनो ये ये श्रीदेव्यर्चनसाधकाः ।
ते सिद्धमूर्तयस्तत्र वसन्ति सुखमेदुराः ।।३५

हे मुने ! वहीं पर हीरों की भूमि में एक वज्र नाम वाली नदी हैं। उसके तट पर जो द्रुम हैं वे वज्राकार हैं। उनसे वह निविड़ित है ऐसी ही भासमान होती है।२९। वह नदी परम पावनी सदा ही बहती रहती है और सभी ओर उसका बहाव रहता है। उसका जल ही ऐसा प्रतीत होता है कि वज्रों से परिपूर्ण है तथा उसकी सिकत्ता भी वज्र (हीरा) रत्नों का ही मुख्य भाग है।३०। परमेशानी ललिता के जो मानव परम भक्त हैं वे ही उस नदी के जल का पान करके वज्र स्वरूप कलेवरों वाले हो जाया करते हैं। वे दीर्घ आयु वाले नीरोग हे कलशोद्भव ! हुआ करते हैं।३१। भण्डासुर के द्वारा गलित और वज्र के मुक्त होने पर इन्द्रदेव ने बज्रेशी के चरणों में भक्ति भाव से उस नदी के तट पर तपश्चर्या की थी।३२। उसके जल से समुदित हुई देवी ने इनके लिए वज्र दिया था। फिर वह अन्तर्हित हो गयी थीं और वह इन्द्र भी कृतार्थ होकर स्वर्ग को चला गया था।३३। इसके अनन्तर वज्राख्य शाल के अन्तर में मारुत योजन में ठीक बहुत ऊँचा वैदर्य शाल है और उसका भी गोपुर तथा द्वार पूर्व के ही समान है। वहाँ की स्थली भी वैदूर्यों से निर्मित है और उसकी आकृति परम भास्वर है।३४। जो भी पाताल के निवासी श्री देवी के साधक प्राणी हैं वे ही सिद्ध मूर्ति वाले सुख से मेदुर होकर वहाँ पर निवास किया करते हैं।३५।

शेषकर्कोटकमहापद्मवासुकिशंखकाः ।
तक्षकःशङ्खचूडश्च महादन्तो महाफणः ।।३६
इत्येवमादयस्तत्र नागानागस्त्रियोऽपि च ।
बलींद्रप्रमुखानां च दैत्यानां धर्मवर्तिनाम् ।
गणस्तत्र तथा नागैः सार्धं वसति सांगनाः ।।३७
ललितामन्त्रजप्तारो ललिताशास्त्रदीक्षिताः ।
ललितापूजका नित्यं वसन्त्यसुरभोगिनः ।।३८
तत्र वैदूर्यकक्षायां नद्यः शिशिरपायसः ।
सरांसि विमलांभांसि सारसालंकृतानि च ।।३९

भवनानि तु दिव्यानि वैदूर्यमणिमंति च ।
तेषु क्रीडंति ते नागा असुराश्च सहांगना: ॥४०
वैदूर्याख्यमहाशालान्तरे मारुतयोजने ।
इन्द्रनीपमय: शालश्चक्रवाल इवापर: ॥४१
तन्मध्यकक्षाभूमिश्च नीलरत्नमयी मुने ।
तत्र नद्यश्च मधुरा: सरांसि शिशिराणि च ।
नानाविधानि भोग्यानि वस्तूनि सरसान्यपि ॥४२

शेष—कर्कोटक—महापद्म—वासुकि—शंखक—तक्षक—शंखचूड़—महादन्त—महाफण—इत्येवमादिक नाग वहाँ पर तथा उन नागों की स्त्रियाँ भी हैं और बलीन्द्र प्रभृती धर्मवर्ती दैत्यों का गण भी अपनी अङ्गनाओं के साथ वहाँ पर नागों के सहित वास किया करते हैं ।३६-३७। ये सभी ललिता देवी के शास्त्र में दीक्षित हैं और ललिता देवी की पूजा करने वाले वहाँ पर निवास किया करते हैं ।३८। वहाँ पर वैदूर्य मणियों की कक्षा में नदियाँ भी शिशिर जलों वाली हैं । सरोवर भी विमल जलों वाले तथा सारस पक्षियों से विभूषित हैं ।३९। वहाँ पर जो भवन हैं वे परम दिव्य हैं तथा वैदूर्यमणियों के ही द्वारा निर्मित हैं । उन भवनों में नागों के समुदाय और अपनी अङ्गनाओं के साथ लेकर असुरगण क्रीड़ा किया करते हैं ।४०। वैदूर्याख्य महाशाला के अन्तर में मारुत योजन में एक इन्द्रनील मणियों से परिपूर्ण-दूसरे चक्रवाल के ही तुल्य शाल है ।४१। उसके मध्य की कक्षा की भूमि भी हे मुने ! नील रत्नमयी है और वहाँ पर नदियाँ मधुर हैं और सरोवर भी शिशिर हैं । वहाँ पर अनेक प्रकार की परम दिव्य एवं सरस भोगने के योग्य वस्तुएँ भी हैं ।४२।

ये भूलोकगता मर्त्या ललितामन्त्रसाधका: ।
ते देहांते शक्रनीलकक्ष्यां प्राप्य वसंति वै ॥४३
तत्र दिव्यानि वस्तूनि भुञ्जाना वनितासखा: ।
पिबन्तो मधुरं मद्यं नृत्यतो भक्तिनिर्भरा: ॥४४
सरस्सु तेषु सिंधूनां कुलेषु कलशोद्भव ।
लतागृहेषु रम्येषु मन्दिरेषु महर्द्धिषु ॥४५

सदा जपंतः श्रीदेवीं पठन्तश्चापि तद्गुणान् ।
निवसंति महाभागा नारीभिः परिवेष्टिताः ॥४६

कर्मक्षये पुनर्यांति भूलोके मानुषीं तनुम् ।
पूर्ववासनया युक्ताः पुनरर्चंति चक्रिणीम् ।
पुनर्यांति श्रीनगरे नीलमहास्थलीम् ॥४७

तत्स्थलस्यैव संपर्के गद्वेषसमुद्भवैः ।
नीलैर्भावैः सदा यु वर्तते मनुजा मुने ॥४८

ये पुनर्ज्ञानिनो मर्त्या निर्द्वंद्वा नियतेन्द्रियाः ।
ते मुने विस्मयाविष्टाः संविशंति महेश्वरीम् ॥४९

जो मानव भूलोक के मध्य में हैं और ललितादेवी के मन्त्र की साधना करने वाले हैं वे अपने देहों के अन्त में इन्द्र देव की नील कक्ष्या को प्राप्त करके वहाँ पर ही निवास किया करते हैं ।४३। वहाँ पर अपनी वनिताओं के साथ में दिव्य वस्तुओं का भोग करते हुए मधुर मद्य का पान किया करते हैं और भक्तिभाव में निर्भर होते हुए नृत्य किया करते हैं ।४४। हे कलशोद्भव ! उन सरोवरों में और नदियों के सपुदायों में—लताओं के गृहों में तथा रम्य एवं महान् ऋद्धियों वाले मन्दिरों में वे सदा श्रीदेवी का जाप करते और उसके ही गुणगणों को पढ़ा करते हैं । ये महान भाग वाले पुरुष अपनी नारियों से परिवेष्टित होकर निवास किया करते हैं ।४५-४६। जब इनके पुण्य कर्मो का क्षय हो जाता है तो उस स्वर्गीय सुख का त्याग करके फिर इसी मनुष्य का देह प्राप्त किया करते हैं । पूर्व की वासना उनकी आत्मा में बनी ही रहा करती है और वे पुनः चक्रिणी का अर्चन किया करते हैं । फिर वे श्रीनगर में शक्रनील महास्थली में गमन किया करते हैं । ।४७। हे मुने ! उस स्थल के सम्पर्क से ही राग-द्वेष से समुत्पन्न भावों से जो नील होते हैं वे सर्वदा युक्त होते हैं ऐसे ही मनुष्य रहते हैं ।४८। जो ज्ञान वाले मनुष्य होते हैं वे निर्द्वन्द्व और नियत इन्द्रियों वाले हैं । हे मुने ! वे विस्मय युक्त होकर महेश्वरी में प्रवेश किया करते हैं ।४९।

इन्द्रनीलाख्यशालस्यांतरे मारुतयोजने ।
मुक्ताफलमयः शालः पूर्ववद्गोपुरान्वितः ॥५०

अत्यंतभास्वरा स्वच्छा तयोर्मध्ये स्थली मुने ।
सर्वापि मुक्ताखचिताः शिशिरातिमनोहराः ॥५१
ताम्रपर्णी महापर्णी सदा मुक्ताफलोदका ।
एवमाद्या महानद्यः प्रवहंति महास्थले ॥५२
तासां तीरेषु सर्वेऽपि देवलोकनिवासिनः ।
वसंति पूर्वजनुषि श्रीदेवीमन्त्रसाधकाः ॥५३
पूर्वाद्यष्टसु भागेषु लोकाः शक्रादिगोचराः ।
मुक्ताशालस्य परितः संयुज्य द्वारनेशकान् ॥५४
मुक्ताशालस्य नीलस्य द्वारयोर्मध्यदेशतः ।
पूर्वभागे शक्रलोकस्तत्कोणे वह्निलोकभूः ॥५५
याम्यभागे यमपुरं तत्र दण्डधरः प्रभुः ।
सर्वत्र ललितामन्त्रजापी तीव्रस्वभाववान् ॥५६

इन्द्रनील नामक शाल के अन्तर में मरुत योजन में एक मुक्ताफलों से परिपूर्ण शाल है और वह पहिलो भाँति ही गोपुर से समन्वित है ।५०। हे मुने ! उन दोनों के मध्य में अत्यधिक भास्वर स्थली है जो परम स्वच्छ है । वह सब ही मुक्ताओं से खचित है और शिशिर से अतीव मनोहर है ।५१। उस महा स्थल में ताम्रपर्णी—महापर्णी आदि महा नदियाँ हैं जिनका जल मुक्ता फलों के ही समान हैं । ऐसी नदियाँ सर्वदा वहाँ बहा करती हैं ।५२। उनके तटों पर सभी देवलोक के निवासी वास किया करते हैं जो अपने पूर्वजन्म में श्रीदेवी के मन्त्र की साधना करने वाले हैं ।५३। पूर्व आदि आठ भागों में शक्रादि गोचर लोक हैं जो मुक्ता शाल के सब ओर द्वार-देशकों को संयोजित करते हैं ।५४। मुक्ता शाल नील के द्वारों में मध्य देश से पूर्व भाग में इन्द्र लोक है और उसके कोण में वह्निलोक की भूमि है ।५५। याम्य भाग में यम राज का नगर है । वहाँ पर दण्डधर प्रभु निवास किया करते हैं । सर्वत्र ललिता के मन्त्र का जाप करने वाले हैं और तीव्र स्वभाव वाले हैं ।५६।

आज्ञाधरो यमभटैश्चित्रगुप्तपुरोगमैः ।
सार्धं नियमयत्येव श्रीदेवीसमयं गुहः ॥५७

गुहसप्तान्दुराचारांल्ललिताद्वेषकारिणः ।
कूटभक्तिपरान्मूर्खान् स्तब्धानत्यंतदर्पितान् ॥५८

मन्त्रचोरान्कुमन्त्रांश्च कुविद्यानघसंश्रयान् ।
नास्तिकान्पापशीलांश्च वृथैव प्राणिहिंसकान् ॥५९

स्त्रीद्विष्टांल्लोकविद्विष्टान्पाषंडानां हि पालिनः ।
कालसूत्रे रौरवे च कुम्भीपाके च कुम्भज ॥६०

असिपत्रवने घोरे कृमिभक्षे प्रतापने ।
लालाक्षेपे सूचिवेधे तथैवांगारपातने ॥६१

एवमादिषु कष्टेषु नरकेषु घटोद्भव ।
पातयत्याज्ञया तस्याः श्रीदेव्याः स महौजसः ॥६२

तस्यैव पश्चिमे भागे निर्ऋतिः खड्गधारकः ।
राक्षसं लोकमाश्रित्य वर्तते ललितार्चकः ॥६३

चित्रगुप्त जिनमें अग्रणी है ऐसे यमराज के भटों के साथ आज्ञा के धारण करने वाले गुह श्री देवी के समय को नियमित किया करते हैं ।५७। जो गुह के द्वारा शप्त हैं—दुराचारी हैं—ललिता के साथ द्वेष करने वाले हैं—कूटभक्ति में तत्पर हैं—मूर्ख हैं—स्तब्ध हैं और बहुत ही अधिक दर्प वाले हैं—मन्त्र चोर हैं—कुत्सित मन्त्र वाले हैं—कुविद्या के पाप का संश्रय करने वाले हैं—नास्तिक हैं—पाप कर्मों के करने वाले हैं उनको भिन्न-भिन्न नरकों में डाल दिया जाता है । उन नरकों के नाम ये हैं—कालसूत्र—रौरव—कुम्भीपाक—वह महान ओज वाला उसी स्री देवी की आज्ञा से हे घटोद्भव ! इन नरकों में डाल दिया करता है ।५८-६२। उसके ही पश्चिम भाग में खड्ग का धारण करने वाला निर्ऋति है । वह भी श्री ललिता का अर्चक राक्षस लोक का आश्रय ग्रहण करके रहा करते हैं ।६३।

तस्य चोत्तरभागे तु द्वारयोरंतरस्थले ।
वारुणं लोकमाश्रित्य वरुणो वर्तते सदा ॥६४

वारुण्यास्वादनोन्मत्तः शुभ्रांगो झषवाहनः ।
सदा श्रीदेवतामंत्रजापी श्रीक्रमसाधकः ॥६५

श्रीदेवतादर्शनस्य द्वेषिणः पाशबन्धनैः ।
बद्ध्वा नयत्यधोमार्गं भक्तानां बन्धमोचकः ॥६६
तस्य चोत्तरकोणेषु वायुलोको महाद्युतिः ।
तत्र वायुशरीराश्च सदानन्दमहोदयाः ॥६७
सिद्धा दिव्यर्षयश्चैव पवनाभ्यासिनोऽपरे ।
गोरक्षप्रमुखाश्चान्ये योगिनो योगतत्पराः ॥६८
एतैः सह महासत्त्वस्तत्र श्रीमारुतेश्वरः ।
सर्वथा भिन्नमूर्तिश्च वर्तते कुम्भसम्भव ॥६९
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा तस्य शक्तयः ।
तिस्रो मारुतनाथस्य सदा मधुमदालसाः ॥७०

उसके उत्तर भाग में दोनों के मध्य स्थल में वारुण लोक का आश्रके लेकर सदा वरुण देवता रहा करता है ।६४। यह वारुणी के अस्वादन में मत्त रहता है । इसका परमशुभ्र है और वृष इसका वाहन है । यह भी श्रीदेवी के मन्त्र के जप करने वाला है और श्री के क्रम की साधन करने वाला है ।६५। जो भी श्री देवता से द्वेष करने वाले हैं उनको पाशों के बन्धनों से बाँधकर भक्तों के बन्धन को छुड़ाने वाला यह अधो मार्ग में पहुँचा दिया करता है ।६६। और उसके उत्तर कोने में महती द्युति वाला वायुलोक है । वहाँ पर वायु के ही शरीरों वाले तथा सर्वदा आनन्द से पूर्ण महोदय सिद्ध-गण और दिव्य ऋषिगण तथा दूसरे पवन के अभ्यास वाले—गो की रक्षा में प्रधान–योग में परायण योगी रहा करते हैं और इन्हीं के साथ महान सत्व वाला श्रीमारुतेश्वर निवास करते हैं । इनकी मूर्ति सर्वथा भिन्न है ।६७-६९। हे कुम्भ-सम्भव ! इडा–पिङ्गला और सुषुम्णा इसकी शक्तियाँ हैं । ये तीन शक्तियाँ मरुतनाथ की सर्वदा मधु के मद से अलस रहा करती हैं ।७०।

ध्वजहस्तो मृगवरे वाहने महति स्थितः ।
ललितायजनध्यानक्रमपूजनतत्परः ॥७१
आनन्दपूरिताङ्गीभिरन्याभिः शक्तिभिर्वृतः ।
स मारुतेश्वरः श्रीमान्सदा जपति चक्रिणीम् ॥७२
तेन सत्त्वेन कल्पान्ते त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

परागमयतां नीत्वा विनोदयति तत्क्षणात् ।।७३

तस्य सत्वस्य सिद्धयर्थं तानेव ललितेश्वरीम् ।
पूजयन्भावयन्नास्ते सर्वाभरणभूषितः ।।७४

तल्लोकपूर्वभागस्थे यक्षलोके महाद्युतिः ।
यक्षेंद्रो वसति श्रीमांस्तद्द्वारद्रुमध्यगः ।।७५

निधिभिश्च नवाकारैर्ऋद्धिवृद्धयादिशक्तिभिः ।
सहितो ललिताभक्तान्पूरयन्धनसम्पदा ।।७६

यक्षीभिश्च मनोज्ञाभिरनुकूलप्रवृत्तिभिः ।
विविधैर्मधुभेदैश्च सम्पूजयति चक्रिणीम् ।।७७

वह मारुतेश्वर श्रेष्ठ सिंह के वाहन पर विराजमान हैं—हाथ में ध्वजा लिए हुए हैं और ललिता देवी के यजन-ध्यान और अर्चन के क्रम में परायण रहते हैं ।७१। आनन्द से पूरित अङ्गों वाली अन्य शक्तियों से समावृत रहते हैं । वह श्रीमान मरुतेश्वर सदा चक्रिणी का जाप किया करते हैं ।७२। उसी के सत्व से चराचर त्रैलोक्य को कल्प के अन्त में परागमयता को प्राप्त करके उसी क्षण में निनोदित किया करते हैं ।७३। उसी सत्व की सिद्धि के लिए उसी ललितेश्वरी की भावना तथा अर्चना करते हुए समस्त आभरणों से भूषित हैं ।७४। उस लोक के पूर्व भाग में यक्षलोक है उसमें महान कान्ति सम्पन्न यक्षराज निवास किया करते हैं । यह श्री सम्पन्न हैं और उसके द्वारों के मध्य में स्थित हैं ।७५। निधियों के द्वारा जो नौ हैं तथा ऋद्धि, वृद्धि आदि शक्तियों के द्वारा ललिता के भक्तों की धन सम्पदा से पूर्ति किया करते हैं ।७६। अनुकूल प्रवृत्ति वाली परम सुन्दरी पत्नियों के सहित अनेक प्रकार के मधु के भेदों से उसी चक्रिणी देवी की सविधि पूजा किया करते हैं ।७७।

मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्माणिकन्धरः ।
इत्येवमादयो यक्षसेनान्यस्तत्र सन्ति वै ।।७८

तल्लोकपूर्वभागे तु रुद्रलोको महोदयः ।
अनर्घ्यरत्नखचितस्तत्र रुद्रोऽधिदेवता ।।७९

सदैव मन्युना दीप्तः सदा बद्धमहेषुधिः ।

स्वसमानैर्महासत्वैर्लोकनिर्वाहदक्षिणैः ॥८०
अधिज्यकार्मुकैर्दक्षैः षोडशावरणस्थितैः ।
आवृतः सततं वक्त्रैर्जपञ्छ्रीदेवतामनुम् ॥८१
श्रीदेवीध्यानसम्पन्नः श्रीदेवीपूजनोत्सुकः ।
अनेककोटिरुद्राणीगणमंडितपार्श्वभूः ॥८२
ताश्च सर्वाः प्रदीप्तांग्यो नवयौवनगर्विताः ।
ललिताध्याननिरताः सदासवमदालसाः ॥८३
ताभिश्च साकं स श्रीमान्महारुद्रस्त्रिशूलभृत् ।
हिरण्यबाहुप्रमुखै रुद्रैरन्यैर्निषेवितः ॥८४

वहाँ पर बहुत से यक्षराज के सेनानी गण भी निवास किया करते हैं जिनके प्रमुख नाम मणि भद्र-पूर्ण भद्र—मणिमान और मणिकन्धर हैं।७८। उस लोक के पूर्व भाग में महान उदय वाला रुद्रलोक भी है। वेशकी मती रत्नों से खचित वहाँ पर रुद्र उसके अधिष्ठाता देव हैं।७९। वह सदा ही क्रोध से दीप्त रहता है और सर्वदा धनुष को चढ़ाये हुए रहते हैं। अपने ही सदृश—दक्ष—षोडश आवरणों में स्थित वक्त्रों से निरन्तर आवृत श्री देवता के मन्त्र का जाप किया करता है।८०-८१। श्री देवी के ध्यान से सम्पन्न और श्री देवी के पूजन में समुत्सुक—बहुत सी करोड़ों रुद्राणियों के गणों से मण्डित पार्श्व की भूमि वाले हैं।८२। वे सभी रुद्राणियाँ भी प्रदीप्त अङ्गों वाली हैं और नवीन यौवन के गर्व से अन्वित है। वे सभी श्री ललिता के ध्यान में निमग्न रहा करती हैं तथा सर्वदा आसव के मद से अलग हैं।८३। उन सबके साथ में श्रीमान् महान रुद्र त्रिशूल के धारी हैं और हिरण्य बाहु जिनमें प्रमुख हैं ऐसे अन्य अनेक रुद्रों के द्वारा निषेवित हैं।८४।

ललितादर्शनभ्रष्टानुद्धतान्गुरुधिक्कृतान् ।
शूलकोट्या विनिर्भिद्य नेत्रोत्थैः कटुपावकैः ॥८५
दहंस्तेषां वधूभृत्यान्प्रजाश्चैव विनाशयन् ।
आज्ञाधरो महावीरो ललिताज्ञाप्रपालकः ॥८६
रुद्रलोकेऽतिरुचिरे वर्तते कुम्भसम्भव ।
महारुद्रस्य तस्यर्षे परिवाराः प्रमाथिनः ॥८७

ये रुद्रास्तानसंख्यातान्को वा वक्तुं पटुर्भवेत् ।
ये रुद्रा अधिभूम्यां तु सहस्राणां सहस्रशः ।।८८
दिवि येऽपि च वर्तंते सहस्राणां सहस्रशः ।
येषामन्नमिषश्चैव येषां वातास्तथेषवः ।।८९
येषां च वर्षमिषवः प्रदीप्ताः पिङ्गलेक्षणाः ।
अर्णवे चांतरिक्षे च वर्तमाना महौजसः ।।९०
जटावंतो मधुष्मन्तो नीलग्रीवा विलोहिताः ।
ये भूतानामधिभुवो विशिखासः कर्पदिनः ।।९१

ललिता के दर्शन से भ्रष्ट—उद्धत और गुरु के द्वारा धिक्कृत हैं उनको शूल की कोटि से भेदन करके विनष्ट कर देता है। तथा नेत्रों से समुत्पन्न तीक्ष्ण पावक से उनके भृत्य-वधू और सन्तति का दाह करके विनाश कर दिया करता है। यह महावीर आज्ञा का पालक और ललिता का आदेश करने वाला है।८५-८६। हे कुम्भसम्भव ! यह अतीव सुरम्य रुद्रलोक में विद्यमान रहता है। हे ऋषे ! उस महारुद्र के परिवार प्रमाथी हैं।८७। जो भी रुद्र हैं वे अगणित हैं ऐसा कोई भी पटु नहीं है कि उनकी गणना कर सके। जो रुद्र भूमि में है वे भी सहस्रों ही हैं।८८। और जो दिवलोक में हैं वे भी हजारों ही हैं। जिनके अन्नमिष हैं और जिनके वात तथा इषु हैं।८९। और जिनके वर्ष इषु हैं—ये परम प्रदीप्त हैं तथा इनके नेत्र पिङ्गल वर्ण के है। ये महान ओज वाले सागर में—अन्तरिक्ष में भी वर्त्तमान रहा करते।९०। ये जटाजूट धारी हैं—मधुमान हैं—इनकी ग्रीवा नील वर्ण की है और विलोहित हैं। ये भूतों के अधिभू हैं—विशिखा और कपर्दी हैं।९१।

ये अन्नेषु विविध्यंति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
ये पथां रथका रुद्रा ये च तीर्थनिवासिनः ।।९२
सहस्रसंख्या ये चान्ये सृकावंतो निषंगिणः ।
ललिताज्ञाप्रणेतारो दिशो रुद्रा वितस्थिरे ।।९३
ते सर्वे सुमहात्मानः क्षणाद्विश्वत्रयीवहाः ।
श्रीदेव्या ध्याननिष्णाताञ्छ्रीदेवीमन्त्रजापिनः ।।९४

श्रीदेवतायां भक्ताश्च पालयंति कृपालवः ।
षोडशावरणं चक्रं मुक्ताप्राकारमंडले ॥६५
आश्रित्य रुद्रास्ते सर्वे महारुद्रं महोदयम् ।
हिरण्यबाहुप्रमुखा ज्वलन्मन्युमुपासते ॥६६

जो अन्नों में विविद्ध होते हैं--पात्रों में जनों को पीते हैं पथों में रथक हैं और जो तीर्थों में निवास करने वाले हैं ।६२। और जो अन्य हैं उनकी भी सहस्रों ही संख्या है । ये सृकावान् हैं और निषङ्गी हैं । सभी ललितादेवी की आज्ञा के प्रणेता हैं । ऐसे रुद्र दिशाओं में प्रस्थित हैं ।६३। वे सभी महान आत्माओं वाले हैं और क्षणभर में तीनों लोकों के वहन करने वाले हैं । ये सभी श्रीदेवी के ध्यान में परम निष्णात रहने वाले हैं तथा श्रीदेवी के मन्त्र का जाप करने वाले हैं ।६४। ये श्रीदेवी में परम भक्त हैं तथा कृपालु उसकी आज्ञा का पालन किया करते हैं । सोलह आवरण वाले चक्र में जो मुक्ताओं के प्रकार मण्डल में है समालय ग्रहण करके सभी महोदय महारुद्र की उपासना करते हैं जो कि क्रोध से जाज्वल्यमान हैं । इनमें हिरण्य बाहु प्रधान हैं ऐसे सब रुद्र हैं ।६५-६६।

—×—

॥ दिग्पालादि शिवलोकान्तर वर्णन ॥

अगस्त्य उवाच–

षोडशावरणं चक्रं किं तद्रुद्राधिदैवतम् ।
तत्र स्थिताश्च रुद्राः के केन नाम्ना प्रकीर्तिताः ॥१
केष्वावरणबिंबेषु किन्नामानो वसन्ति ते ।
यौगिकं रौढिकं नाम तेषां ब्रूहि कृपानिधे ॥२

हयग्रीव उवाच–

तत्र रुद्रालयः प्रोक्तो मुक्ताजालकनिर्मितः ।
पञ्चयोजनविस्तारस्तत्संख्यायामशोभितः ॥३
षोडशावरणैर्युक्तो मध्यपीठमनोहरः ।
मध्यपीठे महारुद्रो ज्वलन्मन्युस्त्रिलोचनः ॥४

सज्जकार्मुकहस्तश्च सर्वदा वर्त्तते मुने ।
त्रिकोणे कथिता रुद्रास्त्रय एव घटोद्भव ॥५
हिरण्यबाहु सेनानीर्दिशांपतिरथापरः ॥६
वृक्षाश्च हरिकेशाश्च तथा पशुपतिः परः ।
शष्पिञ्जरस्त्विषीमांश्च पथीनां पतिरेव च ॥७

श्री अगस्त्यजी ने कहा--षोडशावरण चक्र क्या वह रुद्र के अधिदैवत वाला है । वहाँ पर संस्थित रुद्र कौन है और किस नाम से प्रकीर्त्तित हैं ।१। ।१। और किन आवरण विश्रों में किस नामों वाले निवास किया करते हैं ? हे कृपानिधे ! उनका योगिक और रौढिक नाम आप मुझे बतलाइये ।२। श्री हयग्रीवजी ने कहा--वहाँ पर तीन रुद्र कहे गये हैं--मुक्ता जातक में निर्मित हैं । उसकी संख्या और आयाम से शोभित पाँच योजन का विस्तार है ।३। मध्यपीड मनोहर सोलह आवरणों से युक्त है । मध्य में जो पीठ है जो आज्वल्यमान मन्यु (क्रोध) वाले और तीन लोचनों से समन्वित हैं ।४। हे मुने ! वह सर्वदा सुसज्जित कार्मुक से हाथ में लेकर विद्यमान रहा करते हैं । हे घटोद्भव ! त्रिकोण में तीन ही रुद्र कहे गये हैं ।५। एक तो हिरण्य बाहु हैं--दूसरे सेनानी हैं और तीसरे का नाम दिशांपति है ।६। तथा वृक्ष-हरिकेश और तीसरे पशुपति हैं । शष्पिञ्जर--त्विषीमान् और पथीनां पति है ।७।

एते षट्कोणगाः किं च बभ्रुशास्त्वष्टकोणके ।
विव्याध्यन्नपतिश्चैव हरिकेशोपवीतिनौ ॥८
पुष्टानां पतिरप्यन्यो भवो हेतिस्तथैव च ।
दशपत्रे स्वावरणे प्रथमो जगतां पतिः ॥९
रुद्राततायिनौ क्षेत्रपतिः सूतस्तथापरः ।
अहं त्वन्यो वनपती रोहितः स्थपतिस्तथा ॥१०
वृक्षाणां पतिरप्यन्यश्चैते सज्जशरासनाः ।
मन्त्री च वाणिजश्चैव तथा कक्षपतिः परः ॥११
भवन्तिस्तु चतुर्थः स्यात्पञ्चमो वाग्विदस्ततः ।
ओषधीनां पतिश्चैव षष्ठः कलशसंभव ॥१२

उच्चैर्घोषाक्रन्दयन्तौ पतीनां च पतिस्तथा ।
कृत्स्नवीतश्च धावश्च सत्वानां पतिरेव च ॥१३
एते द्वादश पत्रस्थाः पञ्चमावरणस्थिताः ।
सहमानश्च निर्व्याधिरव्यधीनां पतिस्तथा ॥१४

ये तो षट्कोणों में स्थित हैं और अष्ट कोणों में बहुत से हैं। निर्व्याधि—हरिकेश—उपवीती—पुष्टों के पति—भव—हेति हैं। दश पत्र आवरण में प्रथम जगतों के पति हैं।८-९। रुद्र-अततावी—क्षेत्रपति—तथा सूत—अहंतु अन्य पति—रोहित और स्थपति हैं।१०। अन्य वृक्षों का पति—ये धनुष को सुसज्जित रखने वाले हैं। मन्त्री—वाणिज—कक्ष पति—भवन्ति चौथा और पाँचवाँ वाग्विस्तत है। औषधियों के पति—छठवाँ हे कलश सम्भव है।११-१२। उच्चैर्घोष-आक्रन्दयन्त तथा पतियों का पति है। कृत्स्न वीत—धाव—सत्वों का पति—ये इतने द्वादश पत्रों में स्थित हैं जो पञ्चम आवरण में वर्तमान रहते हैं। सहमान निर्व्याधि—के पति हैं।१३-१४।

ककुभश्च निषंगी च स्तेनानां च पतिस्तथा ।
निचेरुश्चेति विज्ञेयाः षष्ठावरणदेवताः ॥१५
अधः परिचरोऽरण्यः पतिः किं च सृकाविषः ।
जिघांसन्तो मुष्णतां च पतयः कुम्भसम्भव ॥१६
असीमंतश्च सुप्राज्ञस्तथा नक्तंचरो मुने ।
प्रकृतीनां पतिश्चैव उष्णीषी च गिरेश्चरः ॥१७
कुलुञ्चानां पतिश्चैवेषुमन्तः कलशोद्भव ।
धन्वाविदश्चातन्वानप्रतिपूर्वंदधानकाः ॥१८
आयच्छतः षोडशैते षोडशारनिवासिनः ।
विसृजन्तस्तथास्यंतो विध्यंतश्चापि सिंधुप ॥१९
आसीनाश्च शयानाश्च यन्तो जाग्रत एव च ।
तिष्ठन्तश्चैव धावन्तः सभ्याश्चैव समाधिपाः ॥२०
अश्वाश्चैवाश्वपतय अव्याधिन्यस्तथैव च ।
विविध्यंतो गणाध्यक्षा बृहन्तो विंध्यमर्द्दन ॥२१

ककुभ—निषंग—स्तेनों के पति और निचेरु—छठवें आवरण के देवता हैं ।१५। अथ—परिचर—अरण्य—पति—सृकाविष—जिघांसंत—मुष्णतां पति—हे कुम्भसम्भव ! धत्वाविद—आतन्वान—आतन्वान—असीमन्त—सुप्राज्ञनक्तंचर—प्रकृतियों के पति—उष्णीषी—गिरेश्चर—कुलंचों से पति—इषुमन्त—प्रतिपूर्व दधानक—आयच्छत—ये षोडश सोलह आरों के निवासी हैं—निसृजन्त—आस्यन्त धावन्त—सभ्य—समाधिप—अश्व—अश्वपति—व्याधि—न्यस्त—विविध्यन्त—गणाध्यक्ष—बृहन्त और विंध्य-मर्दन हैं ।१६-२१।

गृत्सश्चाष्टादशविधा देवता अष्टमावृतौ ।
अथ गृत्साधिपतयो व्राता व्राताधिपास्तथा ॥२२
गणाश्च गणपाश्चैव विश्वरूपा विरूपका: ।
महान्त: क्षुल्लकाश्चैव रथिनाश्चारथा: परे ॥२३
रथाश्च रथपत्याख्या: सेना: सेनान्य एव च ।
क्षत्तार: संग्रहीतारस्तक्षाणो रथकारका: ॥२४
कुलालश्चेति रुद्रास्ते नवमावृत्तिदेवता: ।
कर्माराश्चैव पुञ्जिष्ठा निषादाश्चेषुकृद्गणा: ॥२५
धन्वकारा मृगयव: श्वनय: श्वान एव च ।
अश्वाश्चैवाश्वपतयो भवो रुद्रो घटोद्भव ॥२६
शर्व: पशुपतिर्नीलग्रीवश्च शितिकण्ठक: ।
कपर्दी व्युप्तकेशश्च सहस्राक्षस्तथापर: ॥२७
शतधन्वा च गिरिश: शिपिविष्टश्च कुम्भज ।
मीढुष्टम इति प्रोक्ता रुद्रादशमशालगा ॥२८

और गृत्स ये अष्टमावृत्ति में अष्टादश नामक देवता हैं । इसके अनन्तर गृत्साधिप तप—व्राता ता व्रातधिपा—गणा—गणइया विश्वरूपा विरुपका—महान्त—क्षुल्लका—रथित—आरथा—तथा—रथ पत्याख्या—सेना—सेनान्य—क्षत्तार—संग्रहीतार—तक्षाण—रथकारका—कुलाल—ये रुद्र नवमाकृति वे देवता है ।२२-२४। कुमार—पुंजिष्ठा—निषादा—इषुकृद्-गणा—धन्वकारा—मृगयव—श्वनय—श्वान—और अश्वा—अश्वय तप—हे

घटोद्भव ! भव और रुद्र—शर्व—पशुपति—बालग्रीव—शिति कण्ठक—कपर्दी—व्युप्तकेश—सहस्राक्ष—शतधन्वागिरिश—शिपि विष्ट—मीढुष्ठम ये इतने रुद्र दशम शाल में से स्थित हैं ।२५-२८।

अथैकादशचक्रस्था इषुमद्ध्रस्ववामना: ।
बृहंश्च वर्षीयांश्चैव वृद्धः समृद्धिना सह ॥२९
अग्र्य: प्रथम आशुश्चाजिरोन्य: शीघ्रशिभ्यकौ ।
उर्म्यावस्वन्यरुद्रौ च स्रोतस्यो दिव्य एव च ॥३०
ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च पूर्वजावरजौ तथा ।
मध्यमश्चावगम्यश्च जघन्यश्च घटोद्भव ॥३१
चतुर्विंशतिराख्याता एते रुद्रा महाबला: ।
अथ बुध्न्य: सोम्यरुद्र: प्रतिसर्पकयाम्यकौ ॥३२
क्षेम्योवोचवखल्यश्च तत: श्लोक्यावसान्यकौ ।
वन्य: कक्ष्य: श्रवश्चैव ततोऽन्यस्तु प्रतिश्रव: ॥३३
आशुषेणश्चाशुरथ: शूरश्च तपसां निधे ।
अवभिंदश्च वर्मी च वरूथी बिल्मिना सह ॥३४
कवची च श्रुतश्चैव सेनो दुन्दुभ्य एव च ॥३५

उसके उपरान्त एकादशवें चक्र में स्थित रुद्रों के नाम हैं । इषुमद—ह्रस्ववामन—बृहत्—वर्षीयान्—वृद्ध—स्मृद्धि—अग्र्य—प्रथम—आशु—अजिरोन्य—शीघ्र—शिभ्यक—उर्म्यावसु—अन्य रुद्र—सोतस्य—दिव्य—ज्येष्ठ—कनिष्ठ—पूर्वक—अवरज—मध्यम—अवगम्य—जघन्य—ये चौबीस महाबल रुद्र आख्यात है । इसके उपरान्त बुध्न्य—सोम्य रुद्र—प्रतिसर्पक—याम्यक—क्षेम्य—वोचवखल्य-श्लोक्य—असान्यक—वन्य—कक्ष्य—श्रव—प्रतिश्रव-आशुषेण—आशुरथ—शूर—हे तपसांनिधे ! अवभिन्द—वर्मी—वरूथी—बिल्मी—कवची—श्रुत—सेन—दुन्दुभी इत्यादि रुद्र हैं ।२९-३५।

समाप्त